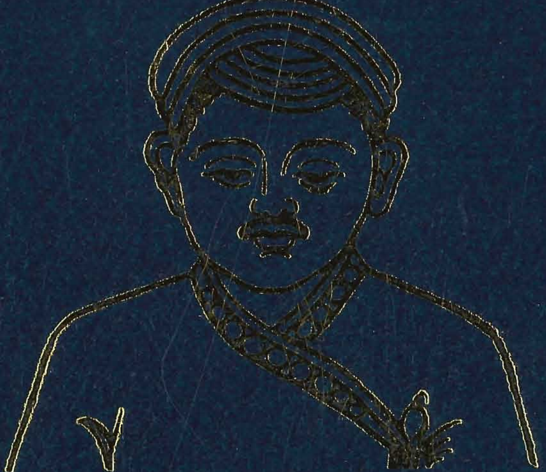

सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका

जीवकाण्ड एवं अर्थसंदृष्टि

हिन्दी अनुवाद

भाग २

- अनुवादिका -

डॉ. श्रीमती उज्ज्वला दि. शहा

आचार्य श्री नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार जीवकाण्ड की
पं.टोडरमलजी कृत भाषाटीका

सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका

(जीवकाण्ड एवं अर्थसंदृष्टि)

का

हिन्दी अनुवाद

भाग २

- अनुवादिका -

डॉ. श्रीमती उज्ज्वला दि. शहा

एम.बी.बी.एस., डी.सी.एच., डी.जी.पी.

- सम्पादक -

पं. दिनेशभाई शहा

एम.ए., एल.एल.बी.

- प्रकाशक -

वीतरागवाणीप्रकाशक

१५७/९, निर्मला निवास, सायन (पूर्व), मुंबई ४०००२२

टेलि. : ०२२-२४०७३५८१

सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका–जीवकाण्ड एवं अर्थसंदृष्टि

हिन्दी टीका

द्वितीय संस्करण	२९ अक्तू. २०१२	१००० प्रत
प्रथम संस्करण		१६०० प्रत
		योग २६०० प्रत

– प्राप्तिस्थान –

वीतरागवाणीप्रकाशक

१५७/९, निर्मला निवास, सायन (पूर्व)मुंबई ४०० ०२२

टेलि. : ०२२-२४०७३५८१

e mail - ujwaladinesh@yahoo.com

मूल्य रु. १५० (भाग १ और २)

विषय-सूची

तेरहवां अधिकार :
संयममार्गणा प्ररूपणा ५६१-५६८

संयम का स्वरूप और उसके पांच भेद,
संयम की उत्पत्ति का कारण ५६१

देशसंयम और असंयम का कारण,
सामायिकादि पांच संयम का स्वरूप ५६३

देशविरत, इन्द्रियों के अट्ठाइस विषय,
संयम की अपेक्षा जीवसंख्या ५६७

चौदहवां अधिकार :
दर्शनमार्गणा प्ररूपणा ५६९-५७२

दर्शन का लक्षण, चक्षुदर्शन आदि
चार भेदों का क्रम से स्वरूप,
दर्शन की अपेक्षा जीवसंख्या.................. ५६९

पंद्रहवां अधिकार :
लेश्यामार्गणा प्ररूपणा ५७३-६३४

लेश्या का लक्षण, लेश्याओं के निर्देश
आदि सोलह अधिकार....................... ५७३

निर्देश, वर्ण, परिणाम, संक्रम, कर्म,
लक्षण, गति, स्वामी, साधन, अपेक्षा
लेश्या का कथन ५७४

संख्या, क्षेत्र, स्पर्श, काल, अन्तर,
भाव और अल्पबहुत्व अपेक्षा
लेश्या का कथन ५९९

लेश्यारहित जीव ६३४

सोलहवां अधिकार :
भव्यमार्गणा प्ररूपणा ६३५-६५१

भव्य-अभव्य का स्वरूप,
भव्यत्व-अभव्यत्व से रहित जीव,
भव्य मार्गणा में जीवसंख्या ६३५

पांच परिवर्तन ६३६

सत्रहवां अधिकार :
सम्यक्त्वमार्गणा प्ररूपणा ६५२-७१८

सम्यक्त्व का स्वरूप, सात अधिकारों
के द्वारा छह द्रव्यों के निरूपण का निर्देश........ ६५२

नाम, उपलक्षण, स्थिति, क्षेत्र, संख्या,
स्थानरूप, फलाधिकार द्वारा छह द्रव्यों
का निरूपण ६५३

पंचास्तिकाय, नव पदार्थ,
गुणस्थानक्रम से जीवसंख्या,
त्रैराशिक यंत्र ६९७

क्षपकादि की युगपत् संभव विशेष संख्या,
सर्व संयमियों की संख्या,
क्षायिक सम्यक्त्व, वेदक सम्यक्त्व,
उपशम सम्यक्त्व ७०३

पांच लब्धि, सम्यक्त्व ग्रहण के योग्य
जीव, सम्यक्त्वमार्गणा के दूसरे भेद,
सम्यक्त्वमार्गणा में जीवसंख्या................. ७१४

अठारहवां अधिकार :
संज्ञीमार्गणा प्ररूपणा ७१९-७२०

संज्ञी, असंज्ञी का स्वरूप, संज्ञी,
असंज्ञी की परीक्षा के चिह्न ७१९

संज्ञी मार्गणा में जीवसंख्या ७२०

उन्नीसवां अधिकार :
आहारमार्गणा प्ररूपणा ७२१-७२५

आहार का स्वरूप,
आहारक, अनाहारक भेद,
समुद्घात के भेद, समुद्घात का स्वरूप ७२१

आहारक और अनाहारक का काल,
प्रमाण, आहारमार्गणा में जीवसंख्या ७२३

बीसवां अधिकार :
उपयोग प्ररूपणा **७२६–७२८**

उपयोग का स्वरूप, भेद तथा
उत्तर भेद, साकार अनाकार उपयोग
की विशेषता, उपयोगाधिकार
में जीवसंख्या ७२६

इक्कीसवां अधिकार :
अंतरभावाधिकार **७२९–७४७**

गुणस्थान और मार्गणा में शेष
प्ररूपणाओं का अन्तर्भाव, मार्गणाओं
में जीवसमासादि ७२९

गुणस्थानों में जीवसमासादि ७३७

मार्गणाओं में जीवसमास ७३८

बाइसवां अधिकार :
आलापाधिकार **७४८–७६५**

नमस्कार और आलापाधिकार के
कहने की प्रतिज्ञा ७४८

गुणस्थान और मार्गणाओं के
आलापों की संख्या, गुणस्थानों में
आलाप, जीवसमास की विशेषता,
बीस भेदों की योजना, आवश्यक नियम ७४८

यंत्ररचना ७६४

गुणस्थानातीत सिद्धों का स्वरूप,
बीस भेदों को जानने का उपाय ८५२

अंतिम आशीर्वाद ८५३

– 0 –

अर्थसंदृष्टि संबंधी प्रकरण ८५५

अर्थसंदृष्टि अधिकार **८५७–१०४३**

सामान्य स्वरूप ८५७

गुणस्थानाधिकार ८७८

जीवसमास अधिकार ९०९

पर्याप्ति अधिकार ९१९

प्राण, संज्ञा, गतिमार्गणा अधिकार ९२७

इन्द्रियमार्गणा अधिकार ९३१

कायमार्गणा अधिकार ९३७

योगमार्गणा अधिकार ९४३

वेदमार्गणा अधिकार ९७७

कषायमार्गणा अधिकार ९८०

ज्ञानमार्गणा अधिकार ९८५

संयममार्गणा अधिकार १००७

दर्शन, लेश्यामार्गणा अधिकार १००८

भव्यमार्गणा अधिकार.........................१०२५

सम्यक्त्वमार्गणा अधिकार १०२७

संज्ञीमार्गणा अधिकार १०४१

आहारमार्गणा, उपयोग अधिकार १०४२

संस्कृत, भाषा टीकाकार के वचन १०४४

– 0 –

तेरहवां अधिकार : संयममार्गणा प्ररूपणा

॥ मंगलाचरण ॥

विमल करत निज गुणनि तैं सब कौं विमल जिनेश ।
विमल हौंन कौं मैं नमौं अतिशय जुत तीर्थेश ॥

ज्ञानमार्गणा का प्ररूपण करके अब संयममार्गणा कहते हैं –

वदसमिदिकसायाणं दंडाणं तहिंदियाण पंचण्हं ।
धारणपालण णिग्गहचागजओ संजमो भणियो ॥४६५॥

व्रतसमितिकषायाणां दंडानां तथेंद्रियाणां पंचानाम् ।
धारणपालननिग्रहत्यागजयः संयमो भणितः ॥४६५॥

टीका – अहिंसा आदि व्रतों का धारण करना, ईर्या आदि समितियों का पालन करना, क्रोधादि कषायों का निग्रह करना, मन, वचन, कायरूप दण्ड का त्याग करना, स्पर्शन आदि पांच इन्द्रियों का जीतना ऐसे इन व्रतादिक पांच का धारणादि करना वही पांच प्रकार का संयम जानना । **सं** अर्थात् सम्यक् प्रकार का जो **यम** अर्थात् नियम, वह संयम है ।

बादरसंजलणुदये सुहुमुदये, समखये य मोहस्स ।
संजमभावो णियमा होदि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥४६६॥

बादरसंज्वलनोदये सूक्ष्मोदये शमक्षययोश्च मोहस्य ।
संयमभावो नियमात् भवतीति जिनैर्निर्दिष्टम् ॥४६६॥

टीका – बादर संज्वलन का उदय होते हुये तथा सूक्ष्म लोभ का उदय होते हुये तथा मोहनीय का उपशम होते हुये तथा मोहनीय का क्षय होते हुये निश्चय से संयमभाव होता है, ऐसा जिनदेव ने कहा है ।

वहां प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थानों में संज्वलन कषायों के सर्वघाति स्पर्धकों का उदय नहीं है वह तो क्षय, पुनश्च उदयरूप निषेकों के ऊपरवर्ती निषेकों का उदय नहीं है वही उपशम तथा बादर संज्वलन के देशघाति स्पर्धक जो संयम के अविरोधी हैं

उनका उदय, ऐसा क्षयोपशम होनेपर सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि ये तीन संयम होते हैं ।

पुनश्च सूक्ष्मकृष्टि करनेरूप जो अनिवृत्तिकरण, वहां तक बादर संज्वलन के उदय से अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण गुणस्थानों में सामायिक और छेदोपस्थापना दो ही संयम होते हैं । पुनश्च सूक्ष्मकृष्टि को प्राप्त हुआ ऐसा जो संज्वलन लोभ उसके उदय से दसवें गुणस्थान में सूक्ष्मसाम्परायसंयम होता है ।

पुनश्च सर्व चारित्रमोहनीय कर्म के उपशम से तथा क्षय से यथाख्यातसंयम होता है । वहां ग्यारहवें गुणस्थान में उपशम यथाख्यात होता है । बारहवें, तेरहवें, चौदहवें गुणस्थान में क्षायिक यथाख्यात होता है ।

इसी अर्थ को दो गाथाओं द्वारा कहते हैं ।

बादरसंजलणुदये बादरसंजमतियं खु परिहारो ।
पमदिदरे सुहुमुदये सुहुमो संजमगुणो होदि ।।४६७।।

बादरसंज्वलनोदये बादरसंयमत्रिकं खलु परिहारः ।
प्रमत्तेतरस्मिन् सूक्ष्मोदये सूक्ष्मः संयमगुणो भवति ।।४६७।।

टीका - बादर संज्वलन के देशघाति स्पर्धक संयम के विरोधी नहीं हैं, उनके उदय से सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि ये तीन संयम होते हैं । वहां परिहारविशुद्धिसंयम तो प्रमत्त-अप्रमत्त दो गुणस्थानों में ही होता है और सामायिक, छेदोपस्थापना प्रमत्तादि अनिवृत्तिकरण तक चार गुणस्थानों में होता है । पुनश्च सूक्ष्मकृष्टि को प्राप्त हुये संज्वलन लोभ के उदय से सूक्ष्मसाम्पराय नामक संयमगुण होता है ।

जहखादसंजमो पुण उवसमदो होदि मोहणीयस्स ।
खयदो वि य सो णियमा होदि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ।।४६८।।

यथाख्यातसंयमः पुनः उपशमतो भवति मोहनीयस्य ।
क्षयतोऽपि च स नियमात् भवतीति जिनैर्निर्दिष्टम् ।।४६८।।

टीका - यथाख्यातसंयम है, वह निश्चय से मोहनीयकर्म के सर्वथा उपशम से वा क्षय से होता है, ऐसा जिनदेव ने कहा है ।

तदियकषायुदयेण य विरदाविरदो गुणो हवे जुगवं ।
बिदियकषायुदयेण य असंजमो होदि णियमेण ।।४६९।।

तृतीयकषायोदयेन च विरताविरतो गुणो भवेद्युगपत् ।
द्वितीयकषायोदयेन च असंयमो भवति नियमेन ।।४६९।।

टीका – तीसरे प्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से युगपत् विरत-अविरतरूप संयमासंयम होता है । जैसे तीसरे गुणस्थान में सम्यक्त्व-मिथ्यात्व मिलकर ही होते हैं, वैसे पंचम गुणस्थान में संयम-असंयम दोनों मिश्ररूप होते हैं । इसलिये यह मिश्र संयमी है । पुनश्च दूसरे अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से असंयम होता है । ऐसे संयममार्गणा के सात भेद कहे ।

संगहिय सयलसंजममेयजममणुत्तरं दुरवगम्मं ।
जीवो समुव्वहंतो सामाइयसंजमो होदि ।।४७०।।

संगृह्य सकलसंयममेकयममनुत्तरं दुरवगम्यम् ।
जीवः समुद्वहन् सामायिकसंयमो भवति ।।४७०।।

टीका – समस्त व्रतधारणादिक पांच प्रकार के संयम को संग्रह द्वारा **एकयमं** अर्थात् मैं सर्व सावद्य का त्यागी हूँ ऐसा **एकयमं** अर्थात् सकल सावद्य के त्यागरूप अभेद संयम, वही सामायिक जानना ।

कैसा है सामायिक ? **अनुत्तरं** अर्थात् जिसके समान अन्य नहीं है, सम्पूर्ण है । **दुरवगम्यं** अर्थात् दुर्लभपने पाया जाता है, ऐसे सामायिक को पालनेवाला जीव सामायिकसंयमी है ।

छेत्तूण य परियायं पोराणं जो ठवेइ अप्पाणं ।
पंचजमे धम्मे सो छेदोवट्ठावगो जीवो ।।४७१।।

छित्वा च पर्यायं पुराणं यः स्थापयति आत्मानम् ।
पंचयमे धर्मे स छेदोपस्थापको जीवः ।।४७१।।

टीका – सामायिक चारित्र का धारक, प्रमाद से स्खलित होकर सावद्य क्रिया को प्राप्त हुआ ऐसा जो जीव, पहले हुयी सावद्यरूप पर्याय का प्रायश्चित्त विधि से

छेदन करके अपनी आत्मा को व्रतधारण आदि पांच प्रकार के संयमरूप धर्म में स्थापन करता है, वही छेदोपस्थापनसंयमी जानना ।

छेद अर्थात् प्रायश्चित्त, उसके द्वारा उपस्थापन अर्थात् धर्म में आत्मा को स्थापित करना, वह जिसके होता है वह छेदोपस्थापनसंयमी है । अथवा पहले जो तप किया था उसका दोष के अनुसार विच्छेद हुआ उसका छेद अर्थात् अपना दोष दूर करने के लिये तप के द्वारा उपस्थापन अर्थात् निर्दोष संयम में आत्मा को स्थापित करना, वह जिसके होता है, वह छेदोपस्थापनसंयमी है ।

अपने तप के छेद का होता है उपस्थापन जिसके, वह छेदोपस्थापन है, ऐसी निरुक्ति जाननी ।

पंचसमिदो तिगुत्तो परिहरइ सदा वि जो हु सावज्जं ।
पंचेक्कजमो पुरिसो परिहारयसंजदो सो हु ।।४७२।।

पंचसमितः त्रिगुप्तः परिहरति सदापि यो हि सावद्यम् ।
पंचैकयमः पुरुषः परिहारकसंयतः स हि ।।४७२।।

टीका - पांच समिति, तीन गुप्ति से संयुक्त जो जीव, सदा काल हिंसारूप सावद्य का परिहार करता है, वह पुरुष सामायिकादि पांच संयमों में से परिहारविशुद्धि नामक संयम का धारक प्रकट जानना ।

तीसं वासो जम्मे वासपुधत्तं खु तित्थयरमूले ।
पंचक्खाणं पढिदो संझूणदुगाउयविहारो ।।४७३।।

त्रिंशद्वर्षो जन्मनि वर्षपृथक्त्वं खलु तीर्थंकरमूले ।
प्रत्याख्यानं पठितः संध्योनद्विगव्यूतिविहारः ।।४७३।।

टीका - जो जन्म से तीस वर्ष तक का हो तथा सर्वदा खानपान आदि से सुखी हो, ऐसा पुरुष दीक्षा को अंगीकार करके पृथक्त्व वर्ष तक तीर्थंकर के पादमूल में प्रत्याख्यान नामक नौवें पूर्व का पाठी हो, वह परिहारविशुद्धिसंयम को अंगीकार करके तीनों संध्या काल बिना सर्व काल में दो कोस विहार करता है और रात्रि में विहार न करे, वर्षा काल में कुछ नियम नहीं, गमन करे वा न करे, ऐसा परिहारविशुद्धिसंयमी होता है ।

परिहार अर्थात् प्राणियों की हिंसा का त्याग, उससे विशेषरूप जो **शुद्धिः** अर्थात् शुद्धता जिसमें हो, वह परिहारविशुद्धिसंयम जानना ।

इस संयम का जघन्य काल तो अंतर्मुहूर्त है क्योंकि कोई जीव अंतर्मुहूर्तमात्र उस संयम को धारण करके अन्य गुणस्थान को प्राप्त होता है तो वहां वह संयम नहीं रहता, इसलिये जघन्य काल अंतर्मुहूर्त कहा ।

पुनश्च उत्कृष्ट काल अड़तीस वर्ष कम पूर्व कोटि है । क्योंकि कोई कोटि पूर्व आयु का धारी जीव तीस वर्ष का होकर दीक्षा ग्रहण करके आठ वर्ष तक तीर्थंकर के निकट पढ़कर पश्चात् परिहारविशुद्धिसंयम को अंगीकार करता है इसलिये उत्कृष्ट काल अड़तीस वर्ष कम पूर्व कोटि कहा ।

कहा ही है -

परिहारर्धिसमेतो जीवः षट्कायसंकुले विहरन् ।
पयसेव पद्मपत्रं न लिप्यते पापनिवहेन ।।

इसका अर्थ - परिहारविशुद्धि ऋद्धि से युक्त जीव छह कायरूप जीवों के समूह में विहार करते हुये जल से कमलपत्र की भांति पाप से लिप्त नहीं होता ।

अणुलोहं वेदंतो जीवो उवसामगो व खवगो वा ।
सो सुहमसंपराओ जइखादेणूणओ किंचि ।।४७४।।

अणुलोभं विदन् जीवः उपशामको वा क्षपको वा ।
स सूक्ष्मसांपरायः यथाख्यातेनोनः किंचित् ।।४७४।।

टीका - सूक्ष्मकृष्टि को प्राप्त हुये लोभ कषाय के अनुभाग के उदय को भोगनेवाले उपशमक या क्षपक जीव, सूक्ष्म है साम्पराय अर्थात् कषाय जिनके, ऐसे सूक्ष्मसाम्परायसंयमी जानना । ये यथाख्यातसंयमी महामुनियों से किंचित् कम जानना, अल्पसा ही अंतर है ।

उवसंते खीणे वा असुहे कम्मम्मि मोहणीयम्मि ।
छदुमट्ठो वा जिणो वा जहखादो संजदो सो दु ।।४७५।।

उपशांते क्षीणे वा अशुभे कर्मणि मोहनीये ।
छद्मस्थो वा जिनो वा यथाख्यातः संयतः स तु ।।४७५।।

टीका – अशुभरूप मोहनीय कर्म उपशमरूप या क्षयरूप होनेपर उपशांतकषाय गुणस्थानवर्ती या क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती छद्मस्थ होते हैं अथवा सयोगी, अयोगी जिन हैं वे ही यथाख्यातसंयमी जानना । मोहनीयकर्म के सर्वथा उपशम या नाश से यथावस्थित आत्मस्वभाव की अवस्था ही है लक्षण जिसका ऐसा यथाख्यातचारित्र है ।

पंचतिहिंचउविहेहिं य अणुगुणसिक्खावणेहिं संजुत्ता।
उच्चंति देसविरया सम्माइट्ठी झलियकम्मा ।।४७६।।

पंचत्रिचतुर्विधैश्च अणुगुणशिक्षाव्रतैः संयुक्ताः ।
उच्यंते देशविरताः सम्यग्दृष्टयः झरितकर्माणः ।।४७६।।

टीका – पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत ऐसे बारह व्रतों से संयुक्त जो सम्यग्दृष्टि, कर्मनिर्जरा के धारक देशविरत जीव संयमासंयम के धारक हैं ऐसा परमागम में कहा है ।

दंसणवयसामाइय पोसहसच्चित्तरायभत्ते य ।
बह्मारंभपरिग्गह अणमणमुद्दिट्ठदेसविरदेदे ।।४७७।।

दर्शनव्रतसामायिकाः प्रोषधसचित्तरात्रभक्ताश्च ।
ब्रह्मारंभपरिग्रहानुमतोद्दिष्टदेशविरता एते ।।४७७।।

टीका – नाम के एकदेश से पूरा नाम ग्रहण करना इस न्याय से इस गाथा का अर्थ करते हैं । १) दार्शनिक, २) व्रतिक, ३) सामायिक, ४) प्रोषधोपवास, ५) सचित्तविरत, ६) रात्रिभोजनविरत, ७) ब्रह्मचारी, ८) आरंभविरत, ९) परिग्रहविरत, १०) अनुमतिविरत, ११) उद्दिष्टविरत ऐसी ग्यारह प्रतिमाओं की अपेक्षा से देशविरत के ग्यारह भेद जानने ।

वहां पांच उदुंबरादिक और सप्त व्यसनों का त्याग करे और शुद्ध सम्यक्त्वी हो जाय, उसे दार्शनिक कहते हैं । पांच अणुव्रतादि को धारण करे, उसे व्रतिक कहते हैं । नित्य सामायिक क्रिया जिसके होती है, उसे सामायिक कहते हैं । अवश्य पर्वों

में जिसके उपवास होते हैं, उसे प्रोषधोपवास कहते हैं । जीव सहित वस्तु के सेवन का त्यागी हो, उसे सचित्तविरत कहते हैं । रात्रि में भोजन न करे, उसे रात्रिभक्तविरत कहते हैं । सदा काल शील पाले, उसे ब्रह्मचारी कहते हैं । पाप आरंभ का त्याग करे, उसे आरंभविरत कहते हैं । परिग्रह के कार्य का त्याग करे, उसे परिग्रहविरत कहते हैं । पाप की अनुमोदना का त्याग करे, उसे अनुमतिविरत कहते हैं । अपने निमित्त से बने हुये आहारादिक का त्याग करे, उसे उद्दिष्टविरत कहते हैं । इनका विशेष वर्णन अन्य ग्रंथों से जानना ।

जीवा चोद्दसभेया इंदियविसया तहट्ठवीसं तु ।
जे तेसु णेव विरया असंजदा ते मुणेदव्वा ।।४७८।।

जीवश्चतुर्दशभेदा इंद्रियविषयास्तथाष्टविंशतिस्तु ।
ये तेषु नैव विरता असंयताः ते मंतव्याः ।।४७८।।

टीका – चौदह जीवसमासरूप भेद तथा अट्ठाइस इन्द्रियों के विषय, इनसे जो विरत नहीं होते अर्थात् जीवों की दया नहीं पालते और विषयों में रागी हैं वे असंयमी जानना ।

पंचरसपंचवण्णा दो गंधा अट्ठफाससत्तसरा ।
मणसहिदट्ठावीसा इंदियविसया मुणेदव्वा ।।४७९।।

पंचरसपंचवर्णाः द्वौ गंधौ अष्टस्पर्शसप्तस्वराः ।
मनःसहिताःअष्टविंशतिः इंद्रियविषयाः मंतव्याः ।।४७९।।

टीका – तीखा, कड़वा, कषायला, खट्टा, मीठा ये पांच रस; सफेद, पीला, नीला, लाल, काला ये पांच वर्ण; सुगंध, दुर्गंध ये दो गंध; कोमल, कठोर, भारी, हलका, ठंडा, गरम, रूखा, चिकना ये आठ स्पर्श; षड्ज, ऋषभ, गांधार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद ये सात स्वर ऐसे इन्द्रियों के सत्ताइस विषय और अनेक विकल्परूप एक मन का विषय, ऐसे विषय के भेद अट्ठाइस जानने ।

आगे संयममार्गणा में जीवों की संख्या कहते हैं –

पमदादिचउण्हं जुदी सामयियदुगं कमेण सेसतियं ।
सत्तसहस्सा णवसय णवलक्खा तीहिं परिहीणा ।।४८०।।

प्रमत्तादिचतुर्णां युतिः सामायिकद्विकं क्रमेण शेषत्रिकम् ।
सप्तसहस्राणि नवशतानि नवलक्षाणि त्रिभिः परिहीनानि ।।४८०।।

टीका – प्रमत्तादि चार गुणस्थानवर्ती जीवों का जोड़ देनेपर जो प्रमाण हो, उतने जीव सामायिक और छेदोपस्थापना संयम के धारक जानना । वहां प्रमत्तवाले पांच कोडि तिरानबे लाख अट्ठानबे हजार दो सौ छह (५९३९८२०६), अप्रमत्तवाले दो कोडि छानबे लाख निन्यानबे हजार एक सौ तीन (२९६९९१०३), अपूर्वकरणवाले उपशमक दो सौ निन्यानबे (२९९), क्षपक पांच सौ अट्ठानबे (५९८), अनिवृत्तिकरणवाले उपशमक दो सौ निन्यानबे (२९९) क्षपक पांच सौ अट्ठानबे (५९८) इन सब का जोड़ देनेपर आठ कोडि नब्बे लाख निन्यानबे हजार एक सौ तीन (८९०९९१०३) हुये । इतने जीव सामायिकसंयमी जानने । तथा इतने ही जीव छेदोपस्थापनासंयमी जानने । पुनश्च अवशेष तीन संयमी रहे वहां परिहारविशुद्धिसंयमी तीन कम सात हजार (६९९७) जानने । सूक्ष्मसाम्परायसंयमी तीन कम नौ सौ (८९७) जानने । यथाख्यातसंयमी तीन कम नौ लाख (८९९९९७) जानने ।

पल्लासंखेज्जदिमं विरदाविरदाण दव्वपरिमाणं ।
पुव्वुत्तरासिहीणा संसारी अविरदाण पमा ।।४८१।।

पल्यासंख्येयं विरताविरतानां द्रव्यपरिमाणम् ।
पूर्वोक्तराशिहीनाः संसारिणः अविरतानां प्रमा ।।४८१।।

टीका – पल्य के असंख्यात भाग कीजिये उसमें एक भाग प्रमाण संयमासंयम के धारक जीवद्रव्यों का प्रमाण है । पुनश्च संसारी जीवों के प्रमाण में से ऊपर कहे हुये छह संयम के धारक जीवों का प्रमाण घटानेपर जो अवशेष रहे, वही असंयमी जीवों का प्रमाण जानना ।

इति आचार्य श्री नेमिचन्द्रसिद्धांतचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नामक संस्कृत टीका के अनुसार सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक इस भाषा-टीका में जीवकाण्ड में प्ररूपित जो बीस प्ररूपणा उनमें से संयममार्गणा प्ररूपणा नामक तेरहवां अधिकार पूर्ण हुआ ।।१३।।

चौदहवां अधिकार : दर्शनमार्गणा प्ररूपणा

॥ मंगलाचरण ॥

इस अनन्त भव उदधितैं पार करनकौं सेतु ।
श्री अनंत जिनपति नमौं सुख अनन्त के हेतु ॥

आगे दर्शनमार्गणा को कहते हैं -

जं सामण्णं गहणं भावाणं णेव कट्टुमायारं ।
अविसेसिदूण अट्ठे दंसणमिदि भण्णदे समये ॥४८२॥

यत्सामान्यं ग्रहणं भावानां नैव कृत्वाकारम् ।
अविशेष्यार्थान् दर्शनमिति भण्यते समये ॥४८२॥

टीका - भाव जो सामान्यविशेषात्मक पदार्थ उनके आकार अर्थात् भेद का ग्रहण, उसको **नैवकृत्वा** अर्थात् न करके **यत् सामान्यं ग्रहणं** अर्थात् जो सत्तामात्र स्वरूप का प्रतिभासना, **तत् दर्शनं** अर्थात् वही दर्शन परमागम में कहा है । कैसे ग्रहण करता है? **अर्थान् अविशेष्य** अर्थात् अर्थ जो बाह्य पदार्थ उनको अविशेष्य अर्थात् जाति, क्रिया, गुण, प्रकार इत्यादि विशेष न करते हुये, अपना और अन्य का केवल सामान्यरूप सत्तामात्र ग्रहण करता है ।

इसी अर्थ को स्पष्ट करते हैं -

भावाणं सामण्णविसेसयाणं सरूवमेत्तं जं ।
वण्णणहीणग्गहणं जीवेण य दंसणं होदि ॥४८३॥

भावानां सामान्यविशेषकानां स्वरूपमात्रं यत् ।
वर्णनहीनग्रहणं जीवेन च दर्शनं भवति ॥४८३॥

टीका - सामान्यविशेषात्मक जो पदार्थ उनका स्वरूपमात्र भेद रहित जैसे हैं वैसे, जीव सहित स्वपर सत्ता का प्रकाशना, वह दर्शन है । जो देखे तथा जिसके द्वारा देखे तथा देखनेमात्र, उसे दर्शन जानना ।

आगे चक्षु-अचक्षुदर्शन के लक्षण कहते हैं -

चक्खूण जं पयासइ दिस्सइ तं चक्खुदंसणं बेंति ।
सेसिंदियप्पयासो णायव्वो सो अचक्खू त्ति ॥४८४॥

चक्षुषोः यत्प्रकाशते पश्यति तत् चक्षुर्दर्शनं ब्रुवंति ।
शेषेंद्रियप्रकाशो ज्ञातव्यः स अचक्षुरिति ॥४८४॥

टीका - नेत्रों संबंधी जो सामान्यग्रहण उसे जो प्रकाशता है, देखता है जिसके द्वारा या उस नेत्र के विषय का प्रकाशन उसे गणधरादिक चक्षुदर्शन कहते हैं । पुनश्च नेत्र बिना चार इन्द्रिय और मन के विषय का जो प्रकाशन, वह अचक्षुदर्शन है ऐसा जानना ।

परमाणुआदियाइं अंतिमखंधं त्ति मुत्तिदव्वाइं ।
तं ओहिदंसणं पुण जं पस्सइ ताइ पच्चक्खं ॥४८५॥

परमाण्वादीनि अंतिमस्कंधमिति मूर्तद्रव्याणि ।
तदवधिदर्शनं पुनः यत् पश्यति तानि प्रत्यक्षम् ॥४८५॥

टीका - परमाणु से लेकर महास्कंध तक जो मूर्तिक द्रव्य उनको जो प्रत्यक्ष देखता है, वह अवधिदर्शन है ।

बहुविह बहुप्पयारा उज्जोवा परिमियम्मि खेत्तम्मि ।
लोगालोग वितिमिरो जो केवलदंसणुज्जोओ ॥४८६॥

बहुविधबहुप्रकारो उद्योताः परिमिते क्षेत्रे ।
लोकालोकवितिमिरो यः केवलदर्शनोद्योतः ॥४८६॥

टीका - चन्द्रमा, सूर्य, रत्नादिक संबंधी बहुत भेदों से युक्त बहुत प्रकार के उद्योत जगत में हैं । वे परिमित यानि मर्यादा सहित क्षेत्र में ही अपना प्रकाश करने को समर्थ हैं । इसलिये उन प्रकाशों की उपमा देने योग्य नहीं ऐसा समस्त लोक और अलोक में अंधकार रहित केवल प्रकाशरूप केवलदर्शन नामक उद्योत जानना ।

आगे दर्शनमार्गणा में जीवों की संख्या दो गाथाओं द्वारा कहते हैं -

जोगे चउरक्खाणं पंचक्खाणं च खीणचरिमाणं ।
चक्खूणमोहिकेवलपरिमाणं ताण णाणं च ॥४८७॥

योगे चतुरक्षाणां पंचाक्षाणां च क्षीणचरमाणाम् ।
चक्षुषामवधिकेवलपरिमाणं तेषां ज्ञानं च ॥४८७॥

टीका – मिथ्यादृष्टि आदि क्षीणकषाय गुणस्थान तक चक्षुदर्शन ही है । उनके दो भेद हैं – एक शक्तिरूप चक्षुदर्शनी, एक व्यक्तिरूप चक्षुदर्शनी । वहां लब्धिअपर्याप्त चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय तो शक्तिरूप चक्षुदर्शनी हैं, क्योंकि नेत्रइन्द्रियपर्याप्ति की पूर्णता अपर्याप्त अवस्था में नहीं है । इसलिये वहां प्रकटरूप चक्षुदर्शन नहीं प्रवर्तता है । पुनश्च पर्याप्त चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय व्यक्तरूप चक्षुदर्शनी है; क्योंकि वहां प्रकटरूप चक्षुदर्शन है । वहां द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय आवली के असंख्यातवें भाग का भाग प्रतरांगुल को देनेपर जो प्रमाण आता है उसका भाग जगत्प्रतर को देनेपर जो प्रमाण हो, उतने हैं, तो चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय कितने हैं ? ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्रमाणराशि चार, फलराशि त्रसों का प्रमाण, इच्छाराशि दो; वहां इच्छाराशि को फलराशि से गुणा करके प्रमाण का भाग देनेपर जो प्रमाण हो, उतनी चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय राशि है । वहां द्वीन्द्रिय आदि क्रम से घटते हैं । इसलिये किंचित् कम करके पुनश्च उसमें से पर्याप्त जीवों का प्रमाण घटाना । इसलिये उस प्रमाण में से भी कुछ घटानेपर जो प्रमाण हो उतने शक्तिगत चक्षुदर्शनी जानने । पुनश्च ऐसे ही त्रस पर्याप्त जीवों के प्रमाण को चार का भाग देकर, दोगुणा करके, उसमें से कुछ कम करनेपर जो प्रमाण हो उतने व्यक्तिरूप चक्षुदर्शनी हैं । इन्द्रियमार्गणा में जो चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीवों का प्रमाण कहा है, उनको मिलानेपर चक्षुदर्शनी जीवों का प्रमाण होता है ।

अवधिदर्शनी जीवों का प्रमाण अवधिज्ञानी जीवों के प्रमाण के समान जानना।

पुनश्च केवलदर्शनी जीवों का प्रमाण केवलज्ञानी जीवों के प्रमाण के समान जानना। इनका प्रमाण ज्ञानमार्गणा में कहा है ।

एइंदियपहुदीणं खीणकसायंतणंतरासीणं ।
जोगो अचक्खुदंसणजीवाणां होदि परिमाणं ॥४८८॥

एकेंद्रियप्रभृतिनां क्षीणकषायांतानंतराशीनाम् ।
योगः अचक्षुर्दर्शनजीवानां भवति परिमाणम् ।।४८८।।

टीका - एकेन्द्रिय से लेकर क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती तक अनंत जीवों का जोड़ देनेपर जो प्रमाण हो, उतना अचक्षुदर्शनी जीवों का प्रमाण जानना ।

इति आचार्य श्री नेमिचन्द्रसिद्धांतचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नामक संस्कृत टीका के अनुसार सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषा-टीका में जीवकाण्ड में प्ररूपित जो बीस प्ररूपणा उनमें से दर्शनमार्गणा प्ररूपणा नामक चौदहवां अधिकार पूर्ण हुआ ।।१४।।

पंद्रहवां अधिकार : लेश्यामार्गणा प्ररूपणा

॥ मंगलाचरण ॥

सुधाधार सम धर्म तैं पोषे भव्य सुधान्य ।
प्राप्त कीए निज इष्ट कौं भजौं धर्म धन मान्य ॥

आगे लेश्यामार्गणा कहना चाहते हैं । वहां प्रथम ही निरुक्ति सहित लेश्या का लक्षण कहते हैं -

लिंपइ अप्पीकीरइ एदीए णियअपुण्णपुण्णं च ।
जीवो त्ति होदि लेस्सा लेस्सागुणजाणयक्खादा ॥४८९॥

लिंपत्यात्मीकरोति एतया निजापुण्यपुण्यं च ।
जीव इति भवति लेश्या लेश्यागुणज्ञायकाख्याता ॥४८९॥

टीका - लेश्या दो प्रकार की है - एक द्रव्यलेश्या, एक भावलेश्या । वहां इस सूत्र में भावलेश्या का लक्षण कहा है । **लिंपति एतया इति लेश्या** जीव नामक पदार्थ इसके द्वारा पाप और पुण्य को लिप्त करता है, अपना करता है, निज संबंधी करता है वह लेश्या है, ऐसा लेश्या के लक्षण को जाननेवाले गणधरादिकों ने कहा है । जिसके द्वारा आत्मा कर्म से आत्मा को लिप्त करता है वह लेश्या है अथवा कषायों के उदय से अनुरंजित जो योगों की प्रवृत्ति है, वह लेश्या है ।

इसी अर्थ को स्पष्ट करते हैं -

जोगपउत्ती लेस्सा कसायउदयाणुरंजिया होई ।
तत्तो दोण्णं कज्जं बंधचउक्कं समुद्दिट्ठं ॥४९०॥

योगप्रवृत्तिर्लेश्या कषायोदयानुरंजिता भवति ।
ततो द्वयोः कार्यं बंधचतुष्कं समुद्दिष्टम् ॥४९०॥

टीका - मन, वचन, कायरूप योगों की प्रवृत्ति वह लेश्या है । योगों की प्रवृत्ति कषायों के उदय से अनुरंजित होती है । इसलिये योग और कषाय इन दोनों का कार्य चार प्रकार का बंध कहा है । योगों से प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध कहा

है । कषायों से स्थितिबंध और अनुभागबंध कहा है । उसी कारण कषायों के उदय से अनुरंजित योगों की प्रवृत्ति ही है लक्षण जिसका ऐसे लेश्या से चार प्रकार का बंध युक्त ही है ।

आगे दो गाथाओं द्वारा लेश्या के प्ररूपण में सोलह अधिकार कहते हैं -

णिद्देसवण्णपरिणामसंकमो कम्मलक्खणगदी य ।
सामी साहणसंखा खेत्तं फासं तदो कालो ।।४९१।।

अंतरभावप्पबहु अहियारा सोलसा हवंति त्ति ।
लेस्साण साहणट्ठं जहाकमं तेहिं वोच्छामि ।।४९२।।जुम्मम्।

निर्देशवर्णपरिणामसंक्रमाः कर्मलक्षणगतयश्च ।
स्वामी साधनसंख्या क्षेत्रं स्पर्शं ततः कालः ।।४९१।।

अंतरभावाल्पबहुत्वमधिकाराः षोडश भवंतीति ।
लेश्यानां साधनार्थं यथाक्रमं तैर्वक्ष्यामि ।।४९२।।युग्मम्।।

टीका - १) निर्देश, २) वर्ण, ३) परिणाम, ४) संक्रम, ५) कर्म, ६) लक्षण, ७) गति, ८) स्वामी, ९) साधन, १०) संख्या, ११) क्षेत्र, १२) स्पर्शन, १३) काल, १४) अंतर, १५) भाव, १६) अल्पबहुत्व ये सोलह अधिकार लेश्या के भेदसाधन के निमित्त हैं । उनके द्वारा अनुक्रम से लेश्यामार्गणा को कहते हैं।

१) निर्देश अधिकार -

किण्हा णीला काउ तेऊ पम्मा य सुक्कलेस्सा य ।
लेस्साणं णिद्देसा छच्चेव हवंति णियमेण ।।४९३।।

कृष्णा नीला कापोता तेजः पद्मा च शुक्ललेश्या च ।
लेश्यानां निर्देशाः षट् चैव भवंति नियमेन ।।४९३।।

टीका - नाम मात्र कथन करना निर्देश है । लेश्या के ये छह नाम हैं - कृष्ण, नील, कपोत(कापोत), पीत(तेज), पद्म, शुक्ल ऐसे छह ही हैं । यहां **एव** शब्द से तो नियम आया ही और **नियमेन** कहा है, सो नैगमनय से छह प्रकार की

लेश्या है । पर्यायार्थिकनय से असंख्यातलोकमात्र भेद हैं । ऐसा अभिप्राय नियम शब्द से जानना । इति निर्देशाधिकारः (निर्देश अधिकार समाप्त हुआ ।)

२) वर्ण अधिकार –

वण्णोदयेण जणिदो सरीरवण्णो दु दव्वदो लेस्सा ।
सा सोढा किण्हादी अणेयभेया सभेयेण ।।४९४।।

वर्णोदयेन जनितः शरीरवर्णस्तु द्रव्यतो लेश्या ।
सा षोढा कृष्णादिः अनेकभेदा स्वभेदेन ।।४९४।।

टीका – वर्ण नामक नामकर्म के उदय से उत्पन्न जो शरीर का वर्ण, उसे द्रव्यलेश्या कहते हैं । वह कृष्णादि छह प्रकार का है । वहां एक-एक भेद अपने-अपने भेदों से अनेकरूप जानने ।

वही कहते हैं –

छप्पयणीलकवोदसुहेमंबुजसंखसण्णिहावण्णो ।
संखेज्जासंखेज्जाणंतवियप्पा य पत्तेयं ।।४९५।।

षट्पदनीलकपोतसुहेमाम्बुजशंखसन्निभा वर्णे ।
संख्येयासंख्येयानन्तविकल्पाश्च प्रत्येकम् ।।४९५।।

टीका – कृष्णलेश्या षट्पद अर्थात् भ्रमर के समान है । जिसके शरीर का वर्ण भ्रमर समान काला हो, उसके द्रव्यलेश्या कृष्ण जानना । ऐसे ही नीललेश्या नीलमणि समान है । कपोतलेश्या कपोत समान है । पीतलेश्या सुवर्ण समान है । पद्मलेश्या कमल समान है । शुक्ललेश्या शंखसमान है । पुनश्च इन्हीं एक-एक लेश्या के नेत्रइन्द्रिय के गोचर अपेक्षा से संख्यात भेद हैं । जैसे हीन-अधिकरूप संख्यात भेदवाला कृष्णवर्ण नेत्रइन्द्रिय से देखते हैं । पुनश्च स्कंधभेद की अपेक्षा से एक-एक के असंख्यात-असंख्यात भेद हैं । जैसे, द्रव्यकृष्णलेश्यावाले शरीर संबंधी स्कंध असंख्यात हैं । पुनश्च परमाणु भेद की अपेक्षा एक-एक के अनंत भेद हैं । जैसे द्रव्यकृष्णलेश्यावाले शरीर संबंधी स्कंधों में अनंत परमाणु पाये जाते हैं । इसीतरह सर्व लेश्याओं के भेद जानना ।

णिरया किण्हा कप्पा भावाणुगया हू तिसुरणरतिरिये ।
उत्तरदेहे छक्कं भोगे रविचंदहरिदंगा ।।४९६।।

निरयाः कृष्णाः कल्पा भावानुगता हि त्रिसुरनरतिरश्चि ।
उत्तरदेहे षट्कं भोगे रविचन्द्रहरितांगाः ।।४९६।।

टीका – सभी नारकी कृष्णवर्ण ही हैं । कल्पवासी देवों की जैसी भावलेश्या है, वैसे ही वर्ण के वे धारक हैं । पुनश्च भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी देव, मनुष्य, तिर्यंच तथा देवों का विक्रिया से बना शरीर, वे छहों वर्ण के धारक हैं । पुनश्च उत्तम, मध्यम, जघन्य भोगभूमि संबंधी मनुष्य और तिर्यंच अनुक्रम से सूर्यसमान, चन्द्रसमान और हरित वर्ण के धारक हैं ।

बादरआऊतेऊ सुक्कातेऊ य वाऊकायाणं ।
गोमुत्तमुग्गवण्णा कमसो अव्वत्तवण्णो य ।।४९७।।

बादराप्तैजसौ शुक्लतेजसौ च वायुकायानाम् ।
गोमूत्रमुद्गवर्णाः क्रमशः अव्यक्तवर्णश्च ।।४९७।।

टीका – बादर अप्कायिक शुक्लवर्ण है । बादर अग्निकायिक पीतवर्ण है। बादर वायुकायिकों में घनोदधिवात तो गोमूत्र के समान वर्ण का धारक है, घनवात मूंगे के समान वर्ण का धारक है, तनुवात का वर्ण प्रकट नहीं है, अव्यक्त है ।

सव्वेसिं सुहुमाणं कावोदा सव्व विग्गहे सुक्का ।
सव्वो मिस्सो देहो कवोदवण्णो हवेणियमा ।।४९८।।

सर्वेषां सूक्ष्मानां कापोताः सर्वे विग्रहे शुक्लाः ।
सर्वो मिश्रो देहः कपोतवर्णो भवेन्नियमात् ।।४९८।।

टीका – सर्व ही सूक्ष्म जीवों का शरीर कपोतवर्ण है । सभी जीव विग्रहगति में शुक्लवर्ण ही हैं । पुनश्च सभी जीव अपनी पर्याप्ति के प्रारंभ के प्रथम समय से लेकर शरीरपर्याप्ति की पूर्णता तक की जो अपर्याप्त अवस्था *(निर्वृत्तिअपर्याप्त)* है वहां कपोतवर्ण ही है, ऐसा नियम है । ऐसा शरीरों का वर्ण कहा, सो जिसके शरीर का जो वर्ण है, वही उसकी द्रव्यलेश्या जाननी । इति वर्णाधिकारः *(वर्णाधिकार समाप्त हुआ।)*

३) *परिणाम अधिकार* – आगे परिणामाधिकार पांच गाथाओं द्वारा कहते हैं-

लोगाणमसंखेज्जा उदयट्ठाणा कसायगा होंति ।
तत्थ किलिट्ठा असुहा सुहा विसुद्धा तदालावा ।।४९९।।

लोकानामसंख्येयान्युदयस्थानानि कषायगाणि भवंति ।
तत्र क्लिष्टानि अशुभानि शुभानि विशुद्धानि तदालापात् ।।४९९।।

टीका – कषाय संबंधी अनुभागरूप उदयस्थान असंख्यातलोकप्रमाण हैं । उनको यथायोग्य असंख्यातलोक का भाग दीजिये । वहां एक भाग बिना अवशेष बहुभागमात्र तो संक्लेशस्थान हैं । वे भी असंख्यातलोकप्रमाण हैं । पुनश्च एक भागमात्र विशुद्धिस्थान हैं । वे भी असंख्यातलोकप्रमाण हैं । क्योंकि असंख्यात के भेद बहुत हैं । वहां संक्लेशस्थान तो अशुभलेश्या संबंधी जानने और विशुद्धिस्थान शुभलेश्या संबंधी जानने।

तिव्वतमा तिव्वतरा तिव्वा असुहा सुहा तदा मंदा ।
मंदतरा मंदतमा छट्ठाणगया हु पत्तेयं ।।५००।।

तीव्रतमास्तीव्रतरास्तीव्रा अशुभाः शुभास्तथा मंदाः ।
मंदतरा मंदतमाः षट्स्थानगता हि प्रत्येकम् ।।५००।।

टीका – पहले जो असंख्यातलोक के बहुभागमात्र अशुभलेश्या संबंधी संक्लेशस्थान कहे वे कृष्ण, नील, कपोत भेद से तीन प्रकार के हैं । वहां पहले संक्लेशस्थानों का जो प्रमाण कहा उसको यथायोग्य असंख्यातलोक का भाग देनेपर, वहां एक भाग बिना अवशेष बहुभाग मात्र कृष्णलेश्या संबंधी तीव्रतम कषायरूप संक्लेशस्थान जानने। पुनश्च उस अवशेष एक भाग को असंख्यातलोक का भाग देनेपर, वहां एक भाग बिना अवशेष बहुभाग मात्र नीललेश्या संबंधी तीव्रतर कषायरूप संक्लेशस्थान जानने । पुनश्च उस अवशेष एक भागमात्र कपोतलेश्या संबंधी तीव्रकषायरूप संक्लेशस्थान जानने ।

पुनश्च असंख्यातलोक के एक भागमात्र शुभलेश्या संबंधी विशुद्धिस्थान कहे वे पीत(तेज), पद्म, शुक्ल भेद से तीन प्रकार के हैं । वहां पहले जो विशुद्धिस्थानों का प्रमाण कहा उसको यथायोग्य असंख्यातलोक का भाग दीजिये, वहां एक भाग बिना अवशेष बहुभाग मात्र पीतलेश्या संबंधी मंदकषायरूप विशुद्धिस्थान जानने । पुनश्च

उस अवशेष एक भाग को असंख्यातलोक का भाग दीजिये, वहां एक भाग बिना अवशेष भाग मात्र पद्मलेश्या संबंधी मंदतर कषायरूप विशुद्धिस्थान जानने । पुनश्च उस अवशेष एक भागमात्र शुक्ललेश्या संबंधी मंदतम कषायरूप विशुद्धिस्थान जानने ।

वहां इन कृष्णलेश्या आदि छहों स्थानों में एक एक में अनंतभागादिक षट्स्थान होते हैं । वहां अशुभरूप तीन भेदों में तो उत्कृष्ट से लेकर जघन्य तक असंख्यातलोकमात्र बार षट्स्थानपतित संक्लेशहानि पायी जाती है । तथा शुभरूप तीन भेदों में जघन्य से लेकर उत्कृष्ट तक असंख्यातलोकमात्र बार षट्स्थानपतित विशुद्ध परिणामों की वृद्धि पायी जाती है । परिणामों की अपेक्षा से संक्लेश विशुद्धि के अनंतानंत अविभागप्रतिच्छेद हैं, उनकी अपेक्षा से षट्स्थानपतित वृद्धि-हानि जानना ।

असुहाणं वरमज्झिमअवरंसे किण्हणीलकाउतिए ।
परिणमदि कमेणप्पा परिहाणीदो किलेसस्स ।।५०१।।

अशुभानां वरमध्यमावरांशे कृष्णनीलकापोतत्रिकानाम् ।
परिणमति क्रमेणात्मा परिहानितः क्लेशस्य ।।५०१।।

टीका – यदि संक्लेश परिणामों की हानिरूप परिणमे तो अनुक्रम से कृष्ण के उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य अंश; नील के उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य अंश; कपोत के उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य अंशरूप परिणमता है ।

काऊ णीलं किण्हं परिणमदि किलेसवड्ढिदो अप्पा ।
एवं किलेसहाणी-वड्ढीदो होदि असुहतियं ।।५०२।।

कापोतं नीलं कृष्णं, परिणमति क्लेशवृद्धित आत्मा ।
एवं क्लेशहानिवृद्धितो भवति अशुभत्रिकम् ।।५०२।।

टीका – पुनश्च यदि संक्लेश परिणामों की वृद्धिरूप परिणमे तो अनुक्रम से कपोतरूप, नीलरूप, कृष्णरूप परिणमता है । ऐसे संक्लेश की हानि-वृद्धि से तीन अशुभस्थान होते हैं ।

तेऊ पउमे सुक्के सुहाणमवरादिअंसगे अप्पा ।
सुद्धिस्स य वड्ढीदो हाणीदो अण्णहा होदि ।।५०३।।

तेजसि पद्मे शुक्ले शुभानामवराद्यंशगे आत्मा ।
शुद्धेश्च वृद्धितो हानितः अन्यथा भवति ।।५०३।।

टीका – पुनश्च यदि विशुद्ध परिणामों की वृद्धि हो, तो अनुक्रम से पीत, पद्म, शुक्ल के जघन्य, मध्यम उत्कृष्टरूप अंशरूप परिणमता है । और यदि विशुद्ध परिणामों की हानि हो, तो अन्यथा अर्थात् शुक्ल, पद्म, पीत के उत्कृष्ट, मध्यम, जघन्य अंशरूप अनुक्रम से परिणमता है । इति परिणामाधिकारः (परिणाम अधिकार समाप्त हुआ ।)

४) ***संक्रमण अधिकार*** – आगे संक्रमणाधिकार तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं-

संकमणं सट्ठाणपरट्ठाणं होदि किण्हसुक्काणं ।
वड्ढिसु हि सट्ठाणं उभयं हाणिम्मि सेसउभये वि ।।५०४।।

संक्रमणं स्वस्थानपरस्थानं भवतीति कृष्णशुक्लयोः ।
वृद्धिषु हि स्वस्थानमुभयं हानौ शेषस्योभयेऽपि ।।५०४।।

टीका – संक्रमण नाम परिणामों के पलटने का है । वह संक्रमण दो प्रकार का है – स्वस्थानसंक्रमण, परस्थानसंक्रमण ।

वहां जो परिणाम जिस लेश्यारूप था, वह परिणाम पलटकर उसी लेश्यारूप रहे, वह तो स्वस्थानसंक्रमण है ।

तथा जो परिणाम पलटकर अन्य लेश्या को प्राप्त हो, वह परस्थानसंक्रमण है।

वहां कृष्णलेश्या और शुक्ललेश्या की वृद्धि में तो स्वस्थानसंक्रमण ही है; क्योंकि संक्लेश की वृद्धि कृष्णलेश्या के उत्कृष्ट अंश तक ही है और विशुद्धता की वृद्धि शुक्ललेश्या के उत्कृष्ट अंश तक ही है । पुनश्च कृष्णलेश्या और शुक्ललेश्या के हानि में स्वस्थानसंक्रमण, परस्थानसंक्रमण दोनों पाये जाते हैं । यदि उत्कृष्ट कृष्ण लेश्या से संक्लेश की हानि हुयी, तो कृष्णलेश्या के मध्यम, जघन्य अंशरूप प्रवर्तन करे, वहां स्वस्थानसंक्रमण हुआ और यदि नीलादिक अन्य लेश्यारूप प्रवर्तन करे, वहां परस्थानसंक्रमण हुआ । इसतरह कृष्णलेश्या के हानि में दोनों संक्रमण हैं । पुनश्च उत्कृष्ट शुक्ललेश्या से यदि विशुद्धता की हानि हो, तो शुक्ललेश्या के मध्यम, जघन्य अंशरूप प्रवर्तन करे, वहां स्वस्थानसंक्रमण हुआ । और यदि पद्मादिक अन्य लेश्यारूप प्रवर्तन करे,

वहां परस्थानसंक्रमण हुआ । इसतरह शुक्ललेश्या के हानि में दोनों संक्रमण हैं ।

पुनश्च अवशेष नील, कपोत, पीत, पद्म लेश्याओं में दोनों जाति के संक्रमण हानि में भी और वृद्धि में भी पाये जाते हैं । वृद्धि-हानि होनेपर जो जिस लेश्यारूप था, उसी लेश्यारूप रहे, वहां स्वस्थानसंक्रमण होता है । तथा वृद्धि-हानि होनेपर जिस लेश्यारूप था उससे अन्य लेश्यारूप प्रवर्ते, वहां परस्थानसंक्रमण होता है । इसतरह चारों लेश्याओं के हानि में और वृद्धि में उभय (दोनों) संक्रमण हैं ।

लेस्साणुक्कस्सादोवरहाणी अवरगादवरवड्ढी ।
सट्ठाणे अवरादो हाणी णियमा परट्ठाणे ।।५०५।।

लेश्यानामुत्कृष्टादवरहानिः अवरकादवरवृद्धिः ।
स्वस्थाने अवरात् हानिर्नियमात् परस्थाने ।।५०५।।

टीका – कृष्णादि सर्व लेश्याओं के उत्कृष्ट स्थान में जितने परिणाम हैं, उनसे उत्कृष्ट स्थान के समीपवर्ती जो उसी लेश्या का स्थान उसमें अवर हानि अर्थात् उत्कृष्ट स्थान से अनंतभागहानि युक्त परिणाम हैं । क्योंकि उत्कृष्ट के अनंतर जो परिणाम, उसको उर्वंक *(उ ऐसी सहनानी)* कहा है, सो अनंतभाग की संदृष्टि उर्वंक है ।

पुनश्च स्वस्थान में कृष्णादि सर्व लेश्याओं के जघन्य स्थान के समीपवर्ती जो स्थान है, उसमें जघन्य स्थान के परिणामों से अवरवृद्धि अर्थात् अनंतभागवृद्धि युक्त परिणाम पाये जाते हैं; क्योंकि जो जघन्यभाव अष्टांकरूप कहा है वह अनंतगुणवृद्धि की सहनानी आठ का अंक है; उसके अनंतर उर्वंक ही है ।

पुनश्च सर्व लेश्याओं के जघन्य स्थान से यदि परस्थानसंक्रमण होता है तो उस जघन्य स्थान के परिणामों से अनंतगुणहानि से युक्त अनंतर स्थान में परिणाम होते हैं । शुक्ललेश्या के जघन्य स्थान के अनंतर तो पद्मलेश्या का उत्कृष्ट स्थान है और कृष्णलेश्या के जघन्य स्थान के अनंतर नीललेश्या का उत्कृष्ट स्थान है। वहां अनंतगुणहानि पायी जाती है । ऐसे ही सर्व लेश्याओं में जानना । कृष्ण, नील, कपोत में तो हानि-वृद्धि संक्लेश परिणामों की जाननी । पीत, पद्म, शुक्ल में हानि-वृद्धि विशुद्ध परिणामों की जाननी ।

इस गाथा में कहे हुये अर्थ का कारण आगे प्रकट करके कहते हैं -

संकमणे छट्ठाणा हाणिसु वड्ढीसु होंति तण्णामा ।
परिमाणं च य पुव्वं उत्तकमं होदि सुदणाणे ।।५०६।।

संक्रमणे षट्स्थानानि हानिषु वृद्धिषु भवन्ति तन्नामानि ।
परिमाणं च च पूर्वमुक्तक्रमं भवति श्रुतज्ञाने ।।५०६।।

टीका - इस संक्रमण में हानि में अनंतभागहानि आदि छह स्थान हैं तथा वृद्धि में अनंतभागवृद्धि आदि छह स्थान हैं । उनके नाम और प्रमाण का अनुक्रम जो पहले श्रुतज्ञानमार्गणा में पर्यायसमास श्रुतज्ञान का वर्णन करते समय कहा है, वह यहां जानना । सो अनंतभाग, असंख्यातभाग, संख्यातभाग, संख्यातगुणा, असंख्यातगुणा, अनंतगुणा ये तो षट्स्थानों के नाम हैं । इस अनंतभागादिक की सहनानी क्रम से उर्वंक *(उ)*, चार, पांच, छह, सात, आठ का अंक है । पुनश्च अनंत का प्रमाण जीवराशिमात्र, असंख्यात का प्रमाण असंख्यातलोकमात्र, संख्यात का प्रमाण उत्कृष्ट संख्यातमात्र ऐसा प्रमाण गुणकार और भागहार में जानना । पुनश्च यंत्रद्वार से जो वहां अनुक्रम कहा है, वही अनुक्रम यहां जानना । वृद्धि में तो वहां कहा है वही अनुक्रम जानना।

तथा हानि में उलटा अनुक्रम जानना । कैसे ? वह कहते हैं - कपोतलेश्या के जघन्य से लेकर कृष्णलेश्या के उत्कृष्ट तक विवक्षा हो तो क्रम से संक्लेश की वृद्धि होती है । और यदि कृष्णलेश्या के उत्कृष्ट से लेकर कपोतलेश्या के जघन्य तक विवक्षा हो तो क्रम से संक्लेश की हानि होती है । पुनश्च पीत के जघन्य से लेकर शुक्ल के उत्कृष्ट तक विवक्षा हो तो क्रम से विशुद्धि की वृद्धि होती है और यदि शुक्ल के उत्कृष्ट से लेकर पीत के जघन्य तक विवक्षा हो तो क्रम से विशुद्ध की हानी होती है । वहां वृद्धि में यथासंभव षट्स्थानपतितवृद्धि जाननी, हानि में हानि जाननी । वहां पहले जो वृद्धि में अनुक्रम कहा था उस अनुक्रम के अंत में सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागमात्र बार अनंतभागवृद्धि होकर एक बार अनंतगुणवृद्धि होती है । वहां अनंतगुणवृद्धिरूप जो स्थान है, वह नवीन षट्स्थानपतितवृद्धि के प्रारम्भरूप प्रथम स्थान है । और इसके पहले जो अनंतभागवृद्धिरूप स्थान हुआ वह विवक्षित षट्स्थानपतितवृद्धि का अंतिम स्थान है । पुनश्च नवीन षट्स्थानपतितवृद्धि के अनंतगुणवृद्धिरूप प्रथम स्थान के आगे सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागमात्र अनंतभागवृद्धिरूप स्थान होते

हैं । उसके आगे पूर्वोक्त अनुक्रम जानना ।

अब यहां कृष्णलेश्या का उत्कृष्ट स्थान है वह षट्स्थानपतित के अंतिम स्थानरूप है, इसलिये पूर्व स्थान से अनंतभागवृद्धिरूप है । तथा कृष्णलेश्या का जघन्य स्थान है, वह षट्स्थानपतित का प्रारम्भरूप प्रथम स्थान है । इसलिये इसके पूर्व के नीललेश्या के उत्कृष्ट स्थान से अनंतगुणवृद्धिरूप यह स्थान जानना । पुनश्च कृष्णलेश्या के जघन्य के समीपवर्ती स्थान उस जघन्य स्थान से अनंतभागवृद्धिरूप जानना । ऐसे ही अन्य स्थानों में और अन्य लेश्याओं में वृद्धि का अनुक्रम जानना ।

पुनश्च यदि हानि की अपेक्षा कथन करना है तो कृष्णलेश्या के उत्कृष्ट स्थान से उसके समीपवर्ती स्थान अनंतभागहानि युक्त जानना । कृष्णलेश्या के जघन्य स्थान से नीललेश्या का उत्कृष्ट स्थान अनंतगुणहानि युक्त जानना । कृष्णलेश्या के जघन्य के समीपवर्ती स्थान से जघन्य स्थान अनंतभागहानि युक्त जानना ।

ऐसे ही अन्य स्थानों में अन्य लेश्याओं में यंत्रद्वार से कहे हुये अनुक्रम से उलटे अनुक्रम युक्त हानि का अनुक्रम जानना । इसतरह संक्रमण में वृद्धि-हानि है। इति संक्रमणाधिकारः (संक्रमण अधिकार समाप्त हुआ ।)

५) ***कर्माधिकार*** - आगे कर्माधिकार दो गाथाओं द्वारा कहते हैं -

पहिया जे छप्पुरिसा परिभट्टारण्णमज्झदेसम्मि ।
फलभरियरुक्खमेगं पेक्खित्ता ते विचिंतंति ।।५०७।।

णिम्मूलखंधसाहुवसाहं छित्तुं चिणित्तु पडिदाइं ।
खाउं फलाइं इदि जं मणेण वयणं हवे कम्मं ।।५०८।।जुम्मम्।

पथिका ये षट्पुरुषाः परिभ्रष्टा अरण्यमध्यदेशे ।
फलभरितवृक्षमेकं दृष्ट्वा ते विचिन्तयन्ति ।।५०७।।
निर्मूलस्कन्धशाखोपशाखं छित्त्वा चित्वा पतितानि ।
खादितुं फलानि इति यन्मनसा वचनं भवेत् कर्म ।।५०८।।युग्मम्।

टीका - कृष्णादिक एक-एक लेश्यावाले छह पथिक पुरुष मार्ग से भ्रष्ट हुये। वहां वन में एक फलों से भरे हुये वृक्ष को देखकर ऐसे चिंतते हैं - कृष्णलेश्यावाला

विचार करता है कि मैं इस वृक्ष को मूल से उखाड़कर फल खाऊंगा । नीललेश्यावाला विचार करता है कि मैं इस वृक्ष के धड़ को काटकर खाऊंगा । कपोतलेश्यावाला विचार करता है कि मैं इस वृक्ष की बड़ी शाखाओं को काटकर फल खाऊंगा । पीतलेश्यावाला विचार करता है कि मैं इस वृक्ष की छोटी शाखाओं को काट कर फल खाऊंगा । पद्मलेश्यावाला विचार करता है कि मैं इस वृक्ष के फलों को ही तोड़ कर फल खाऊंगा । शुक्ललेश्यावाला विचार करता है कि मैं अपने आप टूट कर गिरे हुये फलों को खाऊंगा । ऐसे मनपूर्वक जो वचन हो वह उन लेश्याओं का कर्म जानना । यहां एक उदाहरण कहा है । इसीप्रकार अन्य जानने । इति कर्माधिकारः (कर्माधिकार समाप्त हुआ ।)

६) ***लक्षणाधिकार*** – आगे लक्षणाधिकार नौ गाथाओं द्वारा कहते हैं –

चंडो ण मुंचइ वेरं भंडणसीलो य धम्मदयरहिओ ।
दुट्ठो ण य एदि वसं लक्खणमेयं तु किण्हस्स ।।५०९।।

चण्डो न मुञ्चति वैरं भण्डनशीलश्च धर्मदयारहितः ।
दुष्टो न च एति वशं लक्षणमेतत्तु कृष्णस्य ।।५०९।।

टीका – प्रचंड तीव्र क्रोधी हो, वैर न छोड़े, झगड़ा करने-युद्ध करने का जिसका सहज स्वभाव हो, दया धर्म से रहित हो, दुष्ट हो, किसी गुरुजनादिक के वश न हो ऐसे लक्षण कृष्णलेश्यावाले के हैं ।

मंदो बुद्धिविहीणो णिव्विण्णाणी य विसयलोलो य ।
माणी मायी य तहा आलस्सो चेव भेज्जो य ।।५१०।।

मन्दो बुद्धिविहीनो निर्विज्ञानी च विषयलोलश्च ।
मानी मायी च तथा आलस्यः चैव भेद्यश्च ।।५१०।।

टीका – स्वच्छंदी हो अथवा क्रिया में मंद हो, वर्तमान कार्य को न जाने ऐसा बुद्धिहीन हो, विज्ञान चातुर्य से हीन हो, स्पर्शादिक विषयों में अतिलंपटी हो, मानी हो, मायावी हो, कुटील हो, क्रिया में कुंठित हो, जिसके अभिप्राय को और कोई न जाने, आलसी हो, ये सब कृष्णलेश्यावाले के लक्षण हैं ।

णिद्दावंचणबहुलो धणधण्णे होदि तिव्वसण्णा य ।
लक्खणमेयं भणियं समासदो णीललेस्सस्स ।।५११।।

निद्रावञ्चनबहुलो धनधान्ये भवति तीव्रसंज्ञश्च ।
लक्षणमेतद्भणितं समासतो नीललेश्यस्य ।।५११।।

टीका – जिसके निद्रा बहुत हो, औरों को ठगना जिसके बहुत हो, धन-धान्यादिक में जिसके तीव्र वांछा हो, ऐसा संक्षेप से नीललेश्यावाले का लक्षण है।

रूसदि णिंददि अण्णे दूसदि बहुसो य सोयभयबहुलो ।
असुयदि परभवदि परं पसंसदि य अप्पयं बहुलो ।।५१२।।

रुष्यति निन्दति अन्यं दुष्यति बहुशश्च शोकभयबहुलः ।
असूयति परिभवति परं प्रशंसति आत्मानं बहुशः ।।५१२।।

टीका – पर के ऊपर क्रोध करे, बहुत प्रकार से दूसरों की निंदा करे, बहुत प्रकार से औरों को दुःख दे, शोक जिसके बहुत हो, भय जिसके बहुत हो, दूसरों को अच्छा नहीं देख सके, दूसरों का अपमान करे, अपनी बहुत प्रकार से बढ़ाई करे ।

ण य पत्तियदि परं सो अप्पाणं यिव परं पि मण्णंतो ।
तुसदि अभित्थुवंतो ण य जाणदि हाणिवड्ढिं वा ।।५१३।।

न च प्रत्येति परं स आत्मानमिव परमपि मन्यमानः ।
तुष्यति अभिष्टुवतो न च जानाति हानिवृद्धी वा ।।५१३।।

टीका – अपने समान पापी-कपटी दूसरों को मानता हुआ दूसरों का विश्वास नहीं करता, जो अपनी स्तुति करे उसके ऊपर बहुत संतुष्ट होता है, अपनी और पर की हानि-वृद्धि को न जाने ।

मरणं पत्थेदि रणे देहि सुबहुगं हि थुव्वमाणो दु ।
ण गणइ कज्जाकज्जं लक्खणमेयं तु काउस्स ।।५१४।।

मरणं प्रार्थयते रणे ददाति सुबहुकमपि स्तूयमानस्तु ।
न गणयति कार्याकार्यं लक्षणमेतत्तु कपोतस्य ।।५१४।।

टीका – युद्ध में मरण को चाहे, जो अपनी बढ़ाई करे उसे बहुत धन दे, कार्य-अकार्य को गिने नहीं ऐसे लक्षण कपोतलेश्यावाले के हैं ।

जाणदि कज्जाकज्जं सेयमसेयं च सव्वसमपासी ।
दयदाणरदो य मिदू लक्खणमेयं तु तेउस्स ।।५१५।।

जानाति कार्याकार्यं सेव्यमसेव्यं च सर्वसमदर्शी ।
दयादानरतश्च मृदुः लक्षणमेतत्तु तेजसः ।।५१५।।

टीका – कार्य-अकार्य को जाने, सेवनेयोग्य – न सेवनेयोग्य को जाने, सब में ही समदर्शी हो, दया-दान में प्रीतिवंत हो, मन, वचन, काय में कोमल हो, ऐसे लक्षण पीतलेश्यावाले के हैं ।

चागी भद्दो चोक्खो उज्जवकम्मो य खमदि बहुगं पि ।
साहुगुरुपूजणरदो लक्खणमेयं तु पम्मस्स ।।५१६।।

त्यागी भद्रः सुकरः उद्युक्तकर्मा च क्षमते बहुकमपि ।
साधुगुरुपूजनरतो लक्षणमेतत्तु पद्मस्य ।।५१६।।

टीका – त्यागी हो, भद्र परिणामी हो, सुकार्यरूप जिसका स्वभाव हो, शुभभाव में उद्यमीरूप जिसके कर्म हो, कष्ट और अनिष्ट उपद्रव को सहे, मुनिजन और गुरुजन की पूजा में प्रीतिवंत हो, ऐसे लक्षण पद्मलेश्यावाले के हैं ।

ण य कुणदि पक्खवायं ण वि य णिदाणं समो य सव्वेसिं ।
णत्थि य रायद्दोसा णेहो वि य सुक्कलेस्सस्स ।।५१७।।

न च करोति पक्षपातं नापि च निदानं समश्च सर्वेषाम् ।
नास्ति च रागद्वेषः स्नेहोऽपि च शुक्ललेश्यस्य ।।५१७।।

टीका – पक्षपात न करे, निंदा न करे, सब जीवों में समान हो, इष्ट-अनिष्ट में राग-द्वेष रहित हो, स्त्री-पुत्र आदि में स्नेहरहित हो ऐसे लक्षण शुक्ललेश्यावाले के

हैं । इति लक्षणाधिकारः (लक्षणाधिकार समाप्त हुआ ।)

७) गतिअधिकार - आगे गतिअधिकार ग्यारह सूत्रों द्वारा कहते हैं -

लेस्साणं खलु अंसा छव्वीसा होंति तत्थ मज्झिमया ।
आउगबंधणजोग्गा अट्ठट्ठवगरिसकालभवा ।।५१८।।

लेश्यानां खलु अंशाः षड्विंशतिः भवन्ति तत्र मध्यमकाः ।
आयुष्कबन्धनयोग्या अष्ट अष्टापकर्षकालभवाः ।।५१८।।

टीका - लेश्या के छब्बीस अंश हैं । वहां छहों लेश्याओं के जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट भेद से अठारह अंश हैं । तथा कपोतलेश्या के उत्कृष्ट अंश से आगे और पीतलेश्या के उत्कृष्ट अंश से पहले कषायों के उदय स्थानों में आठ मध्यम अंश हैं ऐसे छब्बीस अंश हुये । वहां आयुकर्म के बंधयोग्य आठ मध्यम अंश जानने । उनका स्वरूप आगे स्थानसमुत्कीर्तन अधिकार में भी कहेंगे । वे आठ मध्यम अंश आठ अपकर्ष काल में होते हैं । वर्तमान भुज्यमान आयु को अपकर्ष, अपकर्ष अर्थात् घटाकर, घटाकर आगामी परभव की आयु को बांधता है उसे अपकर्ष कहते हैं ।

अपकर्षों का स्वरूप दिखाते हैं - वहां उदाहरण कहते हैं - किसी कर्मभूमिया मनुष्य या तिर्यंच की भुज्यमान आयु पैंसठ सौ इकसठ (६५६१) वर्ष की है । उस आयु के *(तीन में से)* दो भाग जानेपर इक्कीस सौ सत्तासी वर्ष रहे । वहां तीसरे भाग के शुरु होते ही प्रथम समय से लेकर अंतर्मुहूर्त काल तक प्रथम अपकर्ष होता है । वहां परभव संबंधी आयु का बंध होता है । यदि वहां आयु न बंधे तो उस तीसरे भाग के *(तीन में से)* दो भाग बीतनेपर आयु के सात सौ उनतीस वर्ष शेष रहते हैं, वहां अंतर्मुहूर्त काल तक दूसरे अपकर्ष में परभव की आयु बांधता है । यदि वहां भी न बंधे, तो उसके भी *(तीन में से)* दो भाग जानेपर दो सौ तैंतालीस वर्ष आयु के शेष रहनेपर अंतर्मुहूर्त काल मात्र तीसरे अपकर्ष में परभव की आयु बांधता है । वहां भी न बंधे तो, उसके भी (तीन में से) दो भाग जानेपर इक्यासी वर्ष रहनेपर अंतर्मुहूर्त तक चौथे अपकर्ष में परभव की आयु बांधता है । ऐसे ही दो दो भाग जानेपर सत्ताइस वर्ष रहनेपर वा नौ वर्ष रहनेपर वा तीन वर्ष रहनेपर वा एक वर्ष रहनेपर अंतर्मुहूर्त मात्र काल तक पांचवें वा छठवें वा सातवें वा आठवें

अपकर्ष में परभव की आयु बांधने का योग्यपना जानना । इसी तरह भुज्यमान आयु का जो प्रमाण हो उसके त्रिभाग-त्रिभाग में आठ अपकर्ष जानना ।

यदि आठों ही अपकर्षों में आयु का बंध न हो और नौवां आदि अपकर्ष है नहीं, तो आयु का बंध कैसे होता है ? उसे कहते हैं –

असंक्षेपाद्धा अर्थात् आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण काल भुज्यमान आयु का अवशेष रहे उसके पहले, अंतर्मुहूर्त काल मात्र समयप्रबद्धों के द्वारा परभव की आयु को बांधकर पूर्ण करता है ऐसा नियम है । यहां विशेष निर्णय करते हैं –

विषादिक के निमित्त से कदलीघात द्वारा जिनका मरण होता है, उन्हें सोपक्रमायुष्क कहते हैं । इसलिये देव, नारकी, भोगभूमियां अनुपक्रमायुष्क हैं । सोपक्रमायुष्क जीव पूर्वोक्त रीति से परभव की आयु को बांधते हैं । वहां पूर्वोक्त आठ अपकर्षों में आयु के बंध होने के योग्य परिणामों द्वारा कितने ही जीव आठ बार, कितने ही जीव सात बार, कितने ही छह बार, कितने ही पांच बार, कितने ही चार बार, कितने ही तीन बार, कितने ही दो बार, कितने ही एक बार परिणमते हैं ।

आयु के बंध योग्य परिणाम अपकर्षों में ही होते हैं, ऐसा सहज ही स्वभाव है, अन्य कोई कारण नहीं है ।

वहां तीसरे भाग के प्रथम समय में जिन जीवों ने परभव की आयु का बंध प्रारम्भ किया वे अंतर्मुहूर्त में ही निष्ठापन *(पूर्ण)* करते हैं । अथवा दूसरी बार आयु का नौवां भाग *(तीसरे भाग का तीसरा भाग)* अवशेष रहनेपर वहां उस बंध के योग्य होता है । अथवा तीसरी बार आयु का सत्ताइसवां भाग अवशेष रहनेपर उस बंध के होने योग्य होता है, ऐसे आठवें अपकर्ष तक जानना । ऐसा कोई नियम नहीं है कि इन अपकर्षों में आयु का बंध होता ही है । इनमें आयु का बंध होने योग्य होता है । यदि बंध हो तो हो, न हो तो न हो । इसतरह आयु के बंध का विधान कहा ।

जैसे अन्य काल में प्रतिसमय समयप्रबद्ध बंधता है, वह आयुकर्म को छोड़कर अन्य सात कर्मरूप होकर परिणमता है । वैसे आयु का बंध जितने काल होता है, उतने काल में प्रतिसमय जो समयप्रबद्ध बंधते हैं वे आठों ही कर्मरूप होकर परिणमते हैं ऐसा जानना ।

पुनश्च जिस समय में प्रथम ही जिसका बंध होता है वहां उसका प्रारम्भ कहते हैं । प्रतिसमय उस प्रकृति का बंध हुआ करता है जब बंध होकर समाप्त होता है, वहां निष्ठापक कहते हैं ।

देव और नारकियों के छह महिने आयु के अवशेष रहनेपर आयु का बंध करने को योग्य होते हैं, पहले नहीं होते । वहां छह महिने में ही त्रिभाग-त्रिभाग से आठ अपकर्ष होते हैं, उनमें आयु का बंध करने योग्य होते हैं ।

पुनश्च एक समय अधिक कोटि पूर्व वर्ष से लेकर तीन पल्य तक असंख्यात वर्षमात्र आयु के धारक भोगभूमियां तिर्यंच वा मनुष्य भी निरुपक्रमायुष्क होते हैं । इनके आयु के नौ मास अवशेष रहनेपर आठ अपकर्षों द्वारा परभव की आयु का बंध होने की योग्यता होती है । पुनश्च इतना जानना ह्न जिस गति संबंधी आयु का बंध प्रथम अपकर्ष में हुआ हो, पश्चात् यदि द्वितीयादि अपकर्षों में आयु का बंध हो तो उसी गति संबंधी आयु का बंध होता है । और यदि प्रथम अपकर्ष में आयु का बंध न हुआ हो और दूसरे अपकर्ष में जिस किसी आयु का बंध हुआ हो, तो तृतीयादि अपकर्षों में यदि आयु का बंध होगा तो उसी गति संबंधी आयु का बंध होता है, ऐसे आगे भी जानना । इसतरह कितने ही जीवों का आयु का बंध तो एक ही अपकर्ष में होता है, कितने ही जीवों का दो अपकर्षों द्वारा होता है, कितने ही जीवों का तीन, चार, पांच, छह, सात अथवा आठ अपकर्षों द्वारा होता है ।

वहां आठ अपकर्षों द्वारा परभव की आयु का बंध करनेवाले जीव अल्प हैं। उनसे संख्यातगुणे सात अपकर्षों द्वारा बंध करनेवाले हैं । उनसे संख्यातगुणे छह अपकर्षों द्वारा बंध करनेवाले हैं । ऐसे संख्यातगुणे संख्यातगुणे पांच, चार, तीन, दो, एक अपकर्षों द्वारा बंध करनेवाले जीव जानने ।

पुनश्च आठ अपकर्षों द्वारा आयु को बांधनेवाले जीव के आठवें अपकर्ष में आयु बंधने का जघन्य काल अल्प है । उससे विशेष अधिक उसका उत्कृष्ट काल है । आठ अपकर्षों द्वारा आयु को बांधनेवाले जीव के सातवें अपकर्ष में जघन्य काल उससे संख्यातगुणा है, उत्कृष्ट उससे विशेष अधिक है । सात अपकर्षों द्वारा आयु को बांधनेवाले जीव के सातवें अपकर्ष में आयु बंधने का जघन्य काल उससे संख्यातगुणा है, उत्कृष्ट उससे विशेष अधिक है ।

आठ अपकर्षों से आयु बंधने की रचना																							
०	जघन्य	उत्कृष्ट	सात अपकर्षों से आयु बंधने की रचना																				
८	८	८	०	जघन्य	उत्कृष्ट	छह अपकर्षों से आयु बंधने की रचना																	
८	७	७	७	७	७	०	जघन्य	उत्कृष्ट	पांच अपकर्षों से आयु बंधने की रचना														
८	६	६	७	६	६	६	६	६	०	जघन्य	उत्कृष्ट	चार अपकर्षों से आयु बंधने की रचना											
८	५	५	७	५	५	६	५	५	५	५	५	०	जघन्य	उत्कृष्ट	तीनअपकर्षों से आयु बंधने की रचना								
८	४	४	७	४	४	६	४	४	५	४	४	४	४	४	०	जघन्य	उत्कृष्ट	दो अपकर्षों से आयु बंधने की रचना					
८	३	३	७	३	३	६	३	३	५	३	३	४	३	३	३	३	३	०	जघन्य	उत्कृष्ट	एक अपकर्ष से आयु बंधने की रचना		
८	२	२	७	२	२	६	२	२	५	२	२	४	२	२	३	२	२	२	२	२	०	जघन्य	उत्कृष्ट
८	१	१	७	१	१	६	१	१	५	१	१	४	१	१	३	१	१	२	१	१	१	१	१

पुनश्च आठ अपकर्षों द्वारा आयु को बांधनेवाले जीव के छठवें अपकर्ष में आयु बंधने का जघन्य काल उससे संख्यातगुणा है, उत्कृष्ट विशेष अधिक है ।

सात अपकर्षों द्वारा आयु को बांधनेवाले जीव के छठवें अपकर्ष में आयु बंधने का जघन्य काल उससे संख्यातगुणा है, उत्कृष्ट विशेष अधिक है । पुनश्च छह अपकर्षों द्वारा आयु को बांधनेवाले जीव के छठवें अपकर्ष में आयु बंधने का जघन्य काल उससे संख्यातगुणा है, उत्कृष्ट विशेष अधिक है । इसतरह एक अपकर्ष द्वारा आयु को बांधनेवाले जीव के उस अपकर्ष के उत्कृष्ट काल तक बहत्तर (७२) भेद होते हैं । वहां जघन्य से उत्कृष्ट तो विशेष अधिक जानना । सो उस विवक्षित जघन्य को संख्यात का भाग देनेपर जो प्राप्त हो, वह विशेष का प्रमाण जानना । उसको जघन्य में जोड़नेपर उत्कृष्ट का प्रमाण होता है । उत्कृष्ट से आगे का जघन्य संख्यातगुणा जानना । इसप्रकार यद्यपि सामान्यपने से सब का काल अंतर्मुहूर्तमात्र है तथापि हीनाधिकपना जानने के लिये अल्पबहुत्व कहा है । यदि अपकर्षों में आयु का बंध होता है तो इतने इतने कालमात्र समयप्रबद्धों से बंध होता है ।

यह बहत्तर भेदों की रचना है *(यंत्र देखना)* । वहां आठ अपकर्षों द्वारा आयु बंधने की रचना में पहली पंक्ति के कोठों में जो आठ आठ के अंक हैं, उसका तो यह अर्थ जानना कि आठ अपकर्षों द्वारा आयु को बांधनेवाले का यहां ग्रहण है । उसके पश्चात् दूसरी, तीसरी पंक्ति में आठ, सात आदि अंक हैं, उसका यह अर्थ है कि आठ अपकर्षों द्वारा आयु को बांधनेवाले जीव के आठवें, सातवें आदि अपकर्षों का ग्रहण है । वहां दूसरी पंक्ति में जघन्य काल की अपेक्षा ग्रहण जानना। तीसरी पंक्ति में उत्कृष्ट काल की अपेक्षा ग्रहण जानना । इसी प्रकार सात, छह, पांच, चार, तीन, दो, एक अपकर्षों द्वारा आयु बांधनेवालों की अपेक्षा से इस रचना में अर्थ जानना । आठों रचनाओं के दूसरे और तीसरे पंक्तियों के सर्व कोठे बहत्तर होते हैं । इन बहत्तर स्थानों में आयु बंधने के काल का अल्पबहुत्व जानना । मध्यम भेदों के ग्रहण के निमित्त जघन्य और उत्कृष्ट के बीच में बिंदी की सहनानी जाननी।

इसतरह आयु को बंधने के योग्य लेश्याओं के मध्यम आठ अंशों की उत्पत्ति का आठ अपकर्षों द्वारा अनुक्रम कहा ।

सेसट्ठारसअंसा चउगइगमणस्स कारणा होंति ।
सुक्कुक्कस्संसमुदा सव्वट्ठं जांति खलु जीवा ।।५१९।।

शेषाष्टादशांशाश्चतुर्गतिगमनस्य कारणानि भवन्ति ।
शुक्लोत्कृष्टांशमृताः सर्वार्थं यान्ति खलु जीवाः ।।५१९।।

टीका – उन मध्यम अंशों से अवशेष रहे जो लेश्या के अठारह अंश, वे चार गतियों में गमन के कारण हैं । मरण इन्हीं अठारह अंशों सहित होता है, मरण कर जीव यथायोग्य गति को प्राप्त होता है । वहां शुक्ललेश्या के उत्कृष्ट अंश सहित मरनेवाला जीव सर्वार्थसिद्धि नामक इन्द्रक विमान को प्राप्त होता है ।

अवरंसमुदा होंति सदारदुगे मज्झिमंसगेण मुदा ।
आणदकप्पादुवरिं सव्वट्ठाइल्लगे होंति ।।५२०।।

अवरांशमृता भवन्ति शतारद्विके मध्यमांशकेन मृताः ।
आनतकल्पादुपरि सर्वार्थादिमे भवन्ति ।।५२०।।

टीका – शुक्ललेश्या के जघन्य अंश सहित मरनेवाले जीव शतार-सहस्रार *(ग्यारहवें-बारहवें)* स्वर्ग में उपजते हैं । शुक्ललेश्या के मध्यम अंश सहित मरनेवाले जीव आनत *(तेरहवां)* स्वर्ग के ऊपर सर्वार्थसिद्धि इन्द्रक के विजयादिक विमान तक *(अनुत्तर विमान तक)* यथासंभव उपजते हैं ।

पम्मुक्कस्संसमुदा जीवा उवजांति खलु सहस्सारं ।
अवरंसमुदा जीवा सणक्कुमारं च माहिंदं ।।५२१।।

पद्मोत्कृष्टांशमृता जीवा उपयान्ति खलु सहस्रारम् ।
अवरांशमृता जीवाः सनत्कुमारं च माहेन्द्रम् ।।५२१।।

टीका – पद्मलेश्या के उत्कृष्ट अंश सहित मरनेवाले जीव सहस्रार स्वर्ग को प्राप्त होते हैं । पद्मलेश्या के जघन्य अंश सहित मरनेवाले जीव सनतकुमार-माहेन्द्र *(तीसरे-चौथे)* स्वर्ग को प्राप्त होते हैं ।

मज्झिमअंसेण मुदा तम्मज्झं जांति तेउजेट्ठमुदा ।
साणक्कुमारमाहिंदंतिमचक्किंदसेढिम्मि ।।५२२।।

मध्यमांशेन मृताः तन्मध्यं यांति तेजोज्येष्ठमृताः ।
सानत्कुमारमाहेन्द्रान्तिमचक्रेन्द्रश्रेण्याम् ।।५२२।।

टीका – पद्मलेश्या के मध्यम अंश सहित मरनेवाले जीव सहस्रार स्वर्ग के नीचे और सनत्कुमार-माहेन्द्र के ऊपर यथासंभव उपजते हैं । पुनश्च पीतलेश्या के उत्कृष्ट अंश सहित मरनेवाले जीव सनत्कुमार-माहेन्द्र स्वर्ग के अंतिम पटल में चक्र नामक इन्द्रक संबंधी श्रेणीबद्ध विमानों में उपजते हैं । *(विवक्षित पटल के मध्यमें जो विमान होता है उसे इन्द्रक कहते हैं तथा दिशा-विदिशाओं में पंक्तिरूप में पाये जाते हैं उन्हें श्रेणीबद्ध विमान कहते हैं, अन्यत्र जो हैं उन्हें प्रकीर्णक विमान कहते हैं ।)*

अवरंसमुदा सोहम्मीसाणादिमउडम्मि सेढिम्मि ।
मज्झिमअंसेण मुदा विमलविमाणादिबलभद्दे ।।५२३।।

अवरांशमृताः सौधर्मेशानादिमर्तौ श्रेण्याम् ।
मध्यमांशेन मृता विमलविमानादिबलभद्रे ।।५२३।।

टीका – पीतलेश्या के जघन्य अंश सहित मरनेवाले जीव सौधर्म-ईशान *(पहले-दूसरे स्वर्ग)* के पहले पटल के ऋजु नामक इन्द्रक वा श्रेणीबद्ध विमानों में उपजते हैं । तथा पीतलेश्या के मध्यम अंश सहित मरनेवाले जीव सौधर्म-ईशान के दूसरे पटल के विमल नामक इन्द्रक से लेकर सनत्कुमार-माहेन्द्र के द्विचरम पटल के बलभद्र नामक इन्द्रक तक के विमानों में उपजते हैं ।

किण्हवरंसेण मुदा अवधिट्ठाणम्मि अवरअंसमुदा ।
पंचमचरिमतिमिस्से मज्झे मज्झेण जायन्ते ।।५२४।।

कृष्णवरांशेन मृता अवधिस्थाने अवरांशमृताः ।
पञ्चमचरमतिमिस्रे मध्ये मध्येन जायन्ते ।।५२४।।

टीका – कृष्णलेश्या के उत्कृष्ट अंश सहित मरनेवाले जीव सातवीं नरक पृथ्वी का एक ही पटल है उसके अवधिस्थानक नामक इन्द्रक बिल में उपजते हैं।

कृष्णलेश्या के जघन्य अंश सहित मरनेवाले जीव पांचवीं पृथ्वी के अंतिम पटल के तिमिस्र नामक इन्द्रक में उपजते हैं । कृष्णलेश्या के मध्यम अंश सहित मरनेवाले जीव अवधिस्थानक इन्द्रक के चार श्रेणीबद्ध बिलों में या छठवीं पृथ्वी के तीनों पटलों में या पांचवीं पृथ्वी के चरम यानि अंतिम पटल में यथायोग्य उपजते हैं ।

नीलुक्कस्संसमुदा पंचमअंधिंदयम्मि अवरमुदा ।
वालुकसंपज्जलिदे मज्झे मज्झेण जायंते ।।५२५।।

नीलोत्कृष्टांशमृताः पञ्चमांधेन्द्रके अवरमृताः ।
वालुकासंप्रज्वलिते मध्ये मध्येन जायन्ते ।।५२५।।

टीका – नीललेश्या के उत्कृष्ट अंश सहित मरनेवाले जीव पांचवीं पृथ्वी के द्विचरम पटल के अंध्र नामक इन्द्रक में उपजते हैं । कितने ही जीव पांचवे पटल में भी उपजते हैं । अरिष्टा *(पांचवीं)* पृथ्वी के अंतिम पटल में कृष्णलेश्या के जघन्य अंश सहित मरनेवाले भी कई जीव उपजते हैं, इतना विशेष जानना । पुनश्च नीललेश्या के जघन्य अंश सहित मरनेवाले जीव वालुका पृथ्वी *(तीसरी)* के अंतिम पटल में संप्रज्वलित नामक इन्द्रक में उपजते हैं । नीललेश्या के मध्यम अंश सहित मरनेवाले जीव वालुकाप्रभा पृथ्वी के संप्रज्वलित इन्द्रक के नीचे और चौथी पृथ्वी के सातों पटल और पांचवीं पृथ्वी के अंध्र इन्द्रक के ऊपर यथायोग्य उपजते हैं ।

(वाचकों को सरल हो इस दृष्टि से नरक पृथ्वियों के अन्य अन्य नाम तथा उनके पटलों की संख्या नीचे लिखते हैं –

नरक पृथ्वी	*नाम*	*अन्य नाम*	*पटलों की संख्या*
पहली	*रत्नप्रभा*	*धर्मा*	*१३*
दूसरी	*शर्कराप्रभा*	*वंशा*	*११*
तीसरी	*वालुकाप्रभा*	*मेघा*	*९*
चौथी	*पंकप्रभा*	*अंजना*	*७*
पांचवीं	*धूमप्रभा*	*अरिष्टा*	*५*
छठवीं	*तमःप्रभा*	*मघवी*	*३*
सातवीं	*महातमःप्रभा*	*माघवी*	*१)*

वरकाओदंसमुदा संजलिदं जांति तदियणिरयस्स ।
सीमंतं अवरमुदा मज्झे मज्झेण जायंते ।।५२६।।

वरकापोतांशमृताः संज्वलितं यान्ति तृतीयनिरयस्य ।
सीमन्तमवरमृता मध्ये मध्येन जायन्ते ।।५२६।।

टीका – कपोतलेश्या के उत्कृष्ट अंश सहित मरनेवाले जीव तीसरी पृथ्वी के आठवें यानि द्विचरम पटल के संज्वलित नामक इन्द्रक बिल में उपजते हैं । कई जीव अंतिम पटल संबंधी संप्रज्वलित नामक इन्द्रक बिल में भी उपजते हैं, इतना विशेष जानना । कपोतलेश्या के जघन्य अंश सहित मरनेवाले जीव पहली धर्मा पृथ्वी के पहले सीमंतक इन्द्रक में उपजते हैं । कपोतलेश्या के मध्यम अंश सहित मरनेवाले जीव पहले पृथ्वी के सीमंतक इन्द्रक के नीचे बारह पटलों में तथा तीसरी मेघा पृथ्वी के द्विचरम संज्वलित इन्द्रक के ऊपर के सात पटलों में तथा दूसरी पृथ्वी के ग्यारह पटलों में यथायोग्य उपजते हैं ।

किण्हचउक्काणं पुण मज्झंसमुदा हु भवणगादितिये ।
पुढवीआउवणप्फदिजीवेसु हवंति खलु जीवा ।।५२७।।

कृष्णचतुष्काणां पुनः मध्यांशमृता हि भवनकादित्रये ।
पृथिव्यब्वनस्पतिजीवेषु भवन्ति खलु जीवाः ।।५२७।।

टीका – पुनः अर्थात् यह विशेष है कि कृष्ण, नील, कपोत इन तीन लेश्याओं के मध्यम अंश सहित मरनेवाले कर्मभूमियां मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और मनुष्य तथा पीतलेश्या के मध्यम अंश सहित मरनेवाले भोगभूमियां मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और मनुष्य वे भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी देवों में उपजते हैं । पुनश्च कृष्ण, नील, कपोत, पीत इन चार लेश्याओं के मध्यम अंश सहित मरनेवाले ऐसे तिर्यंच और मनुष्य तथा भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी और सौधर्म-ईशान के वासी देव, मिथ्यादृष्टि, वे बादर पर्याप्त पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, प्रत्येक वनस्पतिकायिक में उपजते हैं । भवनत्रयादिक की अपेक्षा यहां पीतलेश्या जाननी। तिर्यंच, मनुष्य की अपेक्षा कृष्णादि तीन लेश्या जाननी ।

किण्हतियाणं मज्झिमअंसमुदातेउवाउवियलेसु ।
सुरणिरया सगलेस्सहिं णरतिरियं जांति सगजोग्गं ।।५२८।।

कृष्णत्रयाणां मध्यमांशमृताः तेजोवायुविकलेषु ।
सुरनिरयाः स्वकलेश्याभिः नरतिर्यञ्चं यान्ति स्वकयोग्यम् ।।५२८।।

टीका – कृष्ण, नील, कपोत के मध्यम अंश सहित मरनेवाले तिर्यंच और मनुष्य वे अग्निकायिक, वायुकायिक, विकलत्रय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, साधारण वनस्पति इनमें उपजते हैं । पुनश्च भवनत्रय आदि सर्वार्थसिद्धि तक के देव और धर्मादि सात पृथ्वियों के नारकी अपनी-अपनी लेश्या के अनुसार यथायोग्य मनुष्यगति या तिर्यंचगति को प्राप्त होते हैं । यहां इतना जानना कि जिस गति संबंधी पहले आयु बांधी हो उसी गति में, मरण होते समय जो लेश्या होती है, उसके अनुसार उपजता है । जैसे मनुष्य के पहले देवायु का बंध हुआ और यदि मरण के समय कृष्णादि अशुभलेश्या हो तो भवनत्रिक में ही उपजता है, ऐसे ही अन्यत्र जानना । इति गत्याधिकारः (गति अधिकार समाप्त हुआ) ।

८) ***स्वामी अधिकार*** – आगे स्वामी अधिकार सात गाथाओं द्वारा कहते हैं–

काऊ काऊ काऊ णीला णीला य णीलकिण्हा य ।
किण्हा य परमकिण्हा लेस्सा पढमादि पुढवीणं ।।५२९।।

कपोता कपोता कपोता नीला नीला च नीलकृष्णे च ।
कृष्णा च परमकृष्णा लेश्या प्रथमादिपृथिवीनाम् ।।५२९।।

टीका – यहां भावलेश्या की अपेक्षा कथन है । वहां नारकी जीवों की लेश्या कहते हैं – धर्मा नामक पहली पृथ्वी में कपोतलेश्या का जघन्य अंश है । वंशा नामक दूसरी पृथ्वी में कपोत का मध्यम अंश है । मेघा नामक तीसरी पृथ्वी में कपोत का उत्कृष्ट अंश और नील का जघन्य अंश है । अंजना नामक चौथी पृथ्वी में नील का मध्यम अंश है । अरिष्टा नामक पांचवीं पृथ्वी में नील का उत्कृष्ट अंश है और कृष्ण का जघन्य अंश है । मघवी नामक छठवीं पृथ्वी में कृष्ण का मध्यम अंश है। माघवी नामक सातवीं पृथ्वी में कृष्ण का उत्कृष्ट अंश है ।

णरतिरियाणं ओघो इगिविगले तिण्णि चउ असण्णिस्स ।
सण्णिअपुण्णगमिच्छे सासणसम्मे वि असुहतियं ।।५३०।।

नरतिरश्चामोघः एकविकले तिस्रः चतस्र असंज्ञिनः ।
संज्ञ्यपूर्णकमिथ्यात्वे सासादनसम्यक्त्वेऽपि अशुभत्रिकम् ।।५३०।।

टीका - मनुष्य और तिर्यंचों के **ओघ** अर्थात् सामान्यपने ऊपर बतायी हुयी छहों लेश्या पायी जाती हैं । एकेन्द्रिय और विकलत्रय के कृष्णादिक तीन अशुभ लेश्या ही पायी जाती हैं । असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त के कृष्णादि चार लेश्या पायी जाती हैं क्योंकि असंज्ञी पंचेन्द्रिय कपोतलेश्या सहित मरे तो पहले नरक में उपजता है, पीतलेश्या सहित मरे तो भवनवासी और व्यंतर देवों में उपजता है तथा कृष्णादि तीन अशुभ लेश्या सहित मरे तो यथायोग्य मनुष्य, तिर्यंच में उपजता है । इसलिये उसके चार लेश्या हैं । पुनश्च संज्ञी लब्धिअपर्याप्त तिर्यंच या मनुष्य मिथ्यादृष्टि; तथा अपि शब्द से असंज्ञी लब्धिअपर्याप्त तिर्यंच; मिथ्यादृष्टि तथा सासादन गुणस्थानवर्ती निर्वृत्ति अपर्याप्त तिर्यंच, मनुष्य और भवनत्रिक देव इनमें कृष्णादिक तीन अशुभ लेश्या ही हैं । तिर्यंच और मनुष्य जो उपशम सम्यग्दृष्टि है उसके अति संक्लेश परिणाम हो तो भी देशसंयमी के समान उसके कृष्णादि तीन लेश्या नहीं होती । तथापि जो उपशम सम्यक्त्व की विराधना करके सासादन होता है उसके अपर्याप्त अवस्था में तीन अशुभ लेश्या ही पायी जाती हैं ।

*(**विशेषार्थ** - मनुष्य और तिर्यंचों के मिथ्यादृष्टि और सासादन इन दो गुणस्थानवर्ती की अपर्याप्त अवस्था में तीन अशुभ लेश्या ही पायी जाती हैं ।)*

भोगा पुण्णगसम्मे काउस्स जहण्णि यं हवे णियमा ।
सम्मे वा मिच्छे वा पज्जत्ते तिण्णि सुहलेस्सा ।।५३१।।

भोगाऽपूर्णकसम्यक्त्वे कापोतस्य जघन्यकं भवेन्नियमात् ।
सम्यक्त्वे मिथ्यात्वे वा पर्याप्ते तिस्रः शुभलेश्याः ।।५३१।।

टीका - भोगभूमि में निर्वृत्तिअपर्याप्त सम्यग्दृष्टि जीव में कपोतलेश्या का जघन्य अंश पाया जाता है । क्योंकि कर्मभूमियां मनुष्य या तिर्यंच पहले मनुष्य या तिर्यंच आयु का बंध करके पश्चात् क्षायिक या वेदक सम्यक्त्व को अंगीकार करके मरकर उस सहित ही वहां भोगभूमि में उपजता है । वहां उस योग्य संक्लेश परिणाम कपोत के जघन्य अंशरूप परिणमता है । पुनश्च भोगभूमि में पर्याप्त अवस्था में सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि जीव के पीतादिक तीन शुभलेश्या ही पायी जाती हैं ।

अयदो त्ति छ लेस्साओ सुहतियलेस्सा हु देसविरदतिये ।
तत्तो सुक्का लेस्सा अजोगिठाणं अलेस्सं तु ।।५३२।।

असंयत इति षड् लेश्याः शुभत्रयलेश्या हि देशविरतत्रये ।
ततः शुक्ला लेश्या अयोगिस्थानमलेश्यं तु ।।५३२।।

टीका – असंयत तक चार गुणस्थानों में छहों लेश्या हैं । देशविरत आदि तीन गुणस्थानों में पीतादि तीन शुभलेश्या ही हैं । उसके ऊपर अपूर्वकरण से लेकर सयोगी तक छह गुणस्थानों में एक शुक्ललेश्या ही है । अयोगी गुणस्थान लेश्या रहित है क्योंकि वहां योग और कषाय का अभाव है ।

णट्ठकसाये लेस्सा उच्चदि सा भूदपुव्वगदिणाया ।
अहवा जोगपउत्ती मुक्खो त्ति तहिं हवे लेस्सा ।।५३३।।

नष्टकषाये लेश्या उच्यते सा भूतपूर्वगतिन्यायात् ।
अथवा योगप्रवृत्तिः मुख्येति तत्र भवेल्लेश्या ।।५३३।।

टीका – जहां कषाय नष्ट हो गये हैं ऐसे उपशांत कषायादि तीन गुणस्थानों में कषाय का अभाव होनेपर भी लेश्या कहते हैं, वह भूतपूर्वगति न्याय से कहते हैं। पहले योगों की प्रवृत्ति कषाय सहित होती थी, वहां लेश्या का सद्भाव था, यहां योग पाया जाता है । इसलिये उपचार से यहां भी लेश्या का सद्भाव कहा है । अथवा योगों की प्रवृत्ति वही लेश्या, ऐसा भी कथन है, इसलिये योग यहां है ही उसकी प्रधानता से यहां लेश्या है ।

तिण्हं दोण्हं दोण्हं छण्हं दोण्हं च तेरसण्हं च ।
एत्तो य चोद्दसण्हं लेस्सा भवणादिदेवाणं ।।५३४।।

तेऊ तेऊ तेऊ पम्मा पम्मा य पम्मसुक्का य ।
सुक्का य परमसुक्का भवणातिया पुण्णगे असुहा ।।५३५।।

त्रयाणां द्वयोर्द्वयोः षण्णां द्वयोश्च त्रयोदशानां च ।
एतस्माच्च चतुर्दशानां लेश्या भवनादिदेवानाम् ।।५३४।।

तेजस्तेजस्तेजः पद्मा पद्मा च पद्मशुक्ला च ।
शुक्ला च परमशुक्ला भवनत्रिकाः अपूर्णके अशुभाः ।।५३५।।

टीका - देवों की लेश्या कहते हैं । पर्याप्त भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी इन भवनत्रिक के पीतलेश्या का जघन्य अंश है । सौधर्म-ईशान दो स्वर्गवालों के पीतलेश्या का मध्यम अंश है । सनत्कुमार-माहेन्द्र स्वर्गवालों के पीतलेश्या का उत्कृष्ट अंश और पद्मलेश्या का जघन्य अंश है । ब्रह्म आदि छह स्वर्गवालों के पद्मलेश्या का मध्यम अंश है । शतार-सहस्रार दो स्वर्गवालों के पद्मलेश्या का उत्कृष्ट अंश और शुक्ललेश्या का जघन्य अंश है । आनत आदि चार स्वर्ग और नौ ग्रैवेयक इन तेरह विमानवालों के शुक्ललेश्या का मध्यम अंश है । उसके ऊपर नौ अनुदिश और पांच अनुत्तर इन चौदह विमानवालों के शुक्ललेश्या का उत्कृष्ट अंश है । पुनश्च भवनत्रिक देव के अपर्याप्त अवस्था में कृष्णादि तीन अशुभलेश्या ही पायी जाती हैं। इसी से यह जाना जाता है कि वैमानिक देवों के तो पर्याप्त और अपर्याप्त अवस्था में लेश्या समान ही है। इसप्रकार जिस जीव के जो लेश्या पायी जाती है वह जीव उस लेश्या का स्वामी जानना । इति स्वाम्याधिकारः (स्वामी अधिकार समाप्त हुआ।)

९) ***साधन अधिकार*** - आगे साधन अधिकार कहते हैं -

वण्णोदयसंपादिदसरीरवण्णो दु दव्वदो लेस्सा ।
मोहुदयखओवसमोवसम खयजजीवफंदणं भावो ।।५३६।।

वर्णोदयसंपादितशरीरवर्णस्तु द्रव्यतो लेश्या ।
मोहोदयक्षयोपशममोपशमक्षयजजीवस्पन्दो भावः ।।५३६।।

टीका - वर्ण नामक नामकर्म के उदय से उत्पन्न हुआ जो शरीर का वर्ण, वह द्रव्यलेश्या है । इसलिये द्रव्यलेश्या का साधन वर्ण नामक नामकर्म का उदय है। पुनश्च असंयत तक चार गुणस्थानों में मोहनीय कर्म के उदय से, देशविरत आदि तीन गुणस्थानों में मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से, उपशम श्रेणी में मोहनीय कर्म के उपशम से, क्षपक श्रेणी में मोहनीय कर्म के क्षय से उत्पन्न हुआ जो जीव का स्पंद, वह भावलेश्या है । स्पंद अर्थात् जीव के परिणामों का चंचल होना वा जीव के प्रदेशों का चंचल होना, वह भावलेश्या है । वहां परिणामों का चंचल होना कषाय है, प्रदेशों का चंचल होना योग है । इसकारण योग, कषायों से भावलेश्या होती है ।

इसलिये भावलेश्या का साधन मोहनीय कर्म का उदय या क्षयोपशम या उपशम या क्षय जानना। इति साधनाधिकारः (साधन अधिकार समाप्त हुआ ।)

१०) ***संख्याधिकार*** – आगे संख्याधिकार छह गाथाओं द्वारा कहते हैं –

किण्हादिरासिमावलिअसंखभागेण भजिय पविभत्ते ।
हीणकमा कालं वा अस्सिय दव्वा दु भजिदव्वा ।।५३७।।

कृष्णादिराशिमावल्यसंख्यभागेन भक्त्वा प्रविभक्ते ।
हीनक्रमाः कालं वा आश्रित्य द्रव्याणि तु भक्तव्यानि ।।५३७।।

टीका – कृष्णादिक अशुभ तीन लेश्यावाले जीवों का प्रमाण है वह, तीन शुभ लेश्यावालों के प्रमाण को संसारी जीवों के प्रमाण में से घटानेपर जितना रहे उतना जानना । वह किंचित् कम संसारीराशि मात्र हुआ । उसको आवली के असंख्यातवें भाग का भाग दीजिये, वहां एक भाग बिना अवशेष बहुभाग रहे, उनके तीन भाग कीजिये, वहां एक-एक भाग एक एक लेश्यावालों का समानरूप जानना । जो एक भाग रहा उसको आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां एक भाग जुदा रखकर अवशेष बहुभाग को, पहले समान भागों में से कृष्णलेश्यावालों का हिस्सा था, उसमें जोड़नेपर जो प्रमाण होता है, उतने कृष्णलेश्यावाले जीव जानने । पुनश्च वह जो एक भाग रहा था उसको आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर, वहां एक भाग जुदा रखकर, अवशेष बहुभाग रहे उन्हें पहले समान भाग में से नीललेश्यावालों का हिस्सा था उसमें जोड़नेपर जो प्रमाण होता है, उतने नीललेश्यावाले जीव जानने। पुनश्च वह जो एक भाग रहा था उसको पहले समान भाग में से कपोतलेश्यावालों का हिस्सा था उसमें जोड़नेपर जो प्रमाण हो उतने कपोतलेश्यावाले जीव जानने । इसप्रकार कृष्णलेश्यावालों का द्रव्य से *(संख्या से)* प्रमाण कहा, वह क्रम से कुछ कुछ घटता जानना ।

अथवा काल अपेक्षा द्रव्य से *(संख्या का)* प्रमाण निकालते हैं । कृष्ण, नील, कपोत तीनों लेश्या का काल मिलानेपर जो कोई अंतर्मुहूर्तमात्र होता है, उसको आवली के असंख्यातवें भाग का भाग दीजिये, वहां एक भाग को जुदा रखकर, अवशेष रहे बहुभाग के तीन भाग कीजिये, वहां एक-एक समान भाग एक-एक लेश्या को दीजिये। जो एक भाग रहा, उसको आवली के असंख्यातवें भाग का भाग दीजिये, वहां एक

भाग को जुदा रखकर अवशेष बहुभाग रहे उसको पूर्वोक्त कृष्णलेश्या के समान भाग में मिलाइये । अवशेष जो एक भाग रहा था उसको आवली के असंख्यातवें भाग का भाग दीजिये, वहां एक भाग जुदा रखकर अवशेष बहुभाग पूर्वोक्त नीललेश्या के समान भाग में मिलाइये । जो एक भाग रहा, उसको पूर्वोक्त कपोतलेश्या के समान भाग में मिलाइये । ऐसे मिलानेपर जो-जो प्रमाण हुआ, वह-वह कृष्णादि लेश्याओं का काल जानना ।

अब यहां त्रैराशिक करना । वहां तीनों लेश्याओं के काल को जोड़नेपर जो प्रमाण आया वह तो प्रमाणराशि, अशुभ लेश्यावाले जीवों का जो किंचित् कम संसारी जीवमात्र प्रमाण वह फलराशि, तथा कृष्णलेश्या के काल का प्रमाण वह इच्छाराशि; वहां फलराशि से इच्छाराशि को गुणित करके प्रमाणराशि का भाग देनेपर लब्धराशि किंचित् कम तीन का भाग अशुभ लेश्यावाले जीवों के प्रमाण को देनेपर जो प्रमाण हुआ उतने कृष्णलेश्यावाले जीव जानने । ऐसे ही प्रमाणराशि, फलराशि, पूर्वोक्त इच्छाराशि अपने-अपने काल से नील और कपोत लेश्या में भी जीवों का प्रमाण जानना । ऐसे काल अपेक्षा द्रव्य से अशुभलेश्यावाले जीवों का प्रमाण कहा है ।

खेत्तादो असुहतिया अणंतलोगा कमेण परिहीणा ।
कालादोतीदादो अणंतगुणिदा कमा हीणा ।।५३८।।

क्षेत्रतः अशुभत्रिका अनंतलोकाः क्रमेण परिहीनाः ।
कालादतीतादनंतगुणिताः क्रमाद्धीनाः ।।५३८।।

टीका - क्षेत्रप्रमाण से तीन अशुभ लेश्यावाले जीव अनंत लोकमात्र जानने। लोकाकाश के प्रदेशों से अनंतगुणे हैं; वहां क्रम से हीन क्रम जानना । कृष्णलेश्यावालों से कुछ कम नीललेश्यावालों का प्रमाण है । नीललेश्यावालों से कुछ कम कपोतलेश्यावालों का प्रमाण है । पुनश्च यहां प्रमाणराशि लोक, फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि अपने-अपने जीवों का प्रमाण करनेपर लब्धराशिमात्र अनंत शलाका हुयी । पुनश्च प्रमाणराशि एक शलाका, फलराशि एक लोक, इच्छाराशि अनंत शलाका करनेपर लब्धराशि अनंतलोकमात्र कृष्णादि लेश्यावाले जीवों का प्रमाण होता है । पुनश्च कालप्रमाण से अशुभ तीन लेश्यावाले जीव, अतीत काल के समयों के प्रमाण से अनंतगुणे हैं । यहां भी पूर्वोक्त हीन क्रम जानना । यहां प्रमाणराशि अतीतकाल, फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि

अपने-अपने जीवों का प्रमाण करनेपर लब्धराशिमात्र अनंत शलाका हुयी । पुनश्च प्रमाणराशि एक शलाका, फलराशि एक अतीतकाल, इच्छाराशि अनंत शलाका करनेपर, लब्धराशि अनंत अतीतकाल मात्र कृष्णादि लेश्यावाले जीवों का प्रमाण होता है ।

केवलणाणाणंतिमभागा भावादु किण्हतियजीवा ।
तेउतियासंखेज्जा संखासंखेज्जभागकमा ।।५३९।।

केवलज्ञानानंतिमभागा भावात्तु कृष्णत्रिकजीवाः ।
तेजस्त्रिका असंख्येयाः संख्यासंख्येयभागक्रमाः ।।५३९।।

टीका – पुनश्च भावमान से *(भाव की अपेक्षा प्रमाण कहनेपर)* अशुभ तीन लेश्यावाले जीव, केवलज्ञान के अविभागप्रतिच्छेदों के प्रमाण के अनंतवें भागप्रमाण हैं। यहां भी पूर्ववत् हीन क्रम जानना । पुनश्च यहां प्रमाणराशि अपने-अपने लेश्यावाले जीवों का प्रमाण, फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि केवलज्ञान *(उसके अविभागप्रतिच्छेद)* करनेपर लब्धराशिमात्र अनंत प्रमाण हुआ । इसको प्रमाणराशि करके फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि केवलज्ञान करनेपर केवलज्ञान के अनंतवें भागमात्र कृष्णादि लेश्यावाले जीवों का प्रमाण होता है ।

पुनश्च पीतलेश्या आदि तीन शुभलेश्यावालों का प्रमाण असंख्यात है, तथापि पीतलेश्यावालों के संख्यातवें भाग पद्मलेश्यावाले हैं, पद्मलेश्यावालों के असंख्यातवें भाग शुक्ललेश्यावाले हैं । इसप्रकार द्रव्य से शुक्ललेश्यावालों का प्रमाण कहा ।

जोइसियादो अहिया तिरिक्खसण्णिस्स संखभागोदु ।
सूइस्स अंगुलस्स य असंखभागं तु तेउतियं ।।५४०।।

ज्योतिष्कतोऽधिकाः तिर्यक्संज्ञिनः संख्यभागस्तु ।
सूचेंगुलस्य च असंख्यभागं तु तेजस्त्रिकम् ।।५४०।।

टीका – पीतलेश्यावाले जीव ज्योतिष्कराशि से कुछ अधिक हैं । कैसे ? वह कहते हैं – पैंसठ हजार पांच सौ छत्तीस प्रतरांगुल का भाग जगत्प्रतर को देनेपर जो प्रमाण हो उतने तो ज्योतिषी देव हैं । घनांगुल के प्रथम वर्गमूल से जगत्श्रेणी को गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतने भवनवासी हैं । तीन सौ योजन के वर्ग का

भाग जगत्प्रतर को देनेपर जो प्रमाण हो उतने व्यंतर हैं । घनांगुल के तृतीय वर्गमूल से जगत्श्रेणी को गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने सौधर्म-ईशान स्वर्ग के देव हैं। पांच बार संख्यात से गुणित पणट्ठी प्रमाण प्रतरांगुल का भाग जगत्प्रतर को देनेपर जो प्रमाण हो, उतने पीतलेश्यावाले तिर्यंच हैं । तथा संख्यात पीतलेश्यावाले मनुष्य हैं । इन सब का जोड़ देनेपर जो प्रमाण हो, उतने पीतलेश्यावाले जीव जानने ।

पद्मलेश्यावाले जीव पीतलेश्यावाले जीवों से संख्यातगुणा हीन हैं *(संख्यातवें भाग हैं)* तथापि पीतलेश्यावाले संज्ञी तिर्यंचों से भी संख्यातगुणे हीन हैं । क्योंकि पद्मलेश्यावाले संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंचों के प्रमाण में पद्मलेश्यावाले कल्पवासी देव और मनुष्य इनका प्रमाण मिलानेपर जो जगत्प्रतर के असंख्यातवें भागमात्र प्रमाण आता है, उतने पद्मलेश्यावाले जीव हैं ।

शुक्ललेश्यावाले जीव सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । इसतरह क्षेत्रप्रमाण द्वारा तीन शुभलेश्यावाले जीवों का प्रमाण कहा ।

बेसदछप्पण्णंगुलकदिहिदपदरं तु जोइसियमाणं ।
तस्स य संखेज्जदिमं तिरिक्खसण्णीण परिमाणं ।।५४१।।

द्विशतषट्पंचाशदंगुलकृतिहितप्रतरं तु ज्योतिष्कमानम् ।
तस्य च संख्येयतमं तिर्यक्संज्ञिनां परिमाणं ।।५४१।।

टीका - पहले जो पीतलेश्यावालों का प्रमाण ज्योतिषी देवराशि से साधिक कहा और पद्मलेश्या का प्रमाण संज्ञी तिर्यंचों के संख्यातवें भागमात्र कहा, वहां दो सौ छप्पन का वर्ग पणट्ठी उसप्रमाण प्रतरांगुल का भाग जगत्प्रतर को देनेपर जो प्रमाण हो उतने ज्योतिषी जानना तथा इनके संख्यातवें भागप्रमाण संज्ञी तिर्यंचों का प्रमाण जानना ।

तेउदु असंखकप्पा पल्लासंखेज्जभागया सुक्का ।
ओहि असंखेज्जदिमा तेउतिया भावदो होंति ।।५४२।।

तेजोद्वया असंख्यकल्पाः पल्यासंख्येयभागकाः शुक्लाः ।
अवध्यसंख्येयाः तेजस्त्रिका भावतो भवंति ।।५४२।।

टीका – पीतलेश्यावाले, पद्मलेश्यावाले जीव प्रत्येक असंख्यात कल्पप्रमाण हैं। तथापि पीतलेश्यावालों के संख्यातवें भागमात्र पद्मलेश्यावाले हैं । कल्पकाल का प्रमाण बीस कोडाकोडि सागर के जितने समय हो, उतना जानना । शुक्ललेश्यावाले पल्य के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । ऐसे कालप्रमाण द्वारा तीन शुभलेश्यावाले जीवों का प्रमाण कहा ।

पुनश्च अवधिज्ञान के जितने भेद हैं उनके असंख्यातवें भागप्रमाण प्रत्येक तीन शुभलेश्यावाले जीव हैं । तथापि पीतलेश्यावालों के संख्यातवें भागमात्र पद्मलेश्यावाले हैं । पद्मलेश्यावालों के असंख्यातवें भागमात्र शुक्ललेश्यावाले हैं । ऐसे भावप्रमाण द्वारा पीत, पद्म, शुक्ल लेश्यावालों का प्रमाण कहा । इति संख्याधिकारः (संख्या अधिकार समाप्त हुआ ।)

*११) **क्षेत्राधिकार*** – आगे क्षेत्राधिकार कहते हैं –

सट्ठाणसमुग्घादे उववादे सव्वलोयमसुहाणं ।
लोयस्सासंखेज्जदिभागं खेत्तं तु तेउतिये ।।५४३।।

स्वस्थानसमुद्घाते उपपादे सर्वलोकमशुभानाम् ।
लोकस्यासंख्येयभागं क्षेत्रं तु तेजस्त्रिके ।।५४३।।

टीका – विवक्षित लेश्यावाले जीव वर्तमान काल में विवक्षित स्वस्थान आदि विशेषों सहित जितने आकाश में पाये जाते हैं, उसका नाम क्षेत्र है । सो कृष्ण आदि तीन अशुभ लेश्याओं का क्षेत्र स्वस्थान में, समुद्घात में और उपपाद में सर्वलोक है । तथा पीतलेश्या आदि तीन शुभ लेश्याओं का क्षेत्र लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण है, ऐसे संक्षेप से अर्थात् सामान्यपने से क्षेत्र कहा ।

अब विशेषपने से दस स्थानों में कहते हैं । वहां स्वस्थान के दो भेद हैं – एक स्वस्थानस्वस्थान, एक विहारवत्स्वस्थान । वहां विवक्षित लेश्यावाले जीव जिस नरक, स्वर्ग, नगर, ग्रामादि क्षेत्र में उत्पन्न हुये हो वह तो स्वस्थानस्वस्थान है; तथा विवक्षित लेश्यावाले जीवों का विहार करने के योग्य जो क्षेत्र हो, वह विहारवत्स्वस्थान है ।

अपने शरीर से कितनेक आत्मप्रदेशों का बाहर निकसकर (निकलकर) यथायोग्य फैलना उसे समुद्घात कहते हैं । उसके सात भेद हैं – वेदना, कषाय, वैक्रियिक,

मारणांतिक, तेजस, आहारक, केवली समुद्घात ।

वहां अत्यंत पीड़ा के निमित्त से प्रदेशों का निकसना, वह वेदना समुद्घात है । क्रोधादि कषाय के निमित्त से प्रदेशों का निकसना, वह कषाय समुद्घात है। विक्रिया के निमित्त से प्रदेशों का निकसना, वह वैक्रियिक समुद्घात है । मरण होने के पहले नवीन पर्याय धारण करने के क्षेत्र तक प्रदेशों का निकसना *(फैलना)*, वह मारणांतिक समुद्घात है । अशुभरूप या शुभरूप तेजसशरीर द्वारा नगरादिक को जलाये वा भला करे, उसके साथ जो प्रदेशों का निकसना, वह तेजस समुद्घात है । प्रमत्त गुणस्थान वाले के आहारकशरीर के साथ प्रदेशों का निकसना, वह आहारक समुद्घात है । केवलज्ञानी के दंड, कपाट आदि क्रिया होते समय प्रदेशों का निकसना, वह केवली समुद्घात है । ऐसे समुद्घात के सात भेद हैं ।

पहले जो पर्याय धारण की थी उसे छोड़कर, पहले समय में अन्य पर्यायरूप होकर अंतराल में प्रवर्तना, उसे उपपाद कहते हैं । इसका एक ही भेद है । इसप्रकार ये दस स्थान हुये ।

वहां कृष्णलेश्यावाले जीवों का स्वस्थानस्वस्थान, वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात, मारणांतिक समुद्घात, उपपाद इन पांच पदों में क्षेत्र सर्वलोक जानना । अब इन जीवों का प्रमाण कहते हैं -

कृष्णलेश्यावालों का जो पहले प्रमाण कहा उसको संख्यात का भाग दीजिये, वहां बहुभाग प्रमाण तो स्वस्थानस्वस्थानवाले जीव हैं । भाग देनेपर वहां एक भाग को जुदा रखते हैं तब अवशेष जो रहे उसको बहुभाग कहते हैं, ऐसा सर्वत्र जानना। जो एक भाग रहा उसको संख्यात का भाग देनेपर वहां बहुभाग प्रमाण वेदना समुद्घातवाले जीव हैं । पुनश्च जो एक भाग रहा था, उसको संख्यात का भाग देनेपर वहां बहुभाग प्रमाण कषाय समुद्घातवाले जीव हैं । एक भाग रहा उसे फलराशि करना, तथा एक निगोद जीव की आयु श्वास के अठारहवें भाग - उसप्रमाण अंतर्मुहूर्त के जितने समय हो, उसे प्रमाणराशि करना, एक समय को इच्छाराशि करना । वहां फलराशि को इच्छाराशि से गुणा करके प्रमाणराशि का भाग देनेपर जितना प्रमाण आता है, उतने जीव उपपादवाले हैं । इस उपपादवाले जीवों के प्रमाण को मारणांतिक समुद्घात के कालप्रमाण अंतर्मुहूर्त के जितने समय हो उनसे गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने जीव

मूलराशि के संख्यातवें भागमात्र मारणांतिक समुद्घातवाले जानने । ऐसे ये जीव सर्वलोक में पाये जाते हैं, इसलिये इनका क्षेत्र सर्वलोक है । विहारवत्स्वस्थान में क्षेत्र संख्यात सूच्यंगुल से जगत्प्रतर को गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतना जानना। कैसे ? वह कहते हैं –

कृष्णलेश्यावाले पर्याप्त त्रस जीवों का प्रमाण *(पर्याप्त त्रस जीवों के ही विहार होता है, एकेन्द्रियों के नहीं, इसलिये उनका प्रमाण लिया है ।)*, पर्याप्त त्रसराशि के किंचित् कम त्रिभाग है । उसको संख्यात का भाग देनेपर, वहां बहुभागप्रमाण स्वस्थानस्वस्थान में हैं । अवशेष रहे एक भाग को संख्यात का भाग देनेपर वहां बहुभाग प्रमाण विहारवत्स्वस्थान में जीव जानने । अवशेष रहा एक भाग अवशेष यथायोग्य स्थानों में जानना । पर्याप्त त्रस जीवों की जघन्य, मध्यम अवगाहना अनेक प्रकार की है, उसे हीनाधिक बराबर करनेपर संख्यात घनांगुलप्रमाण मध्यम अवगाहनामात्र एक जीव की अवगाहना का यहां ग्रहण किया । सो इस अवगाहना के प्रमाण को फलराशि करना, पहले जो विहारवत्स्वस्थान जीवों का प्रमाण कहा उसको इच्छाराशि करना, और एक जीव को प्रमाणराशि करना । वहां फलराशि से इच्छाराशि को गुणा करके प्रमाणराशि का भाग देनेपर संख्यात सूच्यंगुल से गुणित जगत्प्रतर प्रमाण हुआ, वह विहारवत्स्वस्थान में क्षेत्र जानना ।

पुनश्च वैक्रियिक समुद्घात में क्षेत्र घनांगुल के वर्ग से असंख्यात जगत्श्रेणी को गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतना जानना । कैसे ? वह कहते हैं –

कृष्णलेश्यावाले वैक्रियिक शक्ति से युक्त जीवों का प्रमाण वैक्रियिक काययोगी जीवों के किंचित् कम त्रिभाग मात्र है । उसको संख्यात का भाग देनेपर वहां बहुभाग प्रमाण स्वस्थानस्वस्थान में जीव हैं । अवशेष रहे एक भाग को संख्यात का भाग देनेपर वहां बहुभागप्रमाण विहारवत्स्वस्थान में जीव हैं । अवशेष रहे एक भाग को संख्यात का भाग देनेपर, वहां बहुभाग प्रमाण वेदना समुद्घात में जीव हैं । अवशेष रहे एक भाग को संख्यात का भाग देनेपर, वहां बहुभाग प्रमाण कषाय समुद्घात में जीव हैं । अवशेष एक भाग प्रमाण वैक्रियिक समुद्घात में जीव प्रवर्तते हैं । ऐसा जो वैक्रियिक समुद्घातवाले जीवों का प्रमाण कहा, उसको हीनाधिक बराबर करके एक जीव संबंधी वैक्रियिक समुद्घात का क्षेत्र संख्यात घनांगुल प्रमाण है उससे गुणित करनेपर घनांगुल के वर्ग से गुणित असंख्यात जगत्श्रेणीमात्र प्रमाण आता है, वह वैक्रियिक

समुद्घात का क्षेत्र जानना । इन्हीं का सामान्यलोक, अधोलोक, ऊर्ध्वलोक, तिर्यक्लोक, मनुष्यलोक इन पांच लोक की अपेक्षा व्याख्यान करते हैं –

समस्त जो लोक वह सामान्यलोक है । मध्यलोक से नीचे, वह अधोलोक है। मध्यलोक के ऊपर ऊर्ध्वलोक है। मध्यलोक में एक राजू चौड़ा, लाख योजन ऊंचा तिर्यक्लोक है। पैंतालीस लाख योजन चौड़ा, लाख योजन ऊंचा मनुष्यलोक है।

प्रश्न – वहां कृष्णलेश्यावाले स्वस्थानस्वस्थान, वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात, मारणांतिक समुद्घात, उपपाद इनमें प्रवर्तनेवाले जीव कितने क्षेत्र में स्थित हैं ?

वहां उत्तर – सामान्य आदि पांच प्रकार के सर्व लोक में स्थित हैं ।

विहारवत्स्वस्थान में प्रवर्तनेवाले जीव सामान्यलोक, अधोलोक और ऊर्ध्वलोक के असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र में रहते हैं । और तिर्यक्लोक लाख योजन ऊंचा है और एक जीव की ऊंचाई उसके संख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिये तिर्यक्लोक के संख्यातवें भाग में रहते हैं । तथा मानुषोत्तर पर्वत के मध्यवर्ती जो मनुष्यलोक, उससे असंख्यातगुणा क्षेत्र में रहते हैं ।

वैक्रियिक समुद्घात में प्रवर्तनेवाले जीव सामान्यादि चार लोक, उनके असंख्यातवें भाग प्रमाण क्षेत्र में रहते हैं और मनुष्यलोक से असंख्यातगुणा क्षेत्र में रहते हैं क्योंकि वैक्रियिक समुद्घातवालों का क्षेत्र असंख्यातगुणा घनांगुल के वर्ग से गुणित जगत्श्रेणीमात्र है । ऐसे सात स्थानों में व्याख्यान किया ।

कृष्णलेश्यावालों के तेजस समुद्घात, आहारक समुद्घात, केवली समुद्घात नहीं होता, इसलिये इनका कथन नहीं किया है ।

जैसे कृष्णलेश्या का व्याख्यान किया, वैसे ही नीललेश्या, कपोतलेश्या का व्याख्यान जानना । विशेष इतना है कि जहां कृष्णलेश्या का नाम कहा है, वहां नीललेश्या या कपोतलेश्या का नाम लेना ।

अब पीतलेश्या का क्षेत्र कहते हैं । वहां प्रथम ही जीवों का प्रमाण कहते हैं । पीतलेश्यावाले जीवों का संख्या अधिकार में जो प्रमाण कहा उसको संख्यात का भाग देनेपर वहां बहुभाग स्वस्थानस्वस्थान में जानना । एक भाग रहा, उसको संख्यात का भाग देनेपर वहां बहुभाग विहारवत्स्वस्थान में जानना । पुनश्च जो एक

भाग रहा उसको संख्यात का भाग देनेपर, वहां बहुभाग वेदना समुद्घात में जानना। पुनश्च जो एक भाग रहा उसको संख्यात का भाग देनेपर वहां बहुभाग कषाय समुद्घात में जानना। तथा एक भाग वैक्रियिक समुद्घात में जानना। ऐसा जीवों का प्रमाण कहा।

अब पीतलेश्या मुख्यपने भवनत्रिक आदि देवों के पायी जाती है । उनमें एक देव के शरीर की अवगाहना का प्रमाण मुख्यता से सात धनुष ऊंचा और सात धनुष के दसवें भाग मुख की चौड़ाई है प्रमाण जिसका ऐसा है । सो इसका क्षेत्रफल निकालते हैं ।

वासोत्ति गुणो परिही वास चउत्थाहदो दु खेत्तफलं ।
खेत्तफलं वेहिगुणं खादफलं होदि सव्वत्थ ।।

इस करणसूत्र से क्षेत्रफल निकालना । गोल क्षेत्र में चौड़ाई के प्रमाण से तीनगुणा तो परिधि होती है । इस परिधि को चौड़ाई के चौथे भाग से गुणा करनेपर क्षेत्रफल होता है । इस क्षेत्रफल को ऊंचाईरूप वेध के प्रमाण से गुणित करनेपर घनरूप क्षेत्रफल होता है । सो यहां सात धनुष का दसवां भागमात्र चौड़ाई, उसको तीनगुणा करनेपर परिधि होती है । इसको चौड़ाई के चौथे भाग से गुणा करनेपर क्षेत्रफल होता है। इसको वेध सात धनुष से गुणा करनेपर घनरूप क्षेत्रफल होता है । जो घनराशि होती है उसके गुणकार, भागहार घनरूप ही होते हैं । इसलिये यहां उसके अंगुल करने के लिये एक धनुष के छानबे अंगुल होते हैं, इसलिये जो धनुषरूप क्षेत्रफल आया उसको छानबे के घन से गुणा करना । पुनश्च यहां तो कथन प्रमाणांगुल से है और देवों के शरीर का प्रमाण उत्सेधांगुल से है । इसलिये पांच सौ के घन का भाग देना । ऐसा करनेपर प्रमाणरूप घनांगुल के संख्यातवें भाग प्रमाण एक देव के शरीर की अवगाहना हुयी । इससे पहले जो स्वस्थानस्वस्थान में जीवों का प्रमाण कहा था उसको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतना क्षेत्र स्वस्थानस्वस्थान में जानना ।

वेदना समुद्घात में वा कषाय समुद्घात में आत्मप्रदेश मूल शरीर से बाहर निकसे, तो एक प्रदेश को रोके या दो प्रदेशमात्र क्षेत्र को रोके, ऐसे एक-एक प्रदेश बढ़ते हुये यदि उत्कृष्ट क्षेत्र को रोके, तो चौड़ाई में मूल शरीर से तीनगुणा क्षेत्र रोकता है परंतु ऊंचाई मूल शरीर प्रमाण ही रहती है । सो इसका घनरूप क्षेत्रफल करनेपर मूल शरीर के क्षेत्रफल से नौ गुणा क्षेत्र हुआ । इसप्रकार जघन्य एक प्रदेश

और उत्कृष्ट मूल शरीर से नौ गुणा क्षेत्र हुआ । इसे हीनाधिक बराबर करनेपर एक जीव के मूल शरीर से साढ़े चार गुणा क्षेत्र हुआ; सो शरीर का प्रमाण पहले घनांगुल के संख्यातवें भागप्रमाण कहा था, उसको साढ़े चार गुणा करनेपर एक जीव संबंधी क्षेत्र हुआ । इससे वेदना समुद्घातवाले जीवों के प्रमाण को गुणा करनेपर वेदना समुद्घात में क्षेत्र होता है । पुनश्च कषाय समुद्घातवाले जीवों के प्रमाण को गुणा करनेपर कषाय समुद्घात में क्षेत्र होता है ।

पुनश्च विहार करनेवाले देवों के मूल शरीर से बाह्य आत्मा के प्रदेश फैलनेपर, एक जीव की अपेक्षा वे प्रदेश संख्यात योजन प्रमाण लम्बा, सूच्यंगुल के संख्यातवें भागप्रमाण चौड़ा और ऊंचा क्षेत्र रोकते हैं, सो इसका क्षेत्रफल संख्यात घनांगुल हुआ। इससे पहले जो विहारवत्स्वस्थान में जीवों का प्रमाण कहा था उसको गुणा करनेपर सर्व जीवों संबंधी विहारवत्स्वस्थान में क्षेत्र का प्रमाण आता है । यहां ऐसा अर्थ जानना - देवों के मूल शरीर तो अन्य क्षेत्र में रहते हैं और विहार द्वारा विक्रियारूप शरीर अन्य क्षेत्र में रहता है । वहां उन दोनों के बीच आत्मा के प्रदेश सूच्यंगुल के संख्यातवें भागमात्र प्रदेश ऊंचे, चौड़े फैलते हैं । तथा यहां मुख्यता की अपेक्षा संख्यात योजन लम्बे कहे हैं । पुनश्च देव अपनी अपनी इच्छा से हाथी, घोड़ा इत्यादि रूप विक्रिया करते हैं उसकी अवगाहना एक जीव की अपेक्षा संख्यात घनांगुल प्रमाण है । इससे पहले जो वैक्रियिक समुद्घातवाले जीवों का प्रमाण कहा उसको गुणा करनेपर सर्व जीवों संबंधी वैक्रियिक समुद्घात में क्षेत्र का प्रमाण कहा ।

पुनश्च पीतलेश्यावालों में व्यंतरदेव बहुत मरते हैं, इसलिये यहां व्यंतरों की मुख्यता से मारणांतिक समुद्घात कहते हैं । व्यंतरदेवों का जो प्रमाण है, उसको व्यंतरों की मुख्यपने दस हजार वर्ष आदि संख्यात वर्ष प्रमाण स्थिति के जितने समय हैं उसका भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, उतने जीव एक समय में मरण को प्राप्त होते हैं। इन मरनेवाले जीवों को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर एक भागप्रमाण जीवों के ऋजुगति अर्थात् समरूप सीधीगति होती है *(बिना मोड़वाली अविग्रहगति)*। तथा बहुभागप्रमाण जीवों के विग्रहगति अर्थात् वक्रता-मोड़ सहित परलोक को गति होती है । इन विग्रहगति जीवों के प्रमाण को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर, वहां एक भागप्रमाण जीवों के मारणांतिक समुद्घात नहीं होता । परंतु बहुभागप्रमाण जीवों के मारणांतिक समुद्घात होता है । इस मारणांतिक समुद्घातवाले जीवों के प्रमाण

को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग दीजिये । वहां बहुभागप्रमाण समीप थोड़े से क्षेत्रवर्ती मारणांतिक समुद्घातवाले जीव हैं और एक भागप्रमाण दूर बहुत क्षेत्रवर्ती मारणांतिक समुद्घातवाले जीव हैं । सो एक समय में दूर मारणांतिक समुद्घात करनेवाले जीवों का यह प्रमाण कहा और मारणांतिक समुद्घात का काल अंतर्मुहूर्तमात्र है । इसलिये अंतर्मुहूर्त के जितने समय हो, उनसे उस प्रमाण को गुणा करनेपर जो प्रमाण आता है, उतने इकट्ठे हुये *(सब मिलकर)* दूर मारणांतिक समुद्घातवाले जीव जानने। वहां एक जीव के दूर मारणांतिक समुद्घात में शरीर से बाहर प्रदेश फैलते हैं, वे मुख्यपने एक राजू के संख्यातवें भागप्रमाण लम्बे और सूच्यंगुल के संख्यातवें भागप्रमाण चौड़े और ऊंचे क्षेत्र को रोकते हैं । इसका घनरूप क्षेत्रफल करनेपर प्रतरांगुल के संख्यातवें भाग से जगत्श्रेणी के संख्यातवें भाग को गुणा करनेपर जो हो, उतना क्षेत्र हुआ । इससे दूर मारणांतिक जीवों के प्रमाण को गुणा करनेपर सब जीवों संबंधी दूर मारणांतिक समुद्घात का क्षेत्र होता है । अन्य मारणांतिक समुद्घात का क्षेत्र अल्प है इसलिये मुख्य ग्रहण उसी का किया ।

तेजस समुद्घात में शरीर से बाहर प्रदेश निकसते हैं वे बारह योजन लम्बे, नौ योजन चौड़े, सूच्यंगुल के संख्यातवें भागप्रमाण ऊंचे क्षेत्र को रोकते हैं, सो इनका घनरूप क्षेत्रफल संख्यात घनांगुल प्रमाण हुआ । इससे तेजस समुद्घात करनेवाले जीवों का प्रमाण संख्यात है, उसको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतना तेजस समुद्घात में क्षेत्र जानना ।

आहारक समुद्घात में एक जीव के शरीर से बाहर निकसे हुये प्रदेश संख्यात योजन प्रमाण लम्बे और सूच्यंगुल के संख्यातवें भागप्रमाण चौड़े, ऊंचे क्षेत्र को रोकते हैं, इसका घनरूप क्षेत्रफल संख्यात घनांगुल प्रमाण हुआ । इससे आहारक समुद्घातवाले जीवों का जो संख्यात प्रमाण है, उसको गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतना आहारक समुद्घात में क्षेत्र जानना । मूल शरीर से निकसकर आहारकशरीर जहां जाता है, वहां तक की लम्बी आत्मप्रदेशों की श्रेणी सूच्यंगुल के संख्यातवें भागप्रमाण चौड़े और ऊंचे आकाश में होती है ऐसा भावार्थ जानना । ऐसा ही मारणांतिक समुद्घातादि में भी भावार्थ जान लेना ।

मरदि असंखेज्जदिमं तस्सासंखा य विग्गहे होंति ।
तस्सासंखं दूरे उववादे तस्स खु असंखं ।।५४४।।

म्रियते असंख्येयं तस्यासंख्याश्च विग्रहे भवंति ।
तस्यासंख्यं दूरे उपपादे तस्य खलु असंख्यम् ।।५४४।।

टीका - इस सूत्र का अभिप्राय उपपादक्षेत्र लाने का है । वहां पीतलेश्यावाले सौधर्म-ईशानवर्ती जीव मध्यलोक से दूर क्षेत्रवर्ती हैं, उनके कथन में क्षेत्र का प्रमाण अधिक आता है, इस बहुत प्रमाण में अल्प प्रमाण गर्भित करते हैं । इसलिये उनकी मुख्यता से उपपादक्षेत्र का कथन करते हैं ।

सौधर्म-ईशान स्वर्ग के वासी देव घनांगुल के तृतीय वर्गमूल से जगत्श्रेणी को गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतने हैं । इस प्रमाण को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग दीजिये, वहां एक भागप्रमाण एक एक समय में मरनेवाले जीवों का प्रमाण होता है । इस प्रमाण को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग दीजिये वहां बहुभागप्रमाण विग्रहगति करनेवालों का प्रमाण होता है । इसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर वहां बहुभाग प्रमाण मारणांतिक समुद्घात करनेवाले जीवों का प्रमाण होता है।

इसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर, एक भागप्रमाण दूर मारणांतिक समुद्घातवाले जीवों का प्रमाण होता है । इस प्रमाण को, द्वितीय दीर्घ दंड में स्थित मारणांतिक समुद्घात जिसका पहले हुआ हो ऐसी उपपादता से युक्त जीवों का प्रमाण लाने के लिये, पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग दीजिये, वहां एक भाग प्रमाण उपपाद जीवों का प्रमाण है । वहां तिर्यंच उपजने की मुख्यता से एक जीव संबंधी प्रदेश फैलने की अपेक्षा डेढ़ राजू लम्बा, संख्यात सूच्यंगुलप्रमाण चौड़ा और ऊंचा क्षेत्र होता है । इसका घनक्षेत्रफल संख्यात प्रतरांगुल से डेढ़ राजू को गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतना जानना । इससे उपपाद जीवों के प्रमाण को गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतना उपपाद में क्षेत्र जानना ।

केवली समुद्घात इस लेश्या में हैं नहीं, इसलिये कथन नहीं किया । ऐसे पीतलेश्या में क्षेत्र है ।

आगे पद्मलेश्या में क्षेत्र कहते हैं - संख्याधिकार में पद्मलेश्यावाले जीवों का जो प्रमाण कहा उसको संख्यात का भाग दीजिये, वहां बहुभाग स्वस्थानस्वस्थान में जानना । अवशेष एक भाग रहा, उसे संख्यात का भाग दीजिये, वहां बहुभाग विहारवत्स्वस्थान में जानना । अवशेष एक भाग रहा, उसको संख्यात का भाग दीजिये, वहां बहुभाग

वेदना समुद्घात में जानना । अवशेष एक भाग रहा वह कषाय समुद्घात में जानना। ऐसा जीवों का प्रमाण कहा । अब यहां पद्मलेश्यावाले तिर्यंच जीवों की अवगाहना का प्रमाण बहुत है, इसलिये उनकी मुख्यता से कथन करते हैं ।

वहां स्वस्थानस्वस्थान में और विहारवत्स्वस्थान में एक तिर्यंच जीव की अवगाहना मुख्यपने एक कोस लम्बी तथा उसके नौवें भाग मुख का विस्तार, सो इसका क्षेत्रफल **'वासो तिगुणो परिही'** इत्यादि सूत्र से करनेपर संख्यात घनांगुल प्रमाण होता है । इससे स्वस्थानस्वस्थानवाले जीवों के प्रमाण को गुणा करनेपर स्वस्थानस्वस्थान में क्षेत्र होता है । तथा विहारवत्स्वस्थानवाले जीवों के प्रमाण को गुणा करनेपर विहारवत्स्वस्थान में क्षेत्र होता है । पुनश्च पूर्वोक्त तिर्यंच शरीर की अवगाहना से पूर्वोक्त प्रकार साढ़े चार गुणा वेदना और कषाय समुद्घात में एक जीव की अपेक्षा क्षेत्र है । इससे पूर्वोक्त वेदना समुद्घातवाले जीवों के प्रमाण को गुणा करनेपर वेदना समुद्घात में क्षेत्र होता है, कषाय समुद्घातवाले जीवों के प्रमाण को गुणा करनेपर कषाय समुद्घात में क्षेत्र का प्रमाण होता है ।

पुनश्च वैक्रियिक समुद्घात में पद्मलेश्यावाले जीव सनत्कुमार-माहेन्द्र में बहुत हैं, इसलिये उनकी अपेक्षा कथन करते हैं - सनत्कुमार-माहेन्द्र में देवों का प्रमाण जगत्श्रेणी के ग्यारहवें वर्गमूल का भाग जगत्श्रेणी को देनेपर जो हो, उतना है । इस राशि को संख्यात का भाग देनेपर बहुभाग स्वस्थानस्वस्थान में जीव जानने । अवशेष एक भाग रहा, उसको संख्यात का भाग देनेपर वहां बहुभागप्रमाण विहारवत्स्वस्थान में जीव जानने। अवशेष एक भाग रहा उसको संख्यात का भाग देनेपर वहां बहुभाग प्रमाण वेदना समुद्घात में जीव जानने । अवशेष एक भाग रहा, उसको संख्यात का भाग देनेपर वहां बहुभाग प्रमाण कषाय समुद्घात में जीव जानने । अवशेष एक भाग रहा, उसप्रमाण वैक्रियिक समुद्घात में जीव जानने । इस वैक्रियिक समुद्घातवाले जीवों के प्रमाण को एक जीव संबंधी विक्रियारूप हाथी घोड़ोंरूप संख्यात घनांगुल प्रमाण अवगाहना से गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, वही वैक्रियिक समुद्घात में क्षेत्र जानना ।

पुनश्च मारणांतिक समुद्घात में तथा उपपाद में भी क्षेत्र सनत्कुमार-माहेन्द्र की अपेक्षा बहुत है । इसलिये सनत्कुमार-माहेन्द्र की अपेक्षा कथन करते हैं -

मरदि असंखेज्जिदिमं तस्सासंखा य विग्गहे होंति ।
तस्सासंखं दूरे उववादे तस्स खु असंखं ।।

सनत्कुमार-माहेन्द्रवासी जीवों का जो प्रमाण कहा उसको असंख्य अर्थात् पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर वहां एक भाग प्रमाण जीव प्रतिसमय मरण को प्राप्त होते हैं । उस राशि को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर वहां बहुभाग प्रमाण विग्रहगतिवालों का प्रमाण है । इस राशि को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर वहां बहुभाग प्रमाण मारणांतिक समुद्घातवाले जीव हैं । पुनश्च इसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर वहां एक भागप्रमाण दूर मारणांतिक समुद्घातवाले जीव हैं । इसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर वहां एक भागप्रमाण उपपाद के दंड में स्थित जीव हैं । वहां एक जीव की अपेक्षा मारणांतिक समुद्घात में क्षेत्र तीन राजू लम्बा, सूच्यंगुल के संख्यातवें भागमात्र चौड़ा और ऊंचा क्षेत्र है। इन सनत्कुमार-माहेन्द्रवासी देवों द्वारा किये हुये मारणांतिक दंड का घनरूप क्षेत्रफल प्रतरांगुल के संख्यातवें भाग से तीन राजू को गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतना है । इससे दूर मारणांतिक समुद्घातवाले जीवों का प्रमाण कहा था, उसको गुणा करनेपर मारणांतिक समुद्घात में क्षेत्र का प्रमाण होता है । पुनश्च उपपाद में तिर्यंच जीवों द्वारा सनत्कुमार-माहेन्द्र प्रति किया हुआ उपपादरूप दंड, वह तीन राजू लम्बा, संख्यात सूच्यंगुल प्रमाण चौड़ा और ऊंचा है । उसका क्षेत्रफल संख्यात प्रतरांगुल से गुणित तीन राजूप्रमाण एक जीव की अपेक्षा क्षेत्र होता है । इससे उपपादवालों के प्रमाण को गुणा करनेपर उपपाद में क्षेत्र का प्रमाण होता है ।

पुनश्च तेजस और आहारक समुद्घात में क्षेत्र जैसा पीतलेश्या के कथन में किया था, वैसे यहां भी संख्यात घनांगुल से संख्यात जीवों को गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतना जानना । केवलीसमुद्घात इस लेश्या में नहीं होता, ऐसे पद्मलेश्या का क्षेत्र कहा ।

आगे शुक्ललेश्या में क्षेत्र कहते हैं - संख्या अधिकार में जो शुक्ललेश्यावालों का प्रमाण कहा उसको संख्यात का *(छपी पुस्तक में पल्य के असंख्यातवें भाग से ऐसा हर बार कहा है जो घटित नहीं होता । तथा पं. टोडरमलजी के जीवकाण्ड के संदृष्टि अधिकार पृ. १६८ के आधार से भी संख्यात का ही भागहार है । पीत और पद्मलेश्या में भी हमने संख्यात का भाग देकर बहुभाग बहुभाग ग्रहण किया था,*

सो यहां भी वही है ।) भाग देनेपर, वहां बहुभाग प्रमाण स्वस्थानस्वस्थान में जीव हैं । अवशेष एक भाग रहा उसको संख्यात का भाग देनेपर बहुभागप्रमाण विहारवत्स्वस्थान में जीव हैं । अवशेष एक भाग रहा उसको संख्यात का भाग देनेपर, वहां बहुभाग प्रमाण वेदना समुद्घात में जीव हैं । अवशेष एक भाग रहा, उसको संख्यात का भाग देनेपर, वहां बहुभाग प्रमाण कषाय समुद्घातवाले जीव हैं । अवशेष एक भाग रहा, उसप्रमाण वैक्रियिक समुद्घातवाले जीव हैं । वहां शुक्ललेश्यावाले देवों की मुख्यता से एक जीव के शरीर की अवगाहना तीन हाथ ऊंची, इसके दसवें भाग प्रमाण मुख की चौड़ाई, इसका **वासो त्ति गुणो परिही** इत्यादि सूत्र द्वारा क्षेत्रफल निकालनेपर घनांगुल के संख्यातवें भागप्रमाण होता है, इससे स्वस्थानस्वस्थानवाले जीवों के प्रमाण को गुणा करनेपर स्वस्थानस्वस्थान में क्षेत्र का प्रमाण होता है ।

पुनश्च मूल शरीर की अवगाहना से साढ़े चार गुणा एक जीव के वेदना और कषाय समुद्घात में क्षेत्र है । इस साढ़े चार गुणा घनांगुल के संख्यातवें भाग से वेदना समुद्घातवाले जीवों के प्रमाण को गुणा करनेपर, वेदना समुद्घात में क्षेत्र होता है । तथा कषाय समुद्घातवाले जीवों के प्रमाण को गुणा करनेपर कषाय समुद्घात में क्षेत्र होता है ।

पुनश्च एक देव के विहार करते हुये अपने मूल शरीर से बाहर निकलकर उत्तर विक्रिया द्वारा उत्पन्न शरीर तक आत्मा के प्रदेश संख्यात योजन लम्बे और सूच्यंगुल के संख्यातवें भाग चौड़े और ऊंचे क्षेत्र को रोकते हैं, इसका घनरूप क्षेत्रफल संख्यात घनांगुल प्रमाण हुआ । इससे पूर्वोक्त विहारवत्स्वस्थानवाले जीवों के प्रमाण को गुणा करनेपर विहारवत्स्वस्थान में क्षेत्र होता है ।

पुनश्च अपने अपने योग्य विक्रियारूप बनाये गये हाथी आदि शरीरों की अवगाहना संख्यात घनांगुल प्रमाण है, उससे वैक्रियिक समुद्घातवाले जीवों के प्रमाण को गुणित करनेपर, वैक्रियिक समुद्घात में क्षेत्र होता है ।

पुनश्च शुक्ललेश्या आनतादि *(तेरहवें स्वर्ग से आगे)* देवों में पायी जाती है, सो वहां से मुख्यपने आरण-अच्युत *(पंद्रहवां-सोलहवां स्वर्ग)* की अपेक्षा से मध्यलोक छह राजू है । इसलिये मारणांतिक समुद्घात में एक जीव के प्रदेश छह राजू लम्बे और सूच्यंगुल के संख्यातवें भाग चौड़े, ऊंचे होते हैं, सो इसका जो क्षेत्रफल एक

जीव संबंधी हुआ उसको संख्यात से गुणा करनेपर मारणांतिक समुद्घात में क्षेत्र होता है । संख्यात से गुणा किया क्योंकि आनतादि से मरकर मनुष्यों में ही उत्पन्न होते हैं, इसलिये मारणांतिक समुद्घातवाले संख्यात ही जीव हैं ।

पुनश्च तेजस, आहारक समुद्घात में जैसे पद्मलेश्या में क्षेत्र कहा था, वैसे यहां भी जानना ।

अब केवली समुद्घात में क्षेत्र कहते हैं - केवल (केवली) समुद्घात चार प्रकार का है - दंड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण । वहां दंड दो प्रकार का - एक स्थिति दंड, एक उपविष्ट दंड । कपाट चार प्रकार का - पूर्वाभिमुख स्थितकपाट, उत्तराभिमुख स्थितकपाट, पूर्वाभिमुख उपविष्टकपाट, उत्तराभिमुख उपविष्टकपाट । प्रतर और लोकपूरण एक-एक ही प्रकार का है ।

वहां स्थितिदंड समुद्घात में एक जीव के प्रदेश वातवलय बिना लोक की ऊंचाई कुछ कम चौदह राजू प्रमाण है, उसप्रमाण तो लम्बे तथा बारह अंगुल प्रमाण चौड़े गोल आकार होते हैं । सो **वासो त्ति गुणो परिही** इत्यादि सूत्र द्वारा इसका क्षेत्रफल दो सौ सोलह प्रतरांगुल से जगत्श्रेणी को गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतना है । क्योंकि बारह अंगुल गोल क्षेत्र का क्षेत्रफल एक सौ आठ प्रतरांगुल होता है *(१२×३=३६, ३६×$\frac{१२}{४}$ =१०८)*, इसको ऊंचाई दो जगत्श्रेणी *(७ राजू=१ जगत्श्रेणी, १४ राजू=२ जगत्श्रेणी)* से गुणा करनेपर इतना ही होता है *(१०८ प्रतरांगुल×२ जगत्श्रेणी=२१६ प्रतरांगुल×जगत्श्रेणी)* पुनश्च एक समय में इस समुद्घातवाले जीव चालीस होते हैं इसलिये इसको चालीस से गुणा करनेपर आठ हजार छह सौ चालीस प्रतरांगुलों से जगत्श्रेणी को गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है, उतना स्थितदंड में क्षेत्र होता है । इस स्थितिदंड के क्षेत्र को नौ गुणा करनेपर उपविष्टदंड में क्षेत्र होता है, क्योंकि स्थितिदंड में बारह अंगुल प्रमाण चौड़ाई कही, यहां उससे तीनगुणी छत्तीस अंगुल चौड़ाई है, सो क्षेत्रफल में नौ गुणा क्षेत्रफल हुआ, इसलिये नौ गुणा किया । ऐसा करनेपर सतहत्तर हजार सात सौ साठ प्रतरांगुलों से जगत्श्रेणी को गुणा करनेपर जो प्रमाण हुआ उतना उपविष्टदंड में क्षेत्र जानना ।

पुनश्च पूर्वाभिमुख स्थितकपाट समुद्घात में एक जीव के प्रदेश वातवलय बिना लोकप्रमाण तो लम्बे होते हैं, सो कुछ कम चौदह राजू प्रमाण तो लम्बे होते हैं

और उत्तर दक्षिण दिशा में लोक की चौड़ाई प्रमाण चौड़े होते हैं । सो उत्तर दक्षिण दिशा में लोक सर्वत्र सात राजू चौड़ा है । इसलिये सात राजू प्रमाण चौड़े होते हैं। तथा बारह अंगुल प्रमाण पूर्व पश्चिम में ऊंचे होते हैं, सो इसका क्षेत्रफल भुज, कोटि, वेध का परस्पर गुणा करनेपर चौबीस अंगुल गुणा जगत्प्रतर हुआ । *(१२अंगुल×१४ राजू × ७ राजू = १२अंगुल × २जगत्श्रेणी × जगत्श्रेणी = २४अंगुल × जगत्प्रतर)* इसको एक समय में इस समुद्घातवाले जीवों का प्रमाण चालीस है, सो चालीस से गुणा करनेपर नौ सौ साठ सूच्यंगुलों से जगत्प्रतर को गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतना पूर्वाभिमुख स्थितकपाट में क्षेत्र होता है । पुनश्च स्थितकपाट में बारह अंगुल की ऊंचाई कही, उपविष्टकपाट में तीनगुणी छत्तीस अंगुल की ऊंचाई होती है । इसलिये पूर्वाभिमुख स्थितकपाट के क्षेत्र से तीनगुणा अट्ठाइस सौ अस्सी सूच्यंगुलों से जगत्प्रतर को गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतना पूर्वाभिमुख उपविष्टकपाट में क्षेत्र जानना ।

पुनश्च उत्तराभिमुख स्थितकपाट में एक जीव के प्रदेश वातवलय बिना लोकप्रमाण लम्बे होते हैं, सो कुछ कम चौदह राजू प्रमाण तो लम्बे होते हैं । तथा पूर्व पश्चिम दिशा में लोक की चौड़ाई प्रमाण चौड़े होते हैं । सो लोक अधोलोक के नीचे सात राजू चौड़ा है और अनुक्रम से घटता हुआ मध्यलोक में एक राजू चौड़ा है । इसके क्षेत्रफल के लिये सूत्र कहते हैं - **मुहभूमी जोग दले पदगुणिदे पदधणं होदि** । **मुख** अर्थात् अंत, **भूमि** अर्थात् आदि, इनका **जोग** अर्थात् जोड़, उसका **दल** अर्थात् आधा, उसका **पद** अर्थात् गच्छ का प्रमाण, उसको गुणा करनेपर **पदधन** अर्थात् सर्व गच्छ का मिलाया हुआ प्रमाण होता है । यहां मुख एक राजू, भूमि सात राजू जोड़नेपर आठ हुये, उसका आधा चार उसको अधोलोक की ऊंचाई सात राजू इसलिये गच्छ का प्रमाण सात राजू से गुणित करनेपर अट्ठाइस राजू प्रमाण हुआ, उतना अधोलोक संबंधी प्रतररूप क्षेत्रफल जानना ।

मध्य में लोक एक राजू चौड़ा, बढ़ते बढ़ते ब्रह्मस्वर्ग के निकट पांच राजू हुआ । सो यहां मुख एक राजू, भूमि पांच राजू मिलानेपर छह हुये, उसका आधा तीन, इसको ब्रह्मस्वर्ग साढ़े तीन राजू ऊंचा इसलिये गच्छ का प्रमाण साढ़े तीन राजू से गुणित करनेपर साढ़े दस राजू आधे ऊर्ध्वलोक का क्षेत्रफल हुआ । पुनश्च ब्रह्मस्वर्ग के निकट पांच राजू, वह घटते घटते ऊपर एक राजू का रह गया, सो यहां भी मुख एक राजू, भूमि पांच राजू, मिलानेपर छह राजू हुये, उसका आधा तीन, उसको

ब्रह्मस्वर्ग के ऊपर लोक साढ़े तीन राजू है वही गच्छ हुआ उससे गुणा करनेपर आधे ऊर्ध्वलोक का क्षेत्रफल साढ़े दस राजू होता है । इसतरह ऊर्ध्वलोक, अधोलोक का सर्व क्षेत्रफल जोड़नेपर जगत्प्रतर हुआ (२८ प्रतरराजू + २१ प्रतरराजू = ४९ राजूप्रतर), सो ऐसे लम्बाई, चौड़ाई से तो जगत्प्रतर प्रमाण प्रदेश होते हैं । तथा बारह अंगुल प्रमाण उत्तर दक्षिण दिशा में ऊंचे होते हैं । सो जगत्प्रतर को बारह सूच्यंगुलों से गुणा करनेपर एक जीव संबंधी क्षेत्र बारह अंगुल गुणा जगत्प्रतर प्रमाण होता है । इस समुद्घातवाले जीव चालीस होते हैं । इसलिये चालीस से उस क्षेत्र को गुणा करनेपर चार सौ अस्सी सूच्यंगुलों से गुणित जगत्प्रतर प्रमाण उत्तराभिमुख स्थितकपाट में क्षेत्र होता है । पुनश्च स्थिति में बारह अंगुल की ऊंचाई कही, उपविष्ट में उससे तीन गुणी छत्तीस अंगुल की ऊंचाई है । इसलिये पूर्वोक्त प्रमाण से तीन गुणा चौदह सौ चालीस सूच्यंगुलों से गुणित जगत्प्रतर प्रमाण उत्तराभिमुख उपविष्ट कपाट में क्षेत्र जानना ।

पुनश्च प्रतर समुद्घात में तीन वातवलय बिना सर्व लोक में प्रदेश व्याप्त होते हैं । इसलिये तीन वातवलय का क्षेत्रफल लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण है । सो यह प्रमाण लोक के प्रमाण में से घटानेपर अवशेष रहे उतना एक जीव संबंधी प्रतर समुद्घात में क्षेत्र जानना ।

पुनश्च लोकपूरण में सर्व लोकाकाश में प्रदेश व्याप्त होते हैं, इसलिये लोकप्रमाण एक जीव संबंधी लोकपूरण समुद्घात में क्षेत्र जानना । सो प्रतर, लोकपूरण के बीस जीव तो करनेवाले और बीस जीव तो समेटनेवाले ऐसे एक समय में चालीस जीव पाये जाते हैं । परंतु पूर्वोक्त क्षेत्र में ही एकक्षेत्रावगाहरूप से सर्व पाये जाते हैं, इसलिये क्षेत्र उतना ही जानना । दंड और कपाट में भी बीस जीव करनेवाले, बीस समेटनेवाले की अपेक्षा चालीस जीव हैं, सो ये जीव जुदे जुदे क्षेत्र को भी रोकते हैं, इसलिये दंड और कपाट में चालीस का गुणकार कहा । जीवों का यह प्रमाण उत्कृष्टता की अपेक्षा है ।

सुक्कस्स समुग्घादे असंखभागा य सव्वलोगो य ।

शुक्लायाः समुद्घाते असंख्याभागाश्च सर्वलोकश्च ।

टीका – इस आधे सूत्र द्वारा शुक्ललेश्या का क्षेत्र लोक के असंख्यातवें भागों

में से एक भाग बिना अवशेष बहुभाग प्रमाण या सर्व लोकप्रमाण कहा है, वह केवली समुद्घात की अपेक्षा जानना । पुनश्च उपपाद में मुख्यपने से अच्युत स्वर्ग की अपेक्षा एक जीव के प्रदेश छह राजू लम्बे और संख्यात सूच्यंगुल प्रमाण चौड़े और ऊंचे होते हैं । सो इस क्षेत्रफल को अच्युत स्वर्ग में एक समय में संख्यात मरते हैं इसलिये वहां संख्यात ही उपजते हैं, इसलिये संख्यात से गुणा करनेपर जो प्रमाण हुआ, उतना उपपाद में क्षेत्र जानना । यहां भी पूर्वोक्त प्रकार से पांच प्रकार के लोक की अपेक्षा से जैसा भागहार गुणकार होता है वैसा जान लेना । ऐसे शुक्ललेश्या में क्षेत्र कहा।

यहां छह लेश्याओं के क्षेत्र का वर्णन दस स्थानों में किया, वहां ऐसा जानना कि जिस अपेक्षा से क्षेत्र का प्रमाण अधिक आता है उस अपेक्षा से मुख्यपने क्षेत्र का वर्णन किया है । वहां संभवनेवाला अन्य अल्प क्षेत्र अधिक जान लेना, ऐसे ही आगे स्पर्शन में भी अर्थ समझना । इति क्षेत्राधिकारः (क्षेत्राधिकार समाप्त हुआ।)

*१२) **स्पर्शनाधिकार*** – आगे स्पर्शनाधिकार साढ़े छह गाथाओं द्वारा कहते हैं–

फासं सव्वं लोयं तिट्ठाणे असुहलेस्साणं ।।५४५।।

स्पर्शः सर्वो लोकस्त्रिस्थाने अशुभलेश्यानाम् ।।५४५।।

टीका – क्षेत्र में तो वर्तमान काल में जितना क्षेत्र रोकता है उसीका ग्रहण किया है । परंतु यहां *(स्पर्शन में)* वर्तमान काल में जितना क्षेत्र रोकता है उससहित अतीत काल में स्वस्थानादि विशेषण के धारक जीव जितना क्षेत्र रोककर आये हो, उस क्षेत्र ही का नाम स्पर्शन जानना । सो कृष्णादि तीन अशुभ लेश्या का स्पर्श स्वस्थान में, समुद्घात में और उपपाद में सामान्यपने सर्व लोक जानना । विशेष से दस स्थानों में कहते हैं ।

वहां कृष्णलेश्यावाले जीवों के स्वस्थानस्वस्थान में; वेदना, कषाय और मारणांतिक समुद्घात में और उपपाद में सर्व लोकप्रमाण स्पर्श जानना । पुनश्च विहारवत्स्वस्थान में एक राजू लम्बा, चौड़ा और संख्यात सूच्यंगुलप्रमाण ऊंचा तिर्यक्लोक क्षेत्र है । इसका क्षेत्रफल संख्यात सूच्यंगुलों से गुणित प्रतरराजू प्रमाण हुआ, वही विहारवत्स्वस्थान में स्पर्श जानना । क्योंकि कृष्णलेश्यावाले गमनक्रियायुक्त त्रस जीव तिर्यक्लोक में ही पाये जाते हैं ।

पुनश्च वैक्रियिक समुद्घात में मेरुगिरि के मूल से लेकर सहस्रार नामक स्वर्ग तक ऊंचा त्रसनाली प्रमाण लम्बे, चौड़े क्षेत्र में वायुकायरूप पुद्गल सर्वत्र आच्छादितरूप भरे हुये हैं । वायुकायिक जीवों के विक्रिया पायी जाती है, सो अतीत काल की अपेक्षा वहां सर्वत्र विक्रिया का सद्भाव होता है । ऐसा कोई क्षेत्र उसमें बाकी नहीं रहा, जहां विक्रियारूप नहीं प्रवर्ता । इसलिये एक राजू लम्बा, चौड़ा और पांच राजू ऊंचा क्षेत्र हुआ, उसका क्षेत्रफल लोक के संख्यातवें भागप्रमाण हुआ, वही वैक्रियिक-समुद्घात में स्पर्श जानना । *(१राजू × १राजू × ५राजू = ५ घनराजू । लोक का क्षेत्रफल ३४३ घनराजू है उसका वह संख्यातवां भाग होता है ।)*

पुनश्च तेजस, आहारक और केवलीसमुद्घात इस लेश्या में होता ही नहीं । यहां भी पांच प्रकार के लोक का स्थापन करके यथासंभव गुणकार भागहार जानना। जैसे कृष्णलेश्या में कथन किया वैसे ही नीललेश्या, कपोतलेश्या में भी जानना ।

आगे पीतलेश्या में कहते हैं -

तेउस्स य सट्ठाणे लोगस्स असंखभागमेत्तं तु ।
अडचोद्दसभागा वा देसूणा होंति णियमेण ।।५४६।।

तैजसश्च स्वस्थाने लोकस्य असंख्यभागमात्रं तु ।
अष्ट चतुर्दशभागा वा देशोना भवंति नियमेन ।।५४६।।

टीका - पीतलेश्या के स्वस्थान में स्पर्श स्वस्थानस्वस्थान अपेक्षा तो लोक के असंख्यातवें भागमात्र जानना । विहारवत्स्वस्थान अपेक्षा त्रसनाली के चौदह भागों में से कुछ कम आठ भाग प्रमाण स्पर्श जानना ।

एवं तु समुग्घादे णव चोद्दसभागयं च किंचूण ।
उववादे पढमपदं दिवड्ढचोद्दस य किंचूणं ।।५४७।।

एवं तु समुद्घाते नवचतुर्दशभागश्च किंचिदूनः ।
उपपादे प्रथमपदं द्व्यर्धचतुर्दश च किंचिदूनम् ।।५४७।।

टीका - इसीप्रकार- समुद्घात में विहारवत्स्वस्थानवत् कुछ कम त्रसनाली के चौदह भागों में से आठ भाग प्रमाण स्पर्श जानना और मारणांतिक समुद्घात अपेक्षा

कुछ कम त्रसनाली के चौदह भागों में से नौ भागप्रमाण स्पर्श जानना । पुनश्च उपपाद में त्रसनाली के चौदह भागों में से कुछ कम डेढ़ भागप्रमाण स्पर्श जानना । ऐसे सामान्यपने पीतलेश्या का तीनों स्थानों में स्पर्श कहा ।

पुनश्च विशेष से दस स्थानों में स्पर्श कहते हैं । तिर्यक्लोक एक राजू लम्बा, चौड़ा है । उसमें लवणसमुद्र, कालोदकसमुद्र और स्वयंभूरमणसमुद्र इन तीन समुद्रों में जलचर जीव पाये जाते हैं । अन्य समुद्रों में जलचर जीव नहीं है । सो जिन समुद्रों में जलचर जीव नहीं हैं उन सर्व समुद्रों का जितना क्षेत्रफल हो, उसे तिर्यक्लोकरूप क्षेत्र में से घटानेपर, अवशेष जितना क्षेत्र रहता है, उतना पीत, पद्म, शुक्ल लेश्याओं का स्वस्थानस्वस्थान में स्पर्श जानना । क्योंकि एकेन्द्रियादिकों के शुभलेश्या का अभाव है । वह कहते हैं –

जम्बूद्वीप से लेकर स्वयंभूरमणसमुद्र तक सर्व द्वीप-समुद्र दुगुणे दुगुणे विस्तारवाले हैं । वहां जम्बूद्वीप लाख योजन विस्तारवाला है । इसका सूक्ष्म तारतम्यरूप क्षेत्रफल कहते हैं ।

सत्त णव सुण्ण पंच य, छण्णव चउरेक पंच सुण्णं च ।

इसका अर्थ सात, नौ, शून्य, पांच, छह, नौ, चार, एक, पांच, शून्य इतने अंकों से जो प्रमाण हुआ उतना जम्बूद्वीप का सूक्ष्म क्षेत्रफल है (७९०५६९४१५०)। सो इतनेमात्र एक खण्ड की कल्पना की । पुनश्च ऐसे ऐसे खण्ड लवणसमुद्र में कल्पित करेंगे तो चौबीस (२४) होते हैं, धातकीखण्ड में एक सौ चौवालीस (१४४) होते हैं, कालोदकसमुद्र में छह सौ बहत्तर (६७२) होते हैं, पुष्करद्वीप में अट्ठाइस सौ अस्सी (२८८०) होते हैं, पुष्करसमुद्र में ग्यारह हजार नौ सौ चार (११९०४) होते हैं, वारुणीद्वीप में अड़तालीस हजार तीन सौ चौरासी (४८३८४) होते हैं, वारुणी समुद्र में एक लाख पंचानबे हजार बहत्तर (१९५०७२) होते हैं, क्षीरवरद्वीप में सात लाख तिरासी हजार तीन सौ साठ (७८३३६०) होते हैं, क्षीरवरसमुद्र में इकतीस लाख उनतालीस हजार पांच सौ चौरासी (३१३९५८४) होते हैं । ऐसे स्वयंभूरमणसमुद्र तक खण्डसाधन करना। इस खण्डों के प्रमाण का ज्ञान होने के लिये सूत्र कहते हैं –

बाहिर सूईवग्गं अब्भंतर सूइवग्ग परिहीणं ।
जंबूवासविहत्ते तेत्तियमेत्ताणि खंडाणि ।।

टीका - बाह्य के सूची के वर्ग में से अभ्यंतर सूची के वर्ग का प्रमाण घटानेपर जो प्रमाण रहता है उसको जम्बूद्वीप के व्यास के वर्ग का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, उतने जम्बूद्वीप समान खण्ड जानना । अंत से लेकर उसके सन्मुख अंत तक जितना सीधा क्षेत्र हो उसको बाह्य सूची कहते हैं *(बाहरी व्यास - Outer diameter)*। तथा आदि से लेकर उसके सन्मुख आदि तक जितना सीधा क्षेत्र हो, उसको अभ्यंतर सूची कहते हैं *(अंदरुनी व्यास-inner diameter)* । सो यहां लवणसमुद्र में उदाहरण द्वारा कहते हैं -

लवणसमुद्र की बाह्य सूची पांच लाख योजन, उसका वर्ग करनेपर लाख गुणा पच्चीस लाख हुआ । उसी की अभ्यंतर सूची एक लाख योजन, उसका वर्ग लाख गुणा लाख योजन, उसे घटानेपर अवशेष रहे लाख गुणा चौबीस लाख, उसको जम्बूद्वीप का व्यास लाख योजन, उसका वर्ग लाख गुणा लाख योजन उसका भाग देनेपर चौबीस रहे । सो जम्बूद्वीप समान चौबीस खण्ड लवणसमुद्र में जानने । इसी प्रकार सर्व द्वीप समुद्रों में साधन करना । इस साधन के लिये अन्य भी प्रकार कहते हैं -

रूऊण सला बारस सलागगुणिदे दु वलयखंडाणि ।
बाहिरसूइ सलागा कदी तदंताखिला खंडा ।।

टीका - यहां व्यास में जितने लाख कहे हो उतने प्रमाण शलाका जानना। सो एक कम शलाका को बारह शलाका से गुणा करनेपर जम्बूद्वीपप्रमाण वलयखण्ड होते हैं । जैसे लवणसमुद्र में व्यास दो लाख योजन, इसलिये शलाका का प्रमाण दो, उसमें से एक घटानेपर आया एक, उसको बारह शलाकाओं का प्रमाण चौबीस से गुणा करनेपर, चौबीस खण्ड होते हैं । पुनश्च बाह्य सूची संबंधी शलाका के वर्गप्रमाण वहां तक के खण्ड होते हैं । जैसे लवणसमुद्र में बाह्य सूची पांच लाख योजन है। इसलिये शलाका का प्रमाण पांच है, उसका वर्ग पच्चीस, वही लवणसमुद्र तक के सर्व खण्डों का प्रमाण होता है । जम्बूद्वीप में एक खण्ड और लवणसमुद्र में चौबीस खण्ड, मिलकर पच्चीस खण्ड होते हैं । पुनश्च और भी विधान कहते हैं -

बाहिरसूईवलयव्वासूणा चउगुणिद्ववासहदा ।
इकलक्खवग्गभजिदा जंबूसमवलयखंडाणि ।।१।।

टीका - बाह्य सूची में से वलय का व्यास घटानेपर जो रहे, उसको चौगुणा

व्यास से गुणा करके, एक लाख के वर्ग का भाग देनेपर जम्बूद्वीप के समान गोलाकार खण्डों का प्रमाण होता है ।

उदाहरण - जैसे लवणसमुद्र की बाह्य सूची पांच लाख योजन, उसमें से व्यास दो लाख योजन घटानेपर तीन लाख योजन हुये, इसको चौगुणा व्यास आठ लाख योजन से गुणा करनेपर लाख गुणा चौबीस लाख हुये । इसको एक लाख के वर्ग का भाग देनेपर चौबीस आते हैं, उतने ही जम्बूद्वीप समान लवणसमुद्र में खण्ड हैं। इसतरह सूत्रों द्वारा साधन करके खण्ड ज्ञान करना ।

पुनश्च यहां द्वीप संबंधी खण्डों को छोड़कर सर्व समुद्र संबंधी खण्डों का ही ग्रहण करेंगे, तब जम्बूद्वीप समान चौबीस खण्डों का भाग समुद्रखण्डों को देनेपर जो प्रमाण आयेगा, उतने सर्व समुद्रों में लवणसमुद्र समान खण्ड जानने । सो लवणसमुद्र के खण्डों को चौबीस का भाग देनेपर एक आया, सो लवणसमुद्र समान एक खण्ड हुआ । कालोदकसमुद्र के छह सौ बहत्तर खण्डों को चौबीस का भाग देनेपर अट्ठाइस आये, सो कालोदकसमुद्र में लवणसमुद्र समान अट्ठाइस खण्ड होते हैं । ऐसे ही पुष्करसमुद्र के खण्डों को भाग देनेपर चार सौ छानबे खण्ड होते हैं । वारुणीसमुद्र के खण्डों को भाग देनेपर आठ हजार एक सौ अट्ठाइस खण्ड होते हैं । क्षीरसमुद्र के खण्डों को भाग देनेपर एक लाख तीस हजार आठ सौ सोलह खण्ड होते हैं। ऐसे ही स्वयंभूरमणसमुद्र तक जानना । उसे जानने का उपाय कहते हैं -

यह लवणसमुद्र समान खण्डों का प्रमाण लाने की रचना है -

धनराशि					ऋणराशि					समुद्र
२	१६	१६	१६	१६	१	४	४	४	४	क्षीरवर
२	१६	१६	१६		१	४	४	४		वारुणीवर
२	१६	१६			१	४	४			पुष्कर
२	१६				१	४				कालोद
२					१					लवणोद

टीका - दो आदि सोलह सोलह गुणा तो धन जानना और एक आदि चौगुणा चौगुणा ऋण जानना । धन में से ऋण घटानेपर जो प्रमाण रहे, उतने लवणसमुद्र समान खण्ड जानने ।

उदाहरण कहते हैं – प्रथमस्थान में धन दो, ऋण एक; दो में से एक घटानेपर एक रहा सो लवणसमुद्र में एक खण्ड हुआ । दूसरे स्थान के दो को सोलह गुणा कीजिये, तब बत्तीस तो धन होते हैं और एक को चार गुणा कीजिये, तब चार ऋण हुये । बत्तीस में से चार घटानेपर अट्ठाइस हुये, सो दूसरे कालोदक समुद्र में लवणसमुद्र समान अट्ठाइस खण्ड हैं । पुनश्च तीसरे स्थान में बत्तीस को सोलह से गुणा करनेपर पांच सौ बारह धन होते हैं, और चार को चौगुणा करनेपर सोलह ऋण होते हैं । पांच सौ बारह में से सोलह घटानेपर चार सौ छानबे रहे, सो इतने ही तीसरे पुष्करसमुद्र में लवणसमुद्र समान खण्ड जानने । ऐसे स्वयंभूरमणसमुद्र तक जानना।

सो अब यहां जलचर रहित समुद्रों का क्षेत्रफल कहते हैं –

द्वीप समुद्रों का जो प्रमाण है उसको आधा करना क्योंकि यहां समुद्रों का ही ग्रहण है, उसमें से जलचर सहित तीन समुद्रों को घटानेपर, जलचर रहित समुद्रों का प्रमाण होता है, उसे यहां गच्छ जानना । सो दो आदि सोलह सोलह गुणा धन कहा था सो धन का जलचर रहित समुद्रों के धन में कितना क्षेत्रफल हुआ? वह कहते हैं –

पदमेत्ते गुणयारे अण्णोण्णं गुणियरूवपरिहीणे ।
रूऊणगुणेणहिये मुहेणगुणियम्मि गुणगणियं ।।

इस सूत्र द्वारा गुणकाररूप राशि का जोड़ होता है । **इसका अर्थ** – गच्छ प्रमाण जो गुणकार उसको परस्पर गुणा करके एक घटाइये, पुनश्च एक कम गुणकार के प्रमाण का भाग दीजिये, पुनश्च मुख जो आदिस्थान उससे गुणिये, तब गुणकाररूप राशि में सर्व जोड़ होता है ।

सो प्रथम अन्य उदाहरण दिखाते हैं । जैसे – आदिस्थान में दस और पश्चात् चौगुणा चौगुणा बढ़ता ऐसे पांच स्थानों में जो जो प्रमाण हुआ, उन सब का जोड़ देनेपर कितना हुआ ? वह कहते हैं –

यहां गच्छ का प्रमाण पांच और गुणकार का प्रमाण चार । सो पांच जगह चार चार मांडकर परस्पर गुणा करनेपर एक हजार चौबीस हुये, उसमें से एक घटानेपर एक हजार तेइस हुये । इसको एक कम गुणकार का प्रमाण तीन का भाग देनेपर तीन सौ इकतालीस हुये । आदिस्थान का प्रमाण दस उससे इसको गुणा करनेपर चौंतीस

सौ दस (३४१०) आये, वही सब का जोड़ जानना । कैसे ? पांच स्थानों में ऐसा प्रमाण है – १०।४०।१६०।६४०।२५६०। इनका जोड़ चौंतीस सौ दस ही होता है। ऐसे अन्यत्र भी जानना ।

सो इसी सूत्र से यहां गच्छ का प्रमाण तीन कम द्वीपसागर के प्रमाण का आधा प्रमाण है । सो सर्व द्वीप समुद्रों का प्रमाण कितना है ? वह कहते हैं – एक राजू के जितने अर्धच्छेद हैं, उनमें से लाख योजन के अर्धच्छेद और एक योजन के सात लाख अड़सठ हजार अंगुल उनके अर्धच्छेद और सूच्यंगुल के अर्धच्छेद और मेरु के मस्तक पर प्राप्त हुआ एक अर्धच्छेद, इतने अर्धच्छेद घटानेपर जितना अवशेष प्रमाण रहा उतने सर्व द्वीपसमुद्र हैं । अब यहां गुणोत्तर का प्रमाण सोलह, सो गच्छ प्रमाण गुणोत्तरों को परस्पर गुणा करना । वहां प्रथम एक राजू के अर्धच्छेद राशि के आधे प्रमाणमात्र जगह सोलह सोलह मांडकर परस्पर गुणा करनेपर राजू का वर्ग होता है । सो कैसे ? वह कहते हैं –

विवक्षित गच्छ के आधे प्रमाण मात्र विवक्षित गुणकार मांडकर परस्पर गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है, वही सम्पूर्ण विवक्षित गच्छ प्रमाणमात्र विवक्षित गुणकार का वर्गमूल मांडकर परस्पर गुणा करनेपर प्रमाण होता है । जैसे विवक्षित गच्छ आठ, उसका आधा प्रमाण चार, सो चार जगह विवक्षित गुणकार नौ, नौ मांडकर परस्पर गुणा करनेपर पैंसठ सौ इकसठ होते हैं, वही विवक्षित गच्छमात्र आठ जगह विवक्षित गुणकार नौ का वर्गमूल तीन, तीन मांडकर परस्पर गुणा करनेपर पैंसठ सो इकसठ होते हैं । ऐसे ही यहां विवक्षित गच्छ एक राजू के अर्धच्छेद, उसके आधे प्रमाणमात्र जगह सोलह, सोलह मांडकर परस्पर गुणित करनेपर जो प्रमाण होता है वही राजू के अर्धच्छेद मात्र सोलह का वर्गमूल चार, चार मांडकर परस्पर गुणा करनेपर प्रमाण होता है । सो राजू के अर्धच्छेद मात्र जगह दो मांडकर परस्पर गुणा करने से राजू होता है और उतनी ही जगह दो दो बार दो लिखकर *(चार लिखकर)* परस्पर गुणा करनेपर राजू का वर्ग होता है । सो जगत्प्रतर को दो बार सात का भाग देनेपर इतना होता है । *(एक राजू=७राजू÷७=जगत्श्रेणी÷७। राजू वर्ग=जगत्प्रतर÷४९)* । पुनश्च इसमें से एक घटानेपर जो प्रमाण हो उसको एक कम गुणकार का प्रमाण पंद्रह, उसका भाग दीजिये । पुनश्च यहां आदि में पुष्करसमुद्र है उसमें लवणसमुद्र समान खण्डों का प्रमाण दो को दो बार सोलह से गुणिये उतना है, वही मुख हुआ, इससे पूर्वोक्त

प्रमाण को गुणा करते हैं, ऐसे करनेपर एक कम जगत्प्रतर को दो, सोलह, सोलह का गुणकार और सात, सात, पंद्रह का भागहार हुआ । एक लवणसमुद्र में जम्बूद्वीप समान चौबीस खण्ड होते हैं इसलिये इस राशि को चौबीस का गुणकार करना । पुनश्च जम्बूद्वीप में सूक्ष्म क्षेत्रफल सात, नौ आदि अंकमात्र है । इसलिये उसका गुणकार करना । पुनश्च एक योजन के सात लाख अड़सठ हजार अंगुल होते हैं । यहां वर्गराशि का ग्रहण है और वर्गराशि का गुणकार भागहार वर्गराशिरूप ही होता है । इसलिये दो बार सात लाख अड़सठ हजार का गुणकार जानना । पुनश्च एक सूच्यंगुल का वर्ग प्रतरांगुल होता है, इसलिये इतने प्रतरांगुलों का गुणकार जानना । पुनश्च –

विरलिदरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि ।
तेसिं अण्णोण्णहदी हारो उप्पण्णरासिस्स ।।

इस करणसूत्र के अभिप्राय से द्वीप समुद्रों के प्रमाण में से राजू के अर्धच्छेदों में से जितने अर्धच्छेद घटाये हैं, उनके आधे प्रमाण मात्र गुणकार सोलह को परस्पर गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतने का पूर्वोक्त राशि में भागहार जानना । सो यहां जिसका आधा ग्रहण किया उस सम्पूर्ण राशिमात्र सोलह का वर्गमूल चार, उनको परस्पर गुणा करनेपर वही राशि होती है । सो अपने अर्धच्छेद मात्र दो के अंकों को परस्पर गुणा करनेपर विवक्षित राशि होती है और यहां चार कहे हैं इसलिये उतने ही मात्र दो बार दो के अंकों को परस्पर गुणा करनेपर विवक्षित राशि का वर्ग होता है । इसलिये यहां लाख योजन के अर्धच्छेद प्रमाण दो बार दो अंकों को परस्पर गुणा करनेपर लाख का वर्ग आया । एक योजन के अंगुलों के प्रमाण के अर्धच्छेद मात्र दो बार दो अंकों को परस्पर गुणा करनेपर एक योजन के अंगुल सात लाख अड़सठ हजार उनका वर्ग हुआ । पुनश्च मेरुमध्य संबंधी एक अर्धच्छेद संबंधी दो बार दो को परस्पर गुणा करनेपर चार आये । पुनश्च सूच्यंगुल के अर्धच्छेद मात्र दो बार दो के अंकों को परस्पर गुणा करनेपर प्रतरांगुल हुआ । ऐसे ये भागहार जानने ।

पुनश्च जलचर सहित तीन समुद्र गच्छ में से घटाये हैं, इसलिये तीन बार गुणोत्तर सोलह का भागहार जानना । इसतरह जगत्प्रतर को प्रतरांगुल और दो, सोलह, सोलह, चौबीस और सात सौ नब्बे कोडि छप्पन लाख चौरानबे हजार एक सौ पचास और सात लाख अड़सठ हजार और सात लाख अड़सठ हजार का तो गुणकार हुआ ।

पुनश्च प्रतरांगुल, सात, सात, पंद्रह, एक लाख, एक लाख, सात लाख अड़सठ हजार, सात लाख अड़सठ हजार और चार और सोलह, सोलह, सोलह का भागहार हुआ। यहां प्रतरांगुल और दो बार सोलह तथा दो बार सात लाख अड़सठ हजार गुणकार भागहार में समान देखकर अपवर्तन करके और गुणकार में दो और चौबीस को परस्पर गुणा करनेपर अड़तालीस और भागहार में पंद्रह, सोलह को परस्पर गुणा करनेपर दो सौ चालीस उनको अड़तालीस से अपवर्तन करनेपर भागहार में पांच रहे ऐसे अपवर्तन करनेपर जो अवशेष प्रमाण रहा ७९०५६९४१५०÷(७×७×१ल×१ल×४×५) वहां सर्व भागहारों को परस्पर गुणा करके उसको गुणकार के अंकों का भाग देनेपर कुछ अधिक बारह सौ उनतालीस हुये । इसतरह धनराशि में सर्व क्षेत्रफल साधिक **धगरय** अर्थात् बारह सौ उनतालीस से भाजित जगत्प्रतर प्रमाण क्षेत्रफल आया । यहां **कटपयपुरस्थवर्णै:** इत्यादि सूत्र के अनुसार अक्षर संज्ञा द्वारा **धगरय** शब्द से नौ, तीन, दो, एक जनित प्रमाण ग्रहण करना ।

अब यहां एक आदि चौगुणा चौगुणा ऋण कहा था, सो जलचर रहित समुद्रों में ऋणरूप क्षेत्रफल निकालते हैं । **'पदमेत्ते गुणयारे'** इत्यादि करणसूत्र से प्रथम गच्छमात्र गुणकार चार का परस्पर गुणा करना । वहां राजू के अर्धच्छेद के प्रमाण के अर्धप्रमाण मात्र चार को परस्पर गुणा करने से एक राजू होता है । कैसे ? वह कहते हैं -

सर्व द्वीप समुद्र के प्रमाणमात्र गच्छ समझकर यहां आधाप्रमाण है इसलिये गुणकार चार का वर्गमूल दो ग्रहण करना । सो सम्पूर्ण गच्छ में एक राजू के अर्धच्छेद कहे हैं इसलिये एक राजू के अर्धच्छेद प्रमाण दो को परस्पर गुणा करनेपर एक राजू प्रमाण आया, वह जगत्श्रेणी के सातवें भागमात्र है । इसमें से एक घटानेपर जो प्रमाण हो उसको एक कम गुणकार तीन का भाग दीजिये । पुनश्च पुष्करसमुद्र अपेक्षा आदि स्थान में प्रमाण सोलह उससे गुणा करना । इसतरह एक कम जगत्श्रेणी को सोलह का गुणकार तथा सात और तीन का भागहार हुआ । इसको पूर्वोक्त प्रकार चौबीस खण्ड और जम्बूद्वीप के क्षेत्रफलरूप योजनों के प्रमाण से और एक योजन के अंगुलों के वर्गमात्र प्रतरांगुलों से गुणा करना क्योंकि यहां सूच्यंगुलों का वर्ग है । *(ये सर्व गणित अर्थसंदृष्टि में सहनानी अर्थात् चिह्नों द्वारा करके बतायी हैं वहां से जानना सुगम होता है । गणित के रुचिवानों को वहां से जानना इष्ट है ।)* पुनश्च -

विरलिदरासीदो पुण जेत्तियमेत्ताणि हीणरूवाणि ।
तेसिं अण्णोण्णहदी हारो उप्पण्णरासिस्स ।।१।।

इस सूत्र के अनुसार जितने गच्छ में राजू के अर्धच्छेद प्रमाण घटाते हैं उसका जो आधा प्रमाण है उतने चार के अंकों को परस्पर गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है उतने का भागहार जानना । सो जिस राशि का आधा प्रमाण लिया उस राशिमात्र चार के वर्गमूल दो को परस्पर गुणा करना, वहां लाख योजन के अर्धच्छेद प्रमाण दो के अंकों को परस्पर गुणा करनेपर एक लाख हुये; एक योजन के अंगुलों के अर्धच्छेदप्रमाण दो अंकों को परस्पर गुणा करनेपर सात लाख अड़सठ हजार अंगुल होते हैं; तथा मेरुमध्य के अर्धच्छेद मात्र दो के दो हुये । तथा सूच्यंगुल के अर्धच्छेद मात्र दो अंकों को परस्पर गुणा करनेपर सूच्यंगुल हुआ । ऐसे ये भागहार हुये । पुनश्च तीन समुद्र घटायें है इसलिये तीन बार गुणोत्तर चार का भागहार जानना ।

इसप्रकार एक कम जगत्श्रेणी को सोलह, चार, चौबीस, सात सौ नब्बे कोडि छप्पन लाख चौरानबे हजार एक सौ पचास, सात लाख अड़सठ हजार और सात लाख अड़सठ हजार का तो गुणकार हुआ । तथा सात, तीन, सूच्यंगुल, एक लाख, सात लाख अड़सठ हजार, दो, चार, चार और चार का भागहार हुआ । वहां यथायोग्य अपवर्तन करनेपर संख्यात सूच्यंगुल से गुणित जगत्श्रेणीमात्र क्षेत्रफल हुआ ।

सो इतने पूर्वोक्त धनराशिरूप क्षेत्रफल में से घटाना । सो उस महत् राशि में से किंचित् मात्र घटा, उसे घटानेपर किंचित् न्यून साधिक बारह सौ उनतालीस से भाजित जगत्प्रतर प्रमाण जलचर रहित सर्व समुद्रों का क्षेत्रफल ऋणरूप सिद्ध हुआ। इसको एक राजू लम्बे, चौड़े ऐसे जगत्प्रतर के उनचासवें भागमात्र राजूप्रतर क्षेत्र $(१\text{राजू} \times १\text{राजू} = \frac{\text{ज.श्रेणी}}{७} \times \frac{\text{ज.श्रेणी}}{७} = \frac{\text{ज.प्रतर}}{४९})$ में से समच्छेद करके घटाते हैं तब जगत्प्रतर को ग्यारह सौ नब्बे का गुणकार और उनचास गुणा बारह सौ उनतालीस का भागहार हुआ । वहां अपवर्तन करने के लिये भाज्य के गुणकार का भागहार को भाग देनेपर कुछ अधिक इक्कावन आये । ऐसे साधिक **काम** अर्थात् अक्षरसंज्ञा द्वारा इक्कावन उससे भाजित जगत्प्रतर प्रमाण विवक्षित क्षेत्र के प्रतररूप तन का स्पर्श हुआ । इसको ऊंचाई के स्पर्श के ग्रहण के लिये जीवों की ऊंचाई का प्रमाण संख्यात सूच्यंगुल, उससे गुणित करनेपर साधिक इक्कावन से भाजित संख्यात सूच्यंगुल गुणा

जगत्प्रतरमात्र शुभ लेश्याओं का स्वस्थानस्वस्थान में स्पर्श होता है ।

इसको देखकर पीतलेश्या का स्वस्थानस्वस्थान की अपेक्षा क्षेत्र लोक के असंख्यातवें भागमात्र कहा, क्योंकि यह क्षेत्र लोक के असंख्यातवें भागमात्र है । पुनश्च पीतलेश्या का विहारवत्स्वस्थान, वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात और वैक्रियिक समुद्घात में स्पर्श कुछ कम चौदह भाग में आठ भागप्रमाण है । किस कारण ? वह कहते हैं-

लोक चौदह राजू ऊंचा है । त्रसनाली अपेक्षा एक राजू लम्बा, चौड़ा है । वहां चौदह राजू में सनत्कुमार-माहेन्द्र के वासी उत्कृष्ट पीतलेश्यावाले देव ऊपर अच्युत यानि सोलहवें स्वर्ग तक गमन करते हैं और नीचे तीसरी नरक पृथ्वी तक गमन करते हैं । सो अच्युत स्वर्ग से तीसरा नरक आठ राजू है, इसलिये चौदह भाग में आठ भाग कहे । तथा उसमें से उस तीसरे नरक की पृथ्वी की मोटाई में जहां पटल नहीं पाये जाते ऐसे हजार योजन घटाना, इसलिये किंचित् ऊन *(कुछ कम)* कहा । यहां यदि चौदह घनरूप राजू की एक शलाका होती है तो आठ घनरूप राजू की कितनी शलाका होगी ? ऐसा त्रैराशिक करनेपर आठ चौदहवां भाग *(आठ चौदहांश)* आते हैं । अथवा भवनत्रिक देव ऊपर और नीचे स्वयमेव तो सौधर्म-ईशान स्वर्ग तक और तीसरे नरक तक गमन करते हैं और अन्य देव ले जायेंगे तो सोलहवें स्वर्ग तक विहार करते हैं । इसलिये भी पूर्वोक्त प्रमाण स्पर्श होता है ।

पुनश्च पीतलेश्या का मारणांतिक समुद्घात में स्पर्श चौदह भाग में नौ भाग कुछ कम होता है । किस कारण ? भवनत्रिक देव या सौधर्मादिक चार स्वर्ग के वासी देव तीसरे नरक गये और वहां ही मारणांतिक समुद्घात किया, वे जीव आठवीं मुक्ति पृथ्वी *(ईषत् प्राग्भार नामक आठवीं पृथ्वी जिसके बीचोंबीच सिद्धशिला पायी जाती है)* में बादर पृथ्वीकाय होकर उपजते हैं इसलिये वहां तक मरण समुद्घातरूप प्रदेशों का विस्तार करके दंड किया । उस आठवीं पृथ्वी से तीसरा नरक नौ राजू है तथा वहां पटल रहित पृथ्वी की मोटाई घटानी, इसलिये किंचित् कम नौ चौदहवां भाग होता है ।

पुनश्च तेजस समुद्घात और आहारक समुद्घात में संख्यात घनांगुल प्रमाण स्पर्श जानना क्योंकि यह मनुष्य लोक में ही होते हैं । पुनश्च केवली समुद्घात इस लेश्या के होता ही नहीं है । पुनश्च उपपाद में स्पर्श चौदह भागों में से कुछ कम डेढ़ राजू

भाग मात्र जानना । सो मध्यलोक से पीतलेश्या से मरकर सौधर्म ईशान के अंतिम पटल में उपजते हैं उनकी अपेक्षा है ।

यहां कोई कहेगा कि पीतलेश्या के उपपाद में सनत्कुमार-माहेन्द्र तक क्षेत्र देव का स्पर्श पाया जाता है, वह तीन राजू ऊंचा है, इसलिये चौदह भागों में किंचित् कम तीन भाग क्यों न कहे ?

उसका समाधान - सौधर्म-ईशान के ऊपर संख्यात योजन जाकर सनत्कुमार-माहेन्द्र का प्रारंभ होता है वहां प्रथम पटल है और डेढ़ राजू जानेपर अंतिम पटल है । अंतिम पटल में पीतलेश्या नहीं है ऐसा कितने ही आचार्यों का उपदेश है । इसलिये, अथवा चित्राभूमि पर रहनेवाले तिर्यंच और मनुष्य का उपपाद ईशान तक ही होता है, इसलिये किंचित् ऊन डेढ़ भागमात्र ही स्पर्श कहा है । पुनश्च गाथा में चकार कहा है इसलिये पीतलेश्या के उत्कृष्ट अंश से मरनेवाले के सनत्कुमार-माहेन्द्र स्वर्ग के अंतिम चक्र नामक इन्द्रक संबंधी श्रेणीबद्ध विमानों में उत्पत्ति कई आचार्य कहते हैं । उनके अभिप्राय से यथासंभव तीन भाग मात्र भी स्पर्शन होता है । कुछ नियम नहीं है । इसीलिये सूत्र में चकार कहा । इसतरह पीतलेश्या में स्पर्श कहा ।

पम्मस्सय सट्ठाणसमुग्घाददुगेसु होदि पढमपदं ।
अडचोद्दसभागा वा देसूणा होंति णियमेण ।।५४८।।

पद्मायाश्च स्वस्थानसमुद्घातद्विकयोर्भवति प्रथमपदम् ।
अष्ट चतुर्दशभागा वा देशोना भवंति नियमेन ।।५४८।।

टीका - पद्मलेश्या के स्वस्थानस्वस्थान मे पूर्वोक्त प्रकार लोक के असंख्यातवें भागमात्र स्पर्श जानना । पुनश्च विहारवत्स्वस्थान और वेदना, कषाय, वैक्रियिक समुद्घात में किंचित् कम चौदह भाग में से आठ भागमात्र स्पर्श जानना । पुनश्च मारणांतिक समुद्घात में भी वैसे ही किंचित् कम आठ चौदहवां भागमात्र स्पर्श जानना । क्योंकि पद्मलेश्यावाले देव पृथ्वी, अप्, वनस्पति में नहीं उपजते । पुनश्च तेजस, आहारक समुद्घात में संख्यात घनांगुल प्रमाण स्पर्श जानना । पुनश्च केवली समुद्घात इस लेश्या में नहीं है ।

उववादे पढमपदं पणचोद्दसभागयं च देसूणं ।

उपपादे प्रथमपदं पंचचतुर्दशभागकश्च देशोनः ।

टीका – यह आधा सूत्र है । उपपाद में स्पर्श चौदह भागों में पांच भाग कुछ कम जानना क्योंकि पद्मलेश्या शतार-सहस्रार तक होती है । और शतार-सहस्रार मध्यलोक से पांच राजू ऊंचा है । इसतरह पद्मलेश्या में स्पर्श कहा ।

सुक्कस्स य तिट्ठाणे पढमो छच्चोदसा हीणा ।।५४९।।

शुक्लायाश्च त्रिस्थाने प्रथमः षट्चतुर्दशहीनाः ।।५४९।।

टीका – शुक्ललेश्यावाले जीवों के स्वस्थानस्वस्थान में पीतलेश्यावत् लोक के असंख्यातवें भाग प्रमाण स्पर्श है । पुनश्च विहारवत्स्वस्थान में और वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणांतिक समुद्घातों में स्पर्श चौदह भागों में से कुछ कम छह भाग जानना। क्योंकि अच्युत स्वर्ग के ऊपर के देवों का स्वस्थान छोड़कर अन्यत्र गमन नहीं है। इसलिये अच्युत तक ही ग्रहण किया । पुनश्च तेजस, आहारक समुद्घात में संख्यात घनांगुल प्रमाण स्पर्श जानना ।

णवरि समुग्घादम्मि य संखातीदा हवंति भागा वा ।
सव्वो वा खलु लोगो फासो होदि त्ति णिद्दिट्ठो ।।५५०।।

नवरि समुद्घाते च संख्यातीता भवंति भागा वा ।
सर्वो वा खलु लोकः स्पर्शो भवतीति निर्दिष्टः ।।५५०।।

टीका – केवली समुद्घात में विशेष है, वह क्या है ?

दंड में तो स्पर्श का प्रमाण क्षेत्र के समान संख्यात प्रतरांगुलों से गुणित जगत्श्रेणीप्रमाण, वह फैलने और समेटने की अपेक्षा दुगुणा जानना । पुनश्च पूर्वाभिमुख स्थित या उपविष्टकपाट में संख्यात सूच्यंगुल मात्र जगत्प्रतरप्रमाण है, सो फैलने, समेटने की अपेक्षा दुगुणा स्पर्श जानना । वैसे ही उत्तराभिमुखस्थित या उपविष्टकपाट में स्पर्श जानना । पुनश्च प्रतर समुद्घात में लोक को असंख्यात का भाग दीजिये, उसमें एक भाग बिना अवशेष बहुभाग मात्र स्पर्श है । क्योंकि वातवलय का क्षेत्र लोक के असंख्यातवें भागप्रमाण है, वहां व्याप्त नहीं होता । पुनश्च लोकपूरण में स्पर्श सर्व लोक जानना, ऐसा नियम है ।

पुनश्च उपपाद में चौदह भागों में से कुछ कम छह भाग स्पर्श जानना क्योंकि यहां आरण-अच्युत *(पंद्रहवां-सोलहवां)* तक की ही विवक्षा है । इति स्पर्शाधिकारः (स्पर्श अधिकार समाप्त हुआ ।)

१३) काल अधिकार - आगे काल अधिकार दो गाथाओं द्वारा कहते हैं-

कालो छल्लेस्साणं णाणाजीवं पडुच्च सव्वद्धा ।
अंतोमुहुत्तमवरं एगं जीवं पडुच्च हवे ।।५५१।।

कालः षड्लेश्यानां नानाजीवं प्रतीत्य सर्वाद्धा ।
अंतर्मुहूर्तोऽवरं एकं जीवं प्रतीत्य भवेत् ।।५५१।।

टीका - कृष्ण आदि छहों लेश्याओं का काल नाना जीवों की अपेक्षा सर्वाद्धा अर्थात् सर्वकाल है । पुनश्च एक जीव की अपेक्षा छहों लेश्याओं का जघन्य काल तो अंतर्मुहूर्त प्रमाण जानना ।

उवहीणं तेत्तीसं सत्तरसत्तेव होंति दो चेव ।
अट्ठारस तेत्तीसा उक्कस्सा होंति अदिरेया ।।५५२।।

उदधीनां त्रयस्त्रिंशत् सप्तदश सप्तैव भवंति द्वौ चैव ।
अष्टादश त्रयस्त्रिंशत् उत्कृष्टा भवंति अतिरेकाः ।।५५२।।

टीका - कृष्णलेश्या का उत्कृष्ट काल तैंतीस सागर, नीललेश्या का सत्रह सागर, कपोतलेश्या का सात सागर, पीतलेश्या का दो सागर, पद्मलेश्या का काल अठारह सागर, शुक्ललेश्या का तैंतीस सागर कुछ कुछ अधिक जानना । सो अधिक का प्रमाण कितना ? वह कहते हैं - यह उत्कृष्ट काल नारक और देवों की अपेक्षा से कहा है । सो नारकी और देव जिस पर्याय से आकर उपजते हैं उस पर्याय का अंतिम अंतर्मुहूर्त काल तथा देव, नारक पर्याय छोड़कर जहां उपजते हैं वहां आदि में अंतर्मुहूर्त काल मात्र वही लेश्या होती है । इसलिये पूर्वोक्त काल से छहों लेश्याओं के काल में दो दो अंतर्मुहूर्त अधिक जानना । पुनश्च पीतलेश्या और पद्मलेश्या के काल में किंचित् कम आधा सागर भी अधिक जानना, क्योंकि जिसके आयु का अपवर्तनघात हुआ है ऐसा जो घातायुष्क सम्यग्दृष्टि, उसके अंतर्मुहूर्त कम आधा सागर आयु अधिक होती है । जैसे सौधर्म-ईशान में दो सागर की आयु कही है, वहां घातायुष्क सम्यग्दृष्टि के अंतर्मुहूर्त कम अढ़ाई सागर भी आयु होती है, ऐसे ऊपर भी जानना । पुनश्च इसीतरह मिथ्यादृष्टि घातायुष्क के पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण आयु अधिक होती है । सो यह अधिकपना सौधर्म से लेकर सहस्रार तक जानना । ऊपर घातायुष्क

का उपजना नहीं होता, इसलिये वहां जो आयु का प्रमाण कहा है, उतना ही होता है । ऐसे अधिक काल का प्रमाण जानना । इति कालाधिकारः (काल अधिकार समाप्त हुआ ।)

१४) अंतर अधिकार – आगे अंतर अधिकार दो गाथाओं द्वारा कहते हैं–

अंतरमवरुक्कस्सं किण्हतियाणं मुहुत्तअंतं तु ।
उवहीणं तेत्तीसं अहियं होदि त्ति णिद्दिट्ठं ।।५५३।।

तेउतियाणं एवं णवरि य उक्कस्स विरहकालो दु ।
पोग्गलपरिवट्टा हु असंखेज्जा होंति णियमेण ।।५५४।।

अंतरमवरोत्कृष्टं कृष्णत्रयाणां मुहूर्तांतस्तु ।
उदधीनां त्रयस्त्रिंशदधिकं भवतीति निर्दिष्टम् ।।५५३।।

तेजस्त्रयाणामेवं नवरि च उत्कृष्टविरहकालस्तु ।
पुद्गलपरिवर्ता हि असंख्येया भवंति नियमेन ।।५५४।।

टीका – अंतर का अर्थ होता है विरहकाल । जैसे कोई जीव कृष्णलेश्या में प्रवर्तता था, पश्चात् कृष्ण को छोड़कर अन्य लेश्या को प्राप्त हुआ । सो जितने काल तक फिर उस कृष्णलेश्या को प्राप्त नहीं होता उस काल को कृष्णलेश्या का अंतर कहते हैं । ऐसे ही सर्वत्र जानना । कृष्णादि तीन लेश्याओं में जघन्य अंतर अंतर्मुहूर्त प्रमाण और उत्कृष्ट कुछ अधिक तैंतीस सागर प्रमाण है ।

वहां कृष्णलेश्या में अंतर कहते हैं –

कोई जीव कोडिपूर्व वर्षमात्र आयु का धारक मनुष्य गर्भ से लेकर आठ वर्ष होने में छह अंतर्मुहूर्त अवशेष रहे वहां कृष्णलेश्या को प्राप्त हुआ, वहां अंतर्मुहूर्त रहकर, नीललेश्या को प्राप्त हुआ । तब कृष्णलेश्या के अंतर का प्रारम्भ किया । वहां एक-एक अंतर्मुहूर्तमात्र अनुक्रम से नील, कपोत, पीत, पद्म, शुक्ललेश्या को प्राप्त होकर आठ वर्ष के अंत के समय दीक्षा धारण कर वहां कुछ कम कोडिपूर्व तक संयम का पालन कर शुक्ललेश्या सहित सर्वार्थसिद्धि को प्राप्त हुआ । वहां तैंतीस सागर पूर्ण करके मनुष्य होकर अंतर्मुहूर्त तक शुक्ललेश्यारूप रहा । पश्चात् अनुक्रम

से एक-एक अंतर्मुहूर्त मात्र पद्म, पीत, कपोत, नीललेश्या को प्राप्त होकर कृष्णलेश्या को प्राप्त हुआ । ऐसे जीव के कृष्णलेश्या का उत्कृष्ट अंतर दस अंतर्मुहूर्त और आठ वर्ष कम कोडिपूर्व से अधिक तैंतीस सागर प्रमाण जानना । ऐसे ही नीललेश्या और कपोतलेश्या में उत्कृष्ट अंतर जानना । विशेष इतना है कि वहां दस अंतर्मुहूर्त कहे हैं, नील में आठ और कपोत में छह अंतर्मुहूर्त ही अधिक जानने ।

अब पीतलेश्या का उत्कृष्ट अंतर कहते हैं -

कोई जीव मनुष्य या तिर्यंच में पीतलेश्या में था, वहां से कपोतलेश्या को प्राप्त हुआ तब पीतलेश्या के अंतर का प्रारम्भ किया । वहां एक-एक अंतर्मुहूर्त तक कपोत, नील, कृष्ण लेश्या को प्राप्त होकर एकेन्द्रिय हुआ । वहां उत्कृष्टपने आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण पुद्गलद्रव्यपरिवर्तन का जितना काल है उतने काल तक भ्रमण किया, पश्चात् विकलेन्द्रिय हुआ । वहां उत्कृष्टपने संख्यात हजार वर्ष प्रमाण काल तक भ्रमण किया, पश्चात् पंचेन्द्रिय हुआ। वहां प्रथम समय से लेकर एक-एक अंतर्मुहूर्त काल में अनुक्रम से कृष्ण, नील, कपोत को प्राप्त होकर पीतलेश्या को प्राप्त हुआ। ऐसे जीव के पीतलेश्या का उत्कृष्ट अंतर छह अंतर्मुहूर्त सहित और संख्यात सहस्र वर्षों से अधिक आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण पुद्गलपरिवर्तनमात्र जानना।

अब पद्मलेश्या का अंतर कहते हैं -

कोई जीव पद्मलेश्या में था, उसको छोड़कर पीतलेश्या को प्राप्त हुआ तब पद्म के अंतर का प्रारम्भ किया । वहां पीतलेश्या में अंतर्मुहूर्त तक रहकर सौधर्म-ईशान में उत्पन्न हुआ । वहां पल्य के असंख्यातवें भाग से अधिक दो सागर पर्यंत रहा । वहां से चयकर एकेन्द्रिय हुआ । वहां आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण पुद्गलपरिवर्तनकालमात्र भ्रमण करके पश्चात् विकलेन्द्रिय हुआ । वहां संख्यात सहस्र वर्ष कालमात्र भ्रमण करके पंचेन्द्रिय हुआ । वहां प्रथम समय से लेकर एक-एक अंतर्मुहूर्त कृष्ण, नील, कपोत, पीतलेश्या को प्राप्त होकर पद्मलेश्या को प्राप्त हुआ। ऐसे जीव के पद्मलेश्या का उत्कृष्ट अंतर पांच अंतर्मुहूर्त और पल्य के असंख्यातवें भाग से अधिक दो सागर और संख्यात हजार वर्ष इनसे अधिक आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण पुद्गलपरिवर्तन मात्र जानना ।

आगे शुक्ललेश्या का अंतर कहते हैं -

कोई जीव शुक्ललेश्या में था, वहां से पद्मलेश्या को प्राप्त हुआ, तब शुक्ललेश्या के अंतर का प्रारम्भ किया । वहां क्रम से एक-एक अंतर्मुहूर्त कालमात्र पद्म, पीतलेश्या को प्राप्त होकर सौधर्म-ईशान में उपजकर वहां पूर्वोक्त प्रमाण काल तक रहकर पश्चात् एकेन्द्रिय हुआ । वहां भी पूर्वोक्त प्रमाण कालमात्र भ्रमण करके पश्चात् विकलेन्द्रिय हुआ । वहां भी पूर्वोक्त प्रमाण काल मात्र भ्रमण करके पंचेन्द्रिय होकर प्रथम समय से एक-एक अंतर्मुहूर्त कालमात्र क्रम से कृष्ण, नील, कपोत, पीत, पद्म लेश्या को प्राप्त होकर शुक्ललेश्या को प्राप्त हुआ । ऐसे जीव के सात अंतर्मुहूर्त और संख्यात सहस्र वर्ष और पल्य के असंख्यातवें भाग से अधिक दो सागर से अधिक आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण पुद्गलपरिवर्तन मात्र शुक्ललेश्या का उत्कृष्ट अंतर जानना। इति अंतराधिकारः (अंतर अधिकार समाप्त हुआ ।)

१५) भाव अधिकार १६) अल्पबहुत्व अधिकार – आगे भाव और अल्पबहुत्व अधिकारों को कहते हैं –

भावादो छल्लेस्सा ओदयिया होंति अप्पबहुगं तु ।
दव्वपमाणे सिद्धं इदि लेस्सा वण्णिदा होंति ।।५५५।।

भावतः षड् लेश्या औदयिका भवंति अल्पबहुकं तु ।
द्रव्यप्रमाणे सिद्धमिति लेश्या वर्णिता भवंति ।।५५५।।

टीका – भाव से छहों लेश्या औदयिक भावरूप जाननी क्योंकि कषायसंयुक्त योगों की प्रवृत्ति का नाम लेश्या है । वे दोनों कर्म के उदय से होते हैं । इति भावाधिकारः (भाव अधिकार समाप्त हुआ ।)

पुनश्च इन लेश्याओं का अल्पबहुत्व पहले संख्या अधिकार में द्रव्यप्रमाण से ही सिद्ध है । जिनका प्रमाण थोड़ा है वे अल्प, जिनका प्रमाण अधिक है वे बहुत। वहां सब से थोड़े शुक्ललेश्यावाले जीव हैं, फिर भी असंख्यात हैं । उनसे असंख्यातगुणे पद्मलेश्यावाले जीव हैं । उनसे संख्यातगुणे पीतलेश्यावाले जीव हैं । उनसे अनंतानंतगुणे कपोतलेश्यावाले जीव हैं । उनसे कुछ अधिक नीललेश्यावाले जीव हैं । उनसे कुछ अधिक कृष्णलेश्यावाले जीव हैं । इति अल्पबहुत्वाधिकारः (अल्पबहुत्व अधिकार समाप्त हुआ ।)

इसतरह सोलह अधिकारों द्वारा वर्णन की हुयी छहों लेश्या जाननी ।

आगे लेश्या रहित जीवों को कहते हैं -

किण्हादिलेस्सरहिया संसारविणग्गया अणंतसुहा ।
सिद्धिपुरं संपत्ता अलेस्सिया ते मुणेयव्वा ।।५५६।।

कृष्णादिलेश्यारहिताः संसारविनिर्गता अनन्तसुखाः ।
सिद्धिपुरं संप्राप्ता अलेश्यास्ते ज्ञातव्याः ।।५५६।।

टीका - जो जीव कषायों के उदयस्थानों से युक्त योगों की प्रवृत्ति के अभाव से कृष्णादि लेश्याओं से रहित हैं, उसीसे पांच प्रकार के संसारसमुद्र से निकलकर पार हुये हैं । पुनश्च अतीन्द्रिय-अनंत सुख से तृप्त हैं । पुनश्च आत्मा की उपलब्धि है लक्षण जिसका ऐसी सिद्धपुरी को सम्यक्पने से प्राप्त हुये हैं वे अयोगकेवली और सिद्धभगवान लेश्यारहित अलेश्य जानने ।

इति आचार्य श्री नेमिचन्द्रसिद्धांतचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नामक संस्कृत टीका के अनुसार सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषा-टीका में जीवकाण्ड में प्ररूपित जो बीस प्ररूपणा उनमें से लेश्यामार्गणा प्ररूपणा नामक पंद्रहवां अधिकार पूर्ण हुआ ।।१५।।

सोलहवां अधिकार : भव्यमार्गणा प्ररूपणा

॥ मंगलाचरण ॥

इष्ट फलत सब होत फुनि नष्ट अनिष्ट समाज ।
जास नामतैं सो भजौ शांति नाथ जिनराज ॥

आगे भव्यमार्गणा का अधिकार चार गाथाओं द्वारा कहते हैं -

भविया सिद्धी जेसिं जीवाणं ते हवंति भवसिद्धा ।
तव्विवरियाऽभव्वा संसारादो ण सिज्झंति ॥५५७॥

भव्या सिद्धिर्येषां जीवानां ते भवन्ति भवसिद्धाः ।
तद्विपरीता अभव्याः संसारान्न सिद्ध्यन्ति ॥५५७॥

टीका - भव्याः अर्थात् होनेयोग्य वा होनहार है सिद्धि अर्थात् अनंत चतुष्टयरूप स्वरूप की प्राप्ति जिनके, वे भव्यसिद्ध जानने । इसके द्वारा सिद्धि की प्राप्ति और योग्यता से भव्यों के द्विविधपना कहा है ।

भावार्थ - भव्य दो प्रकार के हैं । कितने तो भव्य ऐसे हैं जो मुक्ति होने के केवल योग्य ही हैं परंतु कभी भी सामग्री को पाकर मुक्त नहीं होंगे । तथा कितने ही भव्य ऐसे हैं, जो काल पाकर मुक्त होंगे । पुनश्च **तद्विपरीताः** अर्थात् पूर्वोक्त दोनों लक्षणों से रहित जो जीव मुक्त होने योग्य भी नहीं हैं और मुक्त भी होते नहीं, वे अभव्य जानने । क्योंकि वे अभव्य जीव संसार से छूटकर कभी भी मुक्ति को प्राप्त नहीं होते, ऐसा ही कोई द्रव्यत्व भाव है ।

यहां कोई भ्रम करेगा कि अभव्य यदि मुक्त नहीं होते तो दोनों प्रकार के भव्यों को तो मुक्त होना ठहरा । इसलिये जो मुक्त होने योग्य कहे थे, उन भव्यों के भी कभी तो मुक्ति प्राप्त होगी ऐसे भ्रम को दूर करते हैं -

भव्वत्तणस्स जोग्गा जे जीवा ते हवंति भवसिद्धा ।
ण हु मलविगमे णियमा ताणं कणओवलाणमिव ॥५५८॥

भव्यत्वस्य योग्या ये जीवास्ते भवन्ति भवसिद्धाः ।
न हि मलविगमे नियमात् तेषां कनकोपलानामिव ।।५५८।।

टीका - जो जीव भव्यत्व अर्थात् सम्यग्दर्शनादिक सामग्री को पाकर अनंतचतुष्टयरूप होना, उसके केवल योग्य ही हैं, तद्रूप होने के नहीं हैं, वे भव्यसिद्धिक सदाकाल संसार को प्राप्त रहते हैं । किस कारण ? वह कहते हैं - जैसे कई सुवर्ण सहित पाषाण ऐसे होते हैं उनके कभी भी मैल के नाश करने की सामग्री नहीं मिलती, वैसे कई भव्य ऐसे हैं जिनके कभी भी कर्ममल नाश करने की सामग्री नियम से नहीं होती हैं ।

भावार्थ - जैसे अहमिन्द्र देवों के नरकादि में गमन करने की शक्ति है परंतु कभी भी गमन नहीं करते, वैसे कितने ही भव्य ऐसे हैं जो मुक्त होने के योग्य हैं, परंतु कभी भी मुक्त नहीं होंगे ।

ण य जे भव्वाभव्वा मुत्तीसुहातीदणंतसंसारा ।
ते जीवा णायव्वा णेव य भव्वा अभव्वा य ।।५५९।।

न च ये भव्या अभव्या मुक्तिसुखा अतीतानंतसंसारा ।
ते जीवा ज्ञातव्या नैव च भव्या अभव्याश्च ।।५५९।।

टीका - जो जीव कुछ नवीन ज्ञानादिक अवस्था को प्राप्त होनेवाले नहीं इसलिये भव्य भी नहीं हैं और अनंतचतुष्टयरूप हुये हैं इसलिये अभव्य भी नहीं हैं, ऐसे मुक्ति सुख के भोक्ता अनंत संसार से रहित हुये वे जीव भव्य भी नहीं, अभव्य भी नहीं हैं, जीवत्व पारिणामिक के धारक हैं; ऐसे जानने ।

यहां जीवों की संख्या कहते हैं -

अवरो जुत्ताणंतो अभव्वरासिस्स होदि परिमाणं ।
तेण विहीणो सव्वो संसारी भव्वरासिस्स ।।५६०।।

अवरो युक्तानन्तः अभव्यराशेर्भवति परिमाणम् ।
तेन विहीनः सर्वः संसारी भव्यराशेः ।।५६०।।

टीका - अभव्यराशि का प्रमाण जघन्य युक्तानंत प्रमाण है । तथा संसारी

जीवों के प्रमाण में से अभव्यराशि का प्रमाण घटानेपर अवशेष रहे उतना भव्यराशि का प्रमाण है । यहां संसारी जीवों के परिवर्तन (परावर्तन) कहते हैं – परिवर्तन, परिभ्रमण, संसार ये एकार्थवाची हैं । द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव से परिवर्तन पांच प्रकार का है । वहां द्रव्यपरिवर्तन दो प्रकार का है – एक कर्मद्रव्यपरिवर्तन, एक नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन ।

वहां **नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन** कहते हैं –

किसी जीव ने औदारिकादि तीन शरीरों में से किसी भी शरीर संबंधी छह पर्याप्तिरूप परिणमने के योग्य पुद्गल किसी एक समय में ग्रहण किये, वे स्निग्ध, रूक्ष, वर्ण, गंधादि से तीव्र, मंद, मध्य भावयुक्त यथासंभव ग्रहण किये । पुनश्च वे द्वितीयादि समयों में निर्जरारूप किये । अनंत बार अगृहीतों को ग्रहण करके छोड़े, अनंत बार मिश्रों को ग्रहण करके छोड़े, बीच में गृहीतों को अनंत बार ग्रहण करके छोड़े, ऐसे होनेपर पश्चात् जो पहले समय पुद्गल ग्रहण किये वे ही पुद्गल वैसे ही स्निग्ध, रूक्ष, वर्ण, गंधादि से उसी जीव के नोकर्मभाव को प्राप्त होते हैं, उतने काल के समुदायरूप नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन है । जीव द्वारा पहले ग्रहण किये हुये ऐसे परमाणु जिन समयप्रबद्धरूप स्कंधों में होते हैं, उन्हें गृहीत कहते हैं । पुनश्च जीव द्वारा पहले ग्रहण नहीं किये हुये परमाणु जिनमें होते हैं, उन्हें अगृहीत कहते हैं । गृहीत और अगृहीत दोनों जाति के परमाणु जिनमें हो, उन्हें मिश्र कहते हैं ।

यहां कोई कहे कि अगृहीत परमाणु कैसे हैं ?

उसका समाधान – सर्व जीवराशि के प्रमाण को समयप्रबद्ध के परमाणुओं के प्रमाण से गुणा करनेपर जो प्रमाण आता है, उसको अतीत काल के समयों के प्रमाण से गुणित करनेपर जो प्रमाण आता है, उससे भी पुद्गल द्रव्य का प्रमाण अनंतगुणा है, क्योंकि जीवराशि से अनंत वर्गस्थान जानेपर पुद्गलराशि होती है । इसलिये अनादिकाल से नाना जीवों की अपेक्षा से भी अगृहीत परमाणु लोक में बहुत पाये जाते हैं । पुनश्च एक जीव के परिवर्तनकाल की अपेक्षा नवीन परिवर्तन प्रारंभ हुआ तब सर्व ही अगृहीत होते हैं, पश्चात् ग्रहण किये वे ही गृहीत होते हैं । सो यहां जिस अपेक्षा से गृहीत, अगृहीत, मिश्र कहे हैं, वह यथासंभव जानना । अब विशेष दिखाते हैं –

पुद्गलपरिवर्तन का काल तीन प्रकार का है । वहां अगृहीत के ग्रहण का काल, वह अगृहीत ग्रहण काल है । गृहीत के ग्रहण का काल, वह गृहीतग्रहण काल है, मिश्र के ग्रहण का काल, वह मिश्रग्रहण काल है । सो इनका परिवर्तन अर्थात् पलटना कैसे होता है ? वह अनुक्रम यंत्र द्वारा दिखाते हैं ।

यंत्र में अगृहीत की सहनानी शून्य(0) जानना और मिश्र की सहनानी हंसपद-अधिकका चिह्न(+) जानना और गृहीत की सहनानी एक का अंक(१) जानना । तथा दो बार लिखने से अनंतबार जान लेना ।

द्रव्यपरिवर्तन का यंत्र

0 0 +	0 0 +	0 0 १	0 0 +	0 0 +	0 0 १
+ + 0	+ + 0	+ + १	+ + 0	+ + 0	+ + १
+ + १	+ + १	+ + 0	+ + १	+ + १	+ + 0
१ १ +	१ १ +	१ १ 0	१ १ +	१ १ +	१ १ 0

वहां विवक्षित नोकर्मपुद्गलपरिवर्तन के पहले समय से लेकर, प्रथम बार समयप्रबद्ध में अगृहीत का ग्रहण करे, दूसरी बार अगृहीत ही का ग्रहण करे, तीसरी बार अगृहीत ही का ग्रहण करे ऐसे निरंतर अनंतबार अगृहीत का ग्रहण होकर रहे, तब एक बार मिश्र का ग्रहण करे । इसलिये यंत्र में पहले कोठे में दो बार बिंदी, एक बार हंसपद लिखा है ।

उसके पश्चात् उसीप्रकार निरंतर अनंतबार अगृहीत का ग्रहण करके एक बार मिश्र का ग्रहण करे, ऐसे अनुक्रम से अनंत अनंत बार अगृहीत का ग्रहण कर कर के एक-एक बार मिश्र का ग्रहण करे, इसप्रकार मिश्र का भी ग्रहण अनंत बार होता है । इसलिये अनंत बार की सहनानी के लिये यंत्र में जैसा पहला कोठा था वैसा ही दूसरा कोठा लिखा है ।

उसके पश्चात् उसीप्रकार निरंतर अनंतबार अगृहीत का ग्रहण करके एक बार गृहीत का ग्रहण करता है, इसीलिये तीसरे कोठे में दो शून्य और एक का अंक लिखा है । पुनश्च -अगृहीत ग्रहण आदि अनुक्रम- से -जैसे - यह एक बार गृहीत ग्रहण हुआ, उसी अनुक्रम से एक-एक बार गृहीत ग्रहण करके अनंत बार गृहीत ग्रहण होता

है । इसीलिये जैसे तीन कोठे पहले लिखे थे वैसे ही अनंत की सहनानी के लिये दूसरे तीन कोठे लिखे हैं । ऐसे होनेपर प्रथम परिवर्तन हुआ । इसलिये इतना प्रथम पंक्ति में लिखा है।

अब दूसरी पंक्ति का अर्थ दिखाते हैं – पूर्वोक्त अनुक्रम होने के पश्चात् निरंतर अनंत बार मिश्र ग्रहण करे, तब एक बार अगृहीत ग्रहण करता है । इसलिये प्रथम कोठे में दो हंसपद और एक शून्य लिखा । पुनश्च निरंतर अनंत बार मिश्र ग्रहण करके एक बार अगृहीत ग्रहण करे, सो उसी क्रम से अनंत बार अगृहीत ग्रहण करे, इसलिये पहले कोठे जैसा दूसरा कोठा लिखा है ।

पुनश्च उसके पश्चात् निरंतर अनंत बार मिश्र ग्रहण करके एक बार गृहीत ग्रहण करे, इसलिये तीसरे कोठे में दो हंसपद और एक बार एक का अंक लिखा है । सो मिश्र ग्रहण आदि पूर्वोक्त सर्व अनुक्रम सहित एक-एक बार गृहीत ग्रहण होता है, सो ऐसे गृहीत ग्रहण भी अनंत बार होता है । इसलिये जैसे पहले तीन कोठे लिखे थे वैसे ही दूसरे तीन कोठे लिखे । ऐसा होनेपर दूसरा परिवर्तन हुआ ।

अब तीसरी पंक्ति का अर्थ दिखाते हैं – पूर्वोक्त क्रम होने के पश्चात् निरंतर अनंत बार मिश्र का ग्रहण करके एक बार गृहीत का ग्रहण करे, इसलिये प्रथम कोठे में दो हंसपद और एक बार एक का अंक लिखा है । सो अनंत-अनंत बार मिश्र ग्रहण कर करके एक-एक बार गृहीत ग्रहण करके अनंत बार गृहीत ग्रहण होता है। इसलिये पहले कोठे के समान दूसरा कोठा लिखा । पुनश्च अनंत बार मिश्र का ग्रहण करके एक बार अगृहीत का ग्रहण करता है । इसलिये तीसरे कोठे में दो हंसपद और एक शून्य लिखा है । सो जैसे मिश्र ग्रहण आदि अनुक्रम से एक बार अगृहीत का ग्रहण हुआ वैसे ही एक एक बार करके अनंत बार अगृहीत का ग्रहण होता है । इसलिये पहले तीन कोठे थे, वैसे ही दूसरे तीन कोठे लिखे हैं, ऐसा होनेपर तीसरा परिवर्तन हुआ ।

आगे चौथी पंक्ति का अर्थ दिखाते हैं – पूर्वोक्त क्रम होने के पश्चात् निरंतर अनंत बार गृहीत का ग्रहण करके एक बार मिश्र का ग्रहण करे, इसलिये प्रथम कोठे में दो बार एक अंक और एक हंसपद लिखा है । सो अनंत अनंत बार गृहीत का ग्रहण कर करके एक-एक बार मिश्र का ग्रहण करके अनंत बार मिश्र का ग्रहण

होता है । इसलिये प्रथम कोठे के समान दूसरा कोठा लिखा है । पुनश्च उसके पश्चात् अनंत बार गृहीत का ग्रहण करके एक बार अगृहीत का ग्रहण करे, इसलिये तीसरे कोठे में दो बार एक का अंक और शून्य लिखा है । पुनश्च चतुर्थ परिवर्तन के आदि से जिस अनुक्रम से यह एक बार अगृहीत ग्रहण हुआ, उसी अनुक्रम से अनंत बार अगृहीत ग्रहण होता है, इसलिये पहले तीन कोठे किये थे, वैसे ही आगे अनंत बार की सहनानी के लिये दूसरे तीन कोठे किये हैं । ऐसा होनेपर चतुर्थ परिवर्तन हुआ । पुनश्च उस चतुर्थ परिवर्तन के अनंतर समय में विवक्षित नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन के पहले समय में जो पुद्गल जिस स्निग्ध, रूक्ष, वर्ण, गंधादि भावों सहित ग्रहण किये थे, वे ही पुद्गल उसी स्निग्ध, रूक्ष, वर्ण, गंधादि भावों सहित शुद्ध गृहीतरूप ग्रहण करता है । सो यह सब मिला हुआ सम्पूर्ण नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन जानना ।

आगे **कर्मपुद्गलपरिवर्तन** कहते हैं – किसी जीव ने एक समय में आठ प्रकार के कर्मरूप जो पुद्गल ग्रहण किये, वे एक समय अधिक आवलीप्रमाण आबाधाकाल जाने के पश्चात् द्वितीयादि समयों में निर्जरारूप किये । पश्चात् जैसा अनुक्रम आदि से लेकर अंत तक नोकर्मद्रव्यपरिवर्तन में कहा, वैसा ही अनुक्रम सर्व चारों परिवर्तन संबंधी इस कर्मद्रव्यपरिवर्तन में जानना ।

विशेष इतना – वहां नोकर्मसंबंधी पुद्गल थे, यहां कर्मसंबंधी पुद्गल जानने। अनुक्रम में कोई अंतर नहीं है । पश्चात् पहले समय में जैसे पुद्गल ग्रहे थे, वे ही पुद्गल उसी भाव सहित चतुर्थ परिवर्तन के अनंतर समय में ग्रहण होते हैं, सो यह सर्व मिला हुआ सम्पूर्ण कर्मपरिवर्तन जानना । इस द्रव्यपरिवर्तन को पुद्गलपरिवर्तन भी कहते हैं । सो नोकर्मपुद्गलपरिवर्तन का और कर्मपुद्गलपरिवर्तन का काल समान है । पुनश्च यहां इतना जानना कि पहले जो क्रम कहा, वहां जैसे पहले अनंत बार अगृहीत का ग्रहण कहा, वहां बीच बीच में गृहीत ग्रहण और मिश्र ग्रहण भी होता है, परंतु अनुक्रम में तो पहली बार, दूसरी बार आदि जो अगृहीत ग्रहण हो, वही गिनने में आता है । तथा कालप्रमाण में गृहीत, मिश्र ग्रहण के समयों सहित सर्व काल गिनने में आता है । जिन समयों में गृहीत का ग्रहण है, वे समय गृहीत ग्रहण के काल में गिनने में आते हैं । जिन समयों में मिश्र का ग्रहण होता है, वे समय मिश्र ग्रहण के काल में गिनने में आते हैं । जिन समयों में अगृहीत ग्रहण होता है, वे समय अगृहीत ग्रहण काल में गिनने में आते हैं । सो यह उदाहरण कहा

है, ऐसे ही सर्वत्र जानना । क्रम में तो जैसा अनुक्रम कहा है, वैसा हो तभी गिनने में आता है । और उस अनुक्रम के बीच में कोई अन्यरूप प्रवर्ते, वह अनुक्रम में गिनने में नहीं आता । और जिन समयों में अन्यरूप भी प्रवर्तन हो उन समयोंरूप जो काल, उसे परिवर्तन के काल में गिनने में आता है । ऐसे ही क्षेत्रादि परिवर्तन में जानना ।

*(**विशेषार्थ** – विवक्षित परिवर्तन में जिस क्रम की बात हो उसी क्रम से जब प्रवर्तन हो, तभी उसे गिनना, बीच में अक्रमरूप से प्रवर्तन तो होता है परंतु उसे क्रम में नहीं गिनना परंतु क्रमरूप या अक्रमरूप प्रवर्तन में जो काल व्यतीत हो जाय उस सम्पूर्ण काल को परिवर्तन के काल में गिनना ।)*

जैसे, क्षेत्रपरिवर्तन में किसी जीव ने जघन्य अवगाहना पाकर क्षेत्रपरिवर्तन प्रारम्भ किया, पश्चात् कितनेक काल अनुक्रम रहित अवगाहना पाकर पश्चात् अनुक्रमरूप अवगाहना को प्राप्त हुआ । वहां क्षेत्रपरिवर्तन के अनुक्रम में तो पहले जघन्य अवगाहना पायी थी और पश्चात् दूसरी बार अनुक्रमरूप अवगाहना पायी, उसे गिनने में आता है । तथा क्षेत्रपरिवर्तन के काल में बीच में अनुक्रम रहित अवगाहना पाने के कालसहित सर्व काल गिनने में आता है । ऐसे ही सब में जान लेना ।

अब यहां द्रव्यपरिवर्तन में काल का प्रमाण कहते हैं । वहां अगृहीत ग्रहण का काल अनंत है; तथापि यह सब से अल्प है । क्योंकि जिन पुद्गलों में से द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावों के संस्कार नष्ट हुये हैं वे पुद्गल बहुत बार ग्रहण में नहीं आते। इसीलिये विवक्षित पुद्गलपरिवर्तन के मध्य गृहीत पुद्गलों का ही बहुत बार ग्रहण होता है । वही कहा है –

सुहुमट्ठिदिसंजुत्तं आसण्णं कम्मणिज्जरामुक्कं ।
पाएण एदि गहणं दव्वमणिद्दिट्ठसंठाणं ।।

जो पुद्गल कर्मरूप परिणत थे और जिनकी स्थिति थोड़ी थी और निर्जरा होनेपर कर्मअवस्था से रहित हुये हैं और जीव के प्रदेशों से एकक्षेत्रावगाहीपनेरूप से रहते हैं और संस्थान–आकार जिनका कहा न जाय और विवक्षित पुद्गलपरिवर्तन के पहले समय में जिस स्वरूप से ग्रहण में आये थे उससे रहित हो, ऐसे पुद्गल जीव द्वारा अधिकांशपने से (बहुलता से) समयप्रबद्धों में ग्रहण किये जाते हैं । ऐसा नियम नहीं

है कि ऐसे ही पुद्गलों का ग्रहण करे, परंतु बहुत बार ऐसे ही पुद्गलों का ग्रहण होता है, क्योंकि ये पुद्गल द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के संस्कार से युक्त हैं ।

पुनश्च अगृहीत ग्रहण के काल से मिश्र ग्रहण का काल अनंतगुणा है । पुनश्च उस मिश्र ग्रहण के काल से गृहीत ग्रहण का जघन्य काल अनंतगुणा है । उससे सम्पूर्ण पुद्गलपरिवर्तन का जघन्य काल कुछ अधिक है । जघन्य गृहीत ग्रहण काल को अनंत का भाग देकर जो प्रमाण आये, उतना जघन्य गृहीत ग्रहण काल में मिलानेपर, पुद्गलपरिवर्तन का जघन्य काल होता है । उससे गृहीत ग्रहण का उत्कृष्ट काल अनंतगुणा है । उससे सम्पूर्ण पुद्गलपरिवर्तन का उत्कृष्ट काल कुछ अधिक है । उत्कृष्ट गृहीत ग्रहण के काल को अनंत का भाग देनेपर जो प्रमाण आये उतना उत्कृष्ट गृहीत ग्रहण काल में मिलानेपर, पुद्गलपरिवर्तन का उत्कृष्ट काल होता है । यहां अगृहीत ग्रहण काल और मिश्र ग्रहण काल में जघन्य उत्कृष्टपना नहीं है । क्योंकि परम्परा सिद्धांत में उनके जघन्य उत्कृष्टपने के उपदेश का अभाव है ।

यहां प्रासंगिक (उक्तं च) गाथा कहते हैं -

अगहिदमिस्सं गहिदं मिस्समगहिदं तहेव गहिदं च ।
मिस्सं गहिदमगहिदं गहिदं मिस्सं अगहिदं च ।।

पहला - अगृहीत, मिश्र, गृहीतरूप; दूसरा - मिश्र, अगृहीत, गृहीतरूप; तीसरा मिश्र, गृहीत, अगृहीतरूप; चौथा - गृहीत, मिश्र, अगृहीतरूप परिवर्तन होनेपर द्रव्यपरिवर्तन होता है । सो विशदरूप से पहले कहा ही है ।

उक्तं च (आर्या छंद) -

सर्वेऽपि पुद्गलाः खल्वेकेनात्तोज्झिताश्च जीवेन ।
ह्यसकृत्त्वनंतकृत्वः पुद्गलपरिवर्तसंसारे ।।

एक जीव पुद्गलपरिवर्तनरूप संसार में यथायोग्य सर्व पुद्गल बारम्बार अनंत बार ग्रहण करके छोड़ता है ।

आगे **क्षेत्रपरिवर्तन** कहते हैं - वह क्षेत्रपरिवर्तन दो प्रकार का है - एक स्वक्षेत्रपरिवर्तन, एक परक्षेत्रपरिवर्तन ।

वहां **स्वक्षेत्रपरिवर्तन** कहते हैं - कोई जीव सूक्ष्म निगोद की जघन्य अवगाहना

को धारण करके उत्पन्न हुआ, श्वास के अठारहवें भागप्रमाण अपनी आयु को भोगकर मरा, पुनश्च उससे एक प्रदेश अधिक अवगाहना को धारण कर, पश्चात् दो प्रदेश अधिक अवगाहना को धारण कर, ऐसे अनुक्रम से एक-एक प्रदेश बढ़ते बढ़ते महामत्स्य की उत्कृष्ट अवगाहना तक संख्यात घनांगुल प्रमाण अवगाहना के भेदों को वही जीव प्राप्त होता है । अवगाहना के जितने भेद हैं, उन सब को एक जीव अनुक्रम से जितने काल में धारण करता है, उतना सब काल मिलकर समुदायरूप से स्वक्षेत्रपरिवर्तन जानना।

अब **परक्षेत्रपरिवर्तन** कहते हैं – सूक्ष्म निगोद लब्धिअपर्याप्त जघन्य अवगाहनारूप शरीर का धारक, वह लोकाकाश के मध्य में जो आकाश के आठ प्रदेश हैं उनको अपने शरीर की अवगाहना के मध्यवर्ती आठ प्रदेश करके, अवशेष उनके निकटवर्ती अन्य प्रदेशों को रोक कर उत्पन्न हुआ, श्वास के अठारहवें भागमात्र क्षुद्रभव काल तक जीकर मरा । पुनश्च वही जीव उसी अवगाहना को धारण कर, उसी क्षेत्र में दूसरी बार उत्पन्न हुआ, इसतरह जघन्य अवगाहना के प्रदेश घनांगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं, उतनी बार वैसे ही उत्पन्न हुआ, पश्चात् उसके निकटवर्ती आकाश के एक प्रदेश को रोककर उत्पन्न हुआ, ऐसे अनुक्रम से एक-एक प्रदेश से सर्व लोकाकाश के प्रदेशों को अपना जन्मक्षेत्र करता है, यह सर्व परक्षेत्रपरिवर्तन है।

उक्तं च (कहा ही है) –

सर्वत्र जगत्क्षेत्रे देशो न ह्यस्ति जंतुनाऽक्षुण्णः ।
अवगाहनानि बहुशो बंभ्रमता क्षेत्रसंसारे ।।

क्षेत्रसंसार में भ्रमण करनेवाले जीव द्वारा जिसको अपने शरीर की अवगाहना द्वारा स्पर्श न किया हो ऐसा सर्व जगत्श्रेणी के घनप्रमाण लोक में कोई प्रदेश नहीं है । तथा जिसको बहुत बार अंगीकार न किया हो ऐसा कोई अवगाहना का भेद नहीं है ।

आगे **कालपरिवर्तन** को कहते हैं ।

कोई जीव उत्सर्पिणी काल के पहले समय में जन्मा, अपनी आयु को पूर्ण करके मरा । फिर दूसरी *(अन्य)* उत्सर्पिणी के दूसरे समय में जन्मा, अपनी आयु को पूर्ण करके मरा । पुनश्च तीसरी *(अन्य किसी)* उत्सर्पिणी के तीसरे समय में उत्पन्न हुआ, वैसे ही मरा । इसतरह दस कोडाकोडि सागरप्रमाण उत्सर्पिणी काल के जितने समय

हैं, उनको पूर्ण करता है । पश्चात् इसी अनुक्रम से दस कोडाकोडिप्रमाण अवसर्पिणी काल के जितने समय हैं उनको पूर्ण करता है । उसके पश्चात् जैसे जन्म की अपेक्षा अनुक्रम कहा, वैसे ही मरण की अपेक्षा अनुक्रम जानना । पहले समय में मरा, दूसरे समय में मरा, ऐसे कल्पकाल के समयों को पूर्ण करता है । यह सर्व मिला हुआ कालपरिवर्तन जानना ।

*(**विशेषार्थ** – जीव उत्सर्पिणी के प्रथम समय में जन्मेगा उसके बाद उत्सर्पिणी अवसर्पिणी मिलाकर बीस कोडाकोडि प्रमाण कल्पकाल बीतनेपर, दूसरे कल्पकाल के दूसरे समय में यदि जन्म नहीं लेता तो वह कल्पकाल चला गया, उसके पश्चात् हो सकता है कि कितने ही कल्पकाल चले जायेंगे परंतु दूसरे समय में जन्म नहीं होगा, आगे पीछे होगा । उसे क्रम में नहीं गिनना परंतु काल जो बीत रहा है उसे गिनना। क्रमभंग होकर आगे पीछे समयमात्र का भी अंतर पड़े तो दुबारा एक कल्पकाल और चला जायेगा । इसतरह क्रम से एक एक समय में जन्म होने के पश्चात् क्रम से एक एक समय में मरण होना चाहिये । जीव किस क्षेत्र में जन्मता है, कौनसी गति में या कितनी अवगाहनावाला है या कितनी आयुवाला है इससे कोई मतलब नहीं है क्रम से एक समय आगे बढ़ने के लिये बीच में अनंत काल चला जाय।)*

उक्तं च (कहा ही है) –

उत्सर्पिण्यवसर्पिणिसमयावलिकासु निरवशेषासु ।
जातो मृतश्च बहुशः परिभ्रमन् कालसंसारे ।।

कालसंसार में भ्रमण करते हुये जीव ने उत्सर्पिणी अवसर्पिणीरूप कल्पकाल के समस्त समयों की पंक्ति में क्रम से बहुत बार जन्म लिया है और मरण किया है।

आगे **भवपरिवर्तन** कहते हैं –

कोई जीव नरकगति में दस हजार वर्ष की जघन्य आयु धारण करके उत्पन्न हुआ, पश्चात् मरकर संसार में भ्रमण कर वहां ही जघन्य दस हजार वर्ष की आयु को धारण कर जन्मा, ऐसे दस हजार वर्ष के जितने समय हैं उतनी बार तो जघन्य आयु को ही धारण कर करके जन्मा और मरा । पश्चात् दस हजार वर्ष और एक समय की आयु सहित जन्मा, पश्चात् दस हजार वर्ष और दो समय की आयु सहित जन्मा, ऐसे एक-एक समय से बढ़ते हुये अनुक्रम से उत्कृष्ट आयुमात्र तैंतीस सागर

पूर्ण करके पश्चात् तिर्यंचगति में अंतर्मुहूर्तमात्र जघन्य आयु सहित जन्मा । सो पूर्ववत् अंतर्मुहूर्त के जितने समय हो उतनी बार तो उस अंतर्मुहूर्तप्रमाण ही आयु को धारण कर करके जन्मे । पश्चात् एक समय अधिक अंतर्मुहूर्त आयु को धारण करके जन्मे, पश्चात् दो समय अधिक अंतर्मुहूर्त आयु को धारण करके जन्मे, ऐसे एक-एक समय अनुक्रम से बढ़ते बढ़ते उत्कृष्ट आयु के तीन पल्य पूर्ण करता है । पुनश्च मनुष्यगति में तिर्यंचगति के समान अंतर्मुहूर्त से लेकर तीन पल्य पूर्ण करता है । पुनश्च देवगति में नरकगति के समान दस हजार वर्ष से लेकर इकतीस सागर पूर्ण करता है, क्योंकि मिथ्यादृष्टि जीव अनुदिश, अनुत्तर विमानों में उत्पन्न नहीं होता, ऊपर के (नौवें) ग्रैवेयक तक ही उपजता है, इसलिये इकतीस सागर ही कहे । ऐसे भ्रमण करके दुबारा नरक में दस हजार वर्ष प्रमाण जघन्य आयु को धारण कर जन्मे, तब यह सम्पूर्ण भवपरिवर्तन होता है ।

*(**विशेषार्थ** – एक एक गति संबंधी अनुक्रम से एक एक समय से बढ़ते हुये भव धारण करने के पश्चात् ही दूसरी गति संबंधी भव गिनना शुरु करना चाहिये। एक नरक भव के बाद दूसरा नरक भव तुरंत नहीं हो सकता दोनों के बीच में मनुष्य या तिर्यंच के भव होंगे । हो सकता है जिस गतिसंबंधी भव गिन रहे हो उससे अन्य ही तीन गति में चला जाय या एकेन्द्रिय में जाकर असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन काल तक वहीं पर भ्रमण करे । यदि इस काल की कल्पना भी करने लग जाते हैं, तो इस संसार का भय जरूर लगता है ।)*

उक्तं च (कहा ही है) –

नरकजघन्यायुष्यादुपरिमग्रैवेयकावसानेषु ।
मिथ्यात्वसंश्रितेन हि भवस्थितिर्भाविता बहुशः ।।

मिथ्यात्व के आश्रित जीव ने नरक की जघन्य आयु से लेकर उपरिम ग्रैवेयक पर्यंत आयु सहित संसार की स्थिति बहुत बार भोगी है ।

*(**विशेषार्थ** – सभी ग्रैवेयकों में मिथ्यात्व सहित जानेवाले जीव द्रव्यलिंगी ही होना आवश्यक है । उसमें भी ऊपर के तीन उत्तम संहननवाले जीव ही ग्रैवेयकों में जा सकते हैं । सो चतुर्थकाल के या विदेहक्षेत्र के आर्यखण्ड के जीव ही द्रव्यलिंगी होकर वहां जायेंगे । हम सोच सकते हैं कि वहां बार-बार एक एक समय की बढ़ती*

हुयी आयु के साथ जन्मना कितना दुर्लभ होगा और बीच बीच में कितना बड़ा काल जाता होगा ।)

आगे **भावपरिवर्तन** कहते हैं - योगस्थान, अनुभागबंधअध्यवसायस्थान, कषायाध्यवसायस्थान, स्थितिस्थान इन चारों के परिवर्तन से भावपरिवर्तन होता है । सो प्रथम इनका स्वरूप कहते हैं -

प्रकृतिबंध और प्रदेशबंध के कारणभूत ऐसे प्रदेश परिस्पंद लक्षण योग *(आत्मप्रदेशों के परिस्पंदनरूप योग)* उनके जो जघन्यादि स्थान *(जघन्य से लेकर उत्कृष्ट तक के स्थान)* वे योगस्थान हैं । तथा जिन कषाययुक्त परिणामों से कर्मों का अनुभागबंध होता है उनके जघन्यादि स्थान, वे अनुभागबंधअध्यवसायस्थान हैं । पुनश्च जिन कषाय परिणामों से स्थितिबंध होता है उनके जघन्यादि स्थान, उन्हें यहां कषायअध्यवसायस्थान कहे हैं या इन्हीं को स्थितिबंधअध्यवसायस्थान भी कहते हैं । तथा बंधनेरूप कर्मों की जो स्थिति, उनके जघन्यादिक स्थान, उन्हें स्थितिस्थान कहते हैं । इनका विशेष स्वरूप आगे कहेंगे, सो जानना ।

पुनश्च यहां एक-एक स्थितिभेद के बंध के कारणभूत अपने योग्य असंख्यातलोकप्रमाण स्थितिबंधअध्यवसायस्थान पाये जाते हैं । पुनश्च एक एक स्थितिबंधअध्यवसायस्थान में यथायोग्य असंख्यातलोकप्रमाण अनुभागबंधअध्यवसायस्थान पाये जाते हैं । पुनश्च एक एक अनुभागबंधअध्यवसायस्थान में जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र योगस्थान पाये जाते हैं ।

अब इनके परिवर्तन का अनुक्रम ज्ञानावरण कर्म के उदाहरण द्वारा कहते हैं - कोई संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त मिथ्यादृष्टि जीव अपने योग्य ज्ञानावरण कर्म की जघन्य स्थिति अंतःकोडाकोडि सागर प्रमाण बांधता है क्योंकि इस जीव के इससे कम स्थितिबंध नहीं होता, इसलिये इस जीव के लिये यही जघन्य स्थितिस्थान है ।

*(**विशेषार्थ** - जैसे संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त मिथ्यादृष्टि के स्थितिस्थान कहे वैसे ही असंज्ञी पंचेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय आदि एकेन्द्रिय तक के जीवों के अपने-अपने योग्य स्थितिबंध के स्थान जघन्य से लेकर उत्कृष्ट तक होते हैं । इसका विस्तारपूर्वक वर्णन पं. टोडरमलजी ने आगे कर्मकाण्ड में किया हुआ है । अन्य भी स्थितिबंधअध्यवसायस्थान, अनुभागबंधअध्यवसायस्थान, योगस्थान इनका वर्णन कर्मकाण्ड में ही किया हुआ है ।)*

कोडि के ऊपर और कोडाकोडि के नीचे जो हो, उसे अंतःकोडाकोडि कहते हैं । वहां उस जघन्य स्थितिबंध करनेवाले जीव के उस जघन्य स्थितिबंध के योग्य असंख्यातलोकप्रमाण कषायाध्यवसायस्थान पाये जाते हैं, वे परिणामों की अपेक्षा अनंतभागादिक षट्स्थानों से युक्त हैं ।

*(**विशेषार्थ** – विवक्षित कोई भी स्थिति का बंध होता है, उतनी ही स्थिति अन्य अन्य असंख्यात परिणामों द्वारा बंध सकती है । उन परिणामों को संक्लेश और विशुद्धि के स्थान अर्थात् कषायों के स्थान या स्थितिबंधअध्यवसायस्थान कहते हैं । उस विवक्षित स्थिति से एक समय अधिक स्थिति का बंध होता है, उसके अपने योग्य कषायाध्यवसायस्थान असंख्यातलोकप्रमाण होते हैं । इन प्रत्येक समय के कारणभूत कषायाध्यावसाय के जघन्य से लेकर उत्कृष्ट तक के स्थानों में असंख्यातलोक बार षट्स्थानपतित वृद्धि युक्त स्थान पाये जाते हैं ।)*

पुनश्च उनमें भी जघन्य कषायअध्यवसायस्थान को निमित्तभूत अनुभागबंधअध्यवसायस्थान असंख्यातलोकप्रमाण पाये जाते हैं ।

*(**विशेषार्थ** – इसी तरह एक-एक कषायअध्यवसायस्थान के अपने-अपने योग्य असंख्यातलोकप्रमाण अनुभागबंधअध्यवसायस्थान पाये जाते हैं। इसलिये विवक्षित स्थिति का बंध करनेवाले किसी विवक्षित संक्लेश या विशुद्धि के साथ असंख्यातलोकप्रमाण जुदे जुदे अनुभागबंधअध्यवसायस्थान होते हैं । इनमें भी प्रत्येक में असंख्यातलोक बार षट्स्थानपतित स्थान पाये जाते हैं ।)*

सो पूर्वोक्त किसी जीव के अंतःकोडाकोडि सागर प्रमाण जघन्य ही तो स्थितिस्थान है और उसके जघन्य ही कषायअध्यवसायस्थान है और जघन्य ही अनुभागबंधअध्यवसाय-स्थान है । और उस जीव के जैसा योग्य हो, वैसा जघन्य ही योगस्थान पाया जाता है, *(एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीवों के अपने-अपने योग्य जघन्य से लेकर उत्कृष्ट तक जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण योगस्थान पाये जाते हैं ।)* वहां भावपरिवर्तन का प्रारंभ हुआ । उसी जीव के स्थितिस्थान, कषायाध्यवसायस्थान, अनुभागबंधअध्यवसायस्थान ये तीनों जघन्य ही रहे और योगस्थान दूसरा हुआ जो जघन्यस्थान से असंख्यातभागवृद्धिवाला है । पश्चात् स्थितिस्थानादिक तीनों तो जघन्य ही रहे और योगस्थान तीसरा हुआ । *(जब जब अनुक्रम से आगे-आगे वाला योगस्थान हो उसीको*

गिनना बीच में अन्य योगों सहित काल तो गिनना मगर योग नहीं गिनना ।) इस अनुक्रम से योग के अविभागप्रतिच्छेदों की अपेक्षा असंख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागवृद्धि, संख्यातगुणवृद्धि, असंख्यातगुणवृद्धिरूप चतुःस्थानपतित वृद्धियुक्त श्रेणी के *(जगत्श्रेणी के)* असंख्यातवें भागमात्र योगस्थान होते हैं । *(सभी योगस्थानों को क्रम से प्राप्त होकर)* उसके पश्चात् स्थितिस्थान और कषायअध्यवसायस्थान तो जघन्य ही रहे और अनुभागबंधअध्यवसायस्थान का दूसरा स्थान हुआ तथा योगस्थान पूर्वोक्त प्रकार से जघन्य से लेकर उत्कृष्ट तक सब हुये ।

पश्चात् स्थितिस्थान और कषायाध्यवसायस्थान तो जघन्य ही रहे, और अनुभागबंधअध्यवसाय का तीसरा स्थान हुआ । वहां भी योगस्थान पूर्वोक्त प्रकार हुये। इसी क्रम से अपने योग्य असंख्यातलोकप्रमाण अनुभागबंधअध्यवसायस्थान हुये ।

उसके पश्चात् स्थितिस्थान तो जघन्य ही रहा और कषायाध्यवसायस्थान दूसरा हुआ वहां पूर्वोक्त प्रकार से योगस्थानों से युक्त *(जघन्य से लेकर उत्कृष्ट तक पलटते हुये योगस्थानों सहित)* अनुभागअध्यवसायस्थान जघन्य से लेकर उत्कृष्ट तक हुये ।

उसके पश्चात् स्थितिस्थान तो जघन्य ही रहा और कषायाध्यवसायस्थान तीसरा हुआ वहां भी पूर्वोक्त प्रकार से योगस्थानों से युक्त क्रम से अनुभागबंधअध्यवसायस्थान हुये । इसी क्रम से अपने योग्य कषायाध्यवसायस्थान असंख्यातलोकप्रमाण हुये ।

पुनश्च जिसप्रकार अंतःकोडाकोडि सागरप्रमाण इस जघन्य स्थितिस्थान में अनुक्रम कहा है, उसीप्रकार जघन्य से एक समय अधिक ऐसे दूसरे स्थितिस्थान में अपने योग्य योगस्थान और अनुभागबंधअध्यवसायस्थान इनके परिवर्तन के साथ पूर्वोक्त प्रकार क्रम से अपने योग्य सभी कषायाध्यवसायस्थान हुये ।

पुनश्च इसीप्रकार जघन्य स्थिति से दो समय अधिक तीसरे स्थितिस्थान में हुये। ऐसे एक-एक समय से बढ़ते हुये स्थितिस्थानों के अनुक्रम से तीस कोडाकोडि सागर प्रमाण उत्कृष्ट स्थिति तक जानना ।

पुनश्च जैसे यह ज्ञानावरण कर्म की अपेक्षा कथन किया वैसे ही कर्मों की सभी मूलप्रकृति और उत्तरप्रकृतियों में परिवर्तन का अनुक्रम जानना । ऐसे यह सब मिलकर एक भावपरिवर्तन जानना । यहां जघन्य स्थिति आदि में सभी कषायाध्यवसायस्थान आदि का पलटना नहीं होता अपितु जघन्य स्थिति आदि में विवक्षित स्थिति में जितने

कषायाध्यवसायस्थान आदि (अनुभागअध्यवसायस्थान तथा योगस्थान) संभव हो उन्हीं का पलटना होता है, ऐसा जानना ।

उक्तं च (कहा ही है) – आर्या छंद

सर्वप्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशबंधयोग्यानि ।
स्थानान्यनुभूतानि भ्रमता भुवि भावसंसारे ।। १ ।।

लोक में भावसंसार में भ्रमण करनेवाले जीव ने प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभाग बंध के योग्य जो योगों के, कषायों के, स्थिति के स्थान हैं वे सभी भोगे हैं । यहां परिवर्तन के अनुक्रम में जघन्य स्थितिस्थान संबंधी स्थितिबंधअध्यवसायस्थान, अनुभाग-बंधअध्यवसायस्थान, योगस्थान जघन्य से लेकर उत्कृष्ट तक होते हैं, उनको आदि में रखकर सर्वोत्कृष्ट स्थिति तक अपने अपने संबंधी जघन्य से उत्कृष्ट तक स्थितिबंधअध्यव-सायादिक को स्थापित करके यथासंभव जैसे गुणस्थान प्ररूपणा में प्रमाद के भेदों के निमित्त अक्षसंचार द्वारा परिवर्तन का विधान कहा था, वैसे यहां भी अक्षसंचार द्वारा परिवर्तन का विधान जानना ।

*(**विशेषार्थ** – विवक्षित एक कर्मप्रकृति के जघन्य स्थितिबंधस्थान संबंधी इन भावों के पलटने से जितने भंग होते हैं वे इसप्रकार हैं – जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण योगस्थान × असंख्यातलोकप्रमाण अनुभागबंधअध्यवसायस्थान × असंख्यातलोकप्रमाण कषायाध्यवसायस्थान । स्थिति के एक-एक समय बढ़ानेपर उनके अपने योग्य इन स्थानों को आपस में गुणा करनेपर उतने स्थान होंगे । इसप्रकार जघन्य से उत्कृष्ट तक के स्थिति संबंधी सभी स्थितिस्थानों के सभी भंगों को जोड़नेपर एक कर्मप्रकृति के भंग हुये । इसीप्रकार सभी प्रकृतियों के सभी स्थितिस्थानों पर घटित करके सभी को मिलानेपर जो भंगों की संख्या उत्पन्न होगी उसमें किसी जीव ने प्रथम भंग से लेकर अंतिम भंग तक जब जब अनुक्रम से इन भावों को प्राप्त किया तब तो उस भंग को गिनना, बीच में क्रमभंग से अन्य भावों को प्राप्त करके अनंतकाल भी घूमे तो उन भावों को गिनती में नहीं लेना परंतु उस काल को अवश्य गिनना ।*

ये पांचों ही परिवर्तन मिथ्यात्व अवस्था में जीव कैसे कैसे अनंतकाल से भ्रमण करता आया है उस काल को बताता हैं । इस काल की अनंतता की कल्पना करनेपर जीव भय से कांप उठता है । संसार से भयभीत होगा तो ही उससे छूटने का विचार

इस जीव को आयेगा । सम्यक्त्व होनेपर इस जीव के संसार का किनारा नजदिक आता है । कोई उसी भव में सिद्ध अवस्था प्रकट करेगा या कोई मिथ्यात्व में गिरकर अधिक से अधिक अर्ध पुद्गलपरिवर्तन काल तक भ्रमण करके अंत में सिद्धअवस्था प्रकट करेगा ही । उससे अधिक उसका संसार में भटकना नहीं हो सकता ।

इन परिवर्तनों का काल देखने के पहले हम उसे दृष्टांत द्वारा समझेंगे । जैसे घड़ी में बड़ी और छोटी सूई होती हैं । बड़ी सूई जो घण्टों को बताती है और छोटी सूई जो मिनटों को बताती है, अन्य भी छोटी सूई जो सेकण्ड को बताती है । घड़ी में किसी सूई के बारह से लेकर दुबारा बारह पर आनेपर एक परिवर्तन होता है । उसमें सेकण्ड की सूई को एक परिवर्तन करने में साठ सेकण्ड अर्थात् एक मिनट लगता है, मिनटवाली सूई को एक परिवर्तन करने के लिये साठ मिनट अर्थात् एक घण्टा लगता है उतने काल में सेकण्डवाली सूई के साठ परिवर्तन होते हैं तथा जो सूई घण्टों को बताती है उसके एक परिवर्तन के लिये बारह घण्टे लगते हैं उन बारह घण्टों में मिनटवाली सूई के सात सौ बीस(७२०) परिवर्तन और सेकण्डवाली सूई के तैंतालीस हजार दो सौ (४३२००) परिवर्तन होते हैं । यहां द्रव्यपरिवर्तनादि में क्रम से द्रव्यपरिवर्तन का काल अनंत होनेपर भी सब से अल्प है । अनुक्रम से आगे आगे के परिवर्तनों का काल अनंतगुणा है । इसलिये एक भावपरिवर्तन में अनंत भवपरिवर्तन, उनसे अनंतगुणे कालपरिवर्तन, उनसे अनंत-अनंत गुणे क्षेत्रपरिवर्तन और उनसे अनंत-अनंत गुणे द्रव्यपरिवर्तन होते हैं ।) ऐसे ये पंचपरिवर्तन कहे ।

अब इनका काल कहते हैं -

सब से अल्प एक पुद्गलपरिवर्तन का काल है, वह अनंत है । उससे अनंतगुणा क्षेत्रपरिवर्तन का काल है । उससे अनंतगुणा कालपरिवर्तन का काल है । उससे अनंतगुणा भवपरिवर्तन का काल है । उससे अनंतगुणा भावपरिवर्तन का काल है । इसीकारण एक जीव के अनादि से लेकर अतीत काल में भावपरिवर्तन थोड़े हुये, वे भी अनंत हुये । उनसे अनंतगुणे भवपरिवर्तन हुये । उनसे अनंतगुणे कालपरिवर्तन हुये । उनसे अनंतगुणे क्षेत्रपरिवर्तन हुये । तथा उनसे अनंतगुणे द्रव्यपरिवर्तन हुये ऐसा जानना ।

जिसप्रकार स्वर्गादि में दिन-रात्रि का अभाव है, वहां मनुष्य क्षेत्र की अपेक्षा से वर्ष आदि का प्रमाण करते हैं वैसे जहां निगोदादि जीवों में परिवर्तन का अनुक्रम

नहीं पाया जाता, वहां अन्य जीवों की अपेक्षा से परिवर्तन का काल ग्रहण करते हैं ।

उक्तं च (कहा ही है) – आर्या छंद

पंचविधे संसारे कर्मवशाज्जैनदर्शितं मुक्तेः ।
मार्गमपश्यन् प्राणी नानादुःखाकुले भ्रमति ।।

जिनमत द्वारा दिखाया हुआ जो मुक्ति का मार्ग, उसका श्रद्धान न करनेवाला प्राणी–जीव नाना प्रकार के दुःखों से आकुलित जो पांच प्रकार का संसार, उसमें भ्रमण करता है ।

इति आचार्य श्री नेमिचन्द्रसिद्धांतचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नामक संस्कृत टीका के अनुसार सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषाटीका में जीवकाण्ड में प्ररूपित जो बीस प्ररूपणा उनमें से भव्यमार्गणा प्ररूपणा नामक सोलहवां अधिकार पूर्ण हुआ ।।१६।।

सत्रहवां अधिकार : सम्यक्त्वमार्गणा प्ररूपणा

॥ मंगलाचरण ॥

ज्ञान उदधि शशि कुंथु जिन, बंदौ अमितविकास ।
कुंथ्वादिक कीए सुखी जनम मरण करि नाश ॥

आगे सम्यक्त्वमार्गणा को कहते हैं –

छप्पंचणवविहाणं अत्थाणं जिणवरोवइट्ठाणं ।
आणाए अहिगमेण य सद्दहणं होइ सम्मत्तं ॥५६१॥

षट्पञ्चनवविधानामर्थानां जिनवरोपदिष्टानाम् ।
आज्ञाया अधिगमेन च श्रद्धानं भवति सम्यक्त्वम् ॥५६१॥

टीका – द्रव्यभेद से छह प्रकार, अस्तिकायभेद से पांच प्रकार, पदार्थभेद से नौ प्रकार के, ऐसे सर्वज्ञदेव ने कहे हुये जीवादिक पदार्थ (वस्तु) उनका श्रद्धान-रुचि-यथावत् प्रतीति, वह सम्यक्त्व जानना । सो सर्वज्ञदेव ने जैसे कहा है वैसा ही है ऐसे आप्तवचन से सामान्य निर्णयरूप है लक्षण जिसका ऐसी जो आज्ञा, उसके द्वारा प्रमाण-नय आदि के विशेष जाने बिना ही श्रद्धान होता है । अथवा प्रत्यक्ष-परोक्ष प्रमाण तथा द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक नय तथा नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव निक्षेप तथा व्याकरणादि द्वारा साधित निरुक्ति तथा निर्देश, स्वामित्व आदि अनुयोग इत्यादि द्वारा विशेष निर्णयरूप है लक्षण जिसका ऐसा जो अधिगम, उसके द्वारा श्रद्धान होता है।

उक्तं च (कहा ही है) –

सरागवीतरागात्म-विषयत्वाद् द्विधा स्मृतम् ।
प्रशमादिगुणं पूर्वं परं चात्मविशुद्धिजम् ॥१॥

सम्यक्त्व दो प्रकार का है एक सराग, एक वीतराग । वहां उपशम, संवेग, आस्तिक्य आदि गुणरूप रागसहित श्रद्धान हो, वह सरागसम्यक्त्व है । तथा केवल चैतन्यमात्र आत्मस्वरूप की विशुद्धता मात्र वीतरागसम्यक्त्व है ।

उक्तं च (कहा ही है) –

आप्त व्रते श्रुते तत्त्वे चित्तमस्तित्वसंयुतम् ।
आस्तिक्यमास्तिकैरुक्तं सम्यक्त्वेन युते नरे ।।

सम्यग्दृष्टि जीव के सर्वज्ञदेव में, व्रत में, शास्त्र में, तत्त्व में ये ऐसे ही हैं इसप्रकार के अस्तित्वभाव से युक्त चित्त होता है, वह सम्यक्त्वसहित जीव में आस्तिक्य गुण है। ऐसा अस्तित्ववादियों द्वारा कहा है अथवा **'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्'** ऐसा कहा है (तत्त्वार्थ सूत्र-अध्याय १, सूत्र २) अथवा **'तत्त्वरुचिः सम्यक्त्वम्'** ऐसा कहा है (अष्टपाहुड-मोक्षपाहुड-गाथा ३८), ये सर्व विशेषण एकार्थवाची हैं - समान अर्थवाले हैं । इन सब का अर्थ यह जानना कि यथार्थ स्वरूप सहित पदार्थों का श्रद्धान वह सम्यक्त्व है ।

उक्तं च (कहा ही है) -

प्रदेशप्रचयात्कायाः द्रवणाद्द्रव्यनामकाः ।
परिच्छेद्यत्वतस्तेऽर्थाः तत्त्वं वस्तुस्वरूपतः ।।१।।

अर्थ - सम्यक्त्व के श्रद्धान में आने योग्य जो जीवादिक पदार्थ, वे बहुत प्रदेशों के प्रचय अर्थात् समूह के धारक हैं, इसलिये उन्हें काय कहते हैं । पुनश्च अपने गुण पर्यायों को द्रवते हैं-व्यापते हैं, इसलिये द्रव्य कहते हैं । पुनश्च जीव द्वारा जानने योग्य हैं इसलिये अर्थ कहते हैं । पुनश्च वस्तुस्वरूपपने के धारक हैं इसलिये तत्त्व कहते हैं । ऐसे इनका सामान्य लक्षण जानना ।

आगे षट्द्रव्यों के अधिकार कहते हैं -

छदव्वेसु य णामं उवलक्खणुवाय अत्थणे कालो ।
अत्थणखेत्तं संखा ठाणसरूवं फलं च हवे ।।५६२।।

षड्द्रव्येषु च नाम उपलक्षणानुवादः अस्तित्वकालः ।
अस्तित्वक्षेत्रं संख्या स्थानस्वरूपं फलं च भवेत् ।।५६२।।

टीका - षट् द्रव्यों के वर्णन में १) नाम, २) उपलक्षणानुवाद, ३) स्थिति, ४) क्षेत्र, ५) संख्या, ६) स्थानस्वरूप, ७) फल ये सात अधिकार जानने।

१) नाम - वहां प्रथम कहे हुये नाम अधिकार को कहते हैं -

जीवाजीवं दव्वं रूवारूवि त्ति होदि पत्तेयं ।
संसारत्था रूवा कम्मविमुक्का अरूवगया ।।५६३।।

जीवाजीवं द्रव्यं रूप्यरूपीति भवति प्रत्येकम् ।
संसारस्था रूपिणः कर्मविमुक्ता अरूपगताः ।।५६३।।

टीका – सामान्य संग्रहनय की अपेक्षा से द्रव्य एक प्रकार का है । पुनश्च वही द्रव्य भेद विवक्षा से दो प्रकार का है । एक जीवद्रव्य, एक अजीवद्रव्य । वहां जीव द्रव्य दो प्रकार का है – एक रूपी, एक अरूपी; वहां जो जीव संसार अवस्था में रहते हैं उनके मूर्तिक पुद्गलों का संबंध पाया जाता है, इसलिये उनको रूपी कहते हैं । तथा सिद्ध भगवान पौद्गलिक कर्मों से मुक्त हुये हैं, इसलिये उनको अरूपी कहते हैं । पुनश्च अजीव द्रव्य भी रूपी, अरूपी के भेद से दो प्रकार के हैं । वह कहते हैं –

अज्जीवेसु य रूवी पुग्गलदव्वाणि धम्म इदरो वि ।
आगासं कालो वि य चत्तारि अरूविणो होंति ।।५६४।।

अजीवेषु रूपीणि पुद्गलद्रव्याणि धर्म इतरोऽपि ।
आकाशं कालोऽपि च चत्वारि अरूपीणि भवंति ।।५६४।।

टीका – अजीव द्रव्यों में पुद्गल द्रव्य तो रूपी है । स्पर्श, रस, गंध, वर्ण गुणयुक्त मूर्तिक है । धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य ये चार अरूपी हैं । स्पर्श, रस, गंध, वर्ण रहित अमूर्तिक हैं ।

यहां उक्तं च (कहा ही है) –

वर्णगंधरसस्पर्शैः पूरणं गलनं च यत् ।
कुर्वंति स्कंधवस्तस्मात्पुद्गलाः परमाणवः ।।

अर्थ – पूरन और गलन को जो करता है, उसे पुद्गल कहते हैं । जुड़ने का नाम पूरन है और बिछुड़ने का नाम गलन है क्योंकि स्पर्श, रस, गंध, वर्ण गुणों द्वारा पूरन गलन को स्कंधवत् करते हैं । जैसे स्कंध में कोई परमाणु मिलते हैं, कोई बिछुड़ते हैं; वैसे परमाणु में कोई वर्णादिक का भेद उत्पन्न होता है वह मिलना है

और कोई नष्ट होता है वह बिछुड़ना है । इसलिये परमाणु हैं उन्हें पुद्गल कहते हैं।

पुनश्च इसतरह परमाणुओं के पुद्गलपना होनेपर द्व्यणुक आदि स्कंधों के कैसे पुद्गलपना है ?

वह कहते हैं – कोई परमाणु मिलते हैं, कोई बिछुड़ते हैं, इसतरह प्रदेशों का पूरन गलन कर करके जो द्रवते हैं, द्रवेंगे और द्रवे हैं, इसलिये उनको पुद्गल कहते हैं । अपने स्वभावरूप परिणमने का नाम द्रवना है; इस द्रवत्व गुण से द्रव्य नाम पाता है ।

यहां प्रश्न – यदि परमाणु को अविभाग निरंश कहते हो, सो परमाणु छह कोणों से युक्त गोल आकारवाले हैं । जहां छह कोण हुये वहां छह अंश तो सहज ही आ गये, तो निरंश कैसे कहते हो ?

उक्तं च (कहा ही है) –

षट्कोणयुगपद्योगात्परमाणोः षडंशता ।
षण्णां समानदेशित्वे पिंडं स्यादणुमात्रकम् ।।१।।

अर्थ – युगपत् छह कोणों का समुदाय है इसलिये परमीणु को छह अंशपना संभवता है । छहों का समानरूप कहते हुये परमाणु मात्र पिंड होता है ।

उसका उत्तर – परमाणु के द्रव्यार्थिकनय से निरंशपना है, परंतु पर्यायार्थिकनय से छह अंश कहने में कुछ दोष नहीं है ।

उक्तं च (कहा ही है) –

आद्यंतरहितं द्रव्यं विश्लेषरहितांशकम् ।
स्कंधोपादानमत्यक्षं परमाणु प्रचक्षते ।।१।।

जो द्रव्य आदि अंत रहित है, जिसमें छह अंश पाये जाते हैं, वे कभी भी भिन्न भिन्न नहीं होते हैं; इसलिये भिन्न भाव रहित अंश के धारक हैं; तथा स्कंध ग्रहण की शक्ति का धारक है, तथा इन्द्रियगम्य नहीं है, ऐसे द्रव्य को परमाणु कहते हैं । परमाणु में कोणों की अपेक्षा से छह अंश हैं, वे अंश कभी भी भिन्न भिन्न नहीं होते। अथवा परमाणु से छोटा इस जगत में अन्य कोई पदार्थ भी नहीं है कि

जिसकी अपेक्षा से भाग कल्पना कर सकते हैं, इसलिये परमाणु को अविभाग कहते हैं । पुनश्च कोणों की अपेक्षा से छह अंश कहते हैं तो भी कुछ दोष नहीं है । तथा आदिपुराणादि में परमाणु गोल कहा है, सो यह षट्कोण युक्त आकार गोल क्षेत्र का ही भेद है इसलिये गोल कहा है । ऐसे अणु वा स्कंधरूप पुद्गल द्रव्य तो रूपी अजीव द्रव्य जानना । तथा धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य ये चारों अरूपी अजीव द्रव्य जानने । इति नामाधिकारः (नामाधिकार समाप्त हुआ)।

२) लक्षण –

उवजोगो वण्णचऊ लक्खणमिह जीवपोग्गलाणं तु ।
गदिठाणोग्गहवत्तणकिरियुवयारो दु धम्मचऊ ।।५६५।।

उपयोगो वर्णचतुष्कं लक्षणमिह जीवपुद्गलानां तु ।
गतिस्थानावगाहवर्तनक्रियोपकारस्तु धर्मचतुर्णाम् ।।५६५।।

टीका – द्रव्य के लक्षण कहते हैं । वहां जीव और पुद्गलों के लक्षण (क्रमशः) उपयोग और वर्णचतुष्क जानना । वहां दर्शन-ज्ञान उपयोग जीवों का लक्षण है । वर्ण, गंध, रस, स्पर्श पुद्गलों का लक्षण है । पुनश्च गति, स्थान, अवगाह, वर्तनारूप क्रिया का उपकार (निमित्त) ये धर्मादि चार द्रव्यों के लक्षण हैं । वहां गतिहेतुत्व धर्मद्रव्य का लक्षण है, स्थितिहेतुत्व अधर्मद्रव्य का लक्षण है, अवगाहहेतुत्व आकाशद्रव्य का लक्षण है, वर्तनाहेतुत्व कालद्रव्य का लक्षण है ।

गदिठाणोग्गहकिरिया जीवाणं पुग्गलाणमेव हवे ।
धम्मतिये ण हि किरिया मुक्खा पुण साधगा होंति ।।५६६।।

गतिस्थानावगाहक्रिया जीवानां पुद्गलानामेव भवेत् ।
धर्मत्रिके न हि क्रिया मुख्याः पुनः साधका भवंति ।।५६६।।

टीका – गति, स्थिति, अवगाह ये तीन क्रियायें जीव और पुद्गल ही के पायी जाती हैं । वहां प्रदेश से प्रदेशांतर को प्राप्त होना, वह गति क्रिया है । गमन करके कहीं रुकना वह स्थिति क्रिया है । गति-स्थिति सहित वास करना (ठहरना-रहना), वह अवगाह क्रिया है । पुनश्च धर्म, अधर्म, आकाश में ये क्रिया नहीं हैं; क्योंकि इनके स्थानचलन, प्रदेशचलन का अभाव है । वहां अपने स्थान को छोड़कर

अन्य स्थान को प्राप्त होना, वह स्थानचलन है और प्रदेशों का चंचलरूप होना, वह प्रदेशचलन है । पुनश्च धर्मादिक द्रव्य गति, स्थिति, अवगाह क्रिया के मुख्य साधक हैं ।

जीव, पुद्गलों की जो गति, स्थिति, अवगाह क्रिया होती हैं, उनको वे निमित्तमात्र ही हैं; वह कहते हैं –

जत्तस्स पहं ठत्तस्स आसणं णिवसगस्स वसदी वा ।
गदिठाणोग्गहकरणे धम्मतियं साधगं होदि ।।५६७।।

यातस्य पंथाः तिष्ठतः आसनं निवसकस्य वसतिर्वा ।
गतिस्थानावगाहकरणे धर्मत्रयं साधकं भवति ।।५६७।।

टीका – जैसे, गमन करनेवालों को पंथ अर्थात् मार्ग कारण है, रुकनेवालों को आसन अर्थात् स्थान कारण है, निवास करनेवालों को वसतिका अर्थात् निवास करने का क्षेत्र कारण है; वैसे गति, स्थिति, अवगाह के कारण धर्मादिक द्रव्य हैं। जैसे वे पंथादिक स्वयं तो गमनादि नहीं करते और जीवों को प्रेरक होकर गमनादि नहीं कराते, परंतु जो स्वयमेव गमनादि करते हैं, उनको कारणभूत होते हैं । सो कारण इतना ही है कि जहां पंथादिक हो, वहां ही वे गमनादिरूप प्रवर्तते हैं । वैसे धर्मादि द्रव्य स्वयं गमनादि नहीं करते, पुद्गलों को प्रेरक होकर गमनादि क्रिया नहीं कराते हैं, स्वयमेव ही गमनादि क्रियारूप प्रवर्तनेवाले जो जीव और पुद्गल, उनको सहकारी कारण होते हैं । सो कारण इतना ही है कि धर्मादिक द्रव्य जहां हो, वहां ही जीव और पुद्गल गमनादि क्रियारूप प्रवर्तते हैं ।

वत्तणहेदू कालो वत्तणगुणमविय दव्वणिचयेसु ।
कालाधारेणेव य वट्टंति हु सव्वदव्वाणि ।।५६८।।

वर्तनाहेतुः कालः वर्तनागुणमवेहि द्रव्यनिचयेषु ।
कालाधारेणैव च वर्तंते हि सर्वद्रव्याणि ।।५६८।।

टीका – णिच् प्रत्यय संयुक्त जो **वृतञ्** धातु, उसका कर्म में वा भाव में वर्तना शब्द निपजता है, इसका अर्थ यह होता है कि जो वर्तता है या वर्तनमात्र

होते हैं, उसको वर्तना कहते हैं । सो धर्मादिक द्रव्य अपनी अपनी पर्यायों की निष्पत्ति में स्वयमेव वर्तमान हैं । उनके किसी बाह्य कारणभूत उपकार बिना वह प्रवृत्ति होती नहीं, इसलिये उनके उस प्रवृत्ति कराने को कारण कालद्रव्य है । इसप्रकार वर्तना कालद्रव्य का उपकार जानना । यहां **णिच्** प्रत्यय का अर्थ यह है कि जो द्रव्य की पर्यायें वर्तती हैं उनके वर्तानेवाला काल है ।

वहां प्रश्न – जैसे शिष्य पढ़ता है और उपाध्याय पढ़ाते है वहां दोनों के पठनक्रिया देखी जाती है, वैसे धर्मादिक द्रव्य प्रवर्तते हैं और काल प्रवर्ताता है, तो धर्मादिक द्रव्य के समान काल के भी उन पर्यायों के प्रवर्तनरूप क्रिया का सद्भाव हुआ ?

वहां उत्तर – ऐसा नहीं है । यहां निमित्तमात्र वस्तु को हेतु का कर्ता कहते हैं । जैसे शीतकाल में शीत (ठण्डी) के कारण शिष्य पढ़ने में समर्थ नहीं थे, वहां कारीषा की अग्नि का निमित्त हुआ, तब वे पढ़ने लग गये । वहां निमित्तमात्र देखकर ऐसा कहते हैं कि यह कारीषा की अग्नि शिष्यों को पढ़ाती है; सो यह कारीषा की अग्नि स्वयं पढ़नेरूप क्रियावान नहीं होती है, उनके पढ़ने के निमित्तमात्र है । वैसे काल स्वयं क्रियावान नहीं होता, काल के निमित्त से वे स्वयमेव परिणमते हैं । इसलिये ऐसा कहते हैं कि उनको काल प्रवर्ताता है ।

पुनश्च उस काल का निर्णय कैसे होगा ?

वह कहते हैं – समय, घडी *(चौबीस मिनट की एक घडी तथा दो घडी का एक मुहूर्त कहलाता है)* इत्यादि क्रियाविशेषों को लोक में समय आदि कहते हैं। तथा समय, घडी इत्यादि द्वारा जो पचनादि क्रिया होती है उनको लोक में पाकादिक कहते हैं । वहां उनमें काल शब्द का आरोपण करके समयकाल, घडीकाल, पाककाल इत्यादि कहते हैं, सो यह व्यवहारकाल मुख्य काल के अस्तित्व को दर्शाता है । क्योंकि जो गौण है वह मुख्य की सापेक्षतावाला होता है । जैसे किसी पुरुष को सिंह कहा वहां जाना जाता है कि जगत में कोई सिंह नामक पदार्थ पाया जाता है । ऐसे काल का निश्चय करते हैं, केवलीभगवान प्रत्यक्ष जानते हैं ।

(हमें व्यतीत होनेवाला काल- – सेकण्ड, मिनट, घण्टा ख्याल में आता है। जैसे हम कहेंगे हमने तीन घण्टे स्वाध्याय किया । इसे व्यवहारकाल कहते हैं – काल

कहा तो काल नाम की वस्तु-निश्चयकाल-मुख्यकाल अर्थात् कालद्रव्य होना ही चाहिये।)

पुनश्च छहों द्रव्य की वर्तना का कारण मुख्यकाल है । वर्तना गुण द्रव्यसमूह में ही पाया जाता है *(सभी द्रव्यों में पाया जाता है)* ऐसा होनेपर काल के आधार से सर्व द्रव्य प्रवर्तते हैं, अपनी अपनी पर्यायरूप से परिणमते हैं; इसलिये परिणमनरूप जो क्रिया तथा उनका परत्व और अपरत्व अर्थात् आगे पीछेपना, वह काल का उपकार है । (तत्त्वार्थसूत्र अध्याय ५ सूत्र २२ – 'वर्तनापरिणामक्रियापरत्वापरत्वे च कालस्य'।)

यहां प्रश्न – क्रिया का परत्व-अपरत्व तो जीव पुद्गल में है, धर्मादि अमूर्तिक द्रव्यों में कैसे संभव है ? वह कहते हैं –

धम्माधम्मादीणं अगुरुगलहुगं तु छहिं वि वड्ढीहिं ।
हाणीहिं वि वड्ढंतो हीयंतो वट्टदे जम्हा ।।५६९।।

धर्म्माधर्म्मादीनामगुरुकलघुकं तु षड्भिरपि वृद्धिभिः ।
हानिभिरपि वर्धमानं हीयमानं वर्तते यस्मात् ।।५६९।।

टीका – क्योंकि धर्म अधर्मादि द्रव्यों के अपने द्रव्यत्व के कारणभूत शक्ति के विशेषरूप अगुरुलघु नामक गुण के अविभागप्रतिच्छेद हैं, वे अनंतभागवृद्धि आदि षट्स्थानपतितवृद्धि द्वारा तो बढ़ते हैं और अनंतभागहानि आदि षट्स्थानपतितहानि द्वारा घटते हैं, इसलिये वहां ऐसे परिणमन में भी मुख्यकाल ही को कारण जानना ।

ण य परिणमदि सयं सो ण य परिणामेइ अण्णमण्णेहिं ।
विविहपरिणामियाणं हवदि हु कालो सयं हेदू ।।५७०।।

न च परिणमति स्वयं स न च परिणमयति अन्यदन्यैः ।
विविधपरिणामिकानां भवति हि कालः स्वयं हेतुः ।।५७०।।

टीका – वह काल संक्रम अर्थात् पलटना, उसके विधान द्वारा अपने गुणों द्वारा परद्रव्यरूप होकर नहीं परिणमता, तथा परद्रव्य के गुणों को अपने में नहीं परिणमाता, पुनश्च प्रेरक हेतुकर्ता होकर भी अन्य द्रव्य को अन्य गुणों सहित नहीं परिणमाता परंतु नाना प्रकार के परिणामों को धारण करते हुये द्रव्य स्वयं स्वयमेव परिणमते हैं, उनको उदासीन सहज निमित्तमात्र होता है । जैसे मनुष्य के प्रातःकाल संबंधी क्रिया को प्रातःकाल

कारण है । क्रियारूप तो स्वयमेव मनुष्य ही प्रवर्तता है परंतु उनको निमित्त मात्र प्रभात का काल (प्रातःकाल) होता है, वैसे जानना ।

कालं अस्सिय दव्वं सगसगपज्जायपरिणदं होदि ।
पज्जायावट्ठाणं सुद्धणये होदि खणमेत्तं ।।५७१।।

कालमाश्रित्यं द्रव्यं स्वकस्वकपर्यायपरिणतं भवति ।
पर्यायावस्थानं शुद्धनयेन भवति क्षणमात्रम् ।।५७१।।

टीका – काल का निमित्तरूप आश्रय पाकर जीवादिक सर्व द्रव्य स्वकीय स्वकीय पर्यायरूप परिणमते हैं । उस पर्याय का जो अवस्थान अर्थात् रहने का जो काल, वह ऋजुसूत्रनय से अर्थपर्याय अपेक्षा एक समयमात्र जानना ।

ववहारो य वियप्पो भेदो तह पज्जओ त्ति एयट्ठो ।
ववहार अवट्ठाणट्ठिदी हु ववहारकालो दु ।।५७२।।

व्यवहारश्च विकल्पो भेदस्तथा पर्याय इत्येकार्थः ।
व्यवहारावस्थानस्थितिर्हि व्यवहारकालस्तु ।।५७२।।

टीका – व्यवहार, विकल्प, भेद और पर्याय ये सब एकार्थवाची हैं । इन शब्दों का एक अर्थ है । वहां व्यंजनपर्याय का अवस्थान अर्थात् वर्तमानपना उसके द्वारा स्थिति अर्थात् काल का प्रमाण, वही व्यवहारकाल है ।

अवरा पज्जायठिदी खणमेत्तं होदि तं च समओ त्ति ।
दोण्हमणूणमदिक्कमकालपमाणं हवे सो दु ।।५७३।।

अवरा पर्यायस्थितिः क्षणमात्रं भवति सा च समय इति ।
द्वयोरण्वोरतिक्रमकालप्रमाणं भवेत् स तु ।।५७३।।

टीका – द्रव्यों के जघन्य पर्याय की स्थिति क्षणमात्र है । क्षण नाम समय का है । समीप तिष्ठनेवाले दो परमाणु मंद गमनरूप से परिणत होकर जितने काल में परस्पर उल्लंघन करते हैं, उस काल प्रमाण का नाम समय है ।

यहां प्रसंग पाकर दो गाथा कहते हैं –

णभ एय पयेसत्थो परमाणू मंदगइपवट्टंतो ।
वीयमणंतरखेत्तं जावदियं जाति तं समयकालो ।।१।।

आकाश के एक प्रदेश में स्थित परमाणु मंदगतिरूप से परिणमन करके उस प्रदेश के अनंतर दूसरे प्रदेश को जितने काल में प्राप्त हो, वह समय नामक काल है ।

वह प्रदेश कितना है ? वह कहते हैं –

जेत्ती वि खेत्तमेत्तं अणुणा रुद्धं खु गयणदव्वं च ।
तं च पदेसं भणियं अवरावरकारणं जस्स ।।२।।

परमाणु के आगे और पीछे के कारण आकाशद्रव्य है । आकाश में ऐसा कहते हैं कि यह आकाश इस परमाणु के आगे है, यह पीछे है । वह आकाशद्रव्य उस परमाणु से जितना रोका जाय, व्याप्त हो, उस क्षेत्र का नाम प्रदेश है ।

आगे व्यवहारकाल को कहते हैं –

आवलिअसंखसमया संखेज्जावलिसमूहमुस्सासो ।
सत्तुस्सासा थोवो सत्तत्थोवा लवो भणियो ।।५७४।।

आवलिरसंख्यसमया संख्येयावलिसमूह उच्छ्वासः ।
सप्तोच्छ्वासाः स्तोकः सप्तस्तोका लवो भणितः ।।५७४।।

टीका – जघन्य युक्तासंख्यात समयों का समूह, वह आवली है । तथा संख्यात आवली का समूह, वह उच्छ्वास है । वह उच्छ्वास कैसा है ?

उक्तं च (कहा ही है) –

अड्ढस्स अणलसस्स य णिरुवहदस्स य हवेज्ज जीवस्स ।
उस्सासाणिस्सासो एगो णो त्ति आहीदो ।।१।।

जो कोई मनुष्य आढ्य अर्थात् सुखी हो, आलस्य रोग आदि से रहित हो, स्वाधीन हो, उसके श्वासोच्छ्वास नामक एक प्राण कहा है, उसका काल जानना। पुनश्च सात उच्छ्वासों का समूह, वह स्तोक नामक काल है । पुनश्च सात स्तोक का समूह, वह लव नामक काल है ।

अट्ठत्तीसद्धलवा नाली बेनालियो मुहुत्तं तु ।
एगसमयेण हीणं भिण्णमुहुत्तं तदो सेसं ।।५७५।।

अष्टत्रिंशदर्धलवा नाली द्विनालिको मुहूर्तस्तु ।
एकसमयेन हीनो भिन्नमुहूर्तस्ततः शेषः ।।५७५।।

टीका – साढ़े अड़तीस लवों का समूह, वह नाली है । नाली नाम घडी का है *(२४ मिनट की एक घडी होती है)* । दो घडी का समूह, वह मुहूर्त है। इस मुहूर्त में से एक समय घटाइये तब भिन्नमुहूर्त होता है और इसी को उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त कहते हैं । यहां से आगे दो समय कम मुहूर्त इत्यादि अंतर्मुहूर्त के विशेष (भेद) जानने ।

यहां प्रासंगिक गाथा कहते हैं –

ससमयमावलिअवरं समऊणमुहुत्तयं तु उक्कस्सं ।
मज्झासंखवियप्पं वियाण अंतोमुहूत्तमिणं ।।

एक समय अधिक आवलीमात्र जघन्य अंतर्मुहूर्त है । तथा एक समय कम मुहूर्तमात्र उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त है । मध्य समय में दो समय अधिक आवली से लेकर दो समय कम मुहूर्त तक असंख्यात भेदोंवाले मध्यम अंतर्मुहूर्त हैं ऐसे जानना ।

दिवसो पक्खो मासो उडु अयणं वस्समेवमादी हु ।
संखेज्जासंखेज्जाणंताओ होदि ववहारो ।।५७६।।

दिवसः पक्षोः मासः ऋतुरयनं वर्षमेवमादिर्हि ।
संख्येयासंख्येयानंता भवंति व्यवहाराः ।।५७६।।

टीका – तीस मुहूर्तमात्र अहोरात्र (दिनरात) है । मुख्यपने पंद्रह अहोरात्र मात्र पक्ष है । दो पक्ष मात्र एक मास (महिना) है । दो मास मात्र एक ऋतु होता है तीन ऋतुमात्र एक अयन होता है । दो अयन मात्र एक वर्ष होता है । इत्यादि आवली से लेकर संख्यात, असंख्यात, अनंत पर्यंत अनुक्रम से श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, केवलज्ञान का विषयभूत व्यवहारकाल जानना ।

ववहारो पुण कालो माणुसखेत्तम्हि जाणिदव्वो दु ।
जोइसियाणं चारे ववहारो खलु समाणो त्ति ॥५७७॥

व्यवहारः पुनः कालः मानुषक्षेत्रे ज्ञातव्यस्तु ।
ज्योतिष्काणां चारे व्यवहारः खलु समान इति ॥५७७ ॥

टीका – पुनश्च व्यवहारकाल मनुष्यक्षेत्र में प्रकटरूप जानने योग्य हैं; क्योंकि मनुष्यक्षेत्र में ज्योतिषी देवों का चलने का काल *(सूर्य-चन्द्र-तारे आदि ज्योतिषियों के विमानों का भ्रमण का काल)* और व्यवहारकाल समान है ।

ववहारो पुण तिविहो तीदो वट्टंतगो भविस्सो दु ।
तीदो संखेज्जावलिहदसिद्धाणं पमाणो दु ॥५७८॥

व्यवहारः पुनस्त्रिविधोऽतीतो वर्तमानो भविष्यंस्तु ।
अतीतः संख्येयावलिहतसिद्धानां प्रमाणं तु ॥५७८॥

टीका – व्यवहारकाल तीन प्रकार का है – अतीत(भूतकाल), अनागत(भविष्यकाल), और वर्तमान । वहां अतीतकाल सिद्धराशि को संख्यात आवली से गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतना जानना । कैसे ? वह कहते हैं – छह महिने और आठ समय में छह सौ आठ जीव सिद्ध होते हैं, तो सर्व जीवराशि के अनंतवें भागप्रमाण सर्व सिद्ध कितने काल में हुये ? ऐसा त्रैराशिक करना । वहां प्रमाणराशि छह सौ आठ, फलराशि छह महिने आठ समय, इच्छाराशि सिद्धों का प्रमाण । सो फलराशि को इच्छाराशि से गुणा करके प्रमाणराशि का भाग देनेपर लब्धराशि संख्यात आवली से सिद्धों को गुणा करनेपर जो प्रमाण होता है, उतनी आयी । वही अनादि से लेकर अतीतकाल का प्रमाण जानना ।

समयो हु वट्टमाणो जीवादो सव्वपुग्गलादो वि ।
भावी अणंतगुणिदो इदि ववहारो हवे कालो ॥५७९॥

समयो हि वर्तमानो जीवात् सर्वपुद्गलादपि ।
भावी अनन्तगुणित इति व्यवहारो भवेत्कालः ॥५७९॥

टीका – वर्तमानकाल एक समय मात्र जानना । पुनश्च भावी जो अनागतकाल,

वह सर्व जीवराशि से और पुद्गलराशि से भी अनंतगुणा जानना । ऐसे व्यवहारकाल तीन प्रकार का जानना ।

कालो वि य ववएसो सब्भावरूवओ हवदि णिच्चो ।
उप्पण्णप्पद्धंसी अवरो दीहंतरट्ठाई ॥५८०॥

काल इति च व्यपदेशः सद्भावप्ररूपको भवति नित्यः ।
उत्पन्नप्रध्वंसी अपरो दीर्घान्तरस्थायी ॥५८०॥

टीका – लोक में जो काल ऐसा कहते हैं, वह मुख्यकाल के अस्तित्व को कहनेवाला है । मुख्य बिना गौण भी नहीं होता । यदि सिंह पदार्थ ही न हो तो 'यह पुरुष सिंह है' यह कैसे कहने में आयेगा ? सो मुख्यकाल द्रव्य से नित्य है तथापि पर्याय से उत्पाद व्यय का धारक है । इसलिये इसे उत्पन्नप्रध्वंसी कहते हैं। पुनश्च व्यवहारकाल है वह वर्तमानकाल की अपेक्षा उत्पाद-व्ययरूप है । इसलिये उसे उत्पन्नप्रध्वंसी कहते हैं । तथा अतीत, अनागत की अपेक्षा बहुत काल तक स्थिति का धारक है इसलिये दीर्घांतर स्थायी है । यहां प्रासंगिक श्लोक कहते हैं –

निमित्तमांतरं तत्र योग्यता वस्तुनि स्थिताः ।
बहिर्निश्चयकालस्तु निश्चितं तत्त्वदर्शिभिः ॥

उन वस्तुओं में रहनेवाली जो परिणमनरूप योग्यता वह अंतरंग निमित्त है, और उस परिणमन का निश्चयकाल बाह्यनिमित्त है ऐसे तत्त्वदर्शियों द्वारा निश्चय किया है । इति उपलक्षणानुवादाधिकारः (उपलक्षण अनुवाद अधिकार समाप्त हुआ) ।

३) *स्थिति* –

छद्दव्वावट्ठाणं सरिसं तियकालअत्थपज्जाये ।
वेंजणपज्जाये वा मिलिदे ताणं ठिदित्तदो ॥५८१॥

षड्द्रव्यावस्थानं सदृशं त्रिकालार्थपर्याये ।
व्यंजनपर्याये वा मिलिते तेषां स्थितित्वात् ॥५८१॥

टीका – अवस्थान नाम स्थिति का है; सो छहों द्रव्यों का अवस्थान समान है । किस कारण ? वह कहते हैं – सूक्ष्म वचनअगोचर क्षणस्थायी ऐसी तो अर्थपर्याय

और स्थूल, वचनगोचर, चिरस्थायी ऐसी व्यंजनपर्याय, सो त्रिकालसंबंधी अर्थपर्याय और व्यंजनपर्याय मिलकर उन सर्व ही द्रव्यों की स्थिति होती है । इसलिये सर्व द्रव्यों का अवस्थान समान कहा । सर्व द्रव्य अनादिनिधन हैं ।

आगे इसी अर्थ को दृढ़ करते हैं –

एयदवियम्मि जे अत्थपज्जया वियणपज्जया चा वि ।
तीदाणागदभूदा तावदियं तं हवदि दव्वं ।।५८२।।

एकद्रव्ये ये अर्थपर्याया व्यंजनपर्यायाश्चापि ।
अतीतानागतभूताः तावत्तद् भवति द्रव्यम् ।।५८२।।

टीका – एक द्रव्य में जो गुणों के परिणमनरूप षट्स्थानपतित वृद्धि हानि सहित अर्थपर्याय तथा द्रव्य के आकारादि परिणमनरूप व्यंजनपर्याय, वे अतीत अनागत और अपि शब्द से वर्तमान संबंधी जब तक हैं, तब तक द्रव्य जानना, क्योंकि द्रव्य उनसे जुदा नहीं है; सर्व पर्यायों का समूह, वही द्रव्य है । इति स्थित्यधिकारः (स्थिति अधिकार समाप्त हुआ) ।

४) क्षेत्र –

आगासं वज्जित्ता सव्वे लोगम्मि चेव णत्थि बहिं ।
वावी धम्माधम्मा णवट्ठिदा अचलिदा णिच्चा ।।५८३।।

आकाशं वर्जयित्वा सर्वाणि लोके चैव न संति बहिः ।
व्यापिनौ धर्माधर्मौ अवस्थितावचलितौ नित्यौ ।।५८३।।

टीका – अब क्षेत्र कहते हैं । आकाश बिना अवशेष सर्व द्रव्य लोक में ही हैं, बाह्य अलोक में नहीं हैं । उनमें से धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य तिल में तेल की भांति सर्व लोक में व्याप्त हैं, इसलिये व्यापी हैं । पुनश्च निजस्थान से स्थानांतर में जाते नहीं हैं, इसलिये अवस्थित हैं । पुनश्च एक स्थान में भी प्रदेशों का चंचलपना उनके नहीं है, इसलिये अचलित हैं । पुनश्च त्रिकाल में विनाश नहीं है, इसलिये नित्य हैं । ऐसे धर्म, अधर्मद्रव्य जानने । यहां प्रासंगिक श्लोक –

औपश्लेषिकवैषयिकावभिव्यापक इत्यपि ।
आधारस्त्रिविधः प्रोक्तः कटाकाशतिलेषु च ।।

आधार तीन प्रकार का है – औपश्लेषिक, वैषयिक, अभिव्यापक । वहां चटाई पर कुमार सो रहा है कहते हैं, वहां औपश्लेषिक आधार जानना । पुनश्च आकाश में घटादिक द्रव्य तिष्ठते हैं (रहते हैं, स्थित हैं) कहते हैं वहां वैषयिक आधार जानना। पुनश्च तिल में तेल है कहते हैं, वहां अभिव्यापक आधार जानना । सो यहां तिल में तेल की भांति लोकाकाश के सर्व प्रदेशों में धर्म, अधर्मद्रव्य अपने प्रदेशों से व्याप्त हैं । इसलिये यहां अभिव्यापक आधार है । इसीलिये आचार्यों ने धर्म-अधर्म द्रव्यों को व्यापी कहा है ।

लोगस्स असंखेज्जदिभागप्पहुदिं तु सव्वलोगो त्ति ।
अप्पपदेसविसप्पणसंहारे वावडो जीवो ।।५८४।।

लोकस्यासंख्येयभागप्रभृतिस्तु सर्वलोक इति ।
आत्मप्रदेशविसर्पणसंहारे व्यापृतो जीवः ।।५८४।।

टीका – जीव का क्षेत्र कहते हैं, वह शरीरमात्र की अपेक्षा से तो सूक्ष्म निगोद लब्धिअपर्याप्त की जघन्य अवगाहना से लेकर एक-एक प्रदेश से बढ़ते हुये, महामत्स्य की उत्कृष्ट अवगाहना तक क्षेत्र जानना । उसके ऊपर समुद्घात की अपेक्षा से वेदना समुद्घातवालों के क्षेत्र में एक-एक प्रदेश बढ़ते हुये, महामत्स्य की अवगाहना से तिगुणे लम्बे, चौड़े क्षेत्र तक क्षेत्र जानना । पुनश्च इसके ऊपर एक-एक प्रदेश बढ़ते हुये, मारणांतिक समुद्घातवाले के उत्कृष्ट क्षेत्र तक जानना । स्वयंभूरमणसमुद्र के बाह्य स्थंडिल क्षेत्र *(बाहरी भाग)* में स्थित जो महामत्स्य जब सातवें नरक में महारौरव नामक श्रेणीबद्ध बिल के प्रति मारणांतिक समुद्घात करता है, तब उसमें पांच सौ यौजन चौड़ा, अढ़ाई सौ योजन ऊंचा, प्रथम वक्रगति में एक राजू, द्वितीय वक्र में आधा राजू, तृतीय वक्र में छह राजू लम्बाईवाला उत्कृष्ट क्षेत्र होता है । वहां तक क्षेत्र जानना ।

पुनश्च उसके ऊपर केवलीसमुद्घात में लोकपूरण तक क्षेत्र जानना । सो ऐसे सर्व भेदरूप क्षेत्रों में अपने प्रदेशों का विस्तार-संकोच होनेपर जीवद्रव्य **व्यापृत** अर्थात् व्यापक होता है । संकोच होनेपर अल्पक्षेत्र में आत्मा के प्रदेश अवगाहरूप रहते हैं,

विस्तार होनेपर वे फैलकर बड़े क्षेत्र में रहते हैं । क्योंकि जीव के अवगाहना के भेद और उपपाद और समुद्घात के भेद सभी संभव हैं । इसलिये पूर्वोक्त जीव का क्षेत्र जानना ।

पोग्गलदव्वाणं पुण एयपदेसादि होंति भजणिज्जा ।
एक्केक्को दु पदेसो कालाणूणं धुवो होदि ।।५८५।।

पुद्गलद्रव्याणां पुनरेकप्रदेशादयो भवन्ति भजनीयाः ।
एकैकस्तु प्रदेशः कालाणूनां ध्रुवो भवति ।।५८५।।

टीका – पुद्गल द्रव्यों के एक प्रदेश आदि यथासंभव भजनीय अर्थात् भेद करनेयोग्य क्षेत्र जानना, वह कहते हैं – दो अणुओं का स्कंध एक प्रदेश में रहे या दो प्रदेश में रहे; तीन परमाणुओं का स्कंध एक प्रदेश या दो प्रदेश या तीन प्रदेश में रहे; ऐसा जानना । कालाणु लोकाकाश के एक एक प्रदेश में एक एक पाये जाते हैं, वे ध्रुवरूप हैं, भिन्न भिन्न सत्त्व (सत्ता)के धारक हैं इसलिये उनका क्षेत्र एक-एकप्रदेशी है ।

संखेज्जासंखेज्जाणंता वा होंति पोग्गलपदेसा ।
लोगागासेव ठिदी एगपदेसो अणुस्स हवे ।।५८६।।

संख्येयासंख्येयानंता वा भवंति पुद्गलप्रदेशाः ।
लोकाकाशे एव स्थितिरेकप्रदेशोऽणोर्भवेत् ।।५८६।।

टीका – दो अणुओं के स्कंध से लेकर पुद्गल स्कंध संख्यात, असंख्यात, अनंत परमाणुरूप हैं । तथापि वे सब लोकाकाश में ही रहते हैं । जैसे जल से सम्पूर्ण भरे हुये पात्र में क्रम से ड़ाले हुये लवण, भस्म(राख), सूई आदि एकक्षेत्रावगाहरूप रहते हैं, वैसे जानना । अविभागी परमाणु का क्षेत्र एक ही प्रदेशमात्र होता है ।

लोगागासपदेसा छद्दव्वेहिं फुडा सदा होंति ।
सव्वमलोगागासं अण्णेहिं विविज्जियं होदि ।।५८७।।

लोकाकाशप्रदेशाः षड्द्रव्यैः स्फुटाः सदा भवंति ।
सर्वमलोकाकाशमन्यैर्विवर्जितं भवति ।।५८७ ।।

टीका – लोकाकाश के प्रदेश सर्व छहों द्रव्यों से सदाकाल प्रकट व्याप्त हैं । पुनश्च अलोकाकाश सभी अन्य द्रव्यों से रहित है । इति क्षेत्राधिकारः (क्षेत्राधिकार समाप्त हुआ) ।

५) संख्या –

जीवा अणंतसंखाणंतगुणा पुग्गला हु तत्तो दु ।
धम्मतियं एक्केक्कं लोगपदेसप्पमा कालो ।।५८८।।

जीवा अनंतसंख्या अनंतगुणाः पुद्गला हि ततस्तु ।
धर्मत्रिकमेकैकं लोकप्रदेशप्रमः कालः ।।५८८।।

टीका – संख्या कहते हैं – वहां द्रव्य प्रमाण से जीवद्रव्य अनंत हैं। उनसे अनंतगुणे पुद्गल परमाणु हैं। धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य एक-एक ही हैं। क्योंकि ये तीनों अखंड द्रव्य हैं। जितने लोकाकाश के प्रदेश हैं, उतने कालाणु हैं।

लोगागासपदेसे एक्केक्के जे ट्ठिया हु एक्केक्का ।
रयणाणं रासी इव ते कालाणू मुणेयव्वा ।।५८९।।

लोकाकाशप्रदेशे एकैके ये स्थिता हि एकैकाः ।
रत्नानां राशिरिव ते कालाणवो मंतव्याः ।।५८९।।

टीका – लोकाकाश के एक-एक प्रदेश में जो एक-एक स्थित हैं तथा रत्नों की राशि में रत्न भिन्न भिन्न रहते हैं उस के समान भिन्न भिन्न रहते हैं, वे कालाणु जानने ।

ववहारो पुण कालो पोग्गलदव्वादणंतगुणमेत्तो ।
तत्तो अणंतगुणिदा आगासपदेसपरिसंखा ।।५९०।।

व्यवहारः पुनः कालः पुद्गलद्रव्यादनंतगुणमात्रः ।
तत अनंतगुणिता आकाशप्रदेशपरिसंख्या ।।५९०।।

टीका – व्यवहारकाल जो समयरूप है वह पुद्गल द्रव्य से अनंतगुणा जानना। उनसे अनंतगुणा सर्व आकाश के प्रदेशों की संख्या जाननी ।

लोगागासपदेसा धम्माधम्मेगजीवगपदेसा ।
सरिसा हु पदेसो पुण परमाणुअवट्ठिदं खेत्तं ।।५९१।।

लोकाकाशप्रदेशा धर्माधर्मैकजीवगप्रदेशाः ।
सदृशा हि प्रदेशः पुनः परमाण्ववस्थितं क्षेत्रम् ।।५९१।।

टीका – लोकाकाश के प्रदेश, धर्मद्रव्य के प्रदेश, अधर्मद्रव्य के प्रदेश और एक जीवद्रव्य के प्रदेश सभी संख्या से समान हैं क्योंकि ये सर्व जगत्श्रेणी के घनप्रमाण हैं । पुद्गल परमाणु जितना क्षेत्र रोकता है, वह प्रदेश का प्रमाण है । इसलिये जघन्य क्षेत्र और जघन्य द्रव्य अविभागी है ।

आगे क्षेत्रप्रमाण से छहों द्रव्यों का प्रमाण कहते हैं । वहां जीवद्रव्य अनंतलोक प्रमाण हैं । लोकाकाश के प्रदेशों से अनंतगुणे हैं । कैसे ? वह त्रैराशिक द्वारा कहते हैं – प्रमाणराशि लोक, फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि जीवद्रव्य का प्रमाण। सो फलराशि से इच्छाराशि को गुणा करके प्रमाणराशि का भाग देनेपर लब्धराशि जीवराशि को लोक का भाग दे, इतना आया । सो यह शलाका का प्रमाण आया । पुनश्च प्रमाणराशि एक शलाका, फलराशि लोक, इच्छाराशि पूर्वोक्त शलाका का प्रमाण । सो पूर्वोक्त शलाका का प्रमाण जीवराशि को लोक का भाग देनेपर अनंत आया, उतना जानना। इस अनंत को फलराशि लोक से गुणा करके प्रमाणराशि एक का भाग देनेपर, लब्धराशि अनंतलोकप्रमाण हुयी । इसलिये जीवद्रव्य अनंतलोकप्रमाण कहे । ऐसे ही सर्वत्र कालप्रमाणादिक में त्रैराशिक द्वारा साधन कर लेना ।

पुनश्च जीवों से पुद्गल अनंतगुणे हैं । पुनश्च धर्म, अधर्म, लोकाकाश और कालद्रव्य ये लोकमात्र प्रदेशों के धारक हैं । व्यवहारकाल पुद्गलद्रव्य से अनंतगुणे हैं । अलोकाकाश के प्रदेश काल से अनंतगुणे हैं ।

पुनश्च कालप्रमाण से जीवद्रव्य का प्रमाण कहते हैं – प्रमाणराशि अतीतकाल, फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि जीवों का प्रमाण जानना । यहां लब्धराशि मात्र शलाका अनंत हुयी । पुनश्च प्रमाणराशि एक शलाका, फलराशि अतीतकाल, इच्छाराशि पूर्वोक्त शलाकाप्रमाण । सो पूर्वोक्त प्रकार से फल से इच्छा को गुणा करके प्रमाण का भाग देनेपर लब्धराशिप्रमाण अतीत काल से अनंतगुणा जीवों का प्रमाण जानना।

इनसे पुद्गलद्रव्य, व्यवहारकाल के समय और अलोकाकाश के प्रदेश क्रम से अनंतगुणे अनंतगुणे अनंत अतीतकाल मात्र जानना ।

पुनश्च धर्मादिक का प्रमाण कहते हैं - प्रमाणराशि कल्पकाल, फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि लोकप्रमाण, वहां लब्धराशिप्रमाण शलाका असंख्यात हुयी । पुनश्च प्रमाणराशि एक शलाका, फलराशि कल्पकाल, इच्छाराशि पूर्वोक्त शलाका प्रमाण । सो पूर्वोक्त प्रकार से करनेपर लब्धराशि असंख्यात कल्पप्रमाण धर्म, अधर्म, लोकाकाश, काल ये चारों जानने । बीस कोडाकोडी सागर के संख्यात पल्य हुये, उसप्रमाण कल्पकाल है । इससे असंख्यातगुणे धर्म, अधर्म, लोकाकाश, कालद्रव्य के प्रदेश हैं ।

पुनश्च भावप्रमाण द्वारा जीवद्रव्य के प्रमाण में प्रमाणराशि जीवद्रव्य का प्रमाण, फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि केवलज्ञान, लब्धप्रमाण शलाका अनंत । पुनश्च प्रमाणराशि शलाका का प्रमाण, फलराशि केवलज्ञान, इच्छाराशि एक शलाका । सो पूर्वोक्त प्रकार से करनेपर लब्धराशिप्रमाण केवलज्ञान के अनंतवें भागमात्र जीवद्रव्य जानने । वे पुद्गल, काल, अलोकाकाश की अपेक्षा चार बार अनंत का भाग केवलज्ञान के अविभागप्रतिच्छेदों के प्रमाण को देनेपर जो प्रमाण आये, उतने जीवद्रव्य हैं । उनसे अनंतगुणे पुद्गल हैं। उनसे अनंतगुणे काल के समय हैं । उनसे अनंतगुणे अलोकाकाश के प्रदेश हैं । वे भी केवलज्ञान के अनंतवें भाग ही हैं । पुनश्च धर्मादिक के प्रमाण में प्रमाणराशि लोक, फलराशि एक शलाका, इच्छाराशि अवधिज्ञान के भेद, लब्धराशिप्रमाण शलाका असंख्यात हुयी । पुनश्च प्रमाणराशि शलाका का प्रमाण, फलराशि अवधिज्ञान के भेद, इच्छाराशि एक शलाका, सो पूर्वोक्त प्रकार से करनेपर अवधिज्ञान के जितने भेद हैं, उसके असंख्यातवें भागप्रमाण धर्म, अधर्म, लोकाकाश, काल इन चारों के एक-एक प्रदेशों का प्रमाण हुआ। इति संख्याधिकारः (संख्या अधिकार समाप्त हुआ) ।

६) *स्थानस्वरूप* -

सव्वमरूवी दव्वं अवट्ठिदं अचलिआ पदेसा वि ।
रूवी जीवा चलिया तिवियप्पा होंति हु पदेसा ।।५९२।।

सर्वमरूपि द्रव्यमवस्थितमचलिताः प्रदेशा अपि ।
रूपिणो जीवाश्चलितास्त्रिविकल्पा भवंति हि प्रदेशाः ।।५९२।।

टीका – सर्व अरूपी द्रव्य अर्थात् मुक्त जीव, धर्म, अधर्म, आकाश और काल अवस्थित हैं, अपने स्थान से चलते नहीं है । पुनश्च इनके प्रदेश भी अचलित ही हैं, एक स्थान में भी चलित नहीं है । पुनश्च रूपी जीव अर्थात् संसारी जीव चलित हैं, स्थान से स्थानांतर में गमनादि करते हैं । पुनश्च संसारी जीवों के प्रदेश तीन प्रकार के हैं – विग्रहगति में सर्व चलित ही हैं, अयोगकेवली गुणस्थान में अचलित ही हैं, अवशेष जीव रहे उनके आठ प्रदेश तो अचलित हैं और शेष प्रदेश चलित हैं । योगरूप परिणमन से इस आत्मा के अन्य प्रदेश तो चलित होते हैं और आठ प्रदेश तो अकंप ही रहते हैं ।

पोग्गलदव्वम्हि अणू संखेज्जादी हवंति चलिदा हु ।
चरिममहक्खंधम्मि य चलाचल होंति पदेसा ।।५९३।।

पुद्गलद्रव्ये अणवः संख्यातादयो भवन्ति चलिता हि ।
चरममहास्कन्धे च चलाचला भवंति हि प्रदेशाः ।।५९३।।

टीका – पुद्गल द्रव्य में परमाणु और द्व्यणुक आदि संख्यात, असंख्यात, अनंत परमाणुओं के स्कंध चलित हैं । अंतिम महास्कंध के कितने ही परमाणु अचलित हैं अपने स्थान से त्रिकाल में स्थानांतर को प्राप्त नहीं होते । तथा कितने ही परमाणु चलित हैं, वे यथायोग्य चंचल होते हैं ।

अणुसंखासंखेज्जाणंता य अगेज्जगेहि अंतरिया ।
आहारतेजभासामणकम्मइया धुवक्खंधा ।।५९४।।
सांतरणिरंतरेण य सुण्णा पत्तेयदेहधुवसुण्णा ।
बादरणिगोदसुण्णा सुहुमणिगोदा णभो महक्खंधा ।।५९५।।जुम्मं।

अणुसंख्यातासंख्यातानन्ताश्च अग्राह्यकाभिरन्तरिताः ।
आहारतेजोभाषामनःकार्माण ध्रुवस्कन्धाः ।।५९४।।
सान्तरनिरन्तरया च शून्या प्रत्येकदेहध्रुवशून्याः ।
बादरनिगोदशून्याः सूक्ष्मनिगोदा नभो महास्कन्धाः ।।५९५।।युग्मम्।

टीका – पुद्गल द्रव्य के भेदरूप जो वर्गणा, वे तेइस भेदयुक्त हैं –

१) अणुवर्गणा, २) संख्याताणुवर्गणा, ३) असंख्याताणुवर्गणा, ४) अनंतानुवर्गणा, ५) आहारवर्गणा, ६) अग्राह्यवर्गणा, ७) तेजसशरीरवर्गणा, ८) अग्राह्यवर्गणा, ९) भाषावर्गणा, १०) अग्राह्यवर्गणा, ११) मनोवर्गणा, १२) अग्राह्यवर्गणा, १३) कार्माणवर्गणा, १४) ध्रुववर्गणा, १५) सांतरनिरंतरवर्गणा १६) शून्यवर्गणा, १७) प्रत्येकशरीरवर्गणा, १८) ध्रुवशून्यवर्गणा, १९) बादरनिगोदवर्गणा, २०) शून्यवर्गणा, २१) सूक्ष्मनिगोदवर्गणा, २२) नभोवर्गणा, २३) महास्कंधवर्गणा ये तेइस भेद जानने ।

यहां प्रासंगिक श्लोक कहते हैं -

मूर्तिसत्सु पदार्थेषु संसारिण्यपि पुद्‌गलः ।
अकर्मकर्मनोकर्मजातिभेदेषु वर्गणा ।।१।।

मूर्तिक पदार्थों में और संसारी जीव में पुद्‌गल शब्द प्रवर्तता है । पुनश्च अकर्मजाति, कर्मजाति और नोकर्मजाति के जो पुद्‌गल उनमें वर्गणा शब्द प्रवर्तता है । सो अब यहां तेइस जाति की वर्गणा में कितने कितने परमाणु पाये जाते हैं, उसका प्रमाण कहते हैं ।

वहां अणुवर्गणा तो एक एक परमाणुरूप है । इसमें जघन्य, उत्कृष्ट, मध्यम भेद भी नहीं हैं । अन्य बाइस वर्गणा में भेद हैं । वहां जघन्य और उत्कृष्ट भेद कहते हैं, सो जघन्य के ऊपर एक एक परमाणु बढ़ाते हुये उत्कृष्ट के नीचे के एक तक बढ़ानेपर जितने भेद होते हैं, उतने मध्य के भेद जानने ।

संख्याताणुवर्गणा में जघन्य दो अणुओं का स्कंध है और उत्कृष्ट तो उत्कृष्टसंख्यात अणुओं का स्कंध है ।

असंख्याताणुवर्गणा में जघन्य तो जघन्य परीतासंख्यात परमाणुओं का स्कंध है और उत्कृष्ट तो उत्कृष्टअसंख्यातासंख्यात परमाणुओं का स्कंध है । यहां विवक्षित वर्गणा लाने के लिये गुणकार का ज्ञान करना हो तो, विवक्षित वर्गणा को उसके नीचे की वर्गणा का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, वही गुणकार का प्रमाण जानना। उस गुणकार से नीचे की वर्गणा को गुणा करनेपर विवक्षित वर्गणा होती है । जैसे विवक्षित तीन अणुओं का स्कंध और नीचे दो अणुओं का स्कंध, वहां तीन को दो का भाग देनेपर डेढ़ आया, वही गुणकार है । दो को डेढ़ से गुणा करनेपर तीन होते हैं, ऐसे सर्वत्र जानना ।

पुनश्च यहां संख्याताणुवर्गणा, असंख्याताणुवर्गणा में जघन्य का भाग उत्कृष्ट को देनेपर जो प्रमाण आता है, वही जघन्य का गुणकार जानना । इस गुणकार से जघन्य को गुणित करनेपर उत्कृष्ट भेद होता है ।

उसके ऊपर अनंताणुवर्गणा में उत्कृष्ट असंख्याताणुवर्गणा से एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है और जघन्य को सिद्धराशि के अनंतवें भाग मात्र जो अनंत उससे गुणा करनेपर उत्कृष्ट भेद होता है ।

उसके ऊपर आहारवर्गणा में उत्कृष्ट अनंताणुवर्गणा से एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है तथा इस जघन्य को सिद्धराशि के अनंतवें भागमात्र अनंत का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, उतने जघन्य से अधिक होनेपर उत्कृष्ट भेद होता है ।

उसके ऊपर अग्राह्यवर्गणा है । उसमें उत्कृष्ट आहारवर्गणा से एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है तथा जघन्य भेद को सिद्धराशि के अनंतवें भागमात्र अनंत से गुणा करनेपर उत्कृष्ट भेद होता है ।

उसके ऊपर तेजसशरीरवर्गणा है । उसमें उत्कृष्ट अग्राह्यवर्गणा से एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है । इस जघन्य को सिद्धराशि के अनंतवें भागमात्र अनंत का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है उतने जघन्य से अधिक होनेपर उत्कृष्ट भेद होता है ।

उसके ऊपर अग्राह्यवर्गणा है । उसमें उत्कृष्ट तेजसवर्गणा से एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है । इस जघन्य को सिद्धराशि के अनंतवें भागमात्र अनंत से गुणा करनेपर उत्कृष्ट भेद होता है ।

उसके ऊपर भाषावर्गणा है । उसमें उत्कृष्ट अग्राह्यवर्गणा से एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है । इस जघन्य को सिद्धराशि के अनंतवें भागमात्र अनंत का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, उतने जघन्य से अधिक होनेपर उत्कृष्ट भेद होता है ।

उसके ऊपर अग्राह्यवर्गणा है । उसमें उत्कृष्ट भाषावर्गणा से एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है । इस जघन्य को सिद्धराशि के अनंतवें भागमात्र अनंत से

गुणा करनेपर उत्कृष्ट भेद होता है ।

उसके ऊपर मनोवर्गणा है । उसमें उत्कृष्ट अग्राह्यवर्गणा से एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है । इस जघन्य को सिद्धराशि के अनंतवें भागमात्र अनंत का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, उतने जघन्य से अधिक होनेपर उत्कृष्ट भेद होता है ।

उसके ऊपर अग्राह्यवर्गणा है । उसमें उत्कृष्ट मनोवर्गणा से एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है । इस जघन्य को सिद्धराशि के अनंतवें भागप्रमाण अनंत से गुणा करनेपर उत्कृष्ट भेद होता है ।

उसके ऊपर कार्माणवर्गणा है । उसमें उत्कृष्ट अग्राह्यवर्गणा से एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है । इस जघन्य को सिद्धराशि के अनंतवें भागप्रमाण अनंत का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, उतने जघन्य से अधिक होनेपर उत्कृष्ट भेद होता है ।

उसके ऊपर ध्रुववर्गणा है । वहां उत्कृष्ट कार्माणवर्गणा से एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है । इस जघन्य को अनंतगुणा जीवराशि मात्र अनंत से गुणा करनेपर उत्कृष्ट भेद होता है ।

उसके ऊपर सांतरनिरंतरवर्गणा है । वहां उत्कृष्ट ध्रुववर्गणा से एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है । इस जघन्य को अनंतगुणा जीवराशि के प्रमाण से गुणा करनेपर उत्कृष्ट भेद होता है ।

ऐसी जो ये अणुवर्गणा से लेकर पंद्रह वर्गणा कही, वे सदृश परिणाम सहित, एक एक वर्गणा लोक में अनंत पुद्गल राशि के वर्गमूल प्रमाण पायी जाती हैं परंतु कुछ हीन हीन क्रम से पायी जाती हैं । वहां प्रतिभागहार सिद्धराशि के अनंतवें भागमात्र है । इस कथन को विशेष से आगे कहेंगे ।

उसके ऊपर शून्यवर्गणा है । वहां उत्कृष्ट सांतरनिरंतरवर्गणा से एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है । इस जघन्य को अनंतगुणा जीवराशि के प्रमाण से गुणा करनेपर उत्कृष्ट भेद होता है । ऐसे सोलह वर्गणा सिद्ध हुयी ।

उसके ऊपर प्रत्येकशरीरवर्गणा है । एक शरीर एक जीव का हो उसको प्रत्येकशरीर

कहते हैं । वहां जो विस्रसोपचय सहित कर्म और नोकर्म उनका एक स्कंध, उसको प्रत्येकशरीरवर्गणा कहते हैं । वहां उत्कृष्ट शून्यवर्गणा से एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है । सो यह जघन्य भेद कहां पाया जाता है ? वह कहते हैं-

जिसके कर्म के अंश क्षयरूप हुये हैं ऐसा कोई क्षपितकर्मांशिक जीव, वह कोटिपूर्व वर्ष प्रमाण आयु का धारक मनुष्य होकर, अंतर्मुहूर्त अधिक आठ वर्ष के ऊपर सम्यक्त्व और संयम दोनों एक साथ अंगीकार करके सयोग केवली हुआ वह कुछ कम कोटिपूर्व तक औदारिकशरीर और तेजसशरीर की तो जिसप्रकार कहा है उसप्रकार निर्जरा करता हुआ और कार्माणशरीर की गुणश्रेणी निर्जरा करता हुआ, अयोगकेवली के अंतिम समय को प्राप्त हुआ; उसके आयु कर्म, औदारिक, तेजसशरीर अधिक नाम, गोत्र, वेदनीय कर्म के परमाणुओं के समूहरूप जो औदारिक, तेजस, कार्माण इन तीन शरीरों का स्कंध, वह जघन्य प्रत्येकशरीरवर्गणा है । इस जघन्य को पल्य के असंख्यातवें भाग से गुणा करनेपर उत्कृष्ट प्रत्येकशरीरवर्गणा होती है । वह कहां पायी जाती है ? वह कहते हैं –

नंदीश्वर नामक द्वीप में अकृत्रिम चैत्यालय हैं । वहां धूप के घड़े हैं । उनमें वा स्वयंभूरमणद्वीप में उत्पन्न दावानल उनमें, जो बादर पर्याप्त अग्निकाय जीव हैं वहां असंख्यात आवली के वर्गप्रमाण जीवों के शरीरों का एक स्कंध है । वहां गुणित कर्मांशिक अर्थात् जिनके कर्मों का संचय बहुत हैं ऐसे जीव बहुत भी हो तो आवली के असंख्यातवें भागमात्र होते हैं, इनका विस्रसोपचय सहित औदारिक, तेजस, कार्माण इन तीन शरीरों का जो एक स्कंध, वह उत्कृष्ट प्रत्येकशरीरवर्गणा है ।

उसके ऊपर ध्रुवशून्यवर्गणा है । वहां उत्कृष्ट प्रत्येकशरीरवर्गणा से एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है । इस जघन्य को सब मिथ्यादृष्टि जीवों का जो प्रमाण, उसको असंख्यात लोक का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, उससे गुणा करनेपर उत्कृष्ट भेद होता है ।

उसके ऊपर बादरनिगोदवर्गणा है । सो बादर निगोद जीवों का विस्रसोपचय सहित कर्म–नोकर्मवर्गणाओं का जो एक स्कंध उसको बादरनिगोदवर्गणा कहते हैं । सो उत्कृष्ट ध्रुवशून्यवर्गणा से एक परमाणु अधिक जघन्य बादरनिगोदवर्गणा है । वह कहां पायी जाती है ? वह कहते हैं –

क्षय किये है कर्म अंश जिसने ऐसा कोई क्षपितकर्मांशिक जीव, वह कोटिपूर्व वर्षप्रमाण आयु का धारी मनुष्य होकर गर्भ से अंतर्मुहूर्त अधिक आठ वर्ष के ऊपर सम्यक्त्व और संयम को युगपत् अंगीकार करके, कुछ कम कोटिपूर्व वर्षों तक कर्मों की गुणश्रेणी निर्जरा करता हुआ जब सिद्धपद पाने को एक अंतर्मुहूर्त शेष रहा तब क्षपकश्रेणी चढ़कर उत्कृष्ट कर्मनिर्जरा को करता हुआ क्षीणकषाय गुणस्थानवर्ती हुआ। उसके शरीर में जघन्य वा उत्कृष्ट आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण पुलवी एकबंधनरूप बंधी पायी जाती हैं क्योंकि सर्व स्कंधों में पुलवी असंख्यात लोकप्रमाण कही हैं । एक-एक पुलवी में असंख्यातलोकप्रमाण शरीर पाये जाते हैं । तथा एक एक शरीर में सिद्धों से अनंतगुणे संसारीराशि के असंख्यातवें भागमात्र जीव पाये जाते हैं । सो आवली के असंख्यातवें भाग को असंख्यातलोक से गुणा करनेपर वहां शरीरों का प्रमाण हुआ । उसको एक शरीर में निगोद जीवों का जो प्रमाण, उससे गुणा करनेपर जो प्रमाण आया उतना वहां एक स्कंध में बादर निगोद जीवों का प्रमाण जानना। उन जीवों के क्षीणकषाय गुणस्थान के पहले समय में अनंत जीव (निगोद) स्वयमेव अपने आयु के नाश से मरते हैं । पहले समय में जितने मरते हैं उनसे, उसको आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, उतने अधिक जीव दूसरे समय में मरते हैं । इसी अनुक्रम से क्षीणकषाय के प्रथम समय से लेकर पृथक्त्व आवली प्रमाण काल तक मरते हैं । पश्चात् पूर्व पूर्व समयसंबंधी मरे हुये जीवों के प्रमाण को आवली के संख्यातवें भाग का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है उतने पहले पहले समय से अधिक प्रतिसमय मरते हैं । सो क्षीणकषाय गुणस्थान का काल आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण अवशेष रहे वहां तक इसी अनुक्रम से मरते हैं। उसके अनंतर समय में पहले पहले समय में मरे हुये जीवों के प्रमाण को पल्य के असंख्यातवें भाग से गुणा करनेपर जितने हो, उतने-उतने मरते हैं । उसके पश्चात् संख्यात पल्यों से पूर्व पूर्व समय संबंधी मरे हुये जीवों को गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतने उतने मरते हैं । सो ऐसा क्षीणकषाय गुणस्थान के अंत समय तक जानना । वहां अंतिम समय में जो जुदे जुदे असंख्यात लोकप्रमाण शरीरों से संयुक्त ऐसी आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण पुलवी, उनमें से जो गुणितकर्मांशिक जीव मरे उनसे हीन अवशेष जो अनंतानंत जीव गुणितकर्मांशिक रहे, उनका विस्रसोपचय सहित औदारिक, तेजस, कार्माण तीन शरीरों के परमाणुओं का जो एक स्कंध, वही जघन्य बादरनिगोदवर्गणा है । पुनश्च

इस जघन्य को जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग से गुणा करनेपर उत्कृष्ट बादरनिगोदवर्गणा होती है । वह कैसे पायी जाती है ? वह कहते हैं -

स्वयंभूरमण नामक द्वीप में जो मूला आदि से लेकर सप्रतिष्ठित प्रत्येक वनस्पति हैं उनके शरीरों में एक बंधन में बंधे हुये जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र पुलवी हैं । उनमें रहनेवाले जो गुणितकर्मांशिक जीव अनंतानंत पाये जाते हैं । उनका विस्रसोपचय सहित औदारिक, तेजस, कार्माण तीन शरीरों के परमाणुओं का एक स्कंध, वही उत्कृष्ट बादरनिगोदवर्गणा है ।

उसके ऊपर तृतीय शून्यवर्गणा है । वहां उत्कृष्ट बादरनिगोदवर्गणा से एक प्रदेश अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है । इस जघन्य को सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग से गुणा करनेपर उत्कृष्ट भेद होता है ।

उसके ऊपर सूक्ष्मनिगोदवर्गणा है, सो सूक्ष्म निगोद जीवों का विस्रसोपचय सहित कर्म नोकर्म परमाणुओं का एक स्कंधरूप जानना । वहां उत्कृष्ट शून्यवर्गणा से एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है । सो जघन्य भेद कैसे पाया जाता है? वह कहते हैं -

जल में, स्थल में और आकाश में जहां वहां एक बंधन में बंधी ऐसी जो आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण पुलवी उनमें क्षपितकर्मांश अनंतानंत सूक्ष्म निगोद जीव हैं । उनका विस्रसोपचय सहित औदारिक, तेजस, कार्माण तीन शरीरों के परमाणुओं का जो एक स्कंध, वही जघन्य सूक्ष्मनिगोदवर्गणा है ।

यहां प्रश्न - बादरनिगोद उत्कृष्ट वर्गणा में पुलवी श्रेणी के असंख्यातवें भागप्रमाण कही और जघन्य सूक्ष्मनिगोदवर्गणा में पुलवी आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण कही। इसलिये बादरनिगोदवर्गणा के पहले इसको कहना युक्त था, क्योंकि पुलवी के बहुत प्रमाण से परमाणुओं का भी बहुत प्रमाण होता है ?

उसका समाधान - यद्यपि यहां पुलवी कम कही हैं तथापि बादरनिगोदवर्गणा संबंधी निगोद शरीरों से सूक्ष्मनिगोदवर्गणा संबंधी शरीरों का प्रमाण सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग गुणा है, इसलिये वहां जीव भी बहुत हैं । उन जीवों के तीन शरीरों संबंधी परमाणु भी बहुत हैं । इसलिये बादरनिगोदवर्गणा के बाद सूक्ष्मनिगोदवर्गणा कही है। पुनश्च जघन्य सूक्ष्मनिगोदवर्गणा को पल्य के असंख्यातवें भाग से गुणा करनेपर उत्कृष्ट

सूक्ष्मनिगोदवर्गणा होती है । वह कैसे पायी जाती है ? वह कहते हैं –

यहां महामत्स्य के शरीर में एक स्कंधरूप आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण पुलवी पायी जाती हैं । वहां गुणितकर्मांशिक अनंतानंत जीवों का विस्रसोपचय सहित औदारिक, तेजस, कार्माण तीन शरीरों के परमाणुओं का एक स्कंध, वही उत्कृष्ट सूक्ष्मनिगोदवर्गणा है ।

उसके ऊपर नभोवर्गणा है । वहां उत्कृष्ट सूक्ष्मनिगोदवर्गणा से एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है । इस जघन्य भेद को जगत्प्रतर के असंख्यातवें भाग से गुणा करनेपर उत्कृष्ट भेद होता है ।

उसके ऊपर महास्कंध है । वहां उत्कृष्ट नभोवर्गणा से एक परमाणु अधिक होनेपर जघन्य भेद होता है । इस जघन्य को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, उसको जघन्य में मिलानेपर उत्कृष्ट महास्कंध के परमाणुओं का प्रमाण आता है । ऐसे एक पंक्ति द्वारा तेइस वर्गणा कही ।

आगे जो अर्थ कहा है उसीको संकोचन करके उन वर्गणाओं ही के उत्कृष्ट, जघन्य, मध्य भेदों को और अल्पबहुत्व को छह गाथाओं द्वारा कहते हैं –

परमाणुवग्गणम्मि ण अवरुक्कस्सं च सेसगे अत्थि ।
गेज्झमहक्खंधाणं वरमहियं सेसगं गुणियं ।।५९६।।

परमाणुवर्गणायां न अवरोत्कृष्टं च शेषके अस्ति ।
ग्राह्यमहास्कंधानां वरमधिकं शेषकं गुणितम् ।।५९६।।

टीका – परमाणुवर्गणा में जघन्य उत्कृष्ट भेद नहीं है क्योंकि अणु अभेद है। अवशेष बाइस वर्गणाओं में जघन्य उत्कृष्ट भेद पाये जाते हैं । वहां ग्राह्य अर्थात् जीव के ग्रहण करने योग्य ऐसी आहार, तेजस, भाषा, मनः, कार्माण वर्गणा हैं । यहां आहारवर्गणा से आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति ये चार पर्याप्ति होती हैं, तेजसवर्गणा से तेजसशरीर होता है, भाषावर्गणा से वचन होता है, मनोवर्गणा से मन निपजता है, कार्माणवर्गणा से ज्ञानावरणादिक कर्म होते हैं इसलिये इन पांच वर्गणाओं को ग्राह्यवर्गणा कहा है ।ये पांच और एक महास्कंध इन छहों वर्गणाओं का उत्कृष्ट तो अपने अपने जघन्य से कुछ अधिक प्रमाण सहित है और

अवशेष सोलह वर्गणाओं का उत्कृष्ट भेद अपने अपने जघन्य को गुणकार से गुणा करनेपर होता है ।

सिद्धाणंतिमभागो पडिभागो गेज्झगाण जेट्ठट्ठं ।
पल्लासंखेज्जदिमं अंतिमखंधस्स जेट्ठट्ठं ।।५९७।।

सिद्धानंतिमभागः प्रतिभागो ग्राह्याणां ज्येष्ठार्थम् ।
पल्यासंख्येयमंतिमस्कंधस्य ज्येष्ठार्थम् ।।५९७।।

टीका – ग्राह्य पांच वर्गणाओं के उत्कृष्ट भेद के लिये सिद्धराशि के अनंतवें भागमात्र प्रतिभाग है । अपने-अपने जघन्य को सिद्धराशि के अनंतवें भाग का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है उतना जघन्य में मिलानेपर अपना-अपना उत्कृष्ट भेद होता है । तथा अंतिम महास्कंध के उत्कृष्ट भेद के लिये पल्य का असंख्यातवें भागमात्र प्रतिभाग है । महास्कंध के जघन्य को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर जो प्रमाण होता है, उतना जघन्य में मिलानेपर उत्कृष्ट महास्कंध होता है ।

संखेज्जासंखेज्जे गुणगारो सो दु होदि हु अणंते ।
चत्तारि अगेज्जेसु वि सिद्धाणमणंतिमो भागो ।।५९८।।

संख्यातासंख्यातायां गुणकारः स तु भवति हि अनंतायाम् ।
चतसृषु अग्रह्यास्वपि सिद्धानामनंतिमो भागः ।।५९८।।

टीका – संख्याताणुवर्गणा और असंख्याताणुवर्गणा में अपने-अपने उत्कृष्ट को अपने-अपने जघन्य का भाग देनेपर जो प्रमाण हो, वही गुणकार जानना । इस गुणकार से जघन्य को गुणा करनेपर उत्कृष्ट भेद होता है । पुनश्च अनंताणुवर्गणा में तथा जीव द्वारा ग्रहण योग्य नहीं है ऐसी चार अग्राह्यवर्गणा में गुणकार सिद्धराशि का अनंतवां भागमात्र है । इससे जघन्य को गुणा करनेपर उत्कृष्ट भेद होता है ।

जीवादोणंतगुणो धुवादितिण्हं असंखभागो दु ।
पल्लस्स तदो तत्तो असंखलोगवहिदो मिच्छो ।।५९९।।

जीवादनंतगुणो ध्रुवादितिसृणामसंख्यभागस्तु ।
पल्यस्य ततस्ततः असंख्यलोकावहिता मिथ्या ।।५९९।।

टीका - पुनश्च ध्रुवादिक तीन वर्गणाओं में जीवराशि से अनंतगुणा गुणकार है । इससे जघन्य को गुणा करनेपर उत्कृष्ट होता है । प्रत्येकशरीरवर्गणा में पल्य का असंख्यातवां भागमात्र गुणकार है । इससे जघन्य को गुणा करनेपर उत्कृष्ट होता है । किस कारण ? वह कहते हैं - प्रत्येकशरीरवर्गणा में जो कार्माणशरीर है उसमें समयप्रबद्ध गुणितकर्मांश जीव संबंधी है; इसलिये जघन्य समयप्रबद्ध के परमाणुओं के प्रमाण से इसका प्रमाण पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग गुणा है । उसकी सहनानी बत्तीस का अंक है । इसलिये यहां पल्य के असंख्यातवें भाग का गुणकार कहा है । पुनश्च ध्रुवशून्यवर्गणा में मिथ्यादृष्टि जीवों को असंख्यात लोक का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, उतना गुणकार है । इससे जघन्य को गुणा करनेपर उत्कृष्ट होता है ।

सेढीसूईपल्लाजगपदरासंखभागगुणगारा ।
अप्पप्पणअवरादो उक्कस्से होंति णियमेण ।।६००।।

श्रेणीसूचीपल्य जगत्प्रतरासंख्यभागगुणकाराः ।
आत्मात्मनोवरादुत्कृष्टे भवंति नियमेन ।।६००।।

टीका - जगत्श्रेणी का असंख्यातवां भाग, सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग, पल्य का असंख्यातवां भाग और जगत्प्रतर का असंख्यातवां भाग ये अनुक्रम से बादरनिगोदवर्गणा, शून्यवर्गणा, सूक्ष्मनिगोदवर्गणा और नभोवर्गणा इनमें गुणकार है । इनसे अपने-अपने जघन्य को गुणा करनेपर उत्कृष्ट भेद होता है । यहां शून्यवर्गणा में सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग का गुणकार कहा है, सो सूक्ष्मनिगोदवर्गणा के जघन्य में से एक हीन होनेपर उत्कृष्ट शून्यवर्गणा होती है इसलिये कहा है । सूक्ष्मनिगोदवर्गणा में पल्य का असंख्यातवां भाग गुणकार कहा है; सो उसके उत्कृष्ट का कार्माणशरीर संबंधी समयप्रबद्ध गुणितकर्मांश जीव संबंधी है इसलिये कहा है । ऐसी ये तेइस वर्गणा एक पंक्ति अपेक्षा कही।

अब नाना पंक्ति अपेक्षा कहते हैं । नाना पंक्ति क्या है ? जो ये वर्गणा कही, वे वर्गणा लोक में वर्तमान किसी एक काल में कितनी कितनी पायी जाती हैं इस अपेक्षा से कहते हैं -

परमाणुवर्गणा से लेकर सांतरनिरंतरवर्गणा तक पंद्रह वर्गणा समान परमाणुओं के स्कंधरूप हैं, वे लोक में पुद्गल द्रव्यों के प्रमाण के वर्गमूल को अनंतगुणा करनेपर

जो प्रमाण हो उतनी-उतनी पायी जाती हैं । वहां इतना विशेष है कि ऊपर कुछ हीन-हीन पायी जाती हैं । वहां प्रतिभागहार सिद्धराशि का अनंतवां भागमात्र है । वह कहते हैं -

लोक में जितनी अणुवर्गणा पायी जाती हैं, उस प्रमाण को सिद्धराशि के अनंतवें भाग का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है उतना अणुवर्गणा के प्रमाण में से घटानेपर जो प्रमाण रहता है उतनी दो परमाणुओं के स्कंधरूप संख्याताणुवर्गणा जगत में पायी जाती हैं । इसको सिद्धराशि के अनंतवें भाग का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है उतना उसी में से घटानेपर जो प्रमाण रहता है, उतनी तीन परमाणुओं के स्कंधरूप संख्याताणुवर्गणा लोक में पायी जाती हैं । इसी अनुक्रम से एक-एक अधिक परमाणु का स्कंध का प्रमाण करते हुये जहां उत्कृष्ट संख्याताणुवर्गणा हुयी वहां जो प्रमाण आया उसको सिद्धराशि के अनंतवें भाग का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है उतना उसी में से घटानेपर जो अवशेष रहे, उतनी जघन्य असंख्याताणुवर्गणा लोक में पायी जाती हैं । इसको ऐसा ही भाग देकर घटानेपर जो प्रमाण रहे उतनी मध्य असंख्याताणुवर्गणा के प्रथम भेदरूप वर्गणा लोक में पायी जाती हैं । सो ऐसे ही एक-एक अधिक परमाणु के स्कंध का प्रमाण अनुक्रम से सांतरनिरंतरवर्गणा के उत्कृष्ट तक जानना । सामान्य से सर्व जुदी जुदी वर्गणाओं का प्रमाण पुद्गलराशि के वर्गमूल से अनंतगुणा मात्र जानना ।

पुनश्च प्रत्येकशरीरवर्गणा का जघन्य तो पूर्वोक्त अयोगकेवली के अंतिम समय में पाया जाता है सो उत्कृष्टपने चार पायी जाती हैं । तथा उत्कृष्ट प्रत्येकशरीरवर्गणा स्वयंभूरमण द्वीप के दावानलादि में पायी जाती हैं सो उत्कृष्टपने आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण पायी जाती हैं । पुनश्च बादरनिगोदवर्गणा का जघन्य तो पूर्वोक्त क्षीणकषाय गुणस्थान के अंतिम समय में पाया जाता है, सो उत्कृष्टपने चार पायी जाती हैं । और बादरनिगोदवर्गणा का उत्कृष्ट महामत्स्यादिक में पाया जाता है, सो उत्कृष्टपने आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण पायी जाती हैं । पुनश्च सूक्ष्मनिगोदवर्गणा जघन्य तो वर्तमान काल में जल में, स्थल में वा आकाश में आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण पायी जाती हैं और सूक्ष्मनिगोदवर्गणा उत्कृष्ट भी आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण पायी जाती हैं । यहां प्रत्येकशरीरवर्गणा, बादरनिगोदवर्गणा, सूक्ष्मनिगोदवर्गणा इन तीन सचित्त वर्गणाओं के मध्य भेद वर्तमानकाल में असंख्यातलोक प्रमाण पाये जाते हैं।

पुनश्च महास्कंधवर्गणा वर्तमानकाल में जगत में एक ही है । सो भवनवासियों के भवन, देवों के विमान, आठ पृथ्वियां, मेरुगिरि, कुलाचल इत्यादिकों के एक स्कंधरूप है।

यहां प्रश्न - जिन में असंख्यात-असंख्यात योजनों का अंतर पाया जाता है उनका एक स्कंध कैसे संभव है ?

उसका उत्तर - बीच में सूक्ष्म परमाणु हैं, सो वे विमानादिक और सूक्ष्म परमाणु इन सभी का एक बंधान है । इसलिये अंतर नहीं है, एक स्कंध है । ऐसा जो एक स्कंध है, उसी का नाम महास्कंध है ।

हेट्ठिमउक्कस्सं पुण रूवहियं उवरिमं जहण्णं खु ।
इदि तेवीसवियप्पा पुग्गलदव्वा हु जिणदिट्ठा ।।६०१।।

अधस्तनोत्कृष्टं पुनः रूपाधिकमुपरिमं जघन्यं खलु ।
इति त्रयोविंशतिविकल्पानि पुद्गलद्रव्याणि हि जिनदिष्टानि ।।६०१।।

टीका - तेइस वर्गणाओं में से अणुवर्गणा को छोड़कर शेष वर्गणाओं के नीचे का जो उत्कृष्ट भेद है उसमें एक अधिक होनेपर उसके ऊपर की वर्गणा का जघन्य भेद होता है । ऐसे तेइस वर्गणाभेद से युक्त पुद्गल द्रव्य जिनदेव ने कहे हैं । इनमें से प्रत्येकशरीरवर्गणा, बादरनिगोदवर्गणा और सूक्ष्मनिगोदवर्गणा ये तीन सचित्त हैं, जीव सहित हैं, सो इनका विशेष कहते हैं -

अयोगीकेवली के अंतिम समय में पायी जाती है ऐसी जघन्य प्रत्येकशरीरवर्गणा लोक में होती भी है या नहीं भी होती, यदि होती है तो एक ही होती है, या दो होती हैं, या तीन होती हैं, उत्कृष्ट हो तो चार होती हैं । पुनश्च जघन्य से एक परमाणु अधिक ऐसी मध्य प्रत्येकशरीरवर्गणा, सो लोक में होती है या नहीं होती, यदि होती है तो एक या दो या तीन या उत्कृष्टपने से चार होती हैं । ऐसे ही एक-एक परमाणु बढ़ाने से इसी अनुक्रम से जब अनंत वर्गणा होगी, तब उसके अनंतर एक परमाणु अधिक वर्गणा, सो लोक में होती है या नहीं होती । यदि होती है तो एक या दो या तीन या चार या उत्कृष्टपने पांच होती हैं । ऐसे एक एक परमाणु बढ़ते हुये अनंतवर्गणा तक पांच ही उत्कृष्ट है । उसके अनंतर जो वर्गणा है, वह होती है या नहीं होती । यदि होती है तो एक या दो या तीन या उत्कृष्ट छह

होती हैं । ऐसे अनंत वर्गणा पर्यंत उत्कृष्ट छह ही होती हैं । पुनश्च इसी अनुक्रम से अनंतअनंत वर्गणा तक उत्कृष्ट सात, आठ, सात, छह, पांच, चार, तीन, दो वर्गणा जगत में समान परमाणुओं के प्रमाणवाली होती हैं । यह यवमध्य प्ररूपणा है । जैसे यव नामक अन्न का मध्य मोटा होता है, वैसे यहां मध्य में वर्गणा आठ कही। पहले या पश्चात् थोड़ी थोड़ी कही । इसलिये इसको यवमध्य प्ररूपणा कहते हैं । सो यह प्ररूपणा मुक्तिगामी भव्य जीवों की अपेक्षा से है । ऐसी *(यहां तक)* प्रत्येकशरीरवर्गणा समान वर्गणा संसारी जीवों के नहीं पायी जाती । यहां से आगे संसारी जीवों के पायी जाती हैं ऐसी प्रत्येकशरीरवर्गणा कहते हैं –

सो ऊपर कथन किया उसके अनंतर, पूर्व के प्रत्येकशरीरवर्गणा से एक परमाणु अधिकतावाली जो प्रत्येकशरीरवर्गणा, सो जगत में होती है या नहीं होती । यदि होती है तो एक या दो या तीन इत्यादि उत्कृष्ट आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण होती हैं । इसीप्रकार अनंतवर्गणा होनेपर अनंतर जो प्रत्येकशरीरवर्गणा, वह लोक में होती है या नहीं होती, यदि होती है तो एक या दो या तीन, उत्कृष्ट आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण-पूर्व प्रमाण से एक अधिक होती हैं । ऐसी अनंत अनंत वर्गणा होनेपर एक एक अधिक प्रमाण उत्कृष्ट में होता जाय, जहां यवमध्य हो, वहां तक ऐसे जानना। यवमध्य में जितने परमाणुओं के स्कंधरूप प्रत्येकशरीरवर्गणा हुयी, उतने-उतने परमाणुओं के स्कंधरूप प्रत्येकशरीरवर्गणा जगत में होती है या नहीं होती, यदि होती है तो एक या दो या तीन, उत्कृष्ट आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण होती हैं । यह प्रमाण इससे पूर्वप्रमाण से एक अधिक जानना । ऐसी अनंत वर्गणा होनेपर, अनंतर जो वर्गणा हुयी, वह जगत में होती है या नहीं होती, यदि होती है तो एक या दो या तीन, उत्कृष्ट आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण होती हैं । सो यह प्रमाण यवमध्य संबंधी पूर्व प्रमाण से एक कम जानना ।

इसप्रकार एक एक परमाणु बढ़ने से एक एक वर्गणा होती है । अनंतअनंत वर्गणा होनेपर उत्कृष्ट में से एक एक घटाना जहां तक उत्कृष्ट प्रत्येकशरीरवर्गणा होती है वहां तक ऐसे करना । उत्कृष्ट प्रत्येकशरीरवर्गणा लोक में होती है या नहीं होती, यदि होती है तो एक या दो या तीन, उत्कृष्ट आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण होती हैं । इसप्रकार प्रत्येकशरीरवर्गणा भव्यसिद्ध, अभव्यसिद्ध इनकी अपेक्षा से कही।

पुनश्च बादरनिगोदवर्गणा का कथन भी प्रत्येकशरीरवर्गणावत् जानना, कुछ विशेष

नहीं है । जैसे प्रत्येकशरीरवर्गणा में अयोगी के अंतिम समय में होनेवाली जघन्य वर्गणा से लेकर भव्यसिद्ध अपेक्षा से कथन किया है, वैसे यहां क्षीणकषायी के अंतिम समय में होनेवाली उसके शरीर के आश्रित जघन्य बादरनिगोदवर्गणा, उसको आदि लेकर भव्यसिद्ध अपेक्षा कथन जानना । सामान्य संसारी अपेक्षा से दोनों जगह समानता होती है ।

अब सूक्ष्मनिगोदवर्गणा का कथन करते हैं - यहां भव्यसिद्ध अपेक्षा तो कथन है नहीं । इसलिये जघन्य सूक्ष्मनिगोदवर्गणा लोक में होती है या नहीं होती, यदि होती है तो एक या दो या तीन, उत्कृष्ट आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण होती हैं । आगे जैसे संसारी की अपेक्षा से प्रत्येकशरीरवर्गणा का कथन किया, वैसे ही यवमध्य तक अनंतानंत वर्गणा होनेपर उत्कृष्ट में एक एक बढ़ाना । पश्चात् उत्कृष्ट सूक्ष्मनिगोदवर्गणा तक एक-एक घटाना । सामान्यपने सर्वत्र उत्कृष्ट का प्रमाण आवली के असंख्यातवें भाग कहते हैं । यहां सर्वत्र संसारी सिद्ध के योग्य ऐसी जो प्रत्येकशरीरवर्गणा, बादरनिगोदवर्गणा, सूक्ष्मनिगोदवर्गणा उनके यवाकार प्ररूपणा में गुणहानि का गच्छ जीवराशि से अनंतगुणा जानना । नानागुणहानिशलाका का प्रमाण यवमध्य के ऊपर और नीचे आवली के असंख्यातवें भागप्रमाण जानना ।

भावार्थ - संसारी की अपेक्षा से प्रत्येकशरीरवर्गणा, बादरनिगोदवर्गणा, सूक्ष्मनिगोदवर्गणा में जो यवमध्य की प्ररूपणा कही वहां लोक में पाये जाने की अपेक्षा से जितने एक-एक परमाणु बढ़नेरूप वर्गणा के भेद हैं, उन भेदों का जो प्रमाण है वह तो द्रव्य है। जिन वर्गणाओं में उत्कृष्ट पाये जाने की अपेक्षा से समानता पायी जाती हैं उनका समूह वह निषेक है, निषेकों का जो प्रमाण वह स्थिति है । एक गुणहानि में निषेकों का जो प्रमाण, वह गुणहानि का गच्छ है । उसका प्रमाण जीवराशि से अनंतगुणा है । यवमध्य के ऊपर और नीचे गुणहानियों का प्रमाण, वह नानागुणहानि है, वह प्रत्येक आवली के असंख्यातवें भागमात्र है । इसतरह द्रव्यादिक का प्रमाण जानकर जैसे निषेकों में द्रव्य प्रमाण लाने का विधान है, वैसे उत्कृष्ट पाये जाने की अपेक्षा से समानरूप जो वर्गणा उनका प्रमाण यवमध्य के ऊपर और नीचे चय घटते क्रम युक्त जानना ।

यहां प्रश्न - यहां तो प्रत्येकशरीरवर्गणा आदि तीन सचित्त वर्गणा के अनंत भेद कहे, एक एक भेदरूप वर्गणा लोक में आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण सामान्यपने कही। परंतु पहले मध्यभेदरूप सचित्त वर्गणा सर्व असंख्यात लोकप्रमाण ही कही, सो

उत्कृष्ट जघन्य बिना सर्व भेद मध्यभेद में आ गये, वहां ऐसा प्रमाण कैसे संभव है?

उसका समाधान – यहां सर्व भेदों में ऐसा कहा है कि होती भी है या नहीं भी होती और यदि होती हैं तो एक या दो इत्यादि उत्कृष्ट आवली के असंख्यातवें भाग प्रमाण होती हैं । सो नानाकाल अपेक्षा यह कथन है । पुनश्च वहां एक किसी विवक्षित वर्तमानकाल अपेक्षा वर्तमानकाल में सर्व मध्यभेदरूप प्रत्येकशरीरवर्गणा आदि असंख्यात लोकप्रमाण ही पायी जाती हैं । अधिक नहीं पायी जाती । उनमें किसी भेदरूप वर्गणाओं की नास्ति ही है । किसी भेदरूप वर्गणा एक आदि प्रमाणवाली हैं। किसी भेदरूप वर्गणा उत्कृष्ट प्रमाणवाली पायी जाती हैं ऐसा समझना । इसप्रकार तेइस वर्गणाओं का वर्णन किया ।

पुढवी जलं च छाया चउरिंदियविसयकम्मपरमाणू ।
छव्विहभेयं भणियं पोग्गलदव्वं जिणवरेहिं ।।६०२।।

पृथ्वी जलं च छाया चतुरिंद्रियविषयकर्मपरमाणवः ।
षड्विधभेदं भणितं पुद्गलद्रव्यं जिनवरैः ।।६०२।।

टीका – पृथ्वी, जल, छाया, नेत्रों को छोड़कर अन्य चार इन्द्रियों का विषय, कार्माण स्कंध और परमाणु ऐसे छह प्रकार के पुद्गल द्रव्य जिनेश्वर देवों ने कहे हैं ।

बादरबादर बादर बादरसुहुमं च सुहुमथूलं च ।
सुहुमं च सुहुमसुहुमं धरादियं होदि छब्भेयं ।।६०३।।

बादरबादरं बादरं बादरसूक्ष्मं च सूक्ष्मस्थूलं च ।
सूक्ष्मं च सूक्ष्मसूक्ष्मं धरादिकं भवति षड्भेदम् ।।६०३।।

टीका – पृथ्वीरूप पुद्गल द्रव्य बादरबादर है । जो पुद्गल स्कंध छेदने के, भेदने के तथा अन्य जगह ले जाने के योग्य हो उस स्कंध को बादरबादर कहते हैं । पुनश्च जल है वह बादर है । जो छेदने के, भेदने के योग्य न हो, अन्य जगह ले जाने के योग्य हो, वे स्कंध बादर जानने । पुनश्च छाया बादरसूक्ष्म है । जो छेदने के, भेदने के तथा अन्य जगह ले जाने के योग्य न हो, वे स्कंध बादरसूक्ष्म हैं । पुनश्च नेत्र बिना अन्य चार इन्द्रियों के विषय सूक्ष्मस्थूल हैं। पुनश्च कार्माण के

स्कंध सूक्ष्म हैं । जो द्रव्य देशावधि, परमावधि के गोचर *(जानने में आये)* हैं, वे सूक्ष्म हैं। पुनश्च परमाणु सूक्ष्मसूक्ष्म है। जो सर्वावधि के गोचर हैं, वे सूक्ष्मसूक्ष्म हैं।

यहां एक-एक वस्तु का उदाहरण कहा है । सो पृथ्वी, काष्ठ, पाषाण इत्यादि बादरबादर हैं । जल, तेल, दुग्ध आदि बादर हैं । छाया, आतप, चांदनी इत्यादि बादरसूक्ष्म हैं । शब्द गंधादिक सूक्ष्मबादर हैं । जो स्कंध इन्द्रियगम्य नहीं है, देशावधि परमावधिगम्य हो वे स्कंध सूक्ष्म हैं । परमाणु सूक्ष्मसूक्ष्म हैं ऐसे जानना ।

खंधं सयलसमत्थं तस्स य अद्धं भणंति देसो त्ति ।
अद्धद्धं च पदेसो अविभागी चेव परमाणू ।।६०४।।

स्कंधं सकलसमर्थं तस्य चार्धं भणंति देशमिति ।
अर्द्धार्द्धं च प्रदेशमविभागिनं चैव परमाणुम् ।।६०४।।

टीका - जो सर्व अंशों में सम्पूर्ण हो उसे स्कंध कहते हैं, उसके आधे को देश कहते हैं, उस आधे के आधे को प्रदेश कहते हैं, जिसका भाग न हो उसे परमाणु कहते हैं ।

भावार्थ - विवक्षित स्कंध में सम्पूर्ण स्कंध से लेकर एक परमाणु अधिक आधे तक की तो स्कंध संज्ञा है । आधे से लेकर एक परमाणु अधिक चौथाई *(चतुर्थ भाग)* तक देश संज्ञा है । चौथाई से लेकर दो परमाणुओं के स्कंध तक प्रदेश संज्ञा है । अविभागी की परमाणु संज्ञा है । इति स्थानस्वरूपाधिकारः (स्थानस्वरूप अधिकार समाप्त हुआ) ।

७) फल -

गदिठाणोग्गहकिरियासादणभूदं खु होदि धम्मतियं ।
वत्तणकिरियासाहणभूदो णियमेण कालो दु ।।६०५।।

गतिस्थानावगाहक्रियासाधनभूतं खलु भवति धर्मत्रयम् ।
वर्तनाक्रियासाधनभूतो नियमेन कालस्तु ।।६०५।।

टीका - क्षेत्र से क्षेत्रांतर को प्राप्त होने के कारण उसे गति कहते हैं, गति के अभावरूप उसे स्थान *(स्थिति)* कहते हैं । अवकाश में रहने को अवगाह कहते

हैं । वहां जैसे मछलियों के गमन करने के साधनभूत जलद्रव्य है वैसे गतिक्रियावान जो जीव, पुद्गल, उनके गतिक्रिया के साधनभूत धर्मद्रव्य है । पुनश्च जैसे पथिक जनों के स्थान करने के साधनभूत छाया है वैसे स्थानक्रियावान जो जीव पुद्गल, उनके स्थानक्रिया के साधनभूत अधर्मद्रव्य है । पुनश्च जैसे वास *(निवास)* करनेवालों के साधनभूत वसतिका है, वैसे अवगाह क्रियावान जीव पुद्गलादिक द्रव्य उनके अवगाहक्रिया के साधनभूत आकाशद्रव्य है ।

यहां प्रश्न – अवगाह क्रियावान तो जीव और पुद्गल हैं । उनको अवकाश देना कहा है, वह युक्त है । परंतु धर्मादिक द्रव्य तो निष्क्रिय हैं, नित्य संबंध के धारक हैं, नवीन नहीं आये, उनको अवकाश देना होता है ऐसे यहां कैसे कहते हो? वह कहो ।

उसका समाधान – यह उपचार से कहते हैं, जैसे गमन का अभाव होते हुये भी सर्वत्र सद्भाव की अपेक्षा आकाश को सर्वगत कहते हैं, वैसे धर्मादिक द्रव्यों के अवगाह क्रिया का अभाव होते हुये भी लोक में सर्वत्र सद्भाव की अपेक्षा से अवगाह का उपचार करते हैं ।

यहां प्रश्न – यदि अवकाश देना आकाश का स्वभाव है, तो वज्रादिक से पाषाणादिक का और भींत इत्यादि से गाय इत्यादि का रोकना कैसे होता है ? वहां रोकना तो देखते हैं । इसलिये आकाश तो वहां भी था परंतु पाषाणादिक को अवगाह नहीं दिया, तब आकाश का अवगाह देना स्वभाव नहीं रहा ?

वहां उत्तर – आकाश तो अवगाह देता है परंतु पहले वहां अवगाह से रहनेवाले वज्रादिक स्थूल हैं, इसलिये परस्पर को रोकते हैं । इसमें आकाश का अवगाह देने का स्वभाव गया नहीं है । क्योंकि वहां ही अनंत सूक्ष्म पुद्गल हैं वे परस्पर अवगाह देते हैं ।

पुनः प्रश्न – यदि ऐसा है तो सूक्ष्म पुद्गलादिकों के भी अवगाहनहेतुत्व स्वभाव आया । आकाश का ही असाधारण लक्षण कैसे कहते हैं ?

वहां उत्तर – सर्व पदार्थों को साधारण अवगाहहेतुत्व इस आकाश ही का असाधारण लक्षण है । अन्य द्रव्य सर्व द्रव्यों को अवगाह देने में समर्थ नहीं है।

यहां प्रश्न - अलोकाकाश तो सर्व द्रव्यों को अवगाह नहीं देता, वहां ऐसा लक्षण कैसे संभव है ?

उसका समाधान - स्वभाव का परित्याग नहीं होता । वहां कोई द्रव्य होता तो अवगाह देता, कोई द्रव्य वहां गमनादि नहीं करते, तो अवगाह किसको दे ? उसके तो अवगाह देने का स्वभाव पाया जाता है ।

पुनश्च सर्व द्रव्यों को वर्तनाक्रिया का साधनभूत नियम से कालद्रव्य है ।

अण्णोण्णुवयारेण य जीवा वट्टंति पुग्गलाणि पुणो ।
देहादीणिव्वत्तणकारणभूदा हु णियमेण ।।६०६।।

अन्योन्योपकारेण च जीवा वर्तन्ते पुद्गलाः पुनः ।
देहादिनिर्वर्तनकारणभूता हि नियमेन ।।६०६।।

टीका - पुनश्च जीवद्रव्य हैं, वे परस्पर उपकार द्वारा प्रवर्तते हैं । जैसे स्वामी तो चाकर को धनादिक देता है और चाकर स्वामी का जैसा हित हो और अहित का निषेध हो वैसे करता है, ऐसे परस्पर उपकार है । पुनश्च आचार्य तो शिष्य को इहलोक परलोक में फल को देनेवाला उपदेश तथा क्रिया का आचरण कराना ऐसे उपकार करते हैं । शिष्य उन आचार्यों की अनुकूलवृत्ति से सेवा करते हैं । ऐसे परस्पर उपकार है। ऐसे ही अन्यत्र भी जानना । पुनश्च चकार शब्द से जीव परस्पर अनुपकार अर्थात् बुरा करना, उसरूप भी प्रवर्तते हैं अथवा उपकार अनुपकार दोनोंरूप नहीं प्रवर्तते हैं । पुनश्च पुद्गल हैं वे देहादिक अर्थात् कर्म, नोकर्म, वचन, मन, श्वासोच्छ्वास इनके निपजाने का नियम से कारणभूत हैं । ये पुद्गल के उपकार हैं ।

यहां प्रश्न - जिनका आकार देखते हैं ऐसे औदारिकादि शरीरों को पुद्गल कहो, कर्म तो निराकार है, पौद्गलिक नहीं है ।

वहां उत्तर - जैसे गेहू आदि अन्न जलादिक मूर्तिक द्रव्य के संबंध से पकाये जाते हैं वे गेहू आदि पौद्गलिक हैं । वैसे कर्म भी दण्डुका (सोटा), कंटक आदि मूर्तिक द्रव्य के संबंध से उदय अवस्थारूप होकर पाक को प्राप्त होते हैं, इसलिये पौद्गलिक ही हैं ।

वचन दो प्रकार के हैं - १) द्रव्यवचन, २) भाववचन । वहां भाववचन तो

वीर्यांतराय तथा मति-श्रुत आवरण के क्षयोपशम और अंगोपांग नामक नामकर्म के उदय के निमित्त से होते हैं, इसलिये पौद्गलिक हैं । पुद्गल के निमित्त बिना भाववचन होता नहीं । पुनश्च भाववचन के सामर्थ्य का धारक ऐसा क्रियावान जो आत्मा, उससे प्रेरित हुआ पुद्गल वचनरूप परिणमता है, उसे द्रव्यवचन कहते हैं । वह भी पौद्गलिक ही है, क्योंकि वह द्रव्यवचन कर्णेन्द्रिय का विषय है, जो इन्द्रियों का विषय है, वह पुद्गल ही है ।

यहां प्रश्न – कर्ण बिना अन्य इन्द्रियों का विषय क्यों नहीं होता ?

वहां उत्तर – जैसे गंध नासिका ही का विषय है, वह रसनादिक से ग्रहण नहीं होता; वैसे शब्द कर्ण ही का विषय है, अन्य इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण के योग्य नहीं है ।

यहां तर्क – वचन अमूर्तिक है ।

वहां उत्तर – ऐसा कहना भी अयुक्त है क्योंकि वचन मूर्तिक द्वारा ग्रहण किया जाता है तथा मूर्तिक द्रव्य द्वारा रोका जाता है और नष्ट होता है इसलिये मूर्तिक ही है ।

पुनश्च द्रव्य, भाव के भेद से मन भी दो प्रकार का है । वहां भावमन तो लब्धि उपयोगरूप है, सो क्षयोपशमादि पौद्गलादिक निमित्त से होते हैं, इसलिये पौद्गलिक ही हैं । पुनश्च ज्ञानावरण वीर्यांतराय का क्षयोपशम और अंगोपांग नामक नामकर्म का उदय इनके निमित्त से गुण दोष का विचार, स्मरण इत्यादिरूप सन्मुख हुआ जो आत्मा, उसको उपकारी जो पुद्गल, वह मनरूप होकर परिणमता है, इसलिये द्रव्यमन भी पौद्गलिक है ।

यहां कोई कहे कि मन तो एक जुदा ही द्रव्य है रूपादिरूप नहीं परिणमता, अणुमात्र है । वहां आचार्य कहते हैं – उस मन से आत्मा का संबंध है या नहीं? यदि संबंध नहीं है तो आत्मा को उपकारी नहीं होता, इन्द्रियों में प्रधानता को नहीं प्राप्त होता और यदि संबंध है तो, वह तो अणुमात्र है इसलिये एकदेश में उपकार करेगा, अन्य प्रदेशों में कैसे उपकार करता है ?

वहां तार्किक कहता है – अमूर्तिक निष्क्रिय आत्मा का एक अदृष्ट नामक गुण है । वह अदृष्ट जो कर्म उसके वश से उस मन का कुम्हार के चक्रवत् परिभ्रमण

करता है । सो ऐसा कहना भी अयुक्त है । अणुमात्र जो हो, उसके भ्रमण की समर्थता नहीं है । तथा अमूर्तिक निष्क्रिय का अदृष्ट गुण कहा है, वह दूसरों की क्रिया का आरंभ कराने को समर्थ नहीं होता । जैसे पवन स्वयं क्रियावान है, वह स्पर्श द्वारा वनस्पति को चंचल करता है । सो यह तो अणुमात्र तथा निष्क्रिय का गुण वह स्वयं क्रियावान नहीं है तो अन्य को कैसे क्रियावान प्रवर्तता है ? इसलिये मन पौद्गलिक ही है ।

पुनश्च वीर्यांतराय और ज्ञानावरण का क्षयोपशम और अंगोपांग नामक नामकर्म का उदय इनसे संयुक्त जो आत्मा, उसके निकसनेवाला (बाहर निकलनेवाला) जो कंठसंबंधी उच्छ्वासरूप पवन, उसे प्राण कहते हैं । पुनश्च उस पवन द्वारा बाह्य पवन को अभ्यंतर करनेवाला निश्वासरूप पवन, उसे अपान कहते हैं । वे प्राण-अपान जीवितव्य को कारण हैं । इसलिये उपकारी हैं । सो मन और प्राणापान ये मूर्तिक हैं । क्योंकि भय के कारण वज्रपातादिक मूर्तिक, उनसे मन का रुकना देखा जाता है । पुनश्च भय के कारण दुर्गंधादिक से या हस्तादिक से मुँह के आच्छादन से या श्लेष्मादिक से प्राण-अपान का रुकना देखते हैं, इसलिये दोनों मूर्तिक ही हैं । अमूर्तिक होते तो मूर्तिक द्वारा रुकना न होता ।

पुनश्च उसीसे आत्मा के अस्तित्व की सिद्धि होती है । जैसे कोई काष्ठादिक से उत्पन्न प्रतिबिम्ब (मूर्ति) चेष्टा करता है वहां जानते हैं कि इसमें तो स्वयं की शक्ति नहीं है, चेष्टा करानेवाला कोई पुरुष है । वैसे अचेतन जड़ शरीर में प्राणापानादिक चेष्टा होती है, उस चेष्टा का प्रेरक कोई आत्मद्रव्य अवश्य है । ऐसे आत्मा के अस्तित्व की सिद्धि होती है ।

पुनश्च सुख, दुःख, जीवित, मरण ये भी पुद्गल द्रव्य ही के उपकार हैं । वहां साता असाता वेदनीय का उदय तो अंतरंग कारण और बाह्य इष्ट-अनिष्ट वस्तु का संयोग इनके निमित्त से जो प्रीतिरूप या आतापरूप होना, वह सुख-दुःख है । पुनश्च आयुकर्म के उदय से पर्याय की स्थिति को धारण करनेवाले जीव के प्राणापान क्रियाविशेष का नाश न होना, उसे जीवित (जीवन) कहते हैं । प्राणापान क्रियाविशेष का उच्छेद होना, उसे मरण कहते हैं । सो ये सुख, दुःख, जीवित, मरण मूर्तिक द्रव्य का निमित्त निकट होनेपर ही होते हैं, इसलिये पौद्गलिक ही हैं ।

पुनश्च पुद्गल है वह मात्र जीव को ही उपकारी नहीं है, अपितु पुद्गल को भी पुद्गल उपकारी है । जैसे कांसी आदि को भस्मी आदि *(कांसे या अन्य धातु के बर्तन भस्म, राख, साबु से मांजे जाते हैं)* और जलादि को कतक फलादि *(जल में कतक फल ड़ालने से मिट्टी नीचे बैठती है ऊपर जल स्वच्छ होता है)* और लोहादि को जलादि उपकारी देखे जाते हैं, ऐसे और भी देखे जाते हैं । पुनश्च औदारिकशरीर नामकर्म, वैक्रियिकशरीर नामकर्म, आहारकशरीर नामकर्म के उदय से आहारवर्गणा से निपजे हुये तीन शरीर हैं और श्वासोच्छ्वास है । तथा तेजसशरीर नामक नामकर्म के उदय से तेजसवर्गणा से निपजा हुआ तेजसशरीर है । तथा कार्माणशरीर नामक नामकर्म के उदय से कार्माणवर्गणा से निपजा हुआ कार्माणशरीर है । तथा स्वर नामक नामकर्म के उदय से भाषावर्गणा से निपजा हुआ वचन है । पुनश्च नोइन्द्रियावरण के क्षयोपशम से युक्त संज्ञी जीव के अंगोपांग नामक नामकर्म के उदय से मनोवर्गणा से निपजा हुआ द्रव्यमन है, ऐसे ये पुद्गल के उपकार हैं ।

इसी अर्थ को दो सूत्रों द्वारा कहते हैं –

आहारवग्गणादो तिण्णि सरीराणि होंति उस्सासो ।
णिस्सासो वि य तेजोवग्गणखंधादु तेजंगं ।।६०७।।

आहारवर्गणात् त्रीणि शरीराणि भवन्ति उच्छ्वासः ।
निश्वासोऽपि च तेजोवर्गणास्कन्धात्तुतेजोऽङ्गम् ।।६०७।।

टीका – तेइस जाति की वर्गणाओं में आहारवर्गणा से औदारिक, वैक्रियिक, आहारक तीन शरीर होते हैं और उच्छ्वास निश्वास होता है । तेजसवर्गणा के स्कंधों से तेजसशरीर होता है ।

भासमणवग्गणादो कमेण भाषा मणं च कम्मादो ।
अट्ठविहकम्मदव्वं होदि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ।।६०८।।

भाषामनोवर्गणातः क्रमेण भाषा मनश्च कार्मणतः ।
अष्टविधकर्मद्रव्यं भवतीति जिनैर्निर्दिष्टम् ।।६०८।।

टीका – भाषावर्गणा के स्कंधों से चार प्रकार की भाषा होती है । मनोवर्गणा

के स्कंधों से द्रव्यमन होता है । कार्माणवर्गणा के स्कंधों से आठ प्रकार का कर्म होता है, ऐसा जिनदेव ने कहा है ।

णिद्धत्तं लुक्खत्तं बंधस्स य कारणं तु एयादी ।
संखेज्जासंखेज्जाणंतविहा णिद्धलुक्खगुणा ।।६०९।।

स्निग्धत्वं रूक्षत्वं बन्धस्य च कारणं तु एकादयः ।
संख्येयासंख्येयानन्तविधाः स्निग्धरूक्षगुणाः ।।६०९।।

टीका – बाह्य-अभ्यंतर कारण के वश से स्निग्ध पर्याय के प्रकटपने से चिकनास्वरूप होता है, वह स्निग्ध है । उसके भाव को स्निग्धत्व कहते हैं । तथा रूखारूप होता है, वह रूखा है । उसके भाव को रूक्षत्व कहते हैं । सो जल, बकरी का दूध, गाय का दूध, भैंस का दूध, ऊटनी का दूध या घृत इनमें स्निग्धगुण की हीनाधिकता देखी जाती हैं । और धूलि, वालू, रेत या तुच्छ पाषाणादि में रूक्षगुण की हीनाधिकता देखी जाती है । वैसे ही परमाणु में भी स्निग्ध रूक्ष गुण की हीनाधिकता पायी जाती है । वे स्निग्धरूक्ष गुण द्व्यणुकादि स्कंधपर्याय के परिणमन के कारण होते हैं। तथा चकार शब्द से स्कंध के बिछुड़ने के भी कारण होते हैं । स्निग्धरूप दो परमाणुओं का या रूक्षरूप दो परमाणुओं का या एक स्निग्ध और एक रूक्ष परमाणु का परस्पर जुड़नेरूप बंध होनेपर द्व्यणुक स्कंध होता है । ऐसे संख्यात, असंख्यात, अनंत परमाणुओं का स्कंध भी जानना । वहां स्निग्धगुण और रूक्षगुण अंशों की अपेक्षा संख्यात, असंख्यात, अनंत भेदयुक्त हैं ।

एयगुणं तु जहण्णं णिद्धत्तं बिगुणतिगुणसंखेज्जाऽ-
संखेज्जाणंतगुणं होदि तहा रुक्खभावं च ।।६१०।।

एकगुणं तु जघन्यं स्निग्धत्वं द्विगुणत्रिगुणसंख्येयाऽ- ।
संख्येयानन्तगुणं भवति तथा रूक्षभावं च ।।६१०।।

टीका – स्निग्धगुण जो एक गुण है, वह जघन्य है, जिसका एक अंश हो उसको एक गुण कहते हैं । उससे लेकर द्विगुण, त्रिगुण, संख्यातगुण, असंख्यातगुण, अनंतगुणरूप स्निग्धगुण जानना । वैसे ही रूक्षगुण भी जानना । केवलज्ञानगम्य सब से थोड़ा तो स्निग्धत्व रूक्षत्व उसको एक अंश मानकर उस अपेक्षा स्निग्ध रूक्ष गुणों

के अंशों का यहां प्रमाण जानना ।

एवं गुणसंजुत्ता परमाणू आदिवग्गणम्मि ठिया ।
जोग्गदुगाणं बंधे दोण्हं बंधो हवे णियमा ।।६११।।

एवं गुणसंयुक्ताः परमाणव आदिवर्गणायां स्थिताः ।
योग्यद्विकयोः बन्धे द्वयोर्बन्धो भवेन्नियमात् ।।६११।।

टीका – ऐसे स्निग्ध रूक्ष गुणों से संयुक्त परमाणु प्रथम अणुवर्गणा में रहते हैं। सो यथायोग्य दो परमाणुओं के बंध स्थान में उन्हीं दो परमाणुओं का बंध होता है।

नियम से स्निग्ध-रूक्ष गुण के निमित्त से सर्वत्र बंध होता है । कुछ विशेष नहीं है ऐसा कोई जानेगा, इसलिये जहां बंध होने योग्य नहीं है ऐसे निषेधपूर्वक जहां बंध होने योग्य है उस विधि को कहते हैं –

णिद्धणिद्धा ण बज्झंति रुक्खरुक्खा य पोग्गला ।
णिद्धलुक्खा य बज्झंति रूवारूवी य पोग्गला ।।६१२।।

स्निग्धस्निग्धा न बध्यन्ते रूक्षरूक्षाश्च पुद्गलाः ।
स्निग्धरूक्षाश्च बध्यन्ते रूप्यरूपिणश्च पुद्गलाः ।।६१२।।

टीका – स्निग्धगुण युक्त पुद्गलों से स्निग्धगुण युक्त पुद्गल बंधते नहीं हैं और रूक्षगुण युक्त पुद्गलों से रूक्षगुण युक्त पुद्गल बंधते नहीं हैं – यह कथन सामान्य है, बंध भी होता है, उसका विशेष आगे कहेंगे । पुनश्च स्निग्धगुण युक्त पुद्गलों से रूक्षगुण युक्त पुद्गल बंधते हैं । उन पुद्गलों की दो संज्ञा हैं – एक रूपी, एक अरूपी ।

उन संज्ञाओं को कहते हैं –

णिद्धिदरोलीमज्झे विसरिसजादिस्स समगुणं एक्कं ।
रूवि त्ति होदि सण्णा सेसाणं ता अरूवि त्ति ।।६१३।।

स्निग्धेतरावलीमध्ये विसदृशजातेः समगुण एकः ।
रूपीति भवति संज्ञा शेषाणां ते अरूपिण इति ।।६१३।।

टीका - स्निग्ध-रूक्ष गुणों की पंक्ति विसदृश जाति है अर्थात् स्निग्ध की और रूक्ष की परस्पर विसदृश जाति है, उनमें जो कोई एक समान गुण हो उसको रूपी ऐसी संज्ञा द्वारा कहते हैं और समान गुण बिना अवशेष रहे उनको अरूपी ऐसी संज्ञा द्वारा कहते हैं । उसी को उदाहरण द्वारा कहते हैं -

दोगुणणिद्धाणुस्स य दोगुणलुक्खाणुगं हवे रूवी ।
इगितिगुणादि अरूवी रुक्खस्स वि तं व इदि जाणे ।।६१४।।

द्विगुणस्निग्धाणोश्च द्विगुणरूक्षाणुको भवेत् रूपी ।
एकत्रिगुणादिः अरूपी रूक्षस्यापि तद् व इति जानीहि ।।६१४।।

टीका - दूसरा है गुण जिसके या दो हैं गुण जिसके ऐसा जो द्विगुण स्निग्ध परमाणु उसके लिये द्विगुण रूक्ष परमाणु रूपी कहलाता है और अवशेष एक, तीन, चार इत्यादि गुणधारक परमाणु अरूपी कहलाते हैं । ऐसे ही द्विगुण रूक्षाणु के लिये द्विगुण स्निग्धाणु रूपी कहलाता है और अवशेष एक, तीन इत्यादि गुणधारक परमाणु अरूपी कहलाते हैं ।

णिद्धस्स णिद्धेण दुराहिएण लुक्खस्स लुक्खेण दुराहिएण ।
णिद्धस्स लुक्खेण हवेज्ज बंधो जहण्णवज्जे विसमे समे वा ।।६१५।।

स्निग्धस्य स्निग्धेन द्व्यधिकेन रूक्षस्य रूक्षेण द्व्यधिकेन ।
स्निग्धस्य रूक्षेण भवेद्बन्धो जघन्यवर्ज्ये विषमे समे वा ।।६१५।।

टीका - स्निग्ध अणु का अपने से दो गुण अधिक स्निग्ध अणु के साथ बंध होता है । रूक्ष अणु का अपने से दो गुण अधिक रूक्ष अणु के साथ बंध होता है । स्निग्ध अणु का अपने से दो गुण अधिक रूक्ष अणु के साथ बंध होता है । वहां एक गुण युक्त जघन्य स्निग्ध अणु वा रूक्ष अणु का तीन गुण युक्त परमाणु के साथ बंध नहीं होता । यद्यपि यहां दो अंश अधिक हैं तथापि एक अंश युक्त परमाणु बंधने योग्य नहीं हैं, इसलिये बंध नहीं होता । स्निग्ध और रूक्ष परमाणुओं का समधारा में या विषमधारा में दो अधिक अंश होनेपर बंध होता है । वहां दो, चार, छह, आठ इत्यादि दो दो बढ़ते अंश जहां हो वहां समधारा में कहते हैं तथा तीन, पांच, सात, नौ इत्यादि दो दो बढ़ते अंश जहां हो वहां विषमधारा में कहते

हैं । सो समधारा में दो अंश परमाणु और चार अंश परमाणु का बंध होता है। चार अंश परमाणु और छह अंश परमाणु का बंध होता है, इत्यादि दो अंश अधिक होनेपर बंध होता है । पुनश्च विषमधारा में तीन अंश परमाणु का पांच अंश परमाणु के साथ बंध होता है, पांच अंश परमाणु का सात अंश परमाणु के साथ बंध होता है । ऐसे दो अंश अधिक होनेपर बंध होता है । बंध होने का अर्थ है कि एक स्कंधरूप होते हैं । पुनश्च समान गुण के धारक ऐसे जो रूपी परमाणु उनका परस्पर बंध नहीं है । जैसे दो अंश एक के भी हो और दो अंश दूसरे के भी हो, तो उनका बंध नहीं होता । पुनश्च समगुणधारक परमाणु और विषमगुणधारक परमाणु परस्पर बंधते नहीं है । जैसे दो अंश युक्त परमाणु का पंच अंशरूप परमाणु के साथ बंध नहीं होता । क्योंकि यहां दो अधिक अंशों का अभाव है ।

णिद्धिदरे समविसमा दोत्तिगआदी दुउत्तरा होंति ।
उभये वि य समविसमा सरिसिदरा होंति पत्तेयं ।।६१६।।

स्निग्धेतरयोः समविषमा द्वित्र्यादयः द्व्युत्तरा भवन्ति ।
उभये पि च समविषमा सदृशतरे भवन्ति प्रत्येकम् ।।६१६।।

टीका – स्निग्ध रूक्ष में सम पंक्ति में दो से लेकर दो-दो से बढ़ते हुये गुण जानना जैसे दो, चार, छह, आठ इत्यादि जानना । और विषम पंक्ति में तीन से लेकर दो दो से बढ़ते हुये जानना । तीन, पांच, सात, नौ इत्यादि जानना । वे सम और विषम रूपी भी होते हैं, अरूपी भी होते हैं । जहां दोनों के समान गुण होते हैं वे रूपी तथा जहां समान गुण न हो वे अरूपी कहलाते हैं । जैसे स्निग्ध रूक्ष की सम पंक्ति में दो गुण (स्निग्ध) के लिये दो गुण (रूक्ष के) रूपी हैं, चार गुण के लिये चार गुण रूपी हैं । छह गुण के लिये छह गुण रूपी हैं। इत्यादि संख्यात, असंख्यात, अनंतगुणा पर्यंत जानना । पुनश्च दो गुण के लिये दो गुण छोड़कर एक, तीन, चार, पांच इत्यादि अरूपी हैं ।

भावार्थ – एक परमाणु दो गुण धारक है और दूसरा परमाणु भी दो गुण धारक है, तो वहां उनको परस्पर रूपी कहते हैं । तथा हीनाधिक गुणधारक परमाणु को अरूपी ऐसी संज्ञा कहते हैं । ऐसा ही चार, छह में भी जानना । पुनश्च विषम पंक्ति में तीन गुण के लिये तीन गुण, पांच गुण के लिये पांच गुण इत्यादि संख्यात,

असंख्यात, अनंत तक समान गुणधारक परमाणु परस्पर रूपी हैं । अवशेष हीनाधिक गुणधारक हैं, वे परस्पर अरूपी हैं, ऐसे संज्ञा द्वारा कहते हैं । सो सम और विषम दोनों ही पंक्तियों में समान गुणधारक रूपी परमाणुओं का परस्पर बंध नहीं होता । तत्त्वार्थसूत्र (अ.५ सूत्र३५) में भी कहा है - **'गुणसाम्ये सदृशानां'** । इसका अर्थ यह है कि गुणों की समानता होनेपर सदृश परमाणुओं का परस्पर बंध नहीं होता। अरूपी परमाणुओं का यथोचित स्वस्थान और परस्थान में बंध होता है । स्निग्ध और स्निग्ध का तथा रूक्ष और रूक्ष का बंध, उसे स्वस्थान बंध कहते हैं । स्निग्ध और रूक्ष का बंध हो तो उसे परस्थान बंध कहते हैं ।

आगे इसी अर्थ को अन्य प्रकार से कहते हैं -

दोत्तिगपभवदुउत्तरगदेसुणंतरदुगाण बंधो दु ।
णिद्धे लुक्खे वि तहा वि जहण्णुभये वि सव्वत्थ ।।६१७।।

द्वित्रिप्रभवद्व्युत्तरगतेष्वनन्तरद्विकयोः बन्धस्तु ।
स्निग्धे रूक्षेऽपि तथापि जघन्योभयेऽपि सर्वत्र ।।६१७।।

टीका - स्निग्ध और रूक्ष में सम पंक्ति में दो से लेकर दो दो बढ़ते अंश तथा विषम पंक्ति में तीन से लेकर दो दो बढ़ते अंश क्रम से पाये जाते हैं । वहां अनंतर द्विक का बंध होता है । कैसे ? स्निग्ध के चार अंश या रूक्ष के चार अंशवाले पुद्गल का दो अंशवाले रूक्ष पुद्गल के साथ बंध होता है । स्निग्ध के या रूक्ष के पांच अंशवाले पुद्गल का तीन अंशवाले स्निग्ध परमाणु के साथ बंध होता है । ऐसे दो अधिक होनेपर बंध जानना । परंतु एक अंशरूप जघन्य गुणवाले में बंध नहीं होता, अन्यत्र स्निग्ध रूक्ष में सर्वत्र बंध जानना ।

णिद्धिदरवरगुणाणू सपरट्ठाणे वि णेदि बंधट्ठं ।
बहिरंतरंगहेदुहि गुणंतरं संगदे एदि ।।६१८।।

स्निग्धेतरावरगुणाणुः स्वपरस्थानेऽपि नैति बंधार्थम् ।
बहिरंतरंगहेतुभिर्गुणांतरं संगते एति ।।६१८।।

टीका - जघन्य एक गुणयुक्त स्निग्ध या रूक्ष परमाणु स्वस्थान या परस्थान में बंध के लिये योग्य नहीं है । परंतु वही परमाणु यदि बाह्य अभ्यंतर कारण से

दो आदि अन्य अंशों को प्राप्त हो जाय तो बंध योग्य होता है । तत्त्वार्थसूत्र में भी कहा है, **'न जघन्यगुणानां'** उसका अर्थ यह है कि जघन्य गुणधारक पुद्गलों का परस्पर बंध नहीं होता ।

णिद्धिदरगुणा अहिया हीणं परिणामयंति बंधम्मि ।
संखेज्जासंखेज्जाणंतपदेसाण खंधाणं ॥६१९॥

स्निग्धेतरगुणा अधिका हीनं परिणामयंति बंधे ।
संख्येयासंख्येयानंतप्रदेशानां स्कंधानाम् ॥६१९॥

टीका – संख्यात, असंख्यात, अनंत प्रदेशों के स्कंधों में स्निग्धगुणस्कंध या रूक्षगुणस्कंध जो दो गुण अधिक होते हैं, वे बंध के होते हुये हीन स्कंध को परिणमाते हैं । जैसे दो स्कंध हैं एक स्कंध में स्निग्ध या रूक्ष के पचास अंश हैं और एक में बावन अंश हैं और उन दोनों स्कंधों का एक स्कंध हुआ तो वहां पचास अंशवाले को बावन अंशरूप परिणमाता है । ऐसे सर्वत्र जानना । तत्त्वार्थसूत्र (अ.५ सू.३७) में भी कहा है – **'बंधेऽधिकौ पारिणामिकौ च'** । इसका अर्थ यह है कि बंध होनेपर जो अधिक अंश है वे हीन अंशों को अपनेरूप परिणमानेवाले हैं । इति फलाधिकारः (फल अधिकार समाप्त हुआ) ।

ऐसे सात अधिकारों द्वारा षट्द्रव्य कहे ।

आगे पंचास्तिकाय को कहते हैं –

दव्वं छक्कमकालं पंचत्थीकायसण्णिदं होदि ।
काले पदेशपचयो जम्हा णत्थि त्ति णिद्दिट्ठं ॥६२०॥

द्रव्यं षट्कमकालं पंचास्तिकायसंज्ञितं भवति ।
काले प्रदेशप्रचयो यस्मात् नास्तीति निर्दिष्टम् ॥६२०॥

टीका – पहले जो छह द्रव्य कहे, वे **अकालं** अर्थात् काल द्रव्य रहित पंचास्तिकाय नाम पाते हैं । क्योंकि काल के प्रदेशप्रचय नहीं है, काल एक प्रदेशमात्र ही है । तथा पुद्गलवत् परस्पर मिलते नहीं हैं इसलिये काल के कायपना नहीं है। जो द्रव्य प्रदेशों के प्रचय अर्थात् समूह से युक्त होते हैं, वे अस्तिकाय हैं, ऐसा परमागम में

कहा है ।

आगे नौ पदार्थों को कहते हैं -

णव य पदत्था जीवाजीवा ताणं च पुण्णपावदुगं ।
आसव संवर णिज्जर बंधा मोक्खो य होंति त्ति ।।६२१।।

नव च पदार्था जीवाजीवाः तेषां च पुण्यपापद्विकम् ।
आस्रवसंवरनिर्जराबंधा मोक्षश्च भवंतीति ।।६२१।।

टीका - जीव और अजीव ये तो दो मूलपदार्थ और उन्हीं के पुण्य और पाप ये दो पदार्थ हैं । और पुण्य-पाप ही के आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष ये पांच पदार्थ; ऐसे सर्व मिले हुये ये नौ पदार्थ हैं । पदार्थ शब्द सर्वत्र लगाना। जीवपदार्थ, अजीवपदार्थ इत्यादि जानना ।

जीवदुगं उत्तट्ठं जीवा पुण्णा हु सम्मगुणसहिदा ।
वदसहिदा वि य पावा तव्विवरीया हवंति त्ति ।।६२२।।

जीवद्विकमुक्तार्थं जीवाः पुण्या हि सम्यक्त्वगुणसहिताः ।
व्रतसहिता अपि च पापास्तद्विपरीता भवंति ।।६२२।।

टीका - जीवपदार्थ और अजीवपदार्थ तो पहले जीवसमास अधिकार में और यहां षट्द्रव्य अधिकार में कहे हैं । जो सम्यक्त्व गुण युक्त हो और व्रत युक्त हो, वे पुण्य जीव हैं । तथा इनसे विपरीत सम्यक्त्व, व्रत रहित जो जीव, वे पाप जीव हैं, ऐसा नियम से जानना ।

वहां गुणस्थानों में जीवों की संख्या कहते हैं - उनमें मिथ्यादृष्टि और सासादन ये तो पाप जीव हैं, ऐसा कहते हैं ।

मिच्छाइट्ठी पावा णंताणंत य सासणगुणा वि ।
पल्लासंखेज्जदिमा अणअण्णदरुदयमिच्छगुणा ।।६२३।।

मिथ्यादृष्टयः पापा अनंतानंतश्च सासनगुणा अपि ।
पल्यासंख्येया अनन्यतरोदयमिथ्यात्वगुणाः ।।६२३।।

टीका – मिथ्यादृष्टि पापी जीव हैं, वे अनंतानंत हैं । क्योंकि संसारीराशि में से अन्य गुणस्थानवालों का प्रमाण घटानेपर मिथ्यादृष्टि जीवों का प्रमाण होता है। सासादन गुणस्थानवाले भी पाप जीव हैं, क्योंकि अनंतानुबंधी चौकड़ी में से किसी एक प्रकृति के उदय से मिथ्यात्व सदृश गुण प्राप्त होते हैं । वे सासादनवाले जीव पल्य के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

मिच्छा सावयसासणमिस्साविरदा दुवारणंता य ।
पल्लासंखेज्जदिममसंखगुणं संखसंखगुणं ।।६२४।।

मिथ्याः श्रावकसासनमिश्राविरता द्विवारनंताश्च ।
पल्यासंख्येयमसंख्यगुणं संख्यासंख्यगुणम् ।।६२४।।

टीका – मिथ्यादृष्टि किंचित् कम संसारीराशि प्रमाण हैं, इसलिये अनंतानंत हैं। देशसंयत गुणस्थानवाले जीव तेरह कोडि मनुष्यों से अधिक तिर्यंच पल्य के असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । यहां अन्य गुणस्थानों के कथन की अपेक्षा पल्य को तीन बार असंख्यात और एक बार संख्यात का भाग जानना । *(सामान्य कथन पल्य का असंख्यातवां भाग करनेपर विशेष से उनका अल्पबहुत्व जानने के लिये यह भागहार बताया है ।)* सासादन गुणस्थानवर्ती जीव बावन कोडि मनुष्यों से अधिक इतर तीन गति के जीव, जो देशसंयमी तिर्यंचों से असंख्यातगुणे जानना । यहां पल्य को दो बार असंख्यात और एक बार संख्यात का भाग जानना । मिश्र गुणस्थानवर्ती जीव एक सौ चार कोडि मनुष्यों से अधिक इतर तीन गति के जीव, वे सासादनवालों से संख्यातगुणे जानना । यहां पल्य को दो बार असंख्यात का भाग जानना । अविरत गुणस्थानवर्ती जीव सात सौ कोडि मनुष्यों से अधिक इतर तीन गति के जीव, वे मिश्रवालों से असंख्यातगुणे जानना । यहां पल्य को एक बार असंख्यात का भाग जानना ।

तिरधियसयणवणउदी छण्णउदी अप्पमत्त बे कोडी ।
पंचेव य तेणउदी णवट्ठबिसयच्छउत्तरं पमदे ।।६२५।।

त्र्यधिकशतनवनवतिः षण्णवतिः अप्रमत्ते द्वि कोटी ।
पंचैव च त्रिनवतिः नवाष्टद्विशतषडुत्तरं प्रमत्ते ।।६२५।।

टीका – प्रमत्त गुणस्थान में जीव पांच कोडि तिरानबे लाख अट्ठानबे हजार

दो सौ छह (५९३९८२०६) हैं । अप्रमत्त गुणस्थान में जीव दो कोडि छानबे लाख निन्यानबे हजार एक सौ तीन (२९६९९१०३) हैं । गाथा में पहले अप्रमत्त की संख्या कहकर प्रमत्त की कही है, सो छंद मिलने के लिये कही है ।

तिसयं भणंति केई चउरुत्तरमत्थपंचयं केई ।
उवसामगपरिमाणं खवगाणं जाण तद्दुगुणं ।।६२६।।

त्रिशतं भणंति केचित् चतुरुत्तमस्तपंचकं केचित् ।
उपशमकपरिमाणं क्षपकाणां जानीहि तद्द्विगुणम् ।।६२६।।

टीका - उपशमश्रेणीवाले आठवें, नौवें, दसवें, ग्यारहवें गुणस्थानवर्ती जीवोंका प्रमाण कोई आचार्य तीन सौ कहते हैं, कोई तीन सौ चार कहते हैं, कोई पांच कम और चार अधिक तीन सौ कहते हैं उसके एक कम तीन सौ हुये । आठवें, नौवें, दसवें, बारहवें गुणस्थानवर्ती क्षपक जीवों का प्रमाण उपशमकवालों से दुगुणा है ऐसा हे शिष्य ! तू जान ।

यहां तीन सौ चार उपशम श्रेणीवाले जीवों की संख्या का निरंतर आठ समयों में विभाग करते हैं -

सोलसयं चउवीसं तीसं छत्तीस तह य बादालं ।
अडदालं चउवण्णं चउवण्णं होंति उवसमगे ।।६२७।।

षोडशकं चतुर्विंशतिः त्रिंशत् षट्त्रिंशत तथा च द्वाचत्वारिंशत् ।
अष्टचत्वारिंशत् चतुःपंचाशत् चतुःपंचाशत् भवंति उपशमके ।।६२७।।

टीका - बीच में अंतराल न पडे और उपशम श्रेणी को जीव मांडे तो आठ समयों में उत्कृष्टपने इतने जीव उपशम श्रेणी मांडते हैं, पहले समय से लेकर आठवें समय तक अनुक्रम से सोलह, चौबीस, तीस, छत्तीस, बयालीस, अड़तालीस, चौवन, चौवन जीव निरंतर आठ समयों में होते हैं (१६,२४,३०,३६,४२,४८,५४,५४)।

बत्तीसं अडदालं सट्ठी बावत्तरी य चुलसीदी ।
छण्णउदी अट्ठुत्तरसयमट्ठुत्तरसयं च खवगेसु ।।६२८।।

द्वात्रिंशदष्टचत्वारिंशत् षष्टिः द्वासप्ततिश्च चतुरशीतिः ।
षण्णवतिः अष्टोत्तरशतमष्टोत्तरशतं च क्षपकेषु ।।६२८।।

टीका – पुनश्च निरंतर आठ समयों में क्षपक श्रेणी मांडनेवाले जीव उपशम श्रेणीवालों से दुगुणे जानना । वहां पहले समय से लेकर अनुक्रम से बत्तीस, अड़तालीस, साठ, बहत्तर, चौरासी, छानबे, एक सौ आठ, एक सौ आठ (३२,४८,६०,७२,८४,९६,१०८,१०८) जीव निरंतर आठ समयों में होते हैं । इसी संख्या को हीनाधिक को बराबर करके पहले चौंतीस मांडते हैं, पश्चात् आठ समयों तक बारह बारह अधिक मांडते हैं । वहां आदि चौंतीस (३४), उत्तर (चय) बारह (१२), गच्छ आठ (८) इसका **'पदमेगेण विहीणं'** इत्यादि सूत्र से जोड़ दीजिये । यहां गच्छ आठ उसमें एक घटानेपर सात रहे, दो का भाग देनेपर साढ़े तीन हुये, उत्तर से गुणा करनेपर बयालीस हुये, आदि से युक्त करनेपर छिहत्तर हुये, गच्छ से गुणा करनेपर छह सौ आठ हुये । सो निरंतर आठ समयों में क्षपक श्रेणी मांडकर इकट्ठे हुये जीवों का प्रमाण छह सौ आठ जानना। उपशमकों में आदि सत्रह (१७), उत्तर छह (६), गच्छ आठ (८), जोड़ देनेपर तीन सौ चार हुये, वह प्रमाण जानना ।

अट्ठेव सयसहस्सा अट्ठाणउदी तहा सहस्साणं ।
संखा जोगिजिणाणं पंचसयबिउत्तरं वंदे ।।६२९।।

अष्टैव शतसहस्राणि अष्टानवतिस्तथा सहस्राणाम् ।
संख्या योगिजिनानां पञ्चशतद्व्युत्तरं वन्दे ।।६२९।।

टीका – सयोगकेवली जिनों की संख्या आठ लाख अट्ठानबे हजार पांच सौ दो (८९८५०२) है । उनको मैं सदाकाल वन्दन करता हूँ । यहां निरंतर आठ समयों में इकट्ठे हुये सयोगि जिन अन्य आचार्य अपेक्षा सिद्धांत में ऐसे कहे हैं – **छसु सुद्धसमयेसु तिण्णि तिण्णि जीवा केवलमुप्पाययंति दोसु समयेसु दो दो जीवा केवलमुप्पाययंति एवमट्ठसमयेसु संचिदजीवा बावीसा हवंति ।१।**

इसका अर्थ – छह शुद्ध समयों में तीन तीन जीव केवलज्ञान को उपजाते हैं, दो समयों में दो दो जीव केवलज्ञान उपजाते हैं ऐसे आठ समयों में इकट्ठे हुये जीव बाइस होते हैं ।

भावार्थ – केवलज्ञान उपजने का छह महिना का अंतराल हो, तब बीच में अंतराल न पड़े ऐसे निरंतर आठ समयों में बाइस जीव केवलज्ञान उपजाते हैं ।

सो यहां विशेष कथन में छह त्रैराशिक होते हैं ।

छह त्रैराशिक का यंत्र

प्रमाणराशि	फलराशि	इच्छाराशि	लब्धप्रमाण
केवली २२	काल मास ६, समय ८	केवली ८९८५०२	काल ४०८४१ छह मास आठ समय गुणा
काल मास ६, समय ८	समय ८	काल ४०८४१ छह मास आठ समय गुणा	समय ३२६७२८
समय ८	केवली २२	समय ३२६७२८	केवली ८९८५०२
समय ८	केवली ४४	समय ३२६७२८/२ आधा	केवली ८९८५०२
समय ८	केवली ८८	समय ३२६७२८/४ चौथाई	केवली ८९८५०२
समय ८	केवली १७६	समय ३२६७२८ ह्न८ (आठवां) भाग	केवली ८९८५०२

वहां बाइस केवलज्ञानी आठ समय अधिक छह मास में होते हैं तो आठ लाख अट्ठानबे हजार पांच सौ दो केवलज्ञानी कितने काल में होते हैं ? ऐसा त्रैराशिक करनेपर चालीस हजार आठ सौ इकतालीस को छह महिने आठ समयों से गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतना काल का प्रमाण आता है । छह महिने आठ समय में निरंतर केवलज्ञान उपजने के आठ समय हैं । तो पूर्वोक्त काल प्रमाण में कितने समय हैं? ऐसा त्रैराशिक करनेपर तीन लाख छब्बीस हजार सात सौ अट्ठाइस समय आते हैं। आठ समयों में आचार्यों के मतों की अपेक्षा बाइस या चवालीस या अट्ठासी या एक सौ छिहत्तर केवलज्ञान उपजायें, तो पूर्वोक्त समयों के प्रमाण में या उससे आधे में या चौथाई में या आठवें भाग में कितने केवलज्ञान उपजायेंगे, ऐसे चार प्रकार

से त्रैराशिक करनेपर केवलज्ञानियों का प्रमाण आठ लाख अट्ठानबे हजार पांच सौ दो आता है, ऐसा जानना ।

आगे एक समय में युगपत् होनेवाली ऐसी क्षपक और उपशमक जीवों की विशेष संख्या तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं –

होंति खवा इगिसमये बोहियबुद्धा य पुरिसवेदा य ।
उक्कस्सेणट्ठुत्तरसयप्पमा सग्गदो य चुदा ।।६३०।।

पत्तेयबुद्धतित्थयरत्थिणउंसयमणोहिणाणजुदा ।
दसछक्कवीसदसवीसट्ठावीसं जहाकमसो ।।६३१।।

जेट्ठावरबहुमज्झिमओगाहणगा दु चारि अट्ठेव ।
जुगवं हवंति खवगा उवसमगा अद्धमेदेसिं ।।६३२।।विसेसयं।

भवन्ति क्षपका एकसमये बोधितबुद्धाश्च पुरुषवेदाश्च ।
उत्कृष्टेनाष्टोत्तरशतप्रमाः स्वर्गतश्च च्युताः ।।६३०।।

प्रत्येकबुद्धतीर्थंकरस्त्रीनपुंसकमनोऽवधिज्ञानयुताः ।
दशषट्कविंशतिदशविंशत्यष्टाविंशो यथाक्रमशः ।।६३१।।

ज्येष्ठावरबहुमध्यामावगाहा द्वौ चत्वारः अष्टैव ।
युगपद् भवन्ति क्षपका उपशमका अर्द्धमेतेषाम् ।।६३२।। विशेषकम्।

टीका – युगपत् एक समय में क्षपक श्रेणीवाले जीव उत्कृष्टता से निम्न प्रकार से पाये जाते हैं । बोधितबुद्ध तो एक सौ आठ, पुरुषवेदी एक सौ आठ, स्वर्ग से चयकर मनुष्य होकर क्षपक हुये हैं ऐसे एक सौ आठ, प्रत्येकबुद्धिऋद्धि के धारक दस, तीर्थंकर छह, स्त्रीवेदी बीस, नपुंसकवेदी दस, मनःपर्ययज्ञानी बीस, अवधिज्ञानी अट्ठाइस, मुक्त होनेयोग्य शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना के धारक दो, जघन्य अवगाहना के धारक चार, सर्व अवगाहना के मध्यवर्ती ऐसी अवगाहना के धारक आठ, ऐसे ये सर्व मिलकर चार सौ बत्तीस हुये । उपशमक इनके आधे सर्व पाये जाते हैं, इसलिये सब मिलकर दो सौ सोलह हुये । पहले गुणस्थानों में इकट्ठे हुये जीवों की संख्या कही थी, यहां

ऐसा कहा है कि यदि श्रेणी में युगपत् उत्कृष्ट हो तो पूर्वोक्त जीव पूर्वोक्त प्रमाण में होते हैं, अधिक नहीं होते ।

आगे सर्व संयमी जीवों की संख्या कहते हैं -

सत्तादी अट्ठंता छण्णवमज्झा य संजदा सव्वे ।
अंजलिमौलियहत्थो तियरणसुद्धे णमंसामि ।।६३३।।

सप्तादय अष्टान्ताः षण्णवमध्याश्च संयताः सर्वे ।
अंजलिमौलिकहस्तस्त्रिकरणशुद्ध्या नमस्यामि ।।६३३।।

टीका - आदि में सात का अंक, अंत में आठ का अंक और मध्य में छह बार नौ के अंक ८९९९९९९७ ऐसे लिखकर हुयी तीन कम नौ कोडि संख्या, उसप्रमाण जो संयमी छठवें गुणस्थान से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक हैं, उनको अंजुलि द्वारा हाथ मस्तक को लगाते हुये मन, वचन, कायरूप त्रिकरण शुद्धता से मैं नमस्कार करता हूँ । वहां प्रमत्तवाले ५९३९८२०६, अप्रमत्तवाले २९६९९१०३, चारों गुणस्थानवर्ती उपशमश्रेणीवाले ११९६, चारों गुणस्थानवर्ती क्षपकश्रेणीवाले २३९२, सयोगि जिन ८९८५०२ सब मिलकर जो ८९९९९३९९ हुये, उन्हें तीन कम नौ कोडि में से घटानेपर अवशेष पांच सौ अट्ठानबे रहे, वे अयोगिजिन जानना ।

आगे चार गतियों के मिथ्यादृष्टि, सासादन, मिश्र, अविरत गुणस्थानवर्ती उनकी संख्या का साधक पल्य के भागहार का विशेष कहते हैं - जिसका भाग देते हैं उसको भागहार कहते हैं, सो आगे जो जो भागहार का प्रमाण कहते हैं उस-उसका पल्य को भाग देनेपर जो जो प्रमाण आता है उतना उतना वहां जीवों का प्रमाण जानना । जहां भागहार का प्रमाण थोड़ा हो वहां जीवों का प्रमाण बहुत जानना । जहां भागहार का प्रमाण बहुत हो वहां जीवों का प्रमाण थोड़ा जानना । जैसे एक हजार को पांच का भाग देनेपर दो सौ आते हैं, दो सौ का भाग देनेपर पांच ही आते हैं, ऐसे जानना ।

सो अब भागहार कहते हैं -

ओघासंजदमिस्सयसासणसम्माण भागहारा जे ।
रूऊणावलियासंखेज्जेणिह भजिय तत्थ णिक्खित्ते ।।६३४।।

देवाणं अवहारा होंति असंखेण ताणी अवहरिय ।
तत्थेव य पक्खित्ते सोहम्मीसाण अवहारा ।।६३५।।जुम्मं।

ओघा असंयतमिश्रकसासनसमीचां भागहारा ये ।
रूपोनावलिकासंख्यातेनेह भक्त्वा तत्र निक्षिप्ते ।।६३४।।

देवानामवहारा भवंति असंख्येन तानवहृत्य ।
तत्रैव च प्रक्षिप्ते सौधर्मैशानावहाराः ।।६३५।।युग्मं।

टीका – गुणस्थान संख्या में पहले असंयत, मिश्र, सासादन की संख्या में पल्य का जो भागहार कहा था, उनको एक कम आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर जो प्रमाण आये उतना उतना उन भागहारों में मिलानेपर देवगति में भागहार होता है । वहां पहले असंयत गुणस्थान में भागहार का प्रमाण एक बार असंख्यात कहा था उसको एक कम आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर जो प्रमाण आता है उतने उस भागहार में मिलानेपर जो प्रमाण हो उतना देवगति संबंधी असंयत गुणस्थान में भागहार जानना । इस भागहार का भाग पल्य को देनेपर जो प्रमाण हो, उतने देवगति में असंयत गुणस्थानवर्ती जीव हैं । ऐसे ही आगे भी पल्य के भागहार जानना ।

पुनश्च मिश्र में दो बार असंख्यातरूप और सासादन में दो बार असंख्यात और एक बार संख्यातरूप पहले जो भागहार का प्रमाण कहा था उसको एक कम आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर जो प्रमाण आये, उतना उतना वहां मिलानेपर देवगति संबंधी मिश्र में और सासादन में भागहार का प्रमाण आता है ।

पुनश्च देवगति संबंधी असंयत, मिश्र और सासादन में जो जो भागहार का प्रमाण कहा, उस उसको एक कम आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर जो जो प्रमाण आता है उतना उतना उस उस भागहार में मिलानेपर जो जो प्रमाण होता है, वह वह सौधर्म-ईशान संबंधी अविरत, मिश्र और सासादन में भागहार जानना । जो देवगति संबंधी अविरत में भागहार कहा था उसको एक कम आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर जो प्रमाण होता है, उतना उस भागहार में मिलानेपर सौधर्म-ईशान स्वर्ग संबंधी असंयत में भागहार होता है । इसीप्रकार मिश्र में और सासादन में भागहार जानना ।

सोहम्मेसाणहारमसंखेण य संखरूवसंगुणिदे ।
उवरि असंजदमिस्सयसासणसम्माण अवहारा ।।६३६।।

सौधर्मेशानहारमसंख्येन च संख्यरूपसंगुणिते ।
उपरि असंयतमिश्रकसासनसमीचामवहाराः ।।६३६।।

टीका - उसके ऊपर सनत्कुमार-माहेन्द्र स्वर्ग है । वहां असंयत में सौधर्म-ईशान संबंधी सासादन के भागहार से असंख्यात गुणा भागहार जानना । इस असंयत के भागहार से चकार से असंख्यातगुणा मिश्र में भागहार जानना । इससे संख्यातगुणा सासादन में भागहार जानना ।

आगे गुणा करने के अनुक्रम की व्याप्ति दिखाते हैं -

सोहम्मादासारं जोइसिवणभवणतिरियपुढवीसु ।
अविरदमिस्सेऽसंखं संखासंखगुण सासणे देसे ।।६३७।।

सौधर्मादासहस्रारं ज्योतिषिवनभवनतिर्यक्पृथ्वीषु ।
अविरतमिश्रेऽसंख्यं संख्यासंख्यगुणं सासने देशे ।।६३७ ।।

टीका - सौधर्म-ईशान के ऊपर सनत्कुमार-माहेन्द्र से लेकर शतार-सहस्रार पर्यंत पांच युगल, ज्योतिषी, व्यंतर, भवनवासी, तिर्यंच और सात नरक की पृथ्वी इन सोलह स्थान संबंधी अविरत में और मिश्र में असंख्यातगुणा अनुक्रम जानना और सासादन में संख्यातगुणा अनुक्रम जानना । तथा तिर्यंच संबंधी देशसंयत में असंख्यातगुणा अनुक्रम जानना, सो इस कथन को दिखाते हैं -

सनत्कुमार-माहेन्द्र में सासादन का जो भागहार कहा, उससे ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर में असंयत का भागहार असंख्यातगुणा है । इससे मिश्र का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे सासादन का भागहार संख्यातगुणा है । संख्यात की सहनानी चार (४) का अंक है । इससे लांतव-कापिष्ट में असंयत का भागहार असंख्यातगुणा है । इससे मिश्र का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे सासादन का भागहार संख्यातगुणा है । पुनश्च इससे शुक्र-महाशुक्र में असंयत का भागहार असंख्यातगुणा है । इससे मिश्र का भागहार असंख्यातगुणा है । इससे सासादन का भागहार संख्यातगुणा है । पुनश्च

इससे शतार-सहस्रार में असंयत का भागहार असंख्यातगुणा है । इससे मिश्र का भागहार असंख्यातगुणा है । इससे सासादन का भागहार संख्यातगुणा है । पुनश्च इससे ज्योतिषियों में असंयत का भागहार असंख्यातगुणा है । इससे मिश्र का असंख्यातगुणा है । इससे सासादन का भागहार संख्यातगुणा है । पुनश्च इससे व्यंतरों में असंयत का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे मिश्र का भागहार असंख्यातगुणा है । इससे सासादन का भागहार संख्यातगुणा है । पुनश्च इससे भवनवासियों में असंयत का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे मिश्र का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे सासादन का भागहार संख्यातगुणा है।

पुनश्च इससे तिर्यंचों में असंयत का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे मिश्र का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे सासादन का भागहार संख्यातगुणा है । इससे तिर्यंच में ही देशसंयत का भागहार असंख्यातगुणा है । सो देशसंयत में जो भागहार का प्रमाण है, वही प्रथम नरक पृथ्वी में असंयत का भागहार है । इससे मिश्र का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे सासादन का भागहार संख्यातगुणा है । इससे दूसरी नरक पृथ्वी में असंयत का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे मिश्र का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे सासादन का भागहार संख्यातगुणा है । इससे तीसरी नरक पृथ्वी में असंयत का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे मिश्र का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे सासादन का भागहार संख्यातगुणा है । इससे चौथी नरक पृथ्वी में असंयत का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे मिश्र का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे सासादन का भागहार संख्यातगुणा है । इससे पांचवीं नरक पृथ्वी में असंयत का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे मिश्र का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे सासादन का भागहार संख्यातगुणा है । इससे छठवीं पृथ्वी में असंयत का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे मिश्र का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे सासादन का भागहार संख्यातगुणा है । इससे सातवीं पृथ्वी में असंयत का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे मिश्र का भागहार असंख्यातगुणा है, इससे सासादन का भागहार संख्यातगुणा है ।

आगे आनतादि में तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं -

चरमधरासणहारा आणदसम्माण आरणप्पहुदिं ।
अंतिमगेवेज्जंतं सम्माणमसंखसंखगुणहारा ।।६३८।।

चरमधरासनहारादानतसमीचामारणप्रभृति　　।
अंतिमग्रैवेयकांतं समीचामसंख्यसंख्यगुणहाराः ॥६३८॥

टीका - उस सप्तम पृथ्वी संबंधी सासादन के भागहार से आनत-प्राणत संबंधी अविरत का भागहार असंख्यातगुणा है । इससे आरण-अच्युत से लेकर नौवें ग्रैवेयक तक दस स्थानों में असंयत का भागहार अनुक्रम से संख्यातगुणा-संख्यातगुणा जानना। यहां संख्यात की सहनानी पांच का अंक है ।

तत्तो ताणुत्ताणं वामाणमणुद्दिसाण विजयादी ।
सम्माणं संखगुणो आणदमिस्से असंखगुणो ॥६३९॥

ततस्तेषामुक्तानां वामानामनुदिशानां विजयादि ।
समीचां संख्यगुण आनतमिश्रे संख्यगुणः ॥६३९॥

टीका - उस अंतिम ग्रैवेयक संबंधी असंयत के भागहार से आनत-प्राणत युगल से लेकर नौवें ग्रैवेयक तक ग्यारह स्थानों में वाम अर्थात् मिथ्यादृष्टि जीव, उनका भागहार अनुक्रम से संख्यातगुणा संख्यातगुणा जानना । यहां संख्यात की सहनानी छह अंक है । पुनश्च उस अंतिम ग्रैवेयक संबंधी मिथ्यादृष्टि के भागहार से नौ अनुदिश विमान और विजयादिक चार *(अनुत्तर)* विमान इन दोनों स्थानों में असंयत का भागहार क्रम से संख्यातगुणा संख्यातगुणा जानना । यहां संख्यात की सहनानी सात का अंक है । पुनश्च विजयादिक के असंयत के भागहार से आनत-प्राणत संबंधी मिश्र का भागहार असंख्यातगुणा है ।

तत्तो संखेज्जगुणो सासणसम्माण होदि संखगुणो ।
उत्तट्ठाणे कमसो पणछस्सत्तट्ठचदुरसंदिट्ठी ॥६४०॥

ततः संख्येयगुणः सासनसमीचां भवति संख्यगुणः ।
उक्तस्थाने क्रमशः पंचषट्सप्ताष्टचतुःसंदृष्टिः ॥६४०॥

टीका - उस आनत-प्राणत संबंधी मिश्र के भागहार से आरण-अच्युत से लेकर नौवें ग्रैवेयक तक दस स्थानों में मिश्र गुणस्थान संबंधी भागहार अनुक्रम से संख्यातगुणा, संख्यातगुणा जानना । यहां संख्यात की सहनानी आठ का अंक है ।

पुनश्च अंतिम ग्रैवेयक संबंधी मिश्र के भागहार से आनत-प्राणत से लेकर नौवें ग्रैवेयक तक ग्यारह स्थानों में सासादन का भागहार अनुक्रम से संख्यातगुणा संख्यातगुणा जानना। यहां संख्यात की सहनानी चार का अंक है । ये कहे हुये पांच स्थान उनमें संख्यात की सहनानी क्रम से पांच, छह, सात, आठ, चार का अंक जानना, उसे कहते ही आये हैं ।

सगसग अवहारेहिं पल्ले भजिदे हवंति सगरासी ।
सगसगगुणपडिवण्णे सगसगरासीसु अवणिदे वामा ।।६४१।।

स्वकस्वकावहारैः पल्ये भक्ते भवंति स्वकराशयः ।
स्वकस्वकगुणप्रतिपन्नेषु स्वकस्वकराशिषु अपनीतेषु वामाः ।।६४१।।

टीका - पहले कहा हुआ जो अपना-अपना भागहार, उनका भाग पल्य को देनेपर जो-जो प्रमाण आता है, उतने-उतने जीव वहां जानने । पुनश्च अपना-अपना सासादन, मिश्र, असंयत और देशसंयत गुणस्थानों में जो-जो प्रमाण आया, उनका जोड़ देनेपर जो-जो प्रमाण हो उतना-उतना प्रमाण अपनी-अपनी राशि के प्रमाण में से घटानेपर जो-जो अवशेष प्रमाण रहे उतने-उतने जीव वहां मिथ्यादृष्टि जानने । वहां सामान्यपने मिथ्यादृष्टि किंचित् ऊन (कम) संसारीराशि प्रमाण हैं । सामान्यपने देवगति में किंचित् ऊन देवराशि प्रमाण मिथ्यादृष्टि जानने । सौधर्मादिक में जो-जो जीवों का प्रमाण कहा है वहां द्वितीयादि गुणस्थान संबंधी प्रमाण घटाने के लिये किंचित् कम करनेपर जो प्रमाण रहे, उतने-उतने मिथ्यादृष्टि हैं । सो सौधर्मादिक में जीवों का प्रमाण कितना-कितना है ? वह गतिमार्गणा में कहा ही है । यहां भी कुछ कहते हैं -

सौधर्म-ईशानवाले घनांगुल के तृतीय वर्गमूल से जगत्श्रेणी को गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतने हैं । सनत्कुमार युगल आदि पांच युगलों में क्रम से जगत्श्रेणी के ग्यारहवें, नौवें, सातवें, पांचवें, चौथे वर्गमूल का भाग जगत्श्रेणी को देनेपर जो-जो प्रमाण आता है, उतने-उतने हैं । ज्योतिषी पणट्ठि प्रमाण प्रतरांगुल का भाग जगत्प्रतर को देनेपर जो प्रमाण आता है, उतने हैं । व्यंतर संख्यात प्रतरांगुल का भाग जगत्प्रतर को देनेपर जो प्रमाण आता है उतने हैं । भवनवासी घनांगुल के प्रथम वर्गमूल से जगत्श्रेणी के गुणा करनेपर जो प्रमाण आता है, उतने हैं । तिर्यंच किंचित् ऊन संसारी राशि प्रमाण हैं । प्रथम पृथ्वी में नारकी घनांगुल के द्वितीय वर्गमूल से साधिक बारहवें

भाग से हीन जो जगत्श्रेणी, उसको गुणा करनेपर जो प्रमाण आता है, उतने हैं । द्वितीयादि पृथ्वी में क्रम से जगत्श्रेणी के बारहवें, दसवें, आठवें, छठवें, तीसरे, दूसरे वर्गमूल का भाग जगत्श्रेणी को देनेपर जो-जो प्रमाण आता है, उतने-उतने जानने। इन सभी में अन्य गुणस्थानवालों का प्रमाण घटाने के लिये किंचित् कम करनेपर मिथ्यादृष्टि जीवों का प्रमाण आता है । पुनश्च आनत आदि में मिथ्यादृष्टि जीवों का प्रमाण यहां ही पहले कहा है । सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र सर्व असंयत ही हैं । वे द्रव्यस्त्री मनुष्यनी से तिगुणे या किसी आचार्य के मत से सात गुणे कहे हैं ।

आगे मनुष्यगति में संख्या कहते हैं -

तेरसकोडी देसे बावण्णं सासणे मुणेदव्वा ।
मिस्सा वि य तद्दुगुणासंजदा सत्तकोडिसयं ।।६४२।।

त्रयोदशकोट्यो देशे द्वापंचाशत् सासने मंतव्याः ।
मिश्रा अपि च तद्द्विगुणा असंयताः सप्तकोटिशतम् ।।६४२।।

टीका - मनुष्य जीव देशसंयत में तेरह कोडि हैं । सासादन में बावन कोडि जानने । मिश्र में उनसे दुगुणे एक सौ चार कोडि जानने । असंयत में सात सौ कोडि जानने तथा प्रमत्तादिक की संख्या पहले कही थी, वही जानना । ऐसे गुणस्थानों में जीवों का प्रमाण कहा ।

जीविदरे कम्मचये पुण्णं पावो त्ति होदि पुण्णं तु ।
सुहपयडीणं दव्वं पावं असुहाण दव्वं तु ।।६४३।।

जीवेतरस्मिन् कर्मचये पुण्यं पापमिति भवंति पुण्यं तु ।
शुभप्रकृतीनां द्रव्यं पापं अशुभप्रकृतीनां द्रव्यं तु ।।६४३।।

टीका - जीव पदार्थ संबंधी प्रतिपादन में सामान्यपने गुणस्थानों में मिथ्यादृष्टि और सासादन ये तो पाप जीव हैं । पुनश्च मिश्र हैं, वे पुण्य-पापरूप मिश्र जीव हैं, क्योंकि युगपत् सम्यक्त्व और मिथ्यात्वरूप परिणमित हुये हैं । असंयत तो सम्यक्त्व से संयुक्त हैं । देशसंयत सम्यक्त्व और देशव्रत से संयुक्त हैं । और प्रमत्तादिक सम्यक्त्व और सकलव्रत से संयुक्त हैं । इसलिये ये पुण्य जीव हैं । ऐसे कहकर, इसके अनंतर

अजीव पदार्थ संबंधी प्ररूपणा करते हैं ।

वहां कर्मचय अर्थात् कार्माणस्कंध, उसमें पुण्यपापरूप दो भेद हैं । इसलिये अजीव दो प्रकार के हैं । वहां साता वेदनीय, नरक बिना तीन आयु, शुभ नाम और उच्च गोत्र ये शुभ प्रकृति हैं । उनको द्रव्यपुण्य कहते हैं । पुनश्च घातिकर्म की सभी प्रकृति, असातावेदनीय, नरकायु, अशुभ नाम और नीच गोत्र ये अशुभ प्रकृति हैं । उनको द्रव्यपाप कहते हैं ।

आसवसंवरदव्वं समयपबद्धं तु णिज्जरादव्वं ।
तत्तो असंखगुणिदं उक्कस्सं होदि णियमेण ।।६४४।।

आस्रवसंवरद्रव्यम् समयप्रबद्धं तु निर्जराद्रव्यम् ।
ततोऽसंख्यगुणितमुत्कृष्टं भवति नियमेन ।।६४४।।

टीका – पुनश्च आस्रव द्रव्य और संवर द्रव्य समयप्रबद्धप्रमाण है; क्योंकि एक समय में आस्रव समयप्रबद्धप्रमाण पुद्‌गल परमाणुओं का ही होता है । तथा संवर होता है तो उतने ही कर्मों का आस्रव नहीं होता, इसलिये द्रव्यसंवर भी उतना ही कहा । पुनश्च उत्कृष्ट निर्जरा द्रव्य समयप्रबद्ध से असंख्यातगुणा नियम से जानना; क्योंकि गुणश्रेणी निर्जरा में उत्कृष्टपने एक समय में असंख्यात समयप्रबद्धों की निर्जरा करते हैं ।

बंधो समयपबद्धो किंचूणदिवड्ढमेत्तगुणहाणी ।
मोक्खो य होदि एवं सद्दहिदव्वा दु तच्चट्ठा ।।६४५।।

बंधः समयप्रबद्धः किंचिदूनद्व्यर्धमात्रगुणहानिः ।
मोक्षश्च भवत्येवं श्रद्धातव्यास्तु तत्त्वार्थाः ।।६४५।।

टीका – बंध द्रव्य भी समयप्रबद्ध प्रमाण है; क्योंकि एक समय में समयप्रबद्ध प्रमाण कर्मपरमाणुओं का ही बंध होता है । पुनश्च मोक्ष द्रव्य किंचित् कम डेढ़ गुणहानि से गुणित समयप्रबद्धप्रमाण है, क्योंकि अयोगी के चरम समय में डेढ़ गुणहानि से गुणित समयप्रबद्धप्रमाण सत्ता पायी जाती है । उसी का मोक्ष होता है । इसप्रकार तत्त्वार्थ हैं वे श्रद्धान करने, इस तत्त्वार्थश्रद्धान ही का नाम सम्यक्त्व है ।

आगे सम्यक्त्व के भेद कहते हैं -

खीणे दंसणमोहे जं सद्दहणं सुणिम्मलं होई ।
तं खाइयसम्मत्तं णिच्चं कम्मक्खवणहेदू ।।६४६।।

क्षीणे दर्शनमोहे यच्छ्रद्धानं सुनिर्मलं भवति ।
तत्क्षायिकसम्यक्त्वं नित्यं कर्मक्षपणहेतुः ।।६४६।।

टीका - मिथ्यात्व मोहनीय, सम्यग्मिथ्यात्व मोहनीय, सम्यक् मोहनीय और अनंतानुबंधी की चौकड़ी इन सात प्रकृतियों का करणलब्धिरूप परिणामों के बल से नाश होते हुये जो अति निर्मल श्रद्धान होता है वह क्षायिक सम्यक्त्व है । सो प्रतिपक्षी कर्मों के नाश से आत्मा का गुण प्रकट हुआ है इसलिये नित्य है । तथा प्रतिसमय गुणश्रेणी निर्जरा को कारण है, इसलिये कर्मक्षय का हेतु है ।

उक्तं च (कहा ही है) -

दंसणमोहे खविदे सिज्झदि एक्केव तदियतुरियभवे ।
णादिक्कदि तुरियभवं ण विणस्सदि सेस सम्मं च ।।

दर्शनमोह का क्षय होनेपर उसी भव में अथवा देवायु का बंध होनेपर या पहले मिथ्यात्व दशा में नरकायु का बंध होनेपर तीसरे भव में अथवा पहले मिथ्यात्व दशा में मनुष्य, तिर्यंच आयु का बंध हुआ हो तो भोगभूमि अपेक्षा चौथे भव में सिद्धपद को प्राप्त होता है, चौथे भव को उल्लंघता नहीं । पुनश्च अन्य सम्यक्त्ववत् इस क्षायिक सम्यक्त्व का विनाश भी नहीं होता, इसलिये इसे नित्य कहा है । सादि अक्षयानंत है अर्थात् आदि सहित अविनाशी अंत रहित है, यह अर्थ जानना ।

इसी अर्थ को कहते हैं -

वयणेहिं वि हेदूहिं वि इंदियभयआणएहिं रूवेहिं ।
बीभच्छजुगंछाहिं य तेलोक्केण वि ण चालेज्जो ।।६४७।।

वचनैरपि हेतुभिरपि इंद्रियभयानीतैः रूपैः ।
बीभत्स्यजुगुप्साभिश्च त्रैलोक्येनापि न चाल्यः ।।६४७।।

टीका - श्रद्धान नष्ट होने के कारणभूत ऐसे कुत्सित वचनों से या कुत्सित

हेतु दृष्टांतों से या इन्द्रियों को भयकारी ऐसे विकाररूप अनेक भेष आकारों से या ग्लानि के कारणभूत ऐसी वस्तु से उत्पन्न जुगुप्सा से क्षायिक सम्यक्त्व चलायमान नहीं होता। अधिक क्या कहे तीन लोक मिलकर क्षायिक सम्यक्त्व को चलायमान करना चाहे तो भी क्षायिक सम्यक्त्व को चलायमान करने में समर्थ नहीं होते ।

वह क्षायिक सम्यक्त्व किसके होता है ? वह कहते हैं –

दंसणमोहक्खवणापट्ठवगो कम्मभूमिजादो हु ।
मणुसो केवलिमूले णिट्ठवगो होदि सव्वत्थ ।।६४८।।

दर्शनमोहक्षपणाप्रस्थापकः कर्मभूमिजातो हि ।
मनुष्यः केवलिमूले निष्ठापको भवति सर्वत्र ।।६४८।।

टीका – दर्शनमोहनीय की क्षपणा का प्रारम्भ तो कर्मभूमि में उत्पन्न मनुष्य ही के केवली के पादमूल में ही होता है और निष्ठापक सर्वत्र चारों गतियों में होते हैं।

भावार्थ – जो दर्शनमोह का क्षय होने का विधान है, उसका प्रारम्भ तो केवली या श्रुतकेवली के निकट कर्मभूमिया मनुष्य ही करता है । यदि वह विधान होते हुये मरण हो जाय तो जहां सम्पूर्ण दर्शनमोह के नाश का कार्य होकर समाप्त हो जाता है वहां उसको निष्ठापक कहते हैं; वह चारों गतियों में होता है ।

आगे वेदकसम्यक्त्व का स्वरूप कहते हैं –

दंसणमोहुदयादो उप्पज्जइ जं पयत्थसद्दहणं ।
चलमलिणमगाढं तं वेदयसम्मत्तमिदि जाणे ।।६४९।।

दर्शनमोहोदयादुत्पद्यते यत्पदार्थश्रद्धानम् ।
चलमलिनमगाढं तद् वेदकसम्यक्त्वमिति जानीहि ।।६४९।।

टीका – दर्शनमोहनीय का भेद जो सम्यक्त्वमोहनीय, उसके उदय से जो तत्त्वार्थश्रद्धान चल वा मल वा अगाढ़ होता है, वह वेदकसम्यक्त्व है, ऐसा तू जान ! चल, मलिन, अगाढ़ का लक्षण पहले गुणस्थानप्ररूपणा में कहा है *(गाथा २५ की टीका में)* ।

आगे उपशमसम्यक्त्व का स्वरूप और उसी की सामग्री का विशेष तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं –

दंसणमोहउवसमदो उप्पज्जइ जं पयत्थसद्दहणं ।
उवसमसम्मत्तमिणं पसण्णमलपंकतोयसमं ॥६५०॥

दर्शनमोहोपशमादुत्पद्यते यत्पदार्थश्रद्धानम् ।
उपशमसम्यक्त्वमिदं प्रसन्नमलपंकतोयसमम् ॥६५०॥

टीका – अनंतानुबंधी की चौकड़ी और दर्शनमोह की तीन इन सात प्रकृतियों के उदय का अभाव है लक्षण जिसका ऐसा प्रशस्त उपशम होने से, जैसे कतकफलादि से मल कर्दम के नीचे बैठने से जल प्रसन्न (स्वच्छ) होता है, वैसे जो तत्त्वार्थश्रद्धान उपजता है, वह उपशम नामक सम्यक्त्व है ।

खयउवसमियविसोही देसणपाउग्गकरणलद्धीय ।
चत्तारि वि सामण्णा करणं पुण होदि सम्मत्ते ॥६५१॥

क्षायोपशमिकविशुद्धि देशना प्रायोग्यकरणलब्धी च ।
चतस्रोऽपि सामान्यः करणं पुनर्भवति सम्यक्त्वे ॥६५१॥

टीका – सम्यक्त्व के पहले जैसे कर्मों का क्षयोपशम चाहिये वैसा होना वह क्षयोपशमलब्धि । जैसी विशुद्धता चाहिये वैसी होनी वह विशुद्धिलब्धि । जैसा उपदेश चाहिये वैसा प्राप्त होना वह देशनालब्धि । पंचेन्द्रियादिरूप योग्यता जैसी चाहिये वैसी होनी वह प्रायोग्यलब्धि । तथा अधःकरण, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरणरूप परिणामों का होना वह करणलब्धि जाननी ।

वहां चार लब्धि तो सामान्य हैं; भव्य-अभव्य सब के होती हैं । करणलब्धि है, वह भव्य को ही होती है । वह भी सम्यक्त्व और चारित्र के ग्रहण में ही होती है ।

भावार्थ – चार लब्धि तो संसार में अनेक बार होती हैं, परंतु करणलब्धि की प्राप्ति होनेपर सम्यक्त्व वा चारित्र अवश्य होता है ।

आगे उपशमसम्यक्त्व के ग्रहण को योग्य जो जीव, उसका स्वरूप कहते हैं -

चदुगदिभव्वो सण्णी पज्जत्तो सुज्झगो य सागारो ।
जागारो सल्लेस्सो सलद्धिगो सम्ममुवगमई ॥६५२॥

चतुर्गतिभव्यः संज्ञी पर्याप्तश्च शुद्धकश्च साकारः ।
जागरूकः सल्लेश्यः सलब्धिकः सम्यक्त्वमुपगच्छति ।।६५२।।

टीका – जो जीव चार गतियों में से किसी एक गति में प्राप्त ऐसा भव्य हो, संज्ञी हो, पर्याप्त हो, मंदकषायरूप परिणमता हुआ विशुद्ध हो, स्त्यानगृद्ध्यादिक तीन निद्रा से रहित होने से जाग्रत हो, जो साकार ज्ञानोपयोगी हो, भावित तीन शुभ लेश्याओं में से किसी एक लेश्या का धारक हो, करणलब्धिरूप परिणमा हो, ऐसा जीव यथासंभव सम्यक्त्व को प्राप्त होता है ।

चत्तारि वि खेत्ताइं आउगबंधेण होइ सम्मत्तं ।
अणुवदमहव्वदाइं ण लहइ देवउगं मोत्तुं ।।६५३।।

चत्वार्यपि क्षेत्राणि आयुष्कबंधेन भवति सम्यक्त्वम् ।
अणुव्रतमहाव्रतानि न लभते देवायुष्कं मुक्त्वा ।।६५३।।

टीका – चारों आयु में से किसी भी परभव की आयु का बंध किया हो, तो भी उस बद्धायु जीव के सम्यक्त्व उपजता है, यहां कोई दोष नहीं है । अणुव्रत और महाव्रत जिसके पहले देवायु का बंध हुआ हो उसी को होता है *(अथवा अबद्धायु के होता है)* । यदि पहले नारक, तिर्यंच, मनुष्यायु का बंध मिथ्यात्व में हुआ हो तो पश्चात् अणुव्रत, महाव्रत नहीं होते । यह नियम है ।

ण य मिच्छत्तं पत्तो सम्मत्तादो य जो य परिवडिदो ।
सो सासणो त्ति णेयो पंचमभावेण संजुत्तो ।।६५४।।

न च मिथ्यात्वं प्राप्तः सम्यक्त्वतश्च यश्च परिपतितः ।
स सासन इति ज्ञेयः पंचमभावेन संयुक्तः ।।६५४।।

टीका – जो जीव सम्यक्त्व से गिर गया और मिथ्यात्व को जब तक प्राप्त नहीं हुआ, तब तक सासादन है, ऐसा जानना । सो दर्शनमोह ही की अपेक्षा पांचवें अर्थात् पारिणामिक भाव से युक्त है क्योंकि चारित्रमोह की अपेक्षा अनंतानुबंधी के उदय से सासादन होता है इसलिये यहां औदयिक भाव है । यह सासादन जुदी ही जाति के श्रद्धानरूप सम्यक्त्वमार्गणा का भेद जानना ।

सद्दहणासद्दहणं जस्स य जीवस्स होइ तच्चेसु ।
विरयाविरयेण समो सम्मामिच्छो त्ति णायव्वो ।।६५५।।

श्रद्धानाश्रद्धानं यस्य च जीवस्य भवति तत्त्वेषु ।
विरताविरतेन समः सम्यग्मिथ्या इति ज्ञातव्यः ।।६५५।।

टीका – जिस जीव के जीवादि पदार्थों में श्रद्धान और अश्रद्धान एक काल में होता है, जैसे देशसंयत के संयम और असंयम एक काल में होता है, वैसे होता है, वह जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि है ऐसा जानना । यह सम्यक्त्वमार्गणा का मिश्र नामक भेद है ।

मिच्छाइट्ठी जीवो उवइट्ठं पवयणं ण सद्दहदि ।
सद्दहदि असब्भावं उवइट्ठं वा अणुवइट्ठं ।।६५६।।

मिथ्यादृष्टिर्जीवः उपदिष्टं प्रवचनं न श्रद्दधाति ।
श्रद्दधाति असद्भावं उपदिष्टं वा अनुपदिष्टम् ।।६५६।।

टीका – मिथ्यादृष्टि जीव जिनेन्द्र द्वारा उपदेशित आप्त, आगम और पदार्थ का श्रद्धान नहीं करता परंतु कुदेवादिक द्वारा उपदेशित या अनुपदेशित झूठे आप्त, आगम, पदार्थ, उनका श्रद्धान करता है । यह सम्यक्त्वमार्गणा का मिथ्यात्व नामक भेद कहा। इसतरह सम्यक्त्वमार्गणा के छह भेद कहे । उपशम और क्षायिक सम्यक्त्व का विशेष विधान लब्धिसार ग्रंथ में कहा है । उसके अनुसार यहां भाषाटीका में आगे कुछ लिखेंगे, वहां जानना ।

आगे सम्यक्त्वमार्गणा में जीवों की संख्या तीन गाथाओं द्वारा कहते हैं –

वासपुधत्ते खइया संखेज्जा जइ हवंति सोहम्मे ।
तो संखपल्लठिदिये केवडिया एवमणुपादे ।।६५७।।

वर्षपृथक्त्वे क्षायिकाः संख्येया यदि भवंति सौधर्मे ।
तर्हि संख्यपल्यस्थितिके कति एवमनुपाते ।।६५७।।

टीका – बहुत से क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव कल्पवासी देव होते हैं । सौधर्म-ईशान में कल्पवासी देव बहुत हैं, इसलिये ऐसा त्रैराशिक करना कि यदि पृथक्त्व वर्ष

में क्षायिक सम्यग्दृष्टि सौधर्म-ईशान में संख्यात उपजते हैं तो संख्यात पल्य की स्थिति में कितने उपजेंगे ? यहां प्रमाणराशि पृथक्त्व वर्ष प्रमाण काल, फलराशि संख्यात जीव, इच्छाराशि संख्यात पल्यप्रमाण काल; सो फलराशि से इच्छाराशि को गुणा करके प्रमाणराशि का भाग देनेपर जो लब्धराशि आयी, उसे कहते हैं –

संखावलिहिदपल्ला खइया तत्तो य वेदमुवसमया ।
आवलिअसंखगुणिदा असंखगुणहीणया कमसो ।।६५८।

संख्यावलिहितपल्याः क्षायिकास्ततश्च वेदमुपशमकाः ।
आवल्यसंख्यगुणिता असंख्यगुणहीनकाः क्रमशः ।।६५८।।

टीका – सो लब्धराशि का प्रमाण संख्यात आवली का भाग पल्य को देनेपर जो प्रमाण हो, उतना आया । सो उतने ही क्षायिक सम्यग्दृष्टि जानने । पुनश्च इनको आवली के असंख्यातवें भाग से गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने वेदकसम्यग्दृष्टि जीव जानने । तथा क्षायिक जीवों के प्रमाण ही से असंख्यातगुणा हीन उपशमसम्यग्दृष्टि जीव जानने ।

पल्लासंखेज्जदिमा सासाणमिच्छा य संखगुणिदा हु ।
मिस्सा तेहिं विहीणो संसारी वामपरिमाणं ।।६५९।।

पल्यासंख्याताः सासनमिथ्याश्च संख्यगुणिता हि ।
मिश्रास्तैर्विहीनः संसारी वामपरिमाणम् ।।६५९।।

टीका – पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण सासादन वे ही मिथ्यात्वी सामान्य हैं (सासनमिथ्याः), उनके प्रमाण से संख्यातगुणे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव हैं । पुनश्च इन पांच सम्यक्त्व संयुक्त जीवों के मिलाये हुये प्रमाण को संसारीराशि में से घटानेपर जो अवशेष रहे उतना वाम अर्थात् मिथ्यादृष्टि जीवों का प्रमाण है । *(यहां सम्यक्त्वमार्गणा के छह भेद हैं उनमें से पांच को घटानेपर छठवां भेद मिथ्यादृष्टि जीवों का प्रमाण आता है)* ।

अब यहां नौ पदार्थों का प्रमाण कहते हैं –

जीवद्रव्य तो द्विरूपवर्गधारा में कहे हुये अपने प्रमाणवाला है । अजीव में पुद्गलद्रव्य जीवराशि से अनंतगुणे है । धर्मद्रव्य एक है । अधर्मद्रव्य एक है । आकाशद्रव्य एक है । कालद्रव्य जगत्श्रेणी का घन जो लोक, उसप्रमाण हैं । सो पुद्गल के प्रमाण में धर्म, अधर्म, आकाश, काल का प्रमाण मिलानेपर अजीव पदार्थ का प्रमाण होता है ।

पुनश्च असंयत और देशसंयत का प्रमाण मिलाकर उनमें प्रमत्तादिकों का प्रमाण संख्यात मिलानेपर जो प्रमाण होता है, उतने पुण्यजीव हैं । पुनश्च किंचित् कम डेढ़ गुणहानि से गुणित समयप्रबद्ध प्रमाण कर्म परमाणुओं की सत्ता है उसके संख्यातवें भागमात्र शुभप्रकृतिरूप अजीवपुण्य हैं । पुनश्च मिश्र की अपेक्षा से कुछ अधिक पुण्यजीवों के प्रमाण को संसारी राशि में से घटानेपर जो प्रमाण रहे, उतने पापजीव हैं । पुनश्च डेढ़ गुणहानि से गुणित समयप्रबद्ध को संख्यात का भाग दीजिये, वहां एक भाग बिना अवशेष भाग प्रमाण अशुभ प्रकृतिरूप अजीवपाप है । आस्रवपदार्थ समयप्रबद्धप्रमाण है । संवरपदार्थ समयप्रबद्धप्रमाण है । निर्जराद्रव्य गुणश्रेणीनिर्जरा में उत्कृष्टपने जितनी निर्जरा होती है, उसप्रमाण है । बंधपदार्थ समयप्रबद्धप्रमाण है । मोक्षद्रव्य डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबद्धप्रमाण है ।

इति आचार्य श्री नेमिचन्द्रसिद्धांतचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नामक संस्कृत टीका के अनुसार सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषा-टीका में जीवकाण्ड में प्ररूपित जो बीस प्ररूपणा उनमें से सम्यक्त्वमार्गणा प्ररूपणा नामक सत्रहवां अधिकार पूर्ण हुआ ।।१७।।

अठारहवां अधिकार : संज्ञीमार्गणा प्ररूपणा

॥ मंगलाचरण ॥

अरि रजविघ्न विनाशकर, अमित चतुष्टय थान ।
शत इंद्रनि करि पूज्य पद, द्यो श्री अर भगवान ॥

आगे संज्ञी मार्गणा कहते हैं -

णोइंदियआवरणखओवसमं तज्जबोहणं सण्णा ।
सा जस्स सो दु सण्णी इदरो सेसिंदिअवबोहो ॥६६०॥

नोइंद्रियावरणक्षयोपशमस्तज्जबोधनं संज्ञा ।
सा यस्य स तु संज्ञी इतरः शेषेंद्रियावबोधः ॥६६०॥

टीका - नोइन्द्रिय अर्थात् मन के आवरण का जो क्षयोपशम, उससे उत्पन्न हुआ जो बोधन अर्थात् ज्ञान उसको संज्ञा कहते हैं । वह संज्ञा जिसके प्राप्त हो उसको संज्ञी कहते हैं । मन-ज्ञान से रहित अवशेष यथासंभव इन्द्रियों के ज्ञान से युक्त जो जीव, वे असंज्ञी हैं ।

सिक्खाकिरियुवदेसालावग्गाही मणोवलंबेण ।
जो जीवो सो सण्णी तव्विवरीओ असण्णी दु ॥६६१॥

शिक्षाक्रियोपदेशालापग्राही मनोवलंबेन ।
यो जीवः स संज्ञी तद्विपरीतोऽसंज्ञी तु ॥६६१॥

टीका - हित-अहित के करने-त्यागनेरूप शिक्षा, इच्छा से हाथ पैर आदि चलानेरूप क्रिया, चामठी (बेंत) आदि से उपदेशित वधविधानादिक वह उपदेश, श्लोकादिक का पाठ करना वह आलाप, इनका ग्रहण करनेवाला जो मन, उसके अवलंबन से क्रम से मनुष्य, बैल, हाथी और तोता इत्यादि जीवों का संज्ञी नाम है । तथा इस लक्षण से उलटे लक्षणवाला जीव, उसका असंज्ञी नाम जानना ।

मीमंसदि जो पुव्वं कज्जमकज्जं च तच्चमिदरं च ।
सिक्खदि णामेणेदि य समणो अमणो य विवरीदो ।।६६२।।

मीमांसति यः पूर्वं कार्यमकार्यं च तत्त्वमितरच्च ।
शिक्षते नाम्ना एति च समनाः अमनाश्च विपरीतः ।।६६२।।

टीका - जो पहले कार्य-अकार्य का विचार करे, तत्त्व-अतत्त्व को सीखे, नाम से बुलानेपर आये, वह जीव मनसहित समनस्क, संज्ञी जानना । इस लक्षण से उलटे लक्षण का जो धारक हो, वह जीव मनरहित अमनस्क असंज्ञी जानना ।

यहां जीवों की संख्या कहते हैं -

देवेहिं सादिरेगो रासी सण्णीण होदि परिमाणं ।
तेणूणो संसारी सव्वेसिमसण्णिजीवाणं ।।६६३।।

देवैः सातिरेको राशिः संज्ञिनां भवति परिमाणम् ।
तेनोनः संसारी सर्वेषामसंज्ञिजीवानाम् ।।६६३।।

टीका - चार प्रकार के देवों का जो प्रमाण है, उससे कुछ अधिक संज्ञी जीवों का प्रमाण है । संज्ञी जीवों में देव बहुत हैं । उनमें नारक, मनुष्य, संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच मिलानेपर संज्ञी जीवों का प्रमाण होता है । इस प्रमाण को संसारी जीवों के प्रमाण में से घटानेपर अवशेष सर्व असंज्ञी जीवों का प्रमाण होता है ।

इति आचार्य श्री नेमिचन्द्रसिद्धांतचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नामक संस्कृत टीका के अनुसार सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषा-टीका में जीवकाण्ड में प्ररूपित जो बीस प्ररूपणा उनमें से संज्ञीमार्गणा प्ररूपणा नामक अठारहवां अधिकार पूर्ण हुआ ।।१८।।

उन्नीसवां अधिकार : आहारमार्गणा प्ररूपणा

।। मंगलाचरण ।।

मल्लिकुसुम समगंधजुत मोह शत्रुहर मल्ल ।
बहिरंतर श्रीसहित जिन, मल्लि हरहु मम शल्ल ।।

आगे आहारमार्गणा कहते हैं –

उदयावण्णसरीरोदयेण तद्देहवयणचित्ताणं ।
णोकम्मवग्गणाणं गहणं आहारयं णाम ।।६६४।।

उदयापन्नशरीरोदयेन तद्देहवचनचित्तानाम् ।
नोकर्मवर्गणानां ग्रहणमाहारकं नाम ।।६६४।।

टीका – औदारिक, वैक्रियिक, आहारक इन तीन शरीर नामक नामकर्म में से किसी के भी उदय से जो उस शरीररूप, वचनरूप और द्रव्यमनरूप होने योग्य नोकर्मवर्गणा का ग्रहण करना, उसका आहार ऐसा नाम है ।

आहरदि सरीराणं तिण्हं एयदरवग्गणाओ य ।
भासामणाण णियदं तम्हा आहारयो भणियो ।।६६५।।

आहरति शरीराणां त्रयाणामेकतरवर्गणाश्च ।
भाषामनसोर्नित्यं तस्मादाहारको भणितः ।।६६५।।

टीका – औदारिकादि शरीरों में से उदय में आये किसी शरीररूप आहारवर्गणा, भाषावर्गणा, मनोवर्गणा इन वर्गणाओं को यथायोग्य जीवसमास में यथायोग्य काल में यथायोग्यपने नियमरूप **आहरति** अर्थात् ग्रहण करे, उसे आहार कहा है ।

विग्गहगदिमावण्णा केवलिणो समुग्घदो अयोगी य ।
सिद्धा य अणाहारा सेसा आहारया जीवा ।।६६६।।

विग्रहगतिमापन्नः केवलिनः समुद्घाता अयोगिनश्च ।
सिद्धाश्च अनाहाराः शेषा आहारका जीवाः ।।६६६।।

टीका - विग्रहगति *(मोड़वाली)* को जो प्राप्त हुये हैं ऐसे चारों गतिवाले जीव, तथा प्रतर और लोकपूरण केवलीसमुद्घात को प्राप्त हुये ऐसे सयोगीजिन, तथा सर्व अयोगीजिन और सर्व सिद्धभगवान ये सब अनाहारक हैं । अवशेष सर्व जीव आहारक ही हैं ।

समुद्घात कितने प्रकार के हैं, वह कहते हैं -

वेयणकसायवेगुव्वियो य मरणंतियो समुग्घादो ।
तेजाहारो छट्ठो सत्तमओ केवलीणं तु ।।६६७।।

वेदनाकषायवैगूर्विकाश्च मारणांतिकः समुद्घातः ।
तेजआहारः षष्ठः सप्तमः केवलिनां तु ।।६६७।।

टीका - वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणांतिक, तेजस, छठवां आहारक और सातवां केवलीसमुद्घात ये सात समुद्घात जानने । इनका स्वरूप लेश्यामार्गणा में क्षेत्राधिकार में कहा था, वह जानना ।

समुद्घात का स्वरूप क्या है ? वह कहते हैं -

मूलसरीरमछंडिय उत्तरदेहस्स जीवपिंडस्स ।
णिग्गमणं देहादो होदि समुग्घादणामं तु ।।६६८।।

मूलशरीरमत्यक्त्वा उत्तरदेहस्य जीवपिंडस्य ।
निर्गमनं देहाद्भवति समुद्घातनाम तु ।।६६८।।

टीका - मूलशरीर को तो छोड़े नहीं और कार्माण, तेजसरूप उत्तरशरीर सहित जीव के प्रदेशसमूह का मूलशरीर से बाहर निकसना, उसका समुद्घात ऐसा नाम जानना।

आहारमारणंतिय दुगं पि णियमेण एगदिसिगं तु ।
दसदिसि गदा हु सेसा पंच समुग्घादया होंति ।।६६९।।

आहारमारणांतिकद्विकमपि नियमेन एकदिशिकं तु ।
दशदिशि गताहि शेषाः पंच समुद्घातका भवंति ।।६६९।।

टीका – आहारक और मारणांतिक ये दोनों समुद्घात तो नियम से एक दिशा को ही प्राप्त होते हैं; क्योंकि इनमें सूच्यंगुल के संख्यातवें भाग प्रमाण ही ऊंचाई, चौड़ाई होती है और लम्बाई बहुत होती है । इसलिये एक दिशा को प्राप्त कहते हैं । तथा अवशेष पांच समुद्घात रहे, वे दसों दिशा को प्राप्त हैं, क्योंकि इनमें यथायोग्य लम्बाई, ऊंचाई, चौड़ाई सर्व ही पायी जाती है ।

आगे आहार, अनाहार का काल कहते हैं –

अंगुलअसंखभागो कालो आहारयस्स उक्कस्सो ।
कम्मम्मि अणाहारो उक्कस्सं तिण्णि समया हु ।।६७०।।

अंगुलासंख्यभागः कालः आहारकस्योत्कृष्टः ।
कार्मणे अनाहारः उत्कृष्टः त्रयः समया हि ।।६७०।।

टीका – आहार का उत्कृष्ट काल सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण है। सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग के जितने प्रदेश होते हैं, उतने समयप्रमाण आहारक का काल है । *(यह काल असंख्यात कल्पकाल प्रमाण अर्थात् असंख्यात उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी प्रमाण है ।)*

यहां प्रश्न – आयु पूर्ण होनेपर मरण तो होगा ही होगा, तो वहां अनाहार हो जायगा, यहां आहार का काल इतना कैसे कहा ?

उसका समाधान – मरण होनेपर भी जिस जीव के वक्ररूप *(मोड़वाली)* विग्रहगति नहीं होती, सीधी एक समयरूप गति *(ऋजुगति अर्थात् इषुगति)* होती है, उसके अनाहारकपना नहीं होता; आहारकपना ही रहता है । इसलिये आहारक का पूर्वोक्त काल उत्कृष्टपने से कहा है । पुनश्च आहारक का जघन्य काल तीन समय कम श्वास का अठारहवां भाग जानना; क्योंकि क्षुद्रभव में विग्रहगति के समय घटानेपर इतना काल होता है।

*(**विशेषार्थ** – कोई एकेन्द्रिय मरकर तीन मोड़वाली विग्रहगति से लब्धिअपर्याप्त में जन्म लेता है तो वह तीन समय तक अनाहारक रहा, पश्चात् आहारक हुआ, अपनी क्षुद्रभव की आयु बिताकर मरणकर फिर मोड़वाली विग्रहगति में गया तो फिर अनाहारक*

हुआ। इसप्रकार आहारक का जघन्य काल घटित होता है ।)

अनाहारक का काल कार्माणशरीर में उत्कृष्ट तीन समय, जघन्य एक समय जानना, क्योंकि विग्रहगति में इतने कालपर्यंत ही नोकर्मवर्गणा का ग्रहण नहीं होता। *(प्रतर-लोकपूरण-प्रतर इन तीन समयों में भी केवलीसमुद्घात में जीव कार्माणकाययोगवाला और अनाहारक होता है । तथा अयोगीजिन भी उनके गुणस्थान के अंतर्मुहूर्त काल तक अनाहारक हैं ।)*

आगे यहां जीवों की संख्या कहते हैं -

कम्मइयकायजोगी होदि अणाहारयाण परिमाणं ।
तव्विरहिदसंसारी सव्वो आहारपरिमाणं ।।६७१।।

कार्मणकाययोगी भवति अनाहारकाणां परिमाणम् ।
तद्विरहितसंसारी सर्वं आहारपरिमाणम् ।।६७१।।

टीका - कार्माणकाययोगवाले जीवों का जो प्रमाण योगमार्गणा में कहा, वही अनाहारक जीवों का प्रमाण जानना । इसको संसारी जीवों के प्रमाण में से घटानेपर अवशेष रहे, उतना आहारक जीवों का प्रमाण जानना । वही कहते हैं - प्रथम योगों का काल कहते हैं - कार्माण का तो तीन समय, औदारिकमिश्र का अंतर्मुहूर्तप्रमाण, औदारिक का उससे संख्यातगुणा काल, वहां सर्व काल मिलानेपर तीन समय अधिक संख्यात अंतर्मुहूर्तप्रमाण काल हुआ । इसका किंचित् कम संसारीराशि को भाग देनेपर जो प्रमाण आता है, उसको तीन से गुणा करनेपर जो प्रमाण आता है उतने अनाहारक जीव हैं, अवशेष सर्व संसारी आहारक जीव हैं । वैक्रियिक, आहारकवाले थोड़े हैं उनकी मुख्यता नहीं है ।

(एकेन्द्रिय जीव अनंत हैं उनकी मुख्यता से कथन जानना ।)

यहां **प्रक्षेपयोगोध्दृतमिश्रपिंडः प्रक्षेपकाणां गुणको भवेदिति,** ऐसा यह करणसूत्र जानना । **इसका अर्थ** - प्रक्षेप को मिलाकर मिश्र पिंड का भाग देनेपर जो प्रमाण होता है उसको प्रक्षेपक से गुणा करनेपर अपना-अपना प्रमाण होता है । जैसे कोई एक हजार प्रमाण वस्तु हैं, उसमें किसी का पांच बट (हिस्सा) है, किसी का सात बट है, किसी का आठ बट है । सब को मिलाकर प्रक्षेपक का प्रमाण बीस हुआ।

उस बीस का भाग हजार को देनेपर पचास आये । उसको पांच से गुणा करनेपर अढ़ाई सौ हुये, वे पांच बटवालें के हैं । सात से गुणा करनेपर साढ़े तीन सौ हुये, वे सात बटवाले के हैं तथा आठ से गुणा करनेपर चार सौ हुये, वे आठ बटवाले के हैं । ऐसे मिश्रक व्यवहार में अन्यत्र भी जानना ।

इति आचार्य श्री नेमिचन्द्रसिद्धांतचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नामक संस्कृत टीका के अनुसार सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषा-टीका में जीवकाण्ड में प्ररूपित जो बीस प्ररूपणा उनमें से आहारमार्गणा प्ररूपणा नामक उन्नीसवां अधिकार पूर्ण हुआ ।।१९।।

बीसवां अधिकार : उपयोग प्ररूपणा

॥ मंगलाचरण ॥

सुव्रत पावन कौं भजैं, जाहि भक्त व्रतवंत ।
निज सुव्रत श्री देहु मम, सो सुव्रत अरहंत ॥

आगे उपयोगाधिकार कहते हैं –

वत्थुणिमित्तं भावो जादो जीवस्स जो दु उवजोगो ।
सो दुविहो णायव्वो सायारो चेव णायारो ॥६७२॥

वस्तुनिमित्तं भावो जातो जीवस्य यस्तूपयोगः ।
स द्विविधो ज्ञातव्यः साकारश्चेवानाकारः ॥६७२॥

टीका – बसते हैं, एकीभावरूप निवास करते हैं गुणपर्याय जिसमें, वह वस्तु ज्ञेयपदार्थ जानना । उसके ग्रहण के लिये *(जानने के लिये)* जीव का परिणामविशेष रूप भाव प्रवर्तता है, वह उपयोग है । वह उपयोग साकार-अनाकार भेद से दो प्रकार का जानना ।

आगे साकार उपयोग आठ प्रकार का है, अनाकार उपयोग चार प्रकार का है, ऐसा कहते हैं –

णाणं पंचविहं पि य अण्णाणतियं च सागरुवजोगो ।
चदुदंसणमणगारो सव्वे तल्लक्खणा जीवा ॥६७३॥

ज्ञानं पंचविधमपि च अज्ञानत्रिकं च साकारोपयोगः ।
चतुर्दर्शनमनाकारः सर्वे तल्लक्षणा जीवाः ॥६७३॥

टीका – मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल ये पांच प्रकार के ज्ञान तथा कुमति, कुश्रुत, विभंग ये तीन अज्ञान ये आठों साकार उपयोग हैं । चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल ये चारों दर्शन अनाकार उपयोग हैं । सो सर्व ही जीव ज्ञान-दर्शनरूप उपयोग लक्षण के धारक हैं ।

इस लक्षण में अतिव्याप्ति, अव्याप्ति, असम्भवी दोष नहीं होते हैं । जहां लक्ष्य में और अलक्ष्य में लक्षण पाया जाय वहां अतिव्याप्ति दोष है । जैसे जीव का लक्षण अमूर्तिक कहेंगे तो अमूर्तिकपना जीव में भी है, धर्मादिक में भी है । पुनश्च जहां लक्ष्य के एकदेश में लक्षण पाया जाय, वहां अव्याप्ति दोष है । जैसे जीव का लक्षण रागादिक कहेंगे तो रागादिक संसारी में तो होते हैं परंतु सिद्ध जीवों में नहीं होते । पुनश्च जो लक्ष्य से विरोधी लक्षण हो, तो असंभवी कहते हैं । जैसे जीव का लक्षण जडत्व कहेंगे तो वह सम्भव ही नहीं है । ऐसे उपयोग ही जीव का त्रिदोषरहित लक्षण जानना ।

मदिसुदओहिमणेहिं य सगसगविसये विसेसविण्णाणं ।
अंतोमुहुत्तकालो उवजोगो सो दु सायारो ।।६७४।।

मतिश्रुतावधिमनोभिश्च स्वकस्वकविषये विशेषविज्ञानं ।
अंतर्मुहूर्तकाल उपयोगः स तु साकारः ।।६७४।।

टीका – मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय ज्ञान द्वारा अपने-अपने विषय में जो विशेष ज्ञान होता है, अंतर्मुहूर्त कालप्रमाण पदार्थ का ग्रहणरूप लक्षण का धारक जो उपयोग होता है, वह साकार उपयोग है। यहां वस्तु के ग्रहणरूप जो चैतन्य का परिणमन, उसका नाम उपयोग है । मुख्यपने उपयोग है, वह छद्मस्थ के एक वस्तु के ग्रहणरूप चैतन्य का परिणमन अंतर्मुहूर्तमात्र ही रहता है, इसलिये अंतर्मुहूर्त ही कहा है ।

इंदियमणोहिणा वा अत्थे अविसेसिदूण जं गहणं ।
अंतोमुहुत्तकालो उवजोगो सो अणायारो ।।६७५।।

इंद्रियमनोऽवधिना वा अर्थे अविशेष्य यद्ग्रहणम् ।
अंतर्मुहूर्तकालः उपयोगः स अनाकारः ।।६७५।।

टीका – नेत्र इन्द्रियरूप चक्षुदर्शन तथा अवशेष इन्द्रिय और मनरूप अचक्षुदर्शन तथा अवधिदर्शन इनके द्वारा जीवादि पदार्थों का विशेष न करके जो निर्विकल्पपने ग्रहण होता है, वह अंतर्मुहूर्त काल प्रमाण सामान्य अर्थ के ग्रहणरूप निराकार उपयोग है।

भावार्थ – वस्तु सामान्य विशेषात्मक है । वहां सामान्य के ग्रहण को निराकार

उपयोग कहते हैं, विशेष के ग्रहण को साकार उपयोग कहते हैं । क्योंकि सामान्य में वस्तु का आकार प्रतिभासित नहीं होता, विशेष में आकार प्रतिभासित होता है ।

आगे यहां जीवों की संख्या कहते हैं -

णाणुवजोगजुदाणं परिमाणं णाणमग्गणं व हवे ।
दंसणुवजोगियाणं दंसणमग्गण व उत्तकमो ।।६७६।।

ज्ञानोपयोगयुतानां परिमाणं ज्ञानमार्गणावद्भवेत् ।
दर्शनोपयोगिनां दर्शनमार्गणावदुक्तक्रमः ।।६७६।।

टीका - ज्ञानोपयोगी जीवों का प्रमाण ज्ञानमार्गणावत् है । दर्शनोपयोगी जीवों का प्रमाण दर्शनमार्गणावत् है । सो कुमतिज्ञानी, कुश्रुतज्ञानी, विभंगज्ञानी, मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी, केवलज्ञानी तथा तिर्यंच-विभंगज्ञानी, मनुष्य-विभंगज्ञानी, नारक-विभंगज्ञानी इनका प्रमाण जैसे ज्ञानमार्गणा में कहा है, वैसे ही ज्ञानोपयोग में प्रमाण जानना। कुछ विशेष नहीं है । पुनश्च शक्तिगत चक्षुदर्शनी, व्यक्तगत चक्षुदर्शनी, अचक्षुदर्शनी, अवधिदर्शनी, केवलदर्शनी इनका प्रमाण जैसे दर्शनमार्गणा में कहा है, वैसे यहां निराकार उपयोग में प्रमाण जानना । कुछ विशेष नहीं है ।

इति आचार्य श्री नेमिचन्द्रसिद्धांतचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नामक संस्कृत टीका के अनुसार सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषा-टीका में जीवकाण्ड में प्ररूपित जो बीस प्ररूपणा उनमें से उपयोग प्ररूपणा नामक बीसवां अधिकार पूर्ण हुआ ।।२०।।

इक्कीसवां अधिकार : अंतरभावाधिकार

॥ मंगलाचरण ॥

विभव अमित ज्ञानादि जुत सुरपति नुत नमिनाथ ।
जय मम ध्रुवपद देहु जिहि हत्यो घातिया साथ ॥

आगे बीस प्ररूपणा का अर्थ कहकर, अब उत्तर अर्थ को कहते हैं –

गुणजीवा पज्जत्ती पाणा सण्णाय मग्गणुवजोगो ।
जोग्गा परूविदव्वा ओघादेसेसु पत्तेयं ॥६७७॥

गुणजीवाः पर्याप्तयः प्राणाः संज्ञाश्च मार्गणोपयोगौ ।
योग्याः प्ररूपितव्या ओघादेशयोः प्रत्येकम् ॥६७७॥

टीका – कही हुयी बीस प्ररूपणा में गुणस्थान और मार्गणास्थान इनमें गुणस्थान और जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, चौदह मार्गणा, उपयोग ये बीस प्ररूपणा जैसे सम्भव है, वैसे निरूपण करनी । वही कहते हैं –

(गुणस्थान को छोड़कर अन्य उन्नीस प्ररूपणा मार्गणास्थान में गर्भित हैं । यहां एक-एक प्ररूपणा में अन्य अन्य कौनसी प्ररूपणा सम्भव है उसे अब निरूपित करेंगे।

चउ पण चोद्दस चउरो णिरयादिसु चोद्दसं तु पंचक्खे ।
तसकाये सेसिंदियकाये मिच्छं गुणट्ठाणं ॥६७८॥

चत्वारि पंच चतुर्दश, चत्वारि निरयादिषु चतुर्दश तु पंचाक्षे ।
त्रसकाये शेषेंद्रियकाये मिथ्यात्वं गुणस्थानम् ॥६७८॥

टीका – गतिमार्गणा में गुणस्थान क्रम से मिथ्यादृष्टि आदि – नरक में चार, तिर्यंच में पांच, मनुष्य में चौदह, देव में चार जानने । इन्द्रियमार्गणा में पंचेन्द्रिय में और कायमार्गणा में त्रसकाय में तो चौदह गुणस्थान हैं । अवशेष इन्द्रिय में *(एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तक)* और काय में *(पांच स्थावरकाय में)* एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान है ।

जीवसमास नरकगति और देवगति में संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त और निर्वृत्तिअपर्याप्त ये दो हैं । तिर्यंच में सर्व चौदह हैं । मनुष्य में संज्ञी पर्याप्त अपर्याप्त ये दो हैं। यहां नरक-देवगति में लब्धिअपर्याप्त नहीं है इसलिये निर्वृत्तिअपर्याप्त कहा, मनुष्य में निर्वृत्तिअपर्याप्त लब्धिअपर्याप्त दोनों पाये जाते हैं, इसलिये सामान्यपने अपर्याप्त ही कहा है । इन्द्रियमार्गणा में एकेन्द्रिय में बादर-सूक्ष्म एकेन्द्रिय दोनों के पर्याप्त-अपर्याप्त ऐसे चार जीवसमास हैं । द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय में अपने-अपने पर्याप्त-अपर्याप्तरूप दो-दो जीवसमास हैं । पंचेन्द्रिय में संज्ञी, असंज्ञी के पर्याप्त और अपर्याप्त ये चार जीवसमास हैं । कायमार्गणा में पृथ्वी आदि पांच स्थावरों में एकेन्द्रियवत् चार-चार जीवसमास हैं । त्रस में अवशेष दस जीवसमास हैं ।

मज्झिमचउमणवयणे सण्णिप्पहुदिं दु जाव खीणो त्ति ।
सेसाणं जोगि त्ति य अणुभयवयणं तु वियलादो ।।६७९।।

मध्यमचतुर्मनवचनयोः संज्ञिप्रभृतिस्तु यावत् क्षीण इति ।
शेषाणां योगीति च अनुभयवचनं तु विकलतः ।।६७९।।

टीका - मध्यम अर्थात् असत्य और उभय मन और वचन इन चार योगों में संज्ञी मिथ्यादृष्टि से लेकर क्षीणकषाय तक बारह गुणस्थान हैं । तथा सत्य और अनुभय मनोयोग में और सत्य वचनयोग में संज्ञी पर्याप्त मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगी तक तेरह गुणस्थान हैं । इन सब में जीवसमास एक संज्ञी पर्याप्त है । अनुभय वचनयोग में विकलत्रय मिथ्यादृष्टि से लेकर तेरह गुणस्थान हैं । पुनश्च द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय इनके पर्याप्तरूप पांच जीवसमास हैं ।

ओरालं पज्जत्ते थावरकायादि जाव जोगो त्ति ।
तम्मिस्समपज्जत्ते चदुगुणठाणेसु णियमेण ।।६८०।।

औरालं पर्याप्ते स्थावरकायादि यावत् योगीति ।
तन्मिश्रमपर्याप्ते चतुर्गुणस्थानेषु नियमेन ।।६८०।।

टीका - औदारिक काययोग एकेन्द्रिय स्थावर पर्याप्त मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगी तक तेरह गुणस्थानों में है । औदारिक मिश्र काययोग अपर्याप्त चार गुणस्थान में ही नियम से है । किनमें ? वह कहते हैं -

मिच्छे सासणसम्मे पुंवेदयदे कवाडजोगिम्मि ।
णरतिरिये वि य दोण्णि वि होंति त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ।।६८१।।

मिथ्यात्वे सासनसम्यक्त्वे पुंवेदायते कपाटयोगिनि ।
नरतिरश्चोरपि च द्वावपि भवंतीति जिनैर्निर्दिष्टम् ।।६८१।।

टीका – मिथ्यादृष्टि, सासादन, पुरुषवेद के उदय से संयुक्त असंयत, कपाट समुद्घात सहित सयोगी इन अपर्याप्तरूप चार गुणस्थानों में वह औदारिकमिश्र काययोग पाया जाता है । औदारिक और औदारिकमिश्र ये दोनों योग मनुष्य और तिर्यंचों ही के होते हैं, ऐसा जिनदेव ने कहा है । औदारिक में तो पर्याप्त सात जीवसमास हैं और औदारिकमिश्र में अपर्याप्त सात जीवसमास और सयोगी के एक पर्याप्त जीवसमास ऐसे आठ जीवसमास हैं ।

वेगुव्वं पज्जत्ते इदरे खलु होदि तस्स मिस्सं तु ।
सुरणिरयचउट्ठाणे मिस्से ण हि मिस्सजोगो हु ।।६८२।।

वैगूर्वं पर्याप्ते इतरे खलु भवति तस्य मिश्रं तु ।
सुरनिरयचतुःस्थाने मिश्रे न हि मिश्रयोगो हि ।।६८२।।

टीका – वैक्रियिक काययोग पर्याप्त देव, नारकियों के मिथ्यादृष्टि से लेकर चार गुणस्थान में है । वैक्रियिकमिश्र योग मिश्र गुणस्थान में नहीं है, इसलिये देव-नारकी संबंधी मिथ्यादृष्टि, सासादन, असंयत इन ही में है *(नारकी में वैक्रियिकमिश्र सासादन में नहीं है क्योंकि सासादनवाले मरकर नरक में नहीं जाते।)* जीवसमास वैक्रियिक में एक संज्ञी पर्याप्त है और वैक्रियिकमिश्र में एक संज्ञी निर्वृत्तिअपर्याप्त है ।

आहारो पज्जत्ते इदरे खलु होदि तस्स मिस्सो दु ।
अंतोमुहुत्तकाले छट्ठगुणे होदि आहारो ।।६८३।।

आहारः पर्याप्ते इतरे खलु भवति तस्य मिश्रस्तु ।
अंतर्मुहूर्तकाले षष्ठगुणे भवति आहारः ।।६८३।।

टीका – आहारकयोग संज्ञी पर्याप्त छठवें गुणस्थान में जघन्यपने और उत्कृष्टपने अंतर्मुहूर्त काल में ही है । आहारकमिश्र योग है वह इतर अर्थात् संज्ञी अपर्याप्तरूप

छठवें गुणस्थान में जघन्यपने और उत्कृष्टपने अंतर्मुहूर्त काल में ही होता है । इसलिये इन दोनों के गुणस्थान एक प्रमत्त है और जीवसमास वही एक एक जानना ।

ओरालियमिस्सं वा चउगुणठाणेसु होदि कम्मइयं ।
चदुगदिविग्गहकाले जोगिस्स य पदरलोगपूरणगे ।।६८४।।

औरालिकमिश्रो वा चतुर्गुणस्थानेषु भवति कार्मणम् ।
चतुर्गतिविग्रहकाले योगिनश्च प्रतरलोकपूरणके ।।६८४।।

टीका – कार्माणकाययोग औदारिकमिश्रवत् चार गुणस्थानों में है । सो कार्माणकाययोग चारों गति संबंधी विग्रहगति में और सयोगी के प्रतर, लोकपूरण काल में पाया जाता है । इसलिये गुणस्थान चार और जीवसमास आठ औदारिकमिश्रवत् यहां जानने ।

थावरकायप्पहुदी संढो सेसा असण्णिआदी य ।
अणियट्टिस्स य पढमो भागो त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ।।६८५।।

स्थावरकायप्रभृतिः षंढः शेषा असंज्ञ्यादयश्च ।
अनिवृत्तेश्च प्रथमो भागः इति जिनैर्निर्दिष्टम् ।।६८५।।

टीका – वेदमार्गणा में नपुंसकवेद है, वह स्थावरकाय मिथ्यादृष्टि से लेकर अनिवृत्तिकरण के पहले सवेद भाग तक होता है । इसलिये गुणस्थान नौ, जीवसमास सर्व चौदह हैं । शेष स्त्रीवेद और पुरुषवेद संज्ञी, असंज्ञी पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि से लेकर अनिवृत्तिकरण के अपने-अपने सवेद भाग पर्यंत हैं । इसलिये गुणस्थान नौ, जीवसमास संज्ञी, असंज्ञी, पर्याप्त और निर्वृत्तिअपर्याप्तरूप चार, जिनदेव ने कहे हैं ।

थावरकायप्पहुदी अणियट्टीबितिचउत्थभागो त्ति ।
कोहतियं लोहो पुण सुहुमसरागो त्ति विण्णेयो ।।६८६।।

स्थावरकायप्रभृति अनिवृत्तिद्वित्रिचतुर्थभाग इति ।
क्रोधत्रिकं लोभः पुनः सूक्ष्मसराग इति विज्ञेयः ।।६८६।।

टीका – कषायमार्गणा में स्थावरकाय मिथ्यादृष्टि से लेकर क्रोध, मान, माया तो क्रम से अनिवृत्तिकरण के दूसरे, तीसरे, चौथे भागपर्यंत हैं और लोभ सूक्ष्मसाम्पराय

तक है, इसलिये क्रोध, मान, माया में गुणस्थान नौ, लोभ में दस और जीवसमास सर्वत्र चौदह जानने ।

थावरकायप्पहुदी मदिसुअण्णाणयं विभंगो दु ।
सण्णीपुण्णप्पहुदी सासणसम्मो त्ति णायव्वो ।।६८७।।

स्थावरकायप्रभृति मतिश्रुताज्ञानकं विभंगस्तु ।
संज्ञिपूर्णप्रभृति सासनसम्यगिति ज्ञातव्यः ।।६८७।।

टीका – ज्ञानमार्गणा में कुमति, कुश्रुत दोनों अज्ञान स्थावरकाय मिथ्यादृष्टि से लेकर सासादन तक हैं । इसलिये वहां गुणस्थान दो और जीवसमास चौदह हैं। विभंगज्ञानी संज्ञी पर्याप्त मिथ्यादृष्टि से लेकर सासादन तक जानना । इसलिये गुणस्थान दो और जीवसमास एक संज्ञी पर्याप्त ही है ।

सण्णाणतिगं अविरदसम्मादी छट्ठगादि मणपज्जो ।
खीणकसायं जाव दु केवलणाणं जिणे सिद्धे ।।६८८।।

सद्ज्ञानत्रिकमविरतसम्यगादि षष्ठकादिर्मनःपर्ययः ।
क्षीणकषायं यावत्तु केवलज्ञानं जिने सिद्धे ।।६८८।।

टीका – मति, श्रुत, अवधि ये तीन सम्यग्ज्ञान असंयतादि क्षीणकषाय तक हैं; इसलिये गुणस्थान नौ और जीवसमास संज्ञी पर्याप्त, अपर्याप्त ये दो जानने । मनःपर्ययज्ञान छठवें से क्षीणकषाय तक है; इसलिये गुणस्थान सात और जीवसमास एक संज्ञी पर्याप्त ही है । मनःपर्ययज्ञानी के आहारक ऋद्धि नहीं होती, इसलिये आहारकमिश्र की अपेक्षा से भी अपर्याप्तपना सम्भव नहीं है । केवलज्ञान सयोगी, अयोगी और सिद्ध में है। इसलिये गुणस्थान दो, जीवसमास संज्ञी पर्याप्त और सयोगी की अपेक्षा अपर्याप्त ये दो जानने ।

अयदो त्ति हु अविरमणं देसे देसो पमत्त इदरे य ।
परिहारो सामाइयछेदो छट्ठादि थूलो त्ति ।।६८९।।

सुहुमो सुहुमकसाये संते खीणे जिणे जहक्खादं ।
संजममग्गणभेदा सिद्धे णत्थित्ति णिद्दिट्ठं ।।६९०।।जुम्मं।।

अयत इति अविरमणं देशे देशः प्रमत्तेतरस्मिन् च ।
परिहारः सामायिकश्छेदः षष्ठादिः स्थूल इति ।।६८९।।

सूक्ष्मः सूक्ष्मकषाये शांते क्षीणे जिने यथाख्यातम् ।
संयममार्गणा भेदाः सिद्धे न संतीति निर्दिष्टम् ।।६९०।।युग्मम्।।

टीका – संयममार्गणा में असंयम है, वह मिथ्यादृष्टि आदि असंयत तक चार गुणस्थानों में है । वहां जीवसमास चौदह हैं । देशसंयम एक देशसंयत गुणस्थान में ही है । वहां जीवसमास एक संज्ञी पर्याप्त है । सामायिक छेदोपस्थापना संयम प्रमत्तादि अनिवृत्तिकरण तक चार गुणस्थानों में है । वहां जीवसमास संज्ञी पर्याप्त और आहारकमिश्र की अपेक्षा अपर्याप्त ये दो हैं । परिहारविशुद्धिसंयम प्रमत्त अप्रमत्त दो गुणस्थानों में ही है; वहां जीवसमास एक संज्ञी पर्याप्त ही है; क्योंकि इसके साथ आहारक नहीं होता । सूक्ष्मसाम्परायसंयम सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थान में ही है, वहां जीवसमास एक संज्ञी पर्याप्त है । यथाख्यातसंयम उपशांतकषायादि चार गुणस्थानों में है । वहां जीवसमास एक संज्ञी पर्याप्त और समुद्घात केवली की अपेक्षा अपर्याप्त ये दो हैं । सिद्ध में संयम नहीं है, क्योंकि चारित्र है, वह मोक्ष का मार्ग है, मोक्षरूप नहीं है, ऐसा परमागम में कहा है ।

चउरक्खथावराविरदसम्मादिट्ठी दु खीणमोहो त्ति ।
चक्खुअचक्खूओही जिणसिद्धे केवलं होदि ।।६९१।

चतुरक्षस्थावराविरतसम्यग्दृष्टिस्तु क्षीणमोह इति ।
चक्षुरचक्षुरवधिः जिनसिद्धे केवलं भवति ।।६९१।।

टीका – दर्शनमार्गणा में चक्षुदर्शन है, वह चतुरिन्द्रिय मिथ्यादृष्टि से लेकर क्षीणकषाय तक बारह गुणस्थानों में है । वहां जीवसमास चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय के पर्याप्त और अपर्याप्त, ये छह हैं । अचक्षुदर्शन स्थावरकाय मिथ्यादृष्टि से लेकर क्षीणकषाय तक बारह गुणस्थान में है । वहां जीवसमास चौदह हैं । अवधिदर्शन असंयतादि क्षीणकषाय तक नौ गुणस्थानों में है । वहां जीवसमास संज्ञी पर्याप्त और अपर्याप्त दो हैं । केवलदर्शन सयोग-अयोग दो गुणस्थानों में है, वहां जीवसमास केवलज्ञानवत् दो हैं । सिद्ध में भी केवलदर्शन है ।

थावरकायप्पहुदी अविरदसम्मो त्ति असुहतियलेस्सा ।
सण्णीदो अपमत्तो जाव दु सुहतिण्णिलेस्साओ ॥६९२॥

स्थावरकायप्रभृति अविरतसम्यगिति अशुभत्रिकलेश्याः ।
संज्ञितोऽप्रमत्तो यावत्तु शुभास्तिस्रो लेश्याः ॥६९२॥

टीका – लेश्यामार्गणा में कृष्णादिक अशुभ तीन लेश्यायें स्थावर मिथ्यादृष्टि से लेकर असंयत तक चार गुणस्थानों में हैं । वहां जीवसमास चौदह हैं । पीत और पद्मलेश्या संज्ञी मिथ्यादृष्टि से लेकर अप्रमत्त तक सात गुणस्थानों में है । वहां जीवसमास संज्ञी पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो हैं ।

णवरि य सुक्का लेस्सा सजोगिचरिमो त्ति होदि णियमेण ।
गयजोगिम्मि वि सिद्धे लेस्सा णत्थि त्ति णिद्दिट्ठं ॥६९३॥

नवरि च शुक्ला लेश्या सयोगिचरम इति भवति नियमेन ।
गतयोगेऽपि च सिद्धे लेश्या नास्तीति निर्दिष्टम् ॥६९३॥

टीका – शुक्ललेश्या में विशेष है, वह क्या है ? शुक्ललेश्या संज्ञी मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगी तक तेरह गुणस्थानों में है । वहां जीवसमास संज्ञी पर्याप्त और अपर्याप्त ये दो है नियम से, क्योंकि केवलीसमुद्घात का अपर्याप्तपना यहां अपर्याप्त जीवसमास में गर्भित है । अयोगी जिन में और सिद्ध में लेश्या नहीं है, ऐसा परमागम में कहा है ।

थावरकायप्पहुदी अजोगिचरिमो त्ति होंति भवसिद्धा ।
मिच्छाइट्ठिट्ठाणे अभव्वसिद्धा हवंति त्ति ॥६९४॥

स्थावरकायप्रभृति अयोगिचरम इति भवंति भवसिद्धाः ।
मिथ्यादृष्टिस्थाने अभव्यसिद्धा भवंतीति ॥ ६९४ ॥

टीका – भव्यमार्गणा में भव्यसिद्ध हैं, वे स्थावरकाय मिथ्यादृष्टि से लेकर अयोगी तक चौदह गुणस्थानों में हैं और अभव्यसिद्ध एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में ही है । इन दोनों में जीवसमास चौदह-चौदह हैं ।

मिच्छो सासणमिस्सो सगसगठाणम्मि होदि अयदादो ।
पढमुवसमवेदगसम्मत्तदुगं अप्पमत्तो त्ति ।।६९५।।

मिथ्यात्वं सासनमिश्रौ स्वकस्वकस्थाने भवति अयतात् ।
प्रथमोपशमवेदकसम्यक्त्वद्विकमप्रमत्त इति ।।६९५।।

टीका - सम्यक्त्वमार्गणा में मिथ्यादृष्टि, सासादन, मिश्र ये तीन तो अपने-अपने एक गुणस्थान में हैं । जीवसमास मिथ्यादृष्टि में तो चौदह हैं । सासादन में बादर एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी, संज्ञी अपर्याप्त और संज्ञी पर्याप्त ये सात हैं । द्वितीयोपशम से गिरकर जो सासादन को प्राप्त हुआ है उसकी अपेक्षा वहां संज्ञी पर्याप्त और देव अपर्याप्त ये दो ही जीवसमास हैं । मिश्र में संज्ञी पर्याप्त एक ही जीवसमास है । प्रथमोपशम सम्यक्त्व और वेदक सम्यक्त्व ये दोनों असंयतादि अप्रमत्त तक हैं । वहां जीवसमास प्रथमोपशम सम्यक्त्व में मरण नहीं है इसलिये एक संज्ञी पर्याप्त ही है, और वेदक सम्यक्त्व में संज्ञी पर्याप्त अपर्याप्त ये दो हैं क्योंकि धर्मा नरक, भवनत्रिक बिना देव, भोगभूमिया मनुष्य और तिर्यंच इनके अपर्याप्त में भी वेदक सम्यक्त्व सम्भव है । *(भोगभूमि में कृतकृत्यवेदक के साथ जन्मता है ।) देव नारकी वेदक सम्यग्दृष्टि कर्मभूमि के मनुष्य में जन्मते हैं ।*

द्वितीयोपशम सम्यक्त्व को कहते हैं -

बिदियुवसमसम्मत्तं अविरदसम्मादि संतमोहो त्ति ।
खइगं सम्मं च तहा सिद्धो त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ।।६९६।।

द्वितीयोपशमसम्यक्त्वमविरतसम्यगादिशांतमोह इति ।
क्षायिकं सम्यक्त्वं च तथा सिद्ध इति जिनैर्निर्दिष्टम् ।।६९६।।

टीका - द्वितीयोपशम सम्यक्त्व असंयतादि उपशांत कषाय तक है, क्योंकि इस द्वितीयोपशम सम्यक्त्व को अप्रमत्त में प्रकट करके ऊपर उपशांतकषाय तक जाकर, नीचे गिरकर वहां असंयत तक द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के साथ आ सकता है इसलिये असंयत आदि में भी कहा । वहां जीवसमास संज्ञी पर्याप्त और देव अपर्याप्त ये दो पाये जाते हैं, क्योंकि द्वितीयोपशम सम्यक्त्व में मरण है, सो मरकर देव ही होता है । क्षायिक सम्यक्त्व असंयतादि अयोगी तक है । वहां जीवसमास संज्ञी पर्याप्त

है और जिसके आयु बंध हुआ हो, उसके धर्मा नरक, भोगभूमियां मनुष्य तिर्यंच, वैमानिक देव इनके अपर्याप्त भी है इसलिये दो जीवसमास हैं । *(तथा देव नरक में से क्षायिक सम्यग्दृष्टि कर्मभूमि के मनुष्य में उत्पन्न होते हैं उनकी अपेक्षा भी अपर्याप्त समझना ।)* सिद्ध में भी क्षायिक सम्यक्त्व है, ऐसा जिनदेव ने कहा है ।

सण्णी सण्णिप्पहुदी खीणकसाओ त्ति होदि णियमेण ।
थावरकायप्पहुदी असण्णि त्ति हवे असण्णी हु ।।६९७।।

संज्ञी संज्ञिप्रभृतिः क्षीणकषाय इति भवति नियमेन ।
स्थावरकायप्रभृतिः असंज्ञीति भवेदसंज्ञी हि ।।६९७।।

टीका – संज्ञीमार्गणा में संज्ञी जीव मिथ्यादृष्टि आदि क्षीणकषाय तक हैं । वहां जीवसमास संज्ञी पर्याप्त अपर्याप्त ये दो हैं । असंज्ञी जीव स्थावरकायादिक असंज्ञी पंचेन्द्रिय तक नियम से मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में ही हैं । वहां जीवसमास संज्ञी संबंधी दो बिना बारह जानने ।

थावरकायप्पहुदी सजोगिचरिमो त्ति होदि आहारी ।
कम्मइय अणाहारी अजोगसिद्धे वि णायव्वो ।।६९८।।

स्थावरकायप्रभृतिः सयोगिचरम इति भवति आहारी ।
कार्मण अनाहारी अयोगिसिद्धेऽपि ज्ञातव्यः ।।६९८।।

टीका – आहारमार्गणा में स्थावरकाय मिथ्यादृष्टि आदि सयोगी तक आहारक हैं । वहां जीवसमास चौदह हैं । पुनश्च मिथ्यादृष्टि, सासादन, असंयत, सयोगी इनके कार्माण अवस्था में और अयोगी जिन और सिद्ध भगवान इनमें अनाहारक हैं । वहां जीवसमास अपर्याप्त सात, अयोगी की अपेक्षा एक संज्ञी पर्याप्त ये आठ हैं ।

आगे गुणस्थानों में जीवसमासों को कहते हैं –

मिच्छे चोद्दसजीवा सासण अयदे पमत्तविरदे य ।
सण्णिदुगं सेसगुणे सण्णीपुण्णो दु खीणो त्ति ।।६९९।।

मिथ्यात्वे चतुर्दश जीवाः, सासानायते प्रमत्तविरते च ।
संज्ञिद्विकं शेषगुणे संज्ञिपूर्णस्तु क्षीण इति ।।६९९।।

टीका – मिथ्यादृष्टि में जीवसमास चौदह हैं । सासादन, अविरत, प्रमत्त में और चकार से सयोगी में संज्ञी पर्याप्त अपर्याप्त ये दो जीवसमास हैं । यहां प्रमत्त में आहारकमिश्र की अपेक्षा से और सयोगी में केवली समुद्घात की अपेक्षा से अपर्याप्तपना जानना । अवशेष आठ गुणस्थानों में और अपि शब्द से अयोगी में भी एक संज्ञी पर्याप्त जीवसमास है । *(जीवसमास की अपेक्षा सयोगी और अयोगी दोनों को संज्ञी कहते हैं, परंतु संज्ञीमार्गणा की अपेक्षा संज्ञी भी नहीं और असंज्ञी भी नहीं ऐसे, संज्ञी-असंज्ञी रहित कहते हैं ।)*

आगे मार्गणास्थानों में जीवसमासों को दिखाते हैं –

तिरियगदीए चोद्दस हवंति सेसेसु जाण दो दो दु ।
मग्गणठाणस्सेवं णेयाणि समासठाणाणि ।।७००।।

तिर्यग्गतौ चतुर्दश भवंति शेषेषु जानीहि द्वौ द्वौ तु ।
मार्गणास्थानस्यैवं ज्ञेयानि समासस्थानानि ।। ७००।।

टीका – तिर्यंचगति में जीवसमास चौदह हैं । अन्य गतियों में संज्ञी पर्याप्त अपर्याप्त ये दो-दो जीवसमास जानने । इसतरह मार्गणास्थानों में यथायोग्य पूर्वोक्त अनुक्रम से जीवसमास जानने ।

आगे गुणस्थानों में पर्याप्ति और प्राण कहते हैं –

पज्जत्ती पाणा वि य सुगमा भाविंदियं ण जोगिम्हि ।
तहिं वाचुस्सासाउगकायत्तिदुगमजोगिणो आऊ ।।७०१।।

पर्याप्तयः प्राणा अपि च सुगमा भावेंद्रियं न योगिनि ।
तस्मिन् वागुच्छ्वासायुष्ककायत्रिकद्विकमयोगिन आयुः ।।७०१।।

टीका – चौदह गुणस्थानों में पर्याप्ति और प्राण जुदे नहीं कहे हैं, क्योंकि सुगम है । वहां क्षीणकषाय तक तो छहों पर्याप्ति हैं, दसों प्राण हैं । पुनश्च सयोगी जिन में भावेन्द्रिय तो है नहीं, द्रव्येन्द्रिय की अपेक्षा छह पर्याप्ति हैं । तथा सयोगी के प्राण चार हैं – १) वचनबल, २) श्वासोच्छ्वास, ३) आयु, ४) कायबल ये चार प्राण हैं । अवशेष पांच इन्द्रियप्राण और मनबलप्राण ये छह प्राण नहीं हैं ।

वहां वचनबल का अभाव होनेपर तीन ही प्राण रहते हैं, उश्वास-निश्वास का अभाव होनेपर दो ही प्राण रहते हैं । पुनश्च अयोगी में एक आयु प्राण ही रहता है । वहां पहले संचित हुआ जो कर्म-नोकर्म का स्कंध, वह प्रतिसमय एक एक निषेक गलनेपर अवशेष डेढ़ गुणहानि से गुणित समयप्रबद्धप्रमाण सत्त्व रहा, वह द्रव्यार्थिकनय से तो अयोगी के अंतिम समय में नष्ट होता है, पर्यायार्थिकनय से उसके अनंतर समय में नष्ट होता है - यह तात्पर्य है ।

आगे गुणस्थानों में संज्ञा कहते हैं -

छट्टो त्ति पढमसण्णा सकज्ज सेसा य कारणावेक्खा ।
पुव्वो पढमणियट्टी सुहुमो त्ति कमेण सेसाओ ।।७०२।।

षष्ठ इति प्रथमसंज्ञा सकार्या शेषाश्च कारणापेक्षाः ।
अपूर्वः प्रथमानिवृत्तिः सूक्ष्म इति क्रमेण शेषाः ।।७०२।।

टीका - मिथ्यादृष्टि आदि प्रमत्त तक अपने कार्यसहित चारों संज्ञा हैं । वहां छठवें गुणस्थान में आहार संज्ञा का विच्छेद हुआ, अवशेष तीन संज्ञा अप्रमत्तादि में हैं, वह उनके निमित्तभूत कर्म वहां पाये जाते हैं उसकी अपेक्षा से हैं परंतु कार्यरहित हैं । सो अपूर्वकरण तक तीन संज्ञा हैं । वहां भय संज्ञा का विच्छेद हुआ । अनिवृत्तिकरण के प्रथम सवेदभाग तक मैथुन, परिग्रह दो संज्ञा हैं । वहां मैथुन संज्ञा का विच्छेद हुआ । सूक्ष्मसाम्पराय में एक परिग्रह संज्ञा रही । उसका वहां ही विच्छेद हुआ । ऊपर उपशांतकषायादिक में कारण के अभाव से कार्य का भी अभाव है । इसलिये कार्यरहित भी सर्व संज्ञा नहीं है ।

मग्गण उवजोगा वि य सुगमा पुव्वं परूविदत्तादो ।
गदिआदिसु मिच्छादी परूविदे रूविदा होंति ।।७०३।।

मार्गणा उपयोगा अपि च सुगमाः पूर्वं प्ररूपितत्वात् ।
गत्यादिषु मिथ्यात्वाद्यौ प्ररूपिते रूपिता भवंति ।।७०३।।

टीका - गुणस्थानों में चौदह मार्गणा और उपयोग लगाना सुगम है, क्योंकि पहले प्ररूपण कर चुके हैं । मार्गणाओं में गुणस्थान और जीवसमास कहे, वहां ही कथन आ गया तथापि मंदबुद्धि के समझने के लिये फिर से कहते हैं ।

गतिमार्गणा - नरकादि गति नामक नामकर्म के उदय से उत्पन्न हुयी पर्याय, उसे गति कहते हैं, सो मिथ्यादृष्टि में नारकादि चारों गति पर्याप्त और अपर्याप्त हैं। सासादन में नारक अपर्याप्त नहीं है, अवशेष सर्व हैं । मिश्र में चारों गति पर्याप्त ही हैं । असंयत में धर्मा नारक तो पर्याप्त अपर्याप्त दोनों हैं, अवशेष नारक पर्याप्त ही हैं । पुनश्च भोगभूमियां तिर्यंच और मनुष्य, कर्मभूमियां मनुष्य और वैमानिक देव तो पर्याप्त और अपर्याप्त दोनों हैं । और कर्मभूमियां तिर्यंच और भवनत्रिक देव ये पर्याप्त ही चतुर्थ गुणस्थान में पाये जाते हैं । देशसंयत में कर्मभूमियां तिर्यंच और मनुष्य पर्याप्त ही हैं । प्रमत्त में मनुष्य पर्याप्त ही हैं, आहारक सहित पर्याप्त, अपर्याप्त दोनों हैं। अप्रमत्तादि क्षीणकषाय तक मनुष्य पर्याप्त ही हैं, सयोगी में पर्याप्त तथा समुद्घात की अपेक्षा से अपर्याप्त हैं । अयोगी पर्याप्त ही हैं ।

इन्द्रियमार्गणा - एकेन्द्रियादि जाति नामक नामकर्म के उदय से उत्पन्न जीव की पर्याय वह इन्द्रिय है। उनकी मार्गणा एकेन्द्रियादि पांच हैं। मिथ्यादृष्टि में तो पांचों पर्याप्त और अपर्याप्त हैं । सासादन में अपर्याप्त तो पांचों पाये जाते हैं और पर्याप्त एक पंचेन्द्रिय पाया जाता है । मिश्र में पर्याप्त पंचेन्द्रिय ही है । असंयत में पर्याप्त और अपर्याप्त पंचेन्द्रिय हैं । देशसंयत में पर्याप्त पंचेन्द्रिय ही है । प्रमत्त में आहारक अपेक्षा दोनों हैं । अप्रमत्तादि क्षीणकषाय तक एक पंचेन्द्रिय पर्याप्त ही है। सयोगी में पर्याप्त है, समुद्घात अपेक्षा दोनों हैं । अयोगी में पर्याप्त पंचेन्द्रिय ही है ।

कायमार्गणा - पृथ्वीकायादि विशेष से युक्त एकेन्द्रिय जाति और स्थावर नामक नामकर्म के उदय और त्रस नामक नामकर्म के उदय से उत्पन्न जीव की पर्याय, उसे काय कहते हैं, वे छह प्रकार के हैं । वहां मिथ्यादृष्टि में तो छहों पर्याप्त और अपर्याप्त हैं । सासादन में बादर पृथ्वी, अप्, वनस्पति ये स्थावर और त्रस में द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय ये तो अपर्याप्त ही हैं और संज्ञी त्रसकाय पर्याप्त, अपर्याप्त दोनों हैं । आगे संज्ञी पंचेन्द्रिय त्रसकाय ही है । वहां मिश्र में पर्याप्त ही है । अविरत में दोनों हैं । देशसंयत में पर्याप्त ही हैं । प्रमत्त में पर्याप्त हैं, आहारक सहित दोनों हैं । अप्रमत्तादि क्षीणकषाय तक पर्याप्त ही हैं । सयोगी में पर्याप्त ही हैं, समुद्घात सहित दोनों हैं । अयोगी में पर्याप्त ही हैं ।

योगमार्गणा - पुद्गलविपाकी शरीर और अंगोपांग नामक नामकर्म के उदय से मन, वचन, काय से संयुक्त जो जीव, उसके कर्म नोकर्म आने के कारण जो

शक्ति और उससे उत्पन्न हुआ जीव के प्रदेशों का चंचलपना, वह योग है । वह मन, वचन, काय के भेद से तीन प्रकार का है । वहां वीर्यांतराय और नोइन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम से, अंगोपांग नामकर्म के उदय से मनःपर्याप्ति संयुक्त जीव के मनोवर्गणारूप जो पुद्गल आये, उनका आठ पांखडी के कमल के आकार का हृदयस्थान में निर्माण नामक नामकर्म से उत्पन्न, वह द्रव्यमन है । वहां कमल की पांखड़ियों के अग्रभागों में नोइन्द्रियावरण के क्षयोपशमयुक्त जीव के प्रदेशसमूह हैं, उनमें लब्धिउपयोग लक्षण का धारक भावमन है । उसका जो परिणमन, वह मनोयोग है । वह सत्य, असत्य, उभय, अनुभयरूप विषय के भेद से चार प्रकार का है । पुनश्च भाषापर्याप्ति से संयुक्त जीव के शरीर नामक नामकर्म के उदय से और स्वर नामक नामकर्म के उदय के सहचारी कारण से भाषावर्गणारूप आये हुये पुद्गल स्कंधों का चार प्रकार की भाषारूप होकर परिणमन, वह वचनयोग है । वह वचनयोग भी सत्यादिक पदार्थों का कहनेवाला है, इसलिये चार प्रकार का है । पुनश्च औदारिक, वैक्रियिक, आहारक शरीर नामक नामकर्म के उदय से आहारवर्गणारूप आये हुये जो पुद्गल स्कंध, उनका निर्माण नामक नामकर्म के उदय से उत्पन्न जो शरीर, उसके परिणमन के निमित्त से जीव के प्रदेशों का जो चंचल होना, वह औदारिक आदि काययोग है । शरीरपर्याप्ति पूर्ण न हो तब तक एक समय कम अंतर्मुहूर्त तक उनके मिश्रयोग है । यहां मिश्रपना कहा है, सो औदारिकादि नोकर्म की वर्गणाओं का आहरण अपने से ही नहीं होता, कार्माणवर्गणा की सापेक्षता युक्त होता है, इसलिये कहा है । विग्रहगति में औदारिकादि नोकर्म की वर्गणाओं का तो ग्रहण है नहीं, कार्माणशरीर नामक नामकर्म के उदय से कार्माणवर्गणारूप आये हुये जो पुद्गल स्कंध उनका ज्ञानावरणादि कर्मपर्याय से जीव के प्रदेशों में बंध होनेपर होनेवाला जीव के प्रदेशों का चंचलपना, वह कार्माणकाययोग है । ऐसे ये पंद्रह योग हैं ।

तिसु तेरं दस मिस्से सत्तसु णव छट्ठयम्मि एगारा ।
जोगिम्मि सत्त जोगा अजोगिठाणं हवे सुण्णं ।।७०४।।

त्रिषु त्रयोदश दश मिश्रे सप्तसु नव षष्ठे एकादश ।
योगिनि सप्त योगा अयोगिस्थानं भवेत् शून्यम् ।।७०४।।

टीका – इन कहे हुये पंद्रह योगों में मिथ्यादृष्टि, सासादन, असंयत इन तीनों

में तेरह-तेरह योग हैं, क्योंकि आहारक, आहारकमिश्र प्रमत्त बिना अन्यत्र नहीं हैं । मिश्र गुणस्थान में औदारिकमिश्र, वैक्रियिकमिश्र, कार्माण ये तीनों भी नहीं हैं, इसलिये दस ही हैं । ऊपर के सात गुणस्थानों में वैक्रियिक*(द्विक)*योग भी नहीं है, इसलिये प्रमत्त में तो आहारकद्विक के मिलने से ग्यारह योग हैं, अन्य में नौ नौ योग हैं। सयोगी में सत्य-अनुभय मनोयोग, सत्य-अनुभय वचनयोग, औदारिक, औदारिकमिश्र, कार्माण ये सात योग हैं । अयोगी गुणस्थान में योग नहीं है, इसलिये शून्य है ।

वेदमार्गणा – स्त्री, पुरुष, नपुंसक वेद के उदय से वेद होता है, वे तीनों अनिवृत्तिकरण के सवेदभाग तक हैं, ऊपर नहीं है ।

कषायमार्गणा – क्रोधादि चार कषायों का यथायोग्य अनंतानुबंधी इत्यादि रूप उदय होनेपर क्रोध, मान, माया, लोभ होते हैं । वहां मिथ्यादृष्टि, सासादन में तो अनंतानुबंधी आदि चार चार प्रकार हैं । मिश्र, असंयत में अनंतानुबंधी बिना तीन तीन प्रकार हैं । देशसंयत में अप्रत्याख्यान बिना दो दो प्रकार हैं । प्रमत्तादि अनिवृत्तिकरण के दूसरे भाग तक संज्वलन क्रोध है, तीसरे भाग तक संज्वलन मान है, चौथे भाग तक माया है, पांचवें भाग तक बादर लोभ है । सूक्ष्मसाम्पराय में सूक्ष्म लोभ है। ऊपर सर्व कषायरहित हैं ।

ज्ञानमार्गणा – मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय ज्ञानावरण के क्षयोपशम से मति आदि ज्ञान होते हैं । केवलज्ञानावरण के समस्त क्षय से केवलज्ञान होता है । मिथ्यात्व के उदय से सहवर्ती ऐसे मति, श्रुत, अवधि ज्ञानावरण के क्षयोपशम से कुमति, कुश्रुत, विभंगज्ञान होते हैं; सो सब मिलकर आठ ज्ञान हुये । वहां मिथ्यादृष्टि, सासादन में तो तीन कुज्ञान हैं । मिश्र में तीन कुज्ञान और सुज्ञान मिश्ररूप हैं । अविरत और देशसंयत में मति, श्रुत, अवधि ये आदि के तीन सुज्ञान हैं। प्रमत्तादि क्षीणकषाय तक मनःपर्यय सहित आदि के चार सुज्ञान हैं । सयोगी, अयोगी में एक केवलज्ञान है।

संयममार्गणा – संज्वलन चौकड़ी और नौ नोकषाय के मंद उदय से व्रत का धारण करना, समिति का पालन करना, कषाय का निग्रह, दंड का त्याग, इन्द्रियों का जय ऐसे भावरूप संयम होता है । वह संयम सामान्यपने एक सामायिक स्वरूप है; क्योंकि **'सर्वसावद्ययोगविरतोऽस्मि'** मैं सर्व पापसहित योग का त्यागी हूँ ऐसे भाव में सर्व गर्भित हुये । विशेषपने असंयम, देशसंयम, सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि,

सूक्ष्मसाम्पराय, यथाख्यात भेद से सात प्रकार का है । वहां असंयत तक चार गुणस्थानों में असंयम ही है । देशसंयत में देशसंयम है । प्रमत्तादि अनिवृत्तिकरण तक सामायिक, छेदोपस्थापना है । प्रमत्त-अप्रमत्त में परिहारविशुद्धि भी है । सूक्ष्मसाम्पराय में सूक्ष्मसाम्पराय-संयम है । उपशांतकषायादि में यथाख्यातसंयम है ।

दर्शनमार्गणा – चक्षु, अचक्षु, अवधि दर्शनावरण के क्षयोपशम से और केवल दर्शनावरण के समस्त क्षय से चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल दर्शन होता है। वहां मिश्र गुणस्थान तक तो चक्षु अचक्षु दो दर्शन हैं । असंयतादि क्षीणकषाय तक गुणस्थानों में चक्षु, अचक्षु, अवधि तीन दर्शन हैं। सयोग, अयोग और सिद्ध में केवलदर्शन है।

लेश्यामार्गणा – कषाय के उदय से अनुरंजित ऐसी मन, वचन, कायरूप योगों की प्रवृत्ति वह लेश्या है । वह शुभ-अशुभ के भेद से दो प्रकार की है । वहां अशुभलेश्या कृष्ण, नील, कपोत भेद से तीन प्रकार की है । शुभलेश्या पीत, पद्म, शुक्ल भेद से तीन प्रकार की है । वहां असंयत तक तो छहों लेश्या हैं । देशसंयतादि अप्रमत्त तक तीन शुभ लेश्या ही हैं । अपूर्वकरण से लेकर सयोगी तक शुक्ललेश्या ही है। अयोगी योग के अभाव से लेश्यारहित हैं ।

भव्यमार्गणा – सामग्री विशेष से रत्नत्रय तथा अनंतचतुष्टयरूप परिणमने के योग्य, वह भव्य है । परिणमने के योग्य नहीं है, वह अभव्य है । यहां अभव्य राशि जघन्य युक्तानंत प्रमाण है । संसारीराशि में से इतने घटानेपर अवशेष रहते हैं, उतने भव्यसिद्ध हैं । वे भव्य तीन प्रकार के हैं - १) आसन्नभव्य, २) दूरभव्य, ३) अभव्यसमभव्य। जो थोड़े काल में मुक्त होने योग्य हो, वे आसन्नभव्य हैं । जो बहुत काल में मुक्त होने हो, वे दूर भव्य हैं । जो त्रिकाल में मुक्त होनेवाले नहीं हैं, केवल मुक्त होने की योग्यता के धारक हैं, वे अभव्यसम भव्य हैं । सो यहां मिथ्यादृष्टि में भव्य-अभव्य दोनों हैं । सासादनादि क्षीणकषाय तक एक भव्य ही हैं । सयोग-अयोग मे भव्य-अभव्य का उपदेश नहीं है ।

सम्यक्त्वमार्गणा – अनादि मिथ्यादृष्टि जीव क्षयोपशमादि पंचलब्धि के परिणामरूप परिणमित हुआ । वहां मिथ्यादृष्टि ही में करण किये, वहां अनिवृत्तिकरण के अंतिम समय में अनंतानुबंधी और मिथ्यात्व इन पांच का उपशम करके उसके अनंतर समय में अर्थात् अंतरायाम संबंधी अंतर्मुहूर्त काल के प्रथम समय में प्रथमोपशम सम्यक्त्व

पाकर असंयत होता है । *(अंतर क्या है ? वह कहते हैं -)* मिथ्यात्व के ऊपर और नीचे के निषेकों को छोड़कर बीच के निषेकों का अभाव करना, उसे अंतर कहते हैं । सो अंतर्मुहूर्त के जितने समय हैं उतने निषेकों का अभाव अनिवृत्तिकरण में ही किया था । उन निषेकों संबंधी अंतर्मुहूर्त को अंतरायाम कहते हैं ।

अथवा प्रथमोपशम और देशव्रत इन दोनों को युगपत् पाकर देशसंयम होता है। अथवा प्रथमोपशम सम्यक्त्व और महाव्रत, इन दोनों को युगपत् पाकर अप्रमत्तसंयत होता है । वहां उसे पाने के प्रथम समय से लेकर अंतर्मुहूर्त तक गुणसंक्रमण विधान से मिथ्यात्वरूप द्रव्यकर्म को गुणसंक्रमण भागहार से घटा घटाकर तीन प्रकार का करते हैं । गुणसंक्रमण विधान और गुणसंक्रमण भागहार का कथन आगे करेंगे, वहां जानना। सो मिथ्यात्व प्रकृतिरूप, सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिरूप और सम्यक्त्व प्रकृतिरूप ऐसे एक मिथ्यात्व को तीन प्रकार का वहां करता है । इन तीनों का द्रव्य अर्थात् परमाणुओं का प्रमाण असंख्यातगुणा, असंख्यातगुणा हीन अनुक्रम से जानना ।

यहां प्रश्न - मिथ्यात्व को मिथ्यात्वप्रकृतिरूप क्या किया ?

उसका समाधान - पहले जो उस मिथ्यात्व की स्थिति थी उसमें अतिस्थापनावली मात्र घटाता है, उस अतिस्थापनावली का भी स्वरूप आगे कहेंगे ।

*(**विशेषार्थ** - मिथ्यात्व प्रकृति का अनुभाग अनंतगुणा हीन होकर मिथ्यात्वरूप ही रहे वह तो मिथ्यात्वप्रकृतिरूप होना है । उससे भी अनंतगुणाहीन होकर सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति होती है तथा उससे भी अनंतगुणाहीन ऐसी सम्यक्त्वप्रकृति होती है ।)*

जो अप्रमत्त गुणस्थान को प्राप्त होता है वह अप्रमत्त से प्रमत्त में और प्रमत्त से अप्रमत्त में संख्यात हजार बार आता जाता है, इसलिये प्रथमोपशम सम्यक्त्व प्रमत्त में भी है । इसतरह प्रथमोपशम सम्यक्त्व इन चार गुणस्थानों में है उसका काल अंतर्मुहूर्त है ।

यदि प्रथमोपशम सम्यक्त्व के अंतर्मुहूर्त काल में जघन्य एक समय, उत्कृष्ट छह आवली शेष रहनेपर अनंतानुबंधी की किसी प्रकृति का उदय हो जाय तो सासादन गुणस्थान होता है । यदि भव्यता गुण के विशेष से सम्यक्त्व गुण का नाश न हो तो उस उपशम सम्यक्त्व का काल पूर्ण होनेपर सम्यक्त्वप्रकृति के उदय से वेदक सम्यग्दृष्टि होता है। यदि मिश्र प्रकृति का उदय हो जाय, तो सम्यग्मिथ्यादृष्टि होता है । यदि मिथ्यात्व का ही उदय आ जाय तो मिथ्यादृष्टि ही हो जाता है ।

पुनश्च द्वितीयोपशम सम्यक्त्व में विशेष है, वह क्या है ?

उपशमश्रेणी चढ़ने के निमित्त कोई सातिशय अप्रमत्त वेदक सम्यग्दृष्टि वहां अप्रमत्त में तीन करणों के सामर्थ्य से अनंतानुबंधी के प्रशस्त उपशम के बिना अप्रशस्त उपशम द्वारा, ऊपर के जो निषेक-जिनका काल नहीं आया है - वे तो हैं ही; नीचे के जो निषेक अनंतानुबंधी के हैं उनको उत्कर्षण द्वारा ऊपर के निषेकों में प्राप्त करता है या विसंयोजन द्वारा अन्य प्रकृतिरूप परिणमाता है, इसतरह खिपाकर दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियों के बीच के निषेकों का अभाव करनेरूप अंतरकरण द्वारा अंतर किया। पुनश्च उपशम विधान से दर्शनमोहनीय की प्रकृतियों को उपशमाकर अंतर किये हुये निषेकों संबंधी अंतर्मुहूर्त काल के प्रथम समय में द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि होकर, उपशमश्रेणी आरोहण करके क्रम से उपशांतकषाय तक जाकर वहां अंतर्मुहूर्त काल तक रहकर, अनुक्रम से एक एक गुणस्थान उतरकर अप्रमत्त गुणस्थान को प्राप्त होता है । वहां अप्रमत्त से प्रमत्त में और प्रमत्त से अप्रमत्त में हजारों बार आता जाता है, वहां से नीचे देशसंयत होकर वहां रहे या असंयत होकर वहां रहे । अथवा यदि ग्यारहवें आदि गुणस्थानों में मरण हो जाय तो वहां से अनुक्रम बिना देवपर्यायरूप असंयत होता है। अथवा मिश्रप्रकृति के उदय से मिश्र गुणस्थानवर्ती होता है या अनंतानुबंधी का उदय होनेपर द्वितीयोपशम सम्यक्त्व की विराधना करता है ऐसी किसी आचार्य के पक्ष की अपेक्षा सासादन होता है । अथवा मिथ्यात्व के उदय से मिथ्यादृष्टि होता है ।

पुनश्च असंयतादिक चार गुणस्थानवर्ती जो मनुष्य तथा असंयत, देशसंयत गुणस्थानवर्ती उपचार महाव्रत जिनके पाये जाते हैं ऐसी आर्या स्त्री, वे कर्मभूमि के उपजे ऐसे वेदक सम्यग्दृष्टि होते हैं उन्हीं के केवली श्रुतकेवली दोनों में से किसी के चरण के निकट सात प्रकृतियों का सर्वथा क्षय होने से क्षायिक सम्यक्त्व होता है । ऐसा सम्यक्त्व का विधान कहा । वह सम्यक्त्व सामान्यपने एक प्रकार का है । विशेषपने १) मिथ्यात्व, २) सासादन, ३) मिश्र, ४) उपशम, ५) वेदक, ६) क्षायिक भेद से छह प्रकार का है । *(सम्यक्त्व मार्गणा की अपेक्षा जीवों के ये छह भेद हैं ।)* वहां मिथ्यादृष्टि में तो मिथ्यात्व ही है । सासादन में सासादन है । मिश्र में मिश्र है । असंयत से लेकर अप्रमत्त तक उपशम *(औपशमिक)*, वेदक, क्षायिक तीन सम्यक्त्व हैं । अपूर्वकरणादि उपशांतकषाय तक उपशमश्रेणी में उपशम, क्षायिक दो सम्यक्त्व हैं । क्षपक श्रेणीरूप अपूर्वकरणादि सिद्ध तक एक क्षायिक सम्यक्त्व ही है ।

संज्ञीमार्गणा – नोइन्द्रिय अर्थात् मन के आवरण के क्षयोपशम से हुआ जो ज्ञान उसे संज्ञा कहते हैं । वह जिसके पायी जाती है, वह संज्ञी है । जिसके वह नहीं पायी जाती और यथासंभव अन्य इन्द्रियों का ज्ञान पाया जाता है, वह असंज्ञी है । वहां संज्ञी मिथ्यादृष्टि से लेकर क्षीणकषाय पर्यंत हैं । असंज्ञी मिथ्यादृष्टि में ही हैं । सयोग अयोग में मन-इन्द्रिय संबंधी ज्ञान नहीं है; इसलिये संज्ञी-असंज्ञी नहीं कहते ।

आहारमार्गणा – शरीर और अंगोपांग नामक नामकर्म के उदय से उत्पन्न हुआ जो शरीर, वचन, मनरूप नोकर्मवर्गणा का ग्रहण करना, वह आहार है । विग्रहगति में, प्रतर और लोकपूरण समुद्घात अवस्थावाले सयोगी में, अयोगी में और सिद्ध में अनाहार है, इसलिये मिथ्यादृष्टि, सासादन, असंयत और सयोगी इनमें तो दोनों हैं। अवशेष नौ गुणस्थानों में आहार ही है । अयोगी और सिद्ध में अनाहार ही है।

गुणस्थानों में उपयोग कहते हैं –

दोण्हं पंच य छच्चेव दोसु मिस्सम्मि होंति वामिस्सा ।
सत्तुवजोगा सत्तसु दो चेव जिणे य सिद्धे य ।।७०५।।

द्वयोः पंच च षट्चैव द्वयोर्मिश्रे भवंति व्यामिश्राः ।
सप्तोपयोगाः सप्तसु द्वौ चैव जिने च सिद्धे च ।।७०५।।

टीका – गुणपर्यायवान वस्तु है, उसके ग्रहणरूप जो व्यापार प्रवर्तन, वह उपयोग है । ज्ञान है, वह जानने योग्य वस्तु से नहीं उत्पन्न होता, सो कहा है –

स्वहेतुजनितोऽप्यर्थः परिच्छेद्यः स्वतो यथा ।
तथा ज्ञानं स्वहेतूत्थं परिच्छेदात्मकं स्वतः ।।१।।

इसका अर्थ – जैसे वस्तु अपने ही उपादान कारण से उत्पन्न, अपने से ही जाननेयोग्य है, वैसे ज्ञान अपने ही उपादानकारण से उत्पन्न अपने से ही जाननेवाला है । पुनश्च ज्ञेय पदार्थ और प्रकाशादिक ये ज्ञान के कारण नहीं हैं, क्योंकि ये तो ज्ञेय हैं । जैसे अंधकार ज्ञेय है, वैसे ये भी ज्ञेय हैं – जानने योग्य हैं, जानने के कारण नहीं हैं, ऐसा जानना ।

वह उपयोग ज्ञान दर्शन के भेद से दो प्रकार का है । वहां कुमति, कुश्रुत, विभंग, मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय, केवल भेद से ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का है।

चक्षु, अचक्षु, अवधि, केवल भेद से दर्शनोपयोग चार प्रकार का है । वहां मिथ्यादृष्टि, सासादन में तो कुमति, कुश्रुत, विभंगज्ञान, चक्षु, अचक्षु दर्शन ये पांच उपयोग हैं। मिश्र में मिश्ररूप मति, श्रुत, अवधि ज्ञान और चक्षु, अचक्षु, अवधि दर्शन ये छह उपयोग हैं *(यहां मिश्र तीन ज्ञान और दो दर्शन हैं ऐसे पहले भी बता चुके हैं तथा आगे यंत्र में भी बतायेंगे ।)* असंयत, देशसंयत में मति, श्रुत, अवधि ज्ञान, चक्षु, अचक्षु, अवधि दर्शन ये छह उपयोग हैं । प्रमत्तादि क्षीणकषाय तक वे ही मनःपर्ययसहित सात उपयोग हैं । सयोगी, अयोगी, सिद्ध में केवलज्ञान, केवलदर्शन ये दो उपयोग हैं ।

इति आचार्य श्री नेमिचन्द्रसिद्धांतचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नामक संस्कृत टीका के अनुसार सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषा-टीका में जीवकाण्ड में प्ररूपित जो बीस प्ररूपणा उनमें से गुणस्थानों में बीस प्ररूपणा निरूपण (अंतरभावाधिकार) नामक इक्कीसवां अधिकार पूर्ण हुआ ।।२१।।

बाइसवां अधिकार : आलापाधिकार

।। मंगलाचरण ।।

सुरनर गणपति पूज्यपद बहिरंतर श्री धार ।
नेमि धर्मरथनेमिसम भजौं हौंहु श्रीसार ।।

आगे आलाप अधिकार को अपने इष्टदेव को नमस्कारपूर्वक कहने की प्रतिज्ञा करते हैं –

गोयमथेरं पणमिय ओघादेसेसु वीसभेदाणं ।
जोजणिकाणालावं वोच्छामि जसाकमं सुणह ।।७०६।।

गौतमस्थविरं प्रणम्य ओघादेशयोर्विंशभेदानाम् ।
योजनिकानामालापं वक्ष्यामि यथाक्रमं श्रृणुत ।।७०६।।

टीका – विशिष्ट जो गो अर्थात् भूमि, आठवीं पृथ्वी, वह है स्थविर अर्थात् शाश्वत जिसके ऐसा सिद्धसमूह अथवा गौतम है स्थविर अर्थात् गणधर जिसके ऐसे वर्धमानस्वामी अथवा विशिष्ट है **गो** अर्थात् वाणी जिसकी ऐसा स्थविर अर्थात् मुनिसमूह, सो ऐसे जो गौतमस्थविर उन्हें **प्रणम्य** अर्थात् नमस्कार करके ओघ अर्थात् गुणस्थान और आदेश अर्थात् मार्गणास्थान इनके जोड़नेरूप जो गुणस्थानादि बीस प्ररूपणा, उनके आलाप को यथाक्रम कहूंगा, वह सुनना । बीस प्ररूपणा के प्ररूपणरूप ऐसे विवक्षित स्थानों का कथन करना, उसका नाम आलाप जानना । उसे कहते हैं –

ओघे चोदसठाणे सिद्धे वीसदिविहाणमालावा ।
वेदकसायविभिण्णे अणियट्टीपंचभागे य ।।७०७।।

ओघे चतुर्दशस्थाने सिद्धे विंशतिविधानामालापाः ।
वेदकषायविभिन्ने अनिवृत्तिपंचभागे च ।।७०७।।

टीका – ओघ अर्थात् गुणस्थान और चौदह मार्गणास्थान ये परमागम में प्रसिद्ध हैं । सो इनमें **गुणजीवापज्जत्ती** इत्यादि बीस प्ररूपणाओं के सामान्य, पर्याप्त, अपर्याप्त ये तीन आलाप होते हैं । जिनमें वेद और कषाय से भेद हैं ऐसे अनिवृत्तिकरण के

पांच भागों में जुदे-जुदे आलाप जानना ।

वहां गुणस्थान में कहते हैं -

ओघे मिच्छदुगे वि य अयदपमत्ते सजोगिठाणम्मि ।
तिण्णेव य आलावा सेसेसिक्को हवे णियमा ।।७०८।।

ओघे मिथ्यात्वद्विकेऽपि च अयतप्रमत्तयोः सयोगिस्थाने ।
त्रय एव चालापाः शेषेष्वेको भवेन्नियमात् ।।७०८।।

टीका - गुणस्थानों में मिथ्यादृष्टि, सासादन, असंयत, प्रमत्त, सयोगी इनमें तीन तीन आलाप हैं । अवशेष गुणस्थानों में नियम से एक पर्याप्त आलाप है ।

इसी अर्थ को प्रकट करते हैं -

सामण्णं पज्जत्तमपज्जत्तं चेदि तिण्णि आलावा ।
दुवियप्पमपज्जत्तं लद्धी णिव्वत्तगं चेदि ।।७०९।।

सामान्यः पर्याप्तः अपर्याप्तश्चेति त्रय आलापा ।
द्विविकल्पोऽपर्याप्तो लब्धिर्निर्वृत्तिकश्चेति ।।७०९।।

टीका - वे आलाप तीन हैं - सामान्य, पर्याप्त, अपर्याप्त । जहां पर्याप्त-अपर्याप्त दोनों के समुदायरूप सामान्यपने ग्रहण करते हैं, वह सामान्य आलाप है । जहां पर्याप्त ही का ग्रहण होता है, वह पर्याप्त आलाप है । जहां अपर्याप्त ही का ग्रहण होता है वह अपर्याप्त आलाप है । वहां अपर्याप्त आलाप दो प्रकार का है - एक लब्धिअपर्याप्त, एक निर्वृत्तिअपर्याप्त । जिसकी क्षुद्रभवप्रमाण आयु होती है, पर्याप्ति पूर्ण होने से पहले ही मरण को प्राप्त होता है, वह लब्धिअपर्याप्त है। जिसके शरीरपर्याप्ति पूर्ण होगी परंतु जबतक पूर्ण नहीं हुयी हो, तब तक वह निर्वृत्ति-अपर्याप्त है ।

दुविहं पि अपज्जत्तं ओघे मिच्छेव होदि णियमेण ।
सासण अयदपमत्ते णिव्वत्ति अपुण्णगो होदि ।।७१०।।

द्विविधोप्यपर्याप्त ओघे मिथ्यात्व एव भवंति नियमेन ।
सासादनायतप्रमत्तेषु निर्वृत्त्यपूर्णको भवति ।।७१०।।

टीका – वे दोनों प्रकार के अपर्याप्त आलाप सामान्य मिथ्यादृष्टि में ही पाये जाते हैं । सासादन, असंयत, प्रमत्त में निर्वृत्तिअपर्याप्त ही आलाप है ।

जोगं पडि जोगिजिणे होदि हु णियमा अपुण्णगत्तं तु ।
अवसेसणवट्ठाणे पज्जत्तालावगो एक्को ।।७११।।

योगं प्रति योगिजिने भवति हि नियमादपूर्णकत्वं तु ।
अवशेषनवस्थाने पर्याप्तालापक एकः ।।७११।।

टीका – सयोगी जिन में नियम से योगों की अपेक्षा से ही अपर्याप्त आलाप है । ऐसे अपर्याप्त आलाप में विशेष है, सो इन पांच गुणस्थानों में तो तीनों आलाप हैं । अवशेष नौ गुणस्थान रहे, उनमें एक पर्याप्त आलाप ही है ।

आगे चौदह मार्गणास्थानों में कहते हैं –

सत्तण्हं पुढवीणं ओघे मिच्छे य तिण्णि आलावा ।
पढमाविरदे वि तहा सेसाणं पुण्णगालावो ।।७१२।।

सप्तानां पृथिवीनां ओघे मिथ्यात्वे च त्रय आलापाः ।
प्रथमाविरतेऽपि तथा शेषाणां पूर्णकालापाः ।।७१२।।

टीका – नरकगति में सामान्यपने सातों पृथ्वी संबंधी मिथ्यादृष्टि में तीन आलाप हैं । वैसे ही प्रथम पृथ्वी संबंधी असंयत में तीन आलाप हैं । जिसने पहले नरकायु बांधी हो ऐसा वेदक *(कृतकृत्यवेदक – जिसने मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व का क्षय किया हो और अंतर्मुहूर्त में जो क्षायिक सम्यक्त्वी होनेवाला है ऐसा वेदक)* या क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव वह वहीं प्रथम पृथ्वी में उत्पन्न होता है । तथा अवशेष *(दूसरी से सातवीं)* पृथ्वी संबंधी अविरत और सर्व पृथ्वियों के सासादन, मिश्र इनके एक पर्याप्त ही आलाप है ।

तिरियचउक्काणोघे मिच्छदुगे अविरदे य तिण्णेव ।
णवरि य जोणिणि अयदे पुण्णो सेसे वि पुण्णोदु ।।७१३।।

तिर्यक्चतुष्काणामोघे मिथ्यात्वद्विके अविरते च त्रय एव ।
नवरि च योनिन्ययते पूर्णः शेषेऽपि पूर्णस्तु ।।७१३।।

टीका – तिर्यंच पांच प्रकार के हैं । सर्व भेद जिसमें गर्भित हैं ऐसा सामान्य तिर्यंच, जिसके पांचों इन्द्रिय पाये जाते हैं ऐसा पंचेन्द्रिय तिर्यंच, जो पर्याप्त अवस्था को धारण करे वह पर्याप्त तिर्यंच, जो स्त्रीवेदरूप है, वह योनिमत तिर्यंच, जो लब्धिअपर्याप्त अवस्था को धारण करे वह लब्धिअपर्याप्त तिर्यंच ।

वहां सामान्यादिक चार प्रकार के तिर्यंचों के पांच गुणस्थान पाये जाते हैं । वहां मिथ्यादृष्टि, सासादन, अविरत (असंयम) में तीन तीन आलाप हैं । वहां इतना विशेष है – योनिमत तिर्यंच के अविरत में एक पर्याप्त ही आलाप है, क्योंकि पहले तिर्यंच आयु बांधी हो तो भी सम्यग्दृष्टि स्त्रीवेद, नपुंसकवेद में उत्पन्न नहीं होता । मिश्र और देशसंयत में पर्याप्त ही आलाप है ।

तेरिच्छियलद्धियपज्जत्ते एक्को अपुण्ण आलावो ।
मूलोघं मणुसतिए मणुसिणि अयदम्हि पज्जत्तो ।।७१४।।

तिर्यग्लब्ध्यपर्याप्ते एक अपूर्ण आलापः ।
मूलोघं मनुष्यत्रिके मानुष्ययते पर्याप्तः ।।७१४।।

टीका – लब्धिअपर्याप्त तिर्यंच में एक अपर्याप्त आलाप ही है ।

पुनश्च मनुष्य चार प्रकार के हैं। वहां सर्व भेद जिसमें गर्भित हैं ऐसा सामान्य मनुष्य। जो पर्याप्त अवस्था का धारक है, वह पर्याप्त मनुष्य, जो स्त्रीवेदरूप है, वह योनिमत मनुष्य, जो लब्धिअपर्याप्तपने का धारक है, वह लब्धिअपर्याप्त मनुष्य है ।

वहां सामान्यादि तीन प्रकार के मनुष्यों के प्रत्येक के चौदह गुणस्थान पाये जाते हैं । यहां भाववेद की अपेक्षा से योनिमत मनुष्यों के चौदह गुणस्थान कहे हैं। गुणस्थानवत् आलाप जानने । विशेष इतना – योनिमत मनुष्य के असंयत में एक पर्याप्त आलाप ही है । कारण पहले कहा ही है ।

तथा इतना विशेष है – असंयत तिर्यंचनी के प्रथमोपशम और वेदक ये दो ही सम्यक्त्व हैं और मनुष्यनी के प्रथमोपशम, वेदक, क्षायिक ये तीन सम्यक्त्व सम्भव हैं । तथापि जहां सम्यक्त्व होता है वहां पर्याप्त आलाप ही है । सम्यक्त्वसहित

मरे वह स्त्रीवेदियों में नहीं उत्पन्न होता । द्रव्य अपेक्षा योनिमती पंचम गुणस्थान के ऊपर गमन नहीं करती, इसलिये उनके द्वितीयोपशम सम्यक्त्व नहीं है ।

मणुसिणि पमत्तविरदे आहारदुगं तु णत्थि णियमेण ।
अवगदवेदे मणुसिणि सण्णा भूदगदिमासेज्ज ।।७१५।।

मानुष्यां प्रमत्तविरते आहारद्विकं तु नास्ति नियमेन ।
अपगतवेदायां मानुष्यां संज्ञा भूतगतिमासाद्य ।।७१५।।

टीका – द्रव्यपुरुष और भावस्त्री ऐसा मनुष्य प्रमत्तविरत गुणस्थान में होता है, उसके नियम से आहारक और आहारक अंगोपांग का उदय नहीं होता । तु शब्द से स्त्रीवेद, नपुंसकवेद के उदय में मनःपर्ययज्ञान और परिहारविशुद्धिसंयम भी नहीं होते।

भावमनुष्यनी में चौदह गुणस्थान हैं, द्रव्यमनुष्यनी में पांच ही गुणस्थान हैं।

पुनश्च वेदरहित अनिवृत्तिकरण में मनुष्यनी के मैथुन संज्ञा कही है वह कार्यरहित भूतपूर्वगति न्याय से जाननी । जैसे कोई राजा था, उसको राजभ्रष्ट होनेपर भी राजा ही कहते हैं, वैसे जानना । सो भावस्त्री भी नौवें तक ही है । यहां चौदह गुणस्थान कहे हैं वे भूतपूर्वगति न्याय से ही कहे हैं । पुनश्च आहारक ऋद्धि को प्राप्त हुआ है उसके भी और परिहारविशुद्धिसंयम में द्वितीयोपशम सम्यक्त्व और मनःपर्यय ज्ञान नहीं होता; क्योंकि तैंतीस वर्ष बिना परिहारविशुद्धि संयम नहीं होता और प्रथमोपशम सम्यक्त्व की इतनी स्थिति नहीं है । और परिहारविशुद्धिसंयम के साथ श्रेणी नहीं चढ़ते इसलिये द्वितीयोपशम सम्यक्त्व भी नहीं होता, इसलिये इन दोनों का संयोग सम्भव नहीं है ।

णरलद्धिअपज्जत्ते एक्को दु अपुण्णगो दु आलावो ।
लेस्साभेदविभिण्णा सत्तवियप्पा सुरट्ठाणा ।।७१६।।

नरलब्ध्यपर्याप्ते एकस्तु अपूर्णकस्तु आलापः ।
लेश्याभेदविभिन्नानि सप्तविकल्पानि सुरस्थानानि ।।७१६।।

टीका – लब्धिअपर्याप्त मनुष्य में एक अपर्याप्त आलाप ही है ।

पुनश्च लेश्या भेदों से भिन्न देवों के सात स्थान कहे हैं, वे कहते हैं ।

१) भवनत्रिक देव, २) सौधर्म युगल, ३) सनत्कुमार युगल, ४) ब्रह्मादिक छह, ५) शतार युगल, ६) आनतादि नौ ग्रैवेयक तक तेरह, ७) अनुदिश-अनुत्तर विमान चौदह इन सात स्थानों में क्रम से १) पीत का जघन्य अंश, २) पीत का मध्यमांश, ३) पीत का उत्कृष्टांश, पद्म का जघन्यांश, ४) पद्म का मध्यमांश, ५) पद्म का उत्कृष्टांश, शुक्ल का जघन्यांश, ६) शुक्ल का मध्यमांश, ७) शुक्ल का उत्कृष्टांश ये लेश्या पायी जाती हैं ।

सव्वसुराणं ओघे मिच्छदुगे अविरदे य तिण्णेव ।
णवरि य भवणतिकप्पित्थीणं च य अविरदे पुण्णो ।।७१७।।

सर्वसुराणामोघे मिथ्यात्वद्विके अविरते च त्रय एव ।
नवरि च भवनत्रिकल्पस्त्रीणां च च अविरते पूर्णः ।।७१७।।

टीका - सर्व सामान्य देव में मिथ्यादृष्टि, सासादन, असंयत में तीन तीन आलाप हैं । परंतु इतना विशेष - भवनत्रिक देव और कल्पवासिनी स्त्री, इनके असंयत में एक पर्याप्त ही आलाप है । क्योंकि असंयत तिर्यंच, मनुष्य मरकर वहां उत्पन्न नहीं होते ।

मिस्से पुण्णालाओ अणुद्दिसाणुत्तार हु ते सम्मा ।
अविरद तिण्णालावा अणुद्दिस्साणुत्तरे होंति ।।७१८।।

मिश्रे पूर्णालापः अनुदिशानुत्तरा हि ते सम्यक् ।
अविरते त्रय आलापाः अनुदिशानुत्तरे भवंति ।।७१८।।

टीका - नौ ग्रैवेयक तक सामान्य देव के मिश्र गुणस्थान में एक पर्याप्त आलाप ही है । अनुदिश और अनुत्तर विमानवासी अहमिन्द्र सर्व सम्यग्दृष्टि ही हैं। इसलिये उनके असंयत में तीन आलाप हैं ।

आगे इन्द्रियमार्गणा में कहते हैं -

बादरसुहुमेइंदियबितिचउरिंदियअसण्णिजीवाणं ।
ओघे पुण्णे तिण्णि य अपुण्णगे पुण्ण अपुण्णो दु ।।७१९।।

बादरसूक्ष्मैकेंद्रियद्वित्रिचतुरिंद्रियासंज्ञिजीवानाम् ।
ओघे पूर्णे त्रयश्च अपूर्णके पुनः अपूर्णस्तु ।।७१९।।

टीका – बादर, सूक्ष्म एकेन्द्रिय तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रिय इनकी सामान्य रचना और पर्याप्त नामकर्म के उदय संयुक्त, इनके तीन आलाप हैं। निर्वृत्तिअपर्याप्त अवस्था में भी पर्याप्त नामकर्म का उदय जानना ।

(तथा जिनके अपर्याप्त नामकर्म का उदय है, उनके एक लब्धिअपर्याप्त आलाप ही जानना ।)

सण्णी ओघे मिच्छे गुणपडिवण्णे य मूलआलावा ।
लद्धियपुण्णे एक्कोऽपज्जत्तो होदि आलाओ ।।७२०।।

संज्ञ्योघे मिथ्यात्वे गुणप्रतिपन्ने च मूलालापाः ।
लब्ध्यपूर्णे एकः अपर्याप्तो भवति आलापः ।। ७२०।।

टीका – संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच की सामान्य रचना में पांच गुणस्थान हैं । उनमें मिथ्यादृष्टि में तो मूल में कहे थे वे ही तीन आलाप हैं । तथा जिसके विशेष गुण प्राप्त हुआ, उसके सासादन और असंयत में मूल में कहे हुये तीनों आलाप हैं। मिश्र और देशसंयत में एक पर्याप्त आलाप है । तथा संज्ञी लब्धिअपर्याप्त में एक लब्धिअपर्याप्त आलाप ही है ।

आगे कायमार्गणा में दो गाथाओं द्वारा कहते हैं –

भूआउतेउवाऊणिच्चचदुग्गदिणिगोदगे तिण्णि ।
ताणं थूलिदरेसु वि पत्तेगे तद्दुभेदे वि ।।७२१।।

तसजीवाणं ओघे मिच्छादिगुणे वि ओघ आलाओ ।
लद्धिअपुण्णे एक्कोऽपज्जत्तो होदि आलाओ ।।७२२।।जुम्मं।

भ्वप्तेजोवायुनित्यचतुर्गतिनिगोदके त्रयः ।
तेषां स्थूलेतरयोरपि प्रत्येके तद्द्विभेदेऽपि ।। ७२१।।

त्रसजीवानामोघे मिथ्यात्वादिगुणेऽपि ओघ आलापः ।
लब्ध्यपूर्णे एकः अपर्याप्तो भवत्यालापः ।। ७२२।। युग्मम् ।

टीका – पृथ्वी, अप्, अग्नि, वायु, नित्यनिगोद, चतुर्गतिनिगोद इनके बादर, सूक्ष्म भेद तथा प्रत्येक वनस्पति के सप्रतिष्ठित, अप्रतिष्ठित भेद इन सब में तीन तीन आलाप हैं । त्रस जीवों के सामान्य से चौदह गुणस्थानों में कहे हुये आलाप हैं, कुछ विशेष नहीं है । पृथ्वी आदि त्रस पर्यंत जो लब्धिअपर्याप्त हैं उनके एक लब्धिअपर्याप्त ही आलाप है ।

आगे योगमार्गणा में कहते हैं –

एक्कारसजोगाणं पुण्णगदाणं सपुण्ण आलाओ ।
मिस्सचउक्कस्स पुणो सगएक्कअपुण्ण आलाओ ।।७२३।।

एकादशयोगानां पूर्णगतानां स्वपूर्णालापः ।
मिश्रचतुष्कस्य पुनः स्वकैकापूर्णालापः ।।७२३।।

टीका – पर्याप्त अवस्था में होते हैं ऐसे चार मन, चार वचन, औदारिक, वैक्रियिक, आहारक इन ग्यारह योगों का अपना अपना एक पर्याप्त आलाप ही है। जैसे सत्य मनोयोग का सत्यमन पर्याप्त आलाप है । ऐसे सब का जानना । अवशेष रहे चार मिश्र योगों का अपना अपना एक अपर्याप्त आलाप ही है । जैसे औदारिक मिश्र के एक औदारिक मिश्र अपर्याप्त आलाप है । ऐसे सब का जानना ।

आगे शेष मार्गणाओं में कहते हैं –

वेदादाहारो त्ति य सगुणट्ठाणाणमोघ आलाओ ।
णवरि य संढिच्छीणं णत्थि हु आहारगाण दुगं ।।७२४।।

वेदादाहार इति च स्वगुणस्थानानामोघ आलापः ।
नवरि च षंढस्त्रीणां नास्ति हि आहारकानां द्विकम् ।। ७२४।।

टीका – वेदमार्गणा से लेकर आहारमार्गणा तक दस मार्गणाओं में अपने-अपने गुणस्थानों के आलापों का अनुक्रम गुणस्थानों में कहे है वैसे ही जानना । इतना विशेष है कि जो भावनपुंसक या भावस्त्री वेदवाला है और द्रव्यपुरुष है ऐसे

जीव के आहारक, आहारकमिश्र आलाप नहीं है, क्योंकि आहारकशरीर में प्रशस्त प्रकृति का ही उदय है । वहां वेदों के अनिवृत्तिकरण के सवेद भाग तक गुणस्थान हैं । क्रोध, मान, माया, बादर लोभ इनके अनिवृत्तिकरण के वेदरहित चार भाग वहां तक क्रम से गुणस्थान हैं । सूक्ष्म लोभ के सूक्ष्मसाम्पराय ही है । कुमति, कुश्रुत, विभंग इनके दो गुणस्थान हैं । मति, श्रुत, अवधि के नौ हैं । मनःपर्यय के सात हैं । केवलज्ञान के दो हैं । असंयम के चार हैं । देशसंयम का एक है । सामायिक, छेदोपस्थापना के चार हैं । परिहारविशुद्धि के दो हैं । सूक्ष्मसाम्पराय का एक है। यथाख्यातचारित्र के चार हैं । चक्षु, अचक्षु दर्शन के बारह हैं । अवधिदर्शन के नौ हैं । केवलदर्शन के दो हैं । कृष्ण, नील, कपोत लेश्या के चार हैं । पीत, पद्म के सात हैं । शुक्ल के तेरह हैं । भव्य के चौदह हैं । अभव्य के एक है। मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र के एक-एक है । द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के आठ हैं । प्रथमोपशम सम्यक्त्व और वेदक के चार हैं । क्षायिक सम्यक्त्व के ग्यारह हैं । संज्ञी के बारह हैं । असंज्ञी का एक है । आहारक के तेरह हैं । अनाहारक के पांच हैं । ऐसे ये गुणस्थान कहे उन गुणस्थानों में जो आलाप हैं, वे मूल में जैसे सामान्य गुणस्थान में अनुक्रम से आलाप कहे थे, वैसे ही जानना ।

गुणजीवा पज्जत्ती पाणा सण्णा गइंदिया काया ।
जोगा वेदकसाया णाणजमा दंसणा लेस्सा ।।७२५।।

भव्वा सम्मत्ता वि य सण्णी आहारगा य उवजोगा ।
जोग्गा परूविदव्वा ओघादेसेसु समुदायं ।।७२६।। जुम्मं।

गुणजीवाः पर्याप्तयः प्राणाः संज्ञाः गतींद्रियाणि कायाः ।
योगा वेदकषायाः ज्ञानयमाः दर्शनानि लेश्याः ।।७२५।।

भव्याः सम्यक्त्वान्यपि च संज्ञिनः आहारकाश्चोपयोगा : ।
योग्याः प्ररूपितव्या ओघादेशयोः समुदायम् ।।७२६।। युग्मम् ।।

टीका - गुणस्थान चौदह, मूल जीवसमास चौदह - उसमें पर्याप्त सात, अपर्याप्त सात; पर्याप्ति छह - वहां संज्ञी पंचेन्द्रिय के पर्याप्त अवस्था में पर्याप्त अवस्था संबंधी छह और अपर्याप्त अवस्था में अपर्याप्त संबंधी छह, असंज्ञी और विकलत्रयों के पर्याप्त-

अपर्याप्त संबंधी पांच-पांच, एकेन्द्रियों के चार-चार जानने ।

प्राण - संज्ञी पंचेन्द्रिय के दस, उसी के अपर्याप्त के सात; असंज्ञी पंचेन्द्रिय के नौ, उसी के अपर्याप्त के सात; चतुरिन्द्रिय के आठ, उसी के अपर्याप्त के छह; त्रीन्द्रिय के सात, उसीके अपर्याप्त के पांच; द्वीन्द्रिय के छह, उसी के अपर्याप्त के चार; एकेन्द्रिय के चार, उसी के अपर्याप्त के तीन हैं । सयोग केवली के वचनबल, कायबल, उश्वास, आयु ये चार प्राण हैं । उसी के वचनबल बिना तीन होते हैं। उच्छ्वास बिना दो होते हैं । अयोगी के आयु प्राण है ।

पुनश्च संज्ञा चार, गति चार, इन्द्रिय पांच, काय छह, योग पंद्रह - उनमें पर्याप्त अवस्था संबंधी ग्यारह, अपर्याप्त संबंधी तीन मिश्र और एक कार्माण ये चार हैं । वेद तीन, कषाय चार, ज्ञान आठ, संयम सात, दर्शन चार, लेश्या छह, भव्य दो, सम्यक्त्व छह, संज्ञी दो, आहार दो, उपयोग बारह, ये सर्व समुच्चय गुणस्थान और मार्गणास्थान में यथायोग्य प्ररूपण करना ।

जीवसमास में विशेष कहते हैं -

ओघे आदेसे वा सण्णीपज्जंतगा हवे जत्थ ।
तत्थ य उणवीसंता इगिबितिगुणिदा हवे ठाणा ।।७२७।।

ओघे आदेशे वा संज्ञिपर्यन्तका भवेयुर्यत्र ।
तत्र चैकोनविंशांता एकद्वित्रिगुणिता भवेयुः स्थानानि ।।७२७।।

टीका - गुणस्थान और मार्गणास्थान में जहां संज्ञी पंचेन्द्रिय तक मूल चौदह जीवसमास निरूपण करते हैं, वहां उत्तर जीवसमास एक से लेकर उन्नीस तक १) सामान्य से, २) पर्याप्त अपर्याप्त से दो, ३) पर्याप्त, अपर्याप्त, लब्धिअपर्याप्त तीन से गुणा करनेपर १) एक से लेकर उन्नीस तक, २) दो से लेकर अड़तीस तक, ३) तीन से लेकर सत्तावन तक जीवसमास के भेद हैं । वे सर्व भेद वहां जानने। सामान्य जीवसमास एक, त्रस-स्थावर भेद से दो, इत्यादि सभी भेद जीवसमास अधिकार में कहे हैं, वे जानने । इन्हीं को एक, दो, तीन से गुणा करनेपर क्रम से एक, दो, तीन आदि उन्नीस, अड़तीस, सत्तावन तक भेद होते हैं ।

यहां से आगे गुणस्थानमार्गणा में गुणस्थान, जीवसमास इत्यादि बीस भेद जोड़ते

हैं, वह कहते हैं -

वीरमुहकमलणिग्गयसयलसुयग्गहणपयउणसमत्थं ।
णमिऊण गोयममहं सिद्धंतालावमणुवोच्छं ।।७२८।।

वीरमुखकमलनिर्गतसकलश्रुतग्रहणप्रकटनसमर्थम् ।
नत्वा गौतममहं सिद्धांतालापमनुवक्ष्ये ।।७२८।।

टीका - वर्धमान स्वामी के मुखकमल से निकला हुआ ऐसा सकल शास्त्र महागंभीर, उसके प्रकट करने को समर्थ ऐसा सिद्ध पर्यंत आलाप, उसे श्री गौतमस्वामी को नमस्कार करके मैं कहता हूँ ।

वहां सामान्य गुणस्थान रचना में जैसे चौदह गुणस्थानवर्ती जीव हैं । गुणस्थानरहित सिद्ध हैं । चौदह जीवसमास युक्त जीव हैं । उनसे रहित जीव हैं । छह-छह, पांच-पांच, चार-चार पर्याप्ति, अपर्याप्ति युक्त जीव हैं । उनसे रहित जीव हैं । दस-सात, नौ-सात, आठ-छह, सात-पांच, छह-चार, चार-तीन, चार-दो, एक प्राण के धारी जीव हैं । उनसे रहित जीव हैं । पंद्रह योग युक्त जीव हैं । अयोगी जीव हैं । तीन वेद युक्त जीव हैं । उनसे रहित जीव हैं । चार कषाय युक्त जीव हैं। उनसे रहित जीव हैं । आठ ज्ञान युक्त जीव हैं । ज्ञान रहित जीव नहीं हैं । सात संयम युक्त जीव हैं । उनसे रहित जीव हैं । चार दर्शन युक्त जीव हैं । दर्शन रहित जीव नहीं हैं । द्रव्य, भाव छहों लेश्या युक्त जीव हैं । लेश्या रहित जीव हैं । भव्य और अभव्य जीव हैं । दोनों से रहित जीव हैं । छह सम्यक्त्व युक्त जीव हैं । सम्यक्त्व रहित नहीं हैं । संज्ञी और असंज्ञी जीव हैं । दोनों रहित जीव हैं । आहारक जीव हैं । अनाहारक जीव हैं । दोनों से रहित जीव नहीं हैं । साकारोपयोग और अनाकारोपयोग और युगपत् दोनों उपयोग से युक्त जीव हैं । उपयोग रहित जीव नहीं हैं । ऐसे अन्यत्र यथासंभव जानना ।

आगे गुणस्थान और मार्गणास्थानों में यथायोग्य बीस प्ररूपणा का निरूपण करते हैं ।

सो यन्त्रों द्वारा विवक्षित गुणस्थानों और मार्गणास्थानों के आलाप में जो जो प्ररूपणा पायी जाती हैं, वे वे लिखें हैं । वहां यन्त्रों में ऐसी सहनानी जाननी ।

पहले एक बड़ा कोठा है, उसमें जिस आलाप में बीस प्ररूपणा लगायी है उसके नाम लिखे हैं । उस कोठे के आगे आगे बराबर बीस कोठे हैं उनमें प्रथमादि कोठे से लेकर अनुक्रम से गुणस्थान, जीवसमास, पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा, गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्य, सम्यक्त्व, संज्ञी, आहार, उपयोग ये बीस प्ररूपणा जो जो पायी जाती हैं, वे वे लिखी हैं । उनमें गुणस्थानादि के नाम नहीं लिखे हैं तथापि पहले कोठे में गुणस्थान, दूसरे में जीवसमास, तीसरे में पर्याप्ति, इत्यादि बीसवें कोठे में उपयोग तक जानना *(यहां सुविधा के लिये हमने हर पृष्ठ पर बीस प्ररूपणाओं के नाम लिखे हैं)*। वहां उन कोठों में जहां जिस प्ररूपणा का जितना प्रमाण हो, उतने ही का अंक लिखा होगा, वहां तो वह प्ररूपणा सर्व जाननी । जैसे पहले कोठे में चौदह का अंक लिखा हो, वहां सर्व गुणस्थान जानने । दूसरे कोठे में जहां चौदह का अंक लिखा हो, वहां सर्व जीवसमास जानने। ऐसे ही तृतीयादि कोठों में जहां छह *(पर्याप्ति)*, दस *(प्राण)*, चार *(संज्ञा)*, चार *(गति)*, पांच *(इन्द्रिय)*, छह *(काय)*, पंद्रह *(योग)*, तीन *(वेद)*, चार *(कषाय)*, आठ *(ज्ञान)*, सात *(संयम)*, चार *(दर्शन)*, छह *(लेश्या)*, दो *(भव्य)*, छह *(सम्यक्त्व)*, दो *(संज्ञी)*, दो *(आहार)*, बारह *(उपयोग)* के अंक लिखे हो, वहां अपने अपने कोठों में वह प्ररूपणा सर्व जाननी । जहां प्ररूपणा का अभाव हो, वहां शून्य लिखा है । जैसे पहले कोठे में जहां शून्य लिखा हो वहां गुणस्थान का अभाव जानना । दूसरे कोठे में जहां शून्य लिखा हो वहां जीवसमास का अभाव जानना । ऐसे अन्यत्र जानना। जहां प्ररूपणा में कितनेक भेद पाये जाते हैं, वहां अपने अपने कोठों में जितने भेद पाये जाते हैं, उतने अंक लिखे हैं । उन भेदों के नाम जानने के लिये नाम का पहला अक्षर या पहले दो आदि अक्षर अथवा दो विशेषण जानने के लिये दोनों विशेषणों के आदि के दो अक्षर अथवा इन अक्षरों के आगे अपनी संख्या के अंक लिखे हैं । वह कहते हैं –

जितने गुणस्थान पाये जाते हैं उतने का अंक पहले कोठे में लिखा है । उस अंक के नीचे उन गुणस्थानों के नाम जानने के लिये उनके नामों के आदि अक्षर लिखे हैं । वहां आदि अक्षर की सहनानी से सभी नाम जान लेना ।

वहां मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानों के नामों की ऐसी सहनानी है – **मि, सा, मिश्र, अवि, देश, प्र, अप्र, अपू, अनि, सू, उ, क्षी, स, अ ।**

पुनश्च जहां आदि के ऐसा लिखा हो, वहां मिथ्यादृष्टि आदि जितने गुणस्थान लिखे हो, उतने गुणस्थान जानने । ऐसे ही दूसरे कोठे में जीवसमास, सो जीवसमास दो प्रकार के हैं पर्याप्त, अपर्याप्त, वहां सहनानी ऐसी - **प, अ** । वहां सूक्ष्म, बादर, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असंज्ञी, संज्ञी की सहनानी ऐसी **सू, बा, बें, तें, चौं, अ, सं** *(यहां बें के स्थानपर द्वींद्रि, तें के स्थानपर त्रींद्रि, चौं के स्थानपर चतुरिं लिखा है)* । वहां सूक्ष्म के पर्याप्त, अपर्याप्त दोनों हो तो सहनानी ऐसी **सू २**; पर्याप्त ही हो तो सहनानी ऐसी **सूप१**; अपर्याप्त ही हो तो ऐसी - **सूअ१**। संज्ञी पर्याप्त अपर्याप्त की ऐसी **सं २**; पर्याप्त की ऐसी - **संप१**; संज्ञी अपर्याप्त की ऐसी **संअ१** सहनानी है । इसीप्रकार अन्य की जाननी । जहां अपर्याप्त ही जीवसमास है वहां **अपर्याप्त** ऐसा लिखा है । जहां पर्याप्त ही हो, वहां **पर्याप्त** ऐसा लिखा है। पुनश्च प्रमत्त में आहारक की अपेक्षा, सयोगी में केवली समुद्घात की अपेक्षा पर्याप्त-अपर्याप्त जीवसमास जानने । पुनश्च कायमार्गणा की रचना में जहां सत्तावन, अट्ठानबे, चार सौ छह जीवसमास कहे हैं वे यथासंभव पर्याप्त, अपर्याप्त, सामान्य आलाप में जान लेने । पुनश्च वनस्पति रचना में प्रतिष्ठित, अप्रतिष्ठित प्रत्येक; बादर-सूक्ष्म, नित्य-इतर निगोद के पर्याप्त, अपर्याप्त की अपेक्षा से जीवसमास यथासंभव बारह आदि जानने ।

तीसरे कोठे में पर्याप्ति है, सो पर्याप्ति जितनी पायी जाती हैं, उनके अंक ही लिखे हैं, नाम नहीं लिखे हैं । वहां ऐसा जानना - छह तो संज्ञी पंचेन्द्रिय के, पांच असंज्ञी वा विकलेन्द्रियों के, चार एकेन्द्रिय के जानने । वे पर्याप्त आलाप में तो पर्याप्त जानने, अपर्याप्त आलाप में अपर्याप्त जानने । सामान्य आलाप में जहां वे दो दो बार लिखे हैं, वहां पर्याप्त-अपर्याप्त दोनों जानने ।

चौथे कोठे में प्राण है, वे प्राण जितने पाये जाते हैं उनके अंक ही लिखे हैं, नाम नहीं लिखे हैं । वहां ऐसा जानना - पर्याप्त आलाप में तो दस संज्ञी के, नौ असंज्ञी के, आठ चतुरिन्द्रिय के, सात त्रीन्द्रिय के, छह द्वीन्द्रिय के, चार एकेन्द्रिय के, चार सयोगी के, एक अयोगी का यथासंभव जानने । अपर्याप्त आलाप में सात संज्ञी के, सात असंज्ञी के, छह चतुरिन्द्रिय के, पांच त्रीन्द्रिय के, चार द्वीन्द्रिय के, तीन एकेन्द्रिय के, दो सयोगी के यथासंभव जानने । जहां सामान्य आलाप में वे पूर्वोक्त दोनों लिखे हैं, वहां पर्याप्त अपर्याप्त दोनों जानने ।

पांचवें कोठे में संज्ञा है, वहां आहारादि की ऐसी सहनानी है – **आ, भ, मै, प** ।

छठवें कोठे में गति हैं, वहां नरकादि की ऐसी सहनानी है – **न, ति, म, दे**।

सातवें कोठे में इन्द्रिय है, वहां एकेन्द्रियादि की ऐसी सहनानी है – **ए, बें, तें, चौं, पं** । *(यहां भी बें के स्थानपर द्वींद्रि, तें के स्थानपर त्रींद्रि, चौं के स्थानपर चतुरिं लिखा है ।)*

आठवें कोठे में काय है, सो पृथ्वी आदि की ऐसी सहनानी है – पृ, अ, ते, वा, व । पांचों स्थावरों की ऐसी – **स्था५,** त्रस की ऐसी **त्र** ।

नौवें कोठे में योग हैं, वहां मन के चार, उनकी ऐसी **म४**; वचन के चार, उनकी ऐसी **व४**; काय में औदारिकादि की ऐसी **औ, औमि, वै, वैमि, आ, आमि, का** अथवा औदारिक-औदारिक मिश्र इन दोनों की ऐसी **औ२**; वैक्रियिक द्विक की ऐसी **वै२**; आहारक द्विक की ऐसी **आ२**; सयोगी के सत्य अनुभय मन-वचन पाये जाते हैं उनकी ऐसी **म२, व२**; द्वीन्द्रियादिक के अनुभय वचन पाया जाता है उनकी ऐसी **अनु व१** सहनानी है ।

दसवें कोठे में वेद, वहां नपुंसकादि की सहनानी ऐसी है – **न, पु, स्त्री** ।

ग्यारहवें कोठे में कषाय है, वहां क्रोधादिक की सहनानी ऐसी है – **क्रो, मा, माया, लो** ।

बारहवें कोठे में ज्ञान है, वहां कुमति, कुश्रुत, विभंग की सहनानी ऐसी है – **कुम, कुश्रु, वि** अथवा इन तीनों की सहनानी ऐसी **कुज्ञान३** । मतिज्ञानादि की ऐसी **म, श्रु, अ, मनः, के** अथवा मति, श्रुत, अवधि तीनों की ऐसी **मत्यादि३**; मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय की ऐसी **मत्यादि४** ।

तेरहवें कोठे में संयम है, वहां संयमादि की सहनानी ऐसी है – **अ, दे, सा, छे, प, सू, य** ।

चौदहवें कोठे में दर्शन है, वहां चक्षु आदि की सहनानी ऐसी है – **च, अच, अव, के** अथवा चक्षु, अचक्षु, अवधि तीनों की ऐसी – **चक्षुआदि३** ।

पंद्रहवें कोठे में लेश्या है, वहां द्रव्यलेश्या की सहनानी ऐसी है - **द्र**; इसके आगे जितनी द्रव्य लेश्यायें पायी जाती हैं उतने का अंक जानना । भाव लेश्या की सहनानी ऐसी - **भा** । इसके आगे जितनी भावलेश्या पायी जाती हैं, उतने का अंक जानना । दोनों ही जगह कृष्णादि नामों की **कृ, नी, क,** इन तीनों की ऐसी **अशुभ३**। तेज (पीत) आदि की ऐसी - **ते, प, शु,** इन तीनों की ऐसी **शुभ३** सहनानी है । *(यहां ते के स्थान पर पीत लिखा है ।)*

सोलहवें कोठे में भव्य है, सो भव्य अभव्य की सहनानी **भ, अ** है ।

सत्रहवें कोठे में सम्यक्त्व है, वहां मिथ्यादृष्टि आदि की सहनानी **मि, सा, मिश्र, उ, वे, क्षा** है ।

अठारहवें कोठे में संज्ञी है, वहां संज्ञी असंज्ञी की सहनानी ऐसी-**सं, अ** है।

उन्नीसवें कोठे में आहार है, वहां आहारक-अनाहारक की सहनानी ऐसी - **आ, अन** है ।

बीसवें कोठे में उपयोग है, वहां ज्ञानोपयोग-दर्शनोपयोग की सहनानी ऐसी है - **ज्ञा, द** । ऐसे इन सहनानी द्वारा यंत्रों में जो अर्थ कहे हैं, उन्हें अच्छी तरह जानना ।

जहां गुणस्थानवत् या मूलौघवत् कहा हो, वहां गुणस्थान में या सिद्धरचना में जैसा निरूपण हो, वैसा यथासंभव जानना । अन्यत्र भी जहां जिसवत् कहा हो वहां उसके समान प्ररूपणा जान लेना । वहां जो कुछ उस कोठे में विशेष कहा है, वहां विशेष जान लेना । जहां स्वकीय ऐसा कहा हो वहां जिसका आलाप हो वहां उसमें सम्भवनेवाली प्ररूपणा वा जिसका आलाप किया है वही प्ररूपणा जानना । इतना कथन जान लेना -

सव्वेसिं सुहमाणं काऊदा सव्वविग्गहे सुक्का ।
सव्वो मिस्सो देहो कओदवण्णो हवे णियमा ।।१।।

इस सूत्र से सर्व पृथ्वीकायादिक सूक्ष्म जीवों की द्रव्यलेश्या कपोत है । विग्रहगति संबंधी कार्माण में शुक्ल है । मिश्र शरीर में कपोत है । इसतरह अपर्याप्त आलापों में द्रव्यलेश्या कपोत और शुक्ल ही जान लेना ।

द्वितीयादि पृथ्वी की रचना में लेश्या अपनी अपनी पृथ्वी में होनेवाली स्वकीय जाननी ।

मनुष्य रचना में प्रमत्तादि में भाव अपेक्षा तीन वेद हैं, द्रव्य अपेक्षा एक पुरुषवेद ही है । सप्तमादि गुणस्थानों में आहार संज्ञा का अभाव साता असाता वेदनीय के उदीरणा के अभाव से जानना । स्त्री, नपुंसकवेद का उदय होनेपर आहारकयोग, मनःपर्ययज्ञान, परिहारविशुद्धि संयम नहीं होते ऐसा जानना । श्रेणी से उतरकर द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टि चतुर्थादि गुणस्थानों से मरकर देव होता है, उस अपेक्षा वैमानिक देवों के अपर्याप्त काल में उपशमसम्यक्त्व कहा है ।

एकेन्द्रिय जीवों के पर्याप्त नामकर्म के उदय से पर्याप्त, निर्वृत्तिअपर्याप्त अवस्था है, अपर्याप्त नामकर्म के उदय से लब्धिअपर्याप्त होता है, ऐसा जानना । कायमार्गणा रचना में पर्याप्त बादर पृथ्वी, वनस्पति, त्रस के द्रव्यलेश्या छहों हैं । अप् (जल) के शुक्ल, अग्नि के पीत, वायु के हरित, गोमूत्र या अव्यक्त वर्णरूप द्रव्यलेश्या स्वकीय जानना ।

साधारणशरीर जानने के लिये गाथा –

पुढवी आदि चउण्हं केवलि आहारदेवणिरयंगा ।
अपदिट्ठिदाहु सव्वे पदिट्ठिदंगा हवे सेसा ।।१।।

पृथ्वी आदि चार तथा केवली, आहारक, देव, नारक के शरीर निगोद रहित अप्रतिष्ठित हैं । शेष सभी निगोद सहित सप्रतिष्ठित हैं, ऐसा साधारण रचना में स्वरूप जानना ।

सासादन सम्यग्दृष्टि मरकर नरक नहीं जाता, इसलिये नारकी अपर्याप्त सासादन नहीं होता । पांचवी आदि पृथ्वी के आये हुये अपर्याप्त मनुष्यों के कृष्ण, नील, लेश्या होते हुये वेदकसम्यक्त्व पाया जाता है, इसलिये कृष्ण, नील, लेश्या की रचना में (असंयत) अपर्याप्त आलाप में मनुष्यगति कही है । देव पर्याप्त में कृष्ण लेश्या नहीं है । अपर्याप्त में मिश्रगुणस्थान नहीं है इसलिये कृष्ण लेश्या की मिश्र गुणस्थान में देव बिना तीन गति हैं । इत्यादि यथासंभव अर्थ जानकर यंत्रों द्वारा कहे हुये अर्थ को जानना । आगे यन्त्ररचना लिखते हैं –

नाम	गुणस्थान	जीव समास	पर्याप्ति	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रिय	काय	योग	वेद	कषाय	ज्ञान	संयम	दर्शन	लेश्या	भव्य	सम्यक्त्व	संज्ञी	आहा	उपयोग
पर्याप्त गुण.वाले जीवोंकी रचना	१४	७ पर्याप्त	६।५।४ पर्याप्त	१०।९।८। ७।६।४। ४।१ पर्याप्त	४	४	५	६ पर्याप्त	११ पर्याप्त	३	४	८	७	४	द्र ६ भा६	२	६	२	१४वे गुण. अना. बाकी सब आहा	१२
अपर्याप्त गुण.वाले जीवोंकी रचना	५ मि१ सा१ अवि१प्र१ सयोग १	७ अपर्याप्त	६।५।४ अपर्याप्त	७।७।६।५ ।४।३।२ अपर्याप्त	४	४	५	६	४ औमि१वै मि१ आ मि१का१	३	४	६ विभं. मनः बिना	४ असं१ सा१ छे१ यथा१	४	द्र २ क१शु१ भा६	२	५ मिश्र विना	२	२	१० ज्ञा६ द४
मिथ्यादृष्टि गुणस्थानकी सामान्य रचना	१ मिथ्या	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९। ७।८।६।७ ।५।६।४। ४।३	४	४	५	६	१३ आहारक द्विक विना	३	४	३ कु ज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मि	२	२	५ ज्ञा३ द२
मिथ्यादृष्टि गुणस्थानकी पर्याप्तकी रचना	१ मिथ्या	७ पर्याप्त	६।५।४ पर्याप्त	१०।९ ८।७ ६।४	४	४	५	६	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कु ज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मि	२	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त की रचना	१ मिथ्या	७ अपर्याप्त	६।५।४ अपर्याप्त	७।७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ क१शु१ भा६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द२
सासादन सामान्यकी रचना	१ सासादन	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	४	१ पंचे.	१ त्रस	१३ आहारक द्विक विना	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२

नाम	गुण	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
सासादन पर्याप्त की रचना	१ सासा	१ संप	६। प	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कु- ज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	१ भव्य	१ सासा	१ संज्ञी	१ आ हा	५ ज्ञा३ द २
सासादन अपर्याप्त की रचना	१ सासा	१ संअ	६ अ	७	४	३ ति१ म१दे१	१ पं	१ त्र	३ औमि१वै मि१का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ क१शु १भा६	१ भव्य	१ सासा	१ संज्ञी	२	४ ज्ञा२ द २
सम्यग्मि-थ्यादृष्टि की रचना	१ मिश्र	१ संप	६ प	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ मिश्र	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	१ भव्य	१ मिश्र	१ संज्ञी	१ आ हा	५ ज्ञा३ द २
असंयत सामान्य रचना	१ असंयत	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आ- हा द्विक बिना	३	४	३ म १ श्रु १ अ १	१ असं	३ च१ अच१ अव१	द्र ६ भा ६	१ भव्य	३-उ १ वे १ क्षा १	१ संज्ञी	२	६ ज्ञा३ द ३
असंयत पर्याप्त रचना	१ असंयत	१ संप	६ प	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ म १ श्रु १ अ १	१ असं	३ च१ अच१ अव१	द्र ६ भा ६	१ भव्य	३-उ १ ते १ क्षा १	१ संज्ञी	१ आ हा	६ ज्ञा३ द ३
असंयत अपर्याप्त रचना	१ असंयत	१ संअ	६ अ	७	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि१वै मि१का१	२ न१ पु१	४	३ म १ श्रु १ अ १	१ असं	३ आदि के	द्र २ क१शु १भा६	१ भव्य	३-उ १ वे १ क्षा १	१ संज्ञी	२	६ ज्ञा३ द ३
देशसंयत रचना	१ देशसंयत	१ संप	६	१०	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ १	३	४	३ मत्या दिक	१ देश संयत	३ आदि के	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भव्य	३-उ १ वे १ क्षा १	१ संज्ञी	१ आ हा	६ ज्ञा३ द ३
प्रमत्त रचना	१ प्रमत्त	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ मनु	१ पं	१ त्र	११ म ४ व४ औ१ आहा २	३	४	४ मत्या दिक	३ सा १ छे १ प १	३ आदि के	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भव्य	३-उ १ वे १ क्षा १	१ संज्ञी	१ आ हा	७ ज्ञा४ द ३

नाम	गुण	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
अप्रमत्त रचना	१ अप्रमत	१ संप	६	१०	३ आहा बिना	१ मनु	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	४ मत्या दिक	३ सा १ छे १ प १	३ आदि के	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भव्य	३-उ १ वे १ क्षा १	१ संज्ञी	१ आ हा	७ ज्ञा४ द ३
अपूर्व- करण रचना	१ अपूर्व.	१ संप	६	१०	३ आहा बिना	१ मनु	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	४ मत्या दिक	२ सा१ छे१	३ आदि के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भव्य	२ उ १ क्षा १	१ संज्ञी	१ आ हा	७ ज्ञा४ द ३
अनिवृ. प्रथ.भाग रचना	१ अनि.	१ संप	६	१०	२ मै.१ प १	१ मनु	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	४ मत्या दिक	२ सा१ छे१	३ आदि के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भव्य	२ उ १ क्षा १	१ संज्ञी	१ आ हा	७ ज्ञा४ द ३
अनिवृ. द्विती.भाग रचना	१ अनि.	१ संप	६	१०	१ प	१ मनु	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	४	४ मत्या दिक	२ सा१ छे१	३ आदि के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भव्य	२ उ १ क्षा १	१ संज्ञी	१ आ हा	७ ज्ञा४ द ३
अनिवृ. तृती.भाग रचना	१ अनि.	१ संप	६	१०	१ प	१ मनु	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	३ क्रोध विना	४ मत्या दिक	२ सा१ छे१	३ आदि के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भव्य	२ उ १ क्षा १	१ संज्ञी	१ आ हा	७ ज्ञा४ द ३
अनिवृ. चतु.भाग रचना	१ अनि.	१ संप	६	१०	१ प	१ मनु	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	२ माया१ लोभ१	४ मत्या दिक	२ सा१ छे१	३ आदि के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भव्य	२ उ १ क्षा १	१ संज्ञी	१ आ हा	७ ज्ञा४ द ३
अनिवृ. पंच. भाग रचना	१ अनि.	१ संप	६	१०	१ प	१ मनु	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ १	०	१ लो	४ मत्या दिक	२ सा१ छे१	३ आदि के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भव्य	२ उ १ क्षा १	१ संज्ञी	१ आ हा	७ ज्ञा४ द ३
सूक्ष्म साम्पराय रचना	१ सूक्ष्म	१ संप	६	१०	१ प	१ मनु	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	१ लो	४ मत्या दिक	१ सूक्ष्म	३ आदि के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भव्य	२ उ १ क्षा १	१ संज्ञी	१ आ हा	७ ज्ञा४ द ३

नाम	गुण	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
उपशांत कषाय रचना	१ उपशांत	१ संप	६	१०	०	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	०	४ मत्या दिक	१ यथा	३ आदि के	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भव्य	२ उ१ क्षा१	१ संज्ञी	१ आ हा	७ ज्ञा४ द ३
क्षीण-कषाय रचना	१ क्षीण-कषाय	१ संप	६	१०	०	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	०	४ मत्या दिक	१ यथा	३ आदि के	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भव्य	१ क्षा	१ संज्ञी	१ आ हा	७ ज्ञा४ द ३
सयोग केवली रचना	१ सयोग	२ संप१ संअ१	६।६	४।२	०	१ म	१ पं	१ त्र	७ म२ व२ औ२का१	०	०	१ के	१ यथा	१ के	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भव्य	१ क्षा	०	२	२ ज्ञा१ द १
अयोग केवली रचना	१ अयोग	१ संप	६	१ आयु	०	१ म	१ पं	१ त्र	०	०	०	१ के	१ यथा	१ के	द्र ६ भा ०	१ भव्य	१ क्षा	०	१ अना हार	२ ज्ञा१ द १
गु. अतीत सिद्ध पर. रचना	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०	१ के	०	१ के	०	०	१ क्षा	०	१ अना हार	२ ज्ञा१ द १
सामान्य नारक रचना	४ आदि के	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ न	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२का१	१ नपुं	४	६ अज्ञा३ मत्या ३	१ असं	३ आदि के	द्र३ कृ१ क१शु१ भा ३ अशुभ	२	६	१ संज्ञी	२	९ ज्ञा६ द ३
सामान्य नारक प. रचना	४ आदि के	१ संप	६ प	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै १	१ नपुं	४	६ अज्ञा३ मत्या ३	१ असं	३ आदि के	द्र १ कृ १ भा ३ अशुभ	२	६	१ संज्ञी	१ आ हा	९ ज्ञा६ द ३

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
सा. नारक अपर्याप्त रचना	२ मि. १ अवि. १	१ संअ	६ अ	७	४	१ न	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का. १	१ नपुं	४	५ कुम१ कुश्रु१ मत्या३	१ असं	३ आदि के	द्र २ क १ शु १ भा ३ अशुभ	२	३ मि१ वे१ क्षा१	१ संज्ञी	२	८ ज्ञा५ द ३
सा. नारक मिथ्या. रचना	१ मिथ्या	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ न	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	१ नपुं	४	३ कुज्ञा न	१ असं	२ च१ अच१	द्र३ कृ१ क१शु१ भा ३ अशुभ	२	१ मि थ्या	१ संज्ञी	२	५ ज्ञा३ द २
सा. नारक मिथ्या प. रचना	१ मिथ्या	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै. १	१ नपुं	४	३ कुज्ञा न	१ असं	२ च१ अच१	द्र१ कृ भा ३ अशुभ	२	१ मि थ्या	१ संज्ञी	१ आ हा	५ ज्ञा३ द २
सा. नारक मिथ्या अप रचना	१ मिथ्या	१ संअ	६	७	४	१ न	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का. १	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र२ क१शु१ भा ३ अशुभ	२	१ मि थ्या	१ संज्ञी	२	४ ज्ञा२ द २
सा. नारक सासादन रचना	१ सासादन	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै. १	१ नपुं	४	३ कुज्ञा न	१ असं	२ च१ अच१	द्र१ कृ भा ३ अशुभ	१ भव्य	१ सासा	१ संज्ञी	१ आ हा	५ ज्ञा३ द २
सा. नारक मिश्रगुण. रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै. १	१ नपुं	४	३ मिश्र	१ असं	२ च१ अच१	द्र१ कृ भा ३ अशुभ	१ भव्य	१ मिश्र	१ संज्ञी	१ आ हा	५ ज्ञा३ द २
सा. नारक असंयत रचना	१ असंयत	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ न	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	१ नपुं	४	३ मत्या दिक	१ असं	३ आदि के	द्र३ कृ१ क१ शु१ भा ३ अशुभ	१ भव्य	३ उ१ वे१ क्षा१	१ संज्ञी	२	६ ज्ञा३ द ३

ना.ग	गुण	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
सामा.ना. असंयत प.रचना	१ असं.	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	१ नपुं.	४	३ मत्या दिक	१ असं	३ आदि के	द्र १ कृ१ भा३ अशुभ	१ भव्य	३ उ १ वे १ क्षा १	१ संज्ञी	१ आ हा	६ ज्ञा३ द ३
सामा.ना. असं.अप. रचना	१ असं.	१ संअ	६	७	४	१ न	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का १	१ नपुं	४	३ मत्या दिक	१ असं	३ आदि के	द्र २ क१शु१ भा१ कपोत	१ भव्य	२ वे १ क्षा १	१ संज्ञी	२	६ ज्ञा३ द ३
धम्मा ना. सामान्य रचना	४ आदिके	२ संप संअ	६।६	१०।७	४	१ न	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	१ नपुं	४	६ कुज्ञा३ मत्या दिक३	१ असं	३ आदि के	द्र ३ कृ१क१ शु१ भा१ कपोत	२	६	१ संज्ञी	२	९ ज्ञा६ द ३
धम्मा ना. पर्याप्त रचना	४ आदिके	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	१ नपुं	४	६ कुज्ञा३ मत्या दिक३	१ असं	३ आदि के	द्र १ कृ १ भा१ कपोत	२	६	१ संज्ञी	१ आ हा	९ ज्ञा६ द ३
धम्मा ना. अपर्याप्त रचना	२ मि १ अवि १	१ संअ	६	७	४	१ न	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का १	१ नपुं	४	५ कुम१ कुश्रु१ मत्या दिक३	१ असं	३ आदि के	द्र २ क१शु १भा१ कपोत	२	३ मि१ वे१ क्षा१	१ संज्ञी	२	८ ज्ञा५ द ३
धम्मा ना. मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	२ संप संअ	६।६	१०।७	४	१ न	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	१ नपुं	४	३ कु- ज्ञान	१ असं	२ चक्षु१ अच१	द्र३ कृ१ क१ शु १ भा१ क	२	१ मि.	१ संज्ञी	२	५ ज्ञा३ द २
धम्मा ना. मिथ्यादृष्टि पर्या.रचना	१ मि	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै १	१ नपुं	४	३ कु- ज्ञान	१ असं	२ चक्षु१ अच१	द्र १ कृ भा १ कपोत	२	१ मि.	१ संज्ञी	१ आ हा	५ ज्ञा३ द २

नाम	गुण	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
धम्मा ना. मिथ्या अप रचना	१ मिथ्या	१ संअ	६	७	४	१ न	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का १	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र२ क१शु१ भा १ क	२	१ मि.	१ संज्ञी	२	४ ज्ञा२ द २
धम्मा ना. सासा. रचना	१ सासा	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	१ नपुं	४	३ कु-ज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र१ कृष्ण भा १ क	१ भव्य	१ सासा	१ संज्ञी	१ आ हा	५ ज्ञा३ द २
धम्मा ना. मिश्र रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	१ नपुं	४	३ मि-श्र	१ असं	२ च१ अच१	द्र१ कृष्ण भा १ क	१ भव्य	१ मिश्र	१ संज्ञी	१ आ हा	५ ज्ञा३ द २
धम्मा ना. असंयत रचना	१ असंयत	२ संप संअ	६।६	१०।७	४	१ न	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	१ नपुं	४	३ मत्या दिक	१ असं	३ आदि के	द्र३ कृ१ क१ शु१ भा१ क	१ भव्य	३ उ१वे १क्षा१	१ संज्ञी	२	६ ज्ञा३ द ३
धम्मा ना. असंयत पर्या.रचना	१ असंयत	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	१ नपुं	४	३ मत्या दिक	१ असं	३ आदि के	द्र१ कृष्ण भा १ क	१ भव्य	३ उ१वे १क्षा१	१ संज्ञी	१ आ हा	६ ज्ञा३ द ३
धम्मा ना. असंयत अप रचना	१ असंयत	१ संअ	६	७	४	१ न	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का १	१ नपुं	४	३ मत्या दिक	१ असं	३ आदि के	द्र २ कृ१शु१ भा १ क	१ भव्य	२ वे१ क्षा१	१ संज्ञी	२	६ ज्ञा३ द ३
द्वितीयादिक नारककी सामान्य रचना	४ आदि के	२ संप संअ	६।६	१० ।७	४	१ न	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	१ नपुं	४	६ कुज्ञा३ मत्या ३	१ असं	३ आदि के	द्र ३ कृ१ क१ शु१भा१ स्वस्व पृथ्वी संबंधी	२	५ उ१वे १मि१ सा१ मि१	१ संज्ञी	२	९ ज्ञा६ द ३

नाम	गुण	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
द्वितीयादि पृथ्वी ना. प. रचना	४ आदिके	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै. १	१ नपुं	४	६ कुज्ञान ३ मत्या३	१ असं	३ आदि के	द्र १ कृ भा १ स्व स्व पृ संबंधी	२	५ उ१ वे१मि १सा१ मि १	१ संज्ञी	१ आ हा	९ ज्ञा६ द ३
द्वितीयादि पृथ्वी ना. अप रचना	१ मिथ्या	१ सं अप	६	७	४	१ न	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का. १	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र२ क१शु१ भा १ स्वकीय	२	१ मि थ्या	१ संज्ञी	२	४ ज्ञा२ द २
द्वितीयादि पृथ्वी ना. मि. रचना	१ मिथ्या	२ संप संअ	६।६	१०।७	४	१ न	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	१ नपुं	४	३ कुज्ञा न	१ असं	२ च१ अच१	द्र ३ कृ१क१ शु१भा१ स्वकीय	२	१ मि थ्या	१ संज्ञी	२	५ ज्ञा३ द २
द्वितीयादि पृ.ना.मि. प. रचना	१ मिथ्या	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै. १	१ नपुं	४	३ कुज्ञा न	१ असं	२ च१ अच१	द्र १ कृष्ण भा १ स्वकीय	२	१ मि थ्या	१ संज्ञी	१ आ हा	५ ज्ञा३ द २
द्वितीयादि पृ.ना.मि. अप रचना	१ मिथ्या	१ संअ	६	७	४	१ न	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का. १	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र२ क१शु१ भा १ स्वकीय	२	१ मि थ्या	१ संज्ञी	२	४ ज्ञा२ द २
द्वितीयादि पृ.ना. सासा रचना	१ सासादन	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै. १	१ नपुं	४	३ कुज्ञा न	१ असं	२ च१ अच१	द्र१ कृ भा १ स्वकीय	१ भव्य	१ सासा	१ संज्ञी	१ आ हा	५ ज्ञा३ द २
द्वितीयादि पृ.ना. मिश्र रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै. १	१ नपुं	४	३ मिश्र	१ असं	२ च१ अच१	द्र१ कृ भा १ स्वकीय	१ भव्य	१ मिश्र	१ संज्ञी	१ आ हा	५ ज्ञा३ द २

नाम	गुण	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
द्वितीयादि पृथ्वी ना. असं.रचना	१ असं.	१ संप	६	१०	४	१ न	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै. १	१ नपुं	४	३ मत्या दिक	१ असं	३ आदि के	द्र१कृ भा १ स्वकीय	१ भव्य	२ उ१ वे१	१ संज्ञी	१ आ हा	६ ज्ञा३ द ३
पांच प्रकारके तिर्यंचकी सामा.तिर्यंच रचना	५ आदिके	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७। ८।६। ७।५। ६।४। ४।३।	४	१ ति	५	६	११ म४ व४ औ२का१	३	४	६ मनपर्य केवल बिना	२ असं१ देश१	३ आदि के	द्र ६ भा ६	२	६	२	२	९ ज्ञा६ द ३
सामान्य तिर्यंच प. रचना	५ आदिके	७ पर्या प्त	६। ५। ४।	१०।९ ८।७ ६।४	४	१ ति	५	६	९ म४ व४ औ. १	३	४	६ कुज्ञा३ मत्या दि ३	२ असं१ देश१	३ आदि के	द्र ६ भा ६	२	६	२	१ आ हा	९ ज्ञा६ द ३
सामान्य तिर्यंच अप.रचना	३ मि१ सा१ अवि १	७ अप र्याप्त	६। ५। ४।	७।७ ६।५ ४।३	४	१ ति	५	६	२ औमि १ का. १	३	४	५ कुम१ कुश्रु१ मत्या दि ३	१ असं	३ आदि के	द्र२ क१शु१ भा ३ अशुभ	२	४ मि१ सा१ क्षा१वे१	२	२	८ ज्ञा५ द ३
सामान्य तिर्यंच मि. रचना	१ मिथ्या	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७ ९।७। ८।६। ७।५। ६।४। ४।३।	४	१ ति	५	६	११ म४ व४ औ२का१	३	४	३ कुज्ञा न	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	२	१ मि थ्या	२	२	५ ज्ञा३ द २
सामान्य तिर्यं. मि. प. रचना	१ मिथ्या	७ पर्या प्त	६।५। ४।	१०।९ ८।७ ६।४	४	१ ति	५	६	९ म४ व४ औ. १	३	४	३ कुज्ञा न	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	२	१ मि थ्या	२	१ आ हा	५ ज्ञा३ द २
सामान्य तिर्यं. मि. अप.रचना	१ मिथ्या	७ अप र्याप्त	६।५। ४।	७।७ ६।५ ४।३	४	१ ति	५	६	२ औमि १ का. १	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र२ क१शु१ भा ३ अशुभ	२	१ मि थ्या	२	२	४ ज्ञा२ द २

नाम	गुण	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
सामा.तिर्यं सासादन रचना	१ सासा	२ संप संअ	६।६	१०।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२का१	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	१ भव्य	१ सासा	१ संज्ञी	२	५ ज्ञा३ द २
सामा.तिर्यं सासादन प. रचना	१ सासा	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ. १	३	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	१ भव्य	१ सासा	१ संज्ञी	१ आहा	५ ज्ञा३ द २
सामा.तिर्यं सासादन अप रचना	१ सासा	१ संअ	६	७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का. १	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र२ क१शु१ भा ३ अशुभ	१ भव्य	१ सासा	१ संज्ञी	२	४ ज्ञा२ द २
सामा.तिर्यं सम्यग्मि-थ्या रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ. १	३	४	३ मिश्र	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	१ भव्य	१ मिश्र	१ संज्ञी	१ आहा	५ ज्ञा३ द २
सामान्य तिर्यंच असं रचना	१ असंयत	२ संप संअ	६।६	१०।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२का१	३	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ आदिके	द्र ६ भा ६	१ भव्य	३ उ१वे१ क्षा१	१ संज्ञी	२	६ ज्ञा३ द ३
सामान्य तिर्यं असं. प. रचना	१ असंयत	२ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ. १	३	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ आदिके	द्र ६ भा ६	१ भव्य	३ उ१वे१ क्षा१	१ संज्ञी	१ आहा	६ ज्ञा३ द ३
सामान्य तिर्यं असं. अप रचना	१ असंयत	१ संअ	६	७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का. १	१ पुरुष	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ आदिके	द्र२ क१शु१ भा १ कपोत	१ भव्य	२ वे १ क्षा १	१ संज्ञी	२	६ ज्ञा३ द ३

नाम	गुण	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
सामा.तिर्यं देशसंयत रचना	१ देश	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ. १	३	४	३ मत्या दिक	१ देश	३ आदि के	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भव्य	२ औ१ वे१	१ संज्ञी	१ आ हा	६ ज्ञा३ द३
पंचेंद्री तिर्यंच रचना	५ आदिके	४ संप१ संअ१ असंप१ असंअ१	६।६ ५।५	१०।७ ९।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२का१	३	४	६ मत्या दिक३ कुज्ञान३	२ असं१ देश१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	२	६	२	२	९ ज्ञा६ द ३
पंचेंद्री तिर्यंच प. रचना	५ आदिके	२ संप१ असंप १	६।५	१०।९	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ. १	३	४	६ कुज्ञान३ मत्या दिक३	२ असं१ देश१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	२	६	२	१ आ हा	९ ज्ञा६ द ३
पंचेंद्री तिर्यंच अप.रचना	३ मि१ सा१ अवि १	२ संअ१ असंअ १	६।५	७।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का. १	३	४	५ कुम१ कुश्रुत१ मत्या दिक३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र२ क१शु१ भा ३ अशुभ	२	४ मि१ सा१ क्षा१वे१	२	२	८ ज्ञा५ द ३
पंचेंद्री ति. मिथ्यादृष्टि रचना	मिथ्या	४ संप१ संअ१ असंप१ असंअ१	६।६ ५।५	१०।७ ९।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२का१	३	४	३ कुज्ञा न	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	२	१ मिथ्या	२	२	५ ज्ञा३ द २
पंचेंद्री ति. मिथ्यादृष्टि प. रचना	१ मि	२ संप१ असं प १	६।५	१०।९	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ. १	३	४	३ कुज्ञा न	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	२	१ मिथ्या	२	१ आ हा	५ ज्ञा३ द २
पंचेंद्री ति. मिथ्यादृष्टि अप.रचना	१ मि	२ संअ१ असं अ१	६।५	७।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का. १	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र२ क१शु१ भा ३ अशुभ	२	१ मिथ्या	२	२	४ ज्ञा२ द २

नाम	गुण	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
पंचेंद्री ति. सासादन रचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२का१	३	४	३ कुज्ञा न	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	१ भव्य	१ सा	१ संज्ञी	२	५ ज्ञा३ द २
पंचेंद्री ति. सासादन प. रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ. १	३	४	३ कुज्ञा न	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	१ भव्य	१ सा	१ संज्ञी	१ आ हा	५ ज्ञा३ द २
पंचेंद्री ति. सासादन अप.रचना	१ सासा	१ संअ	६	७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का. १	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र२ क१शु१ भा ३ अशुभ	१ भव्य	१ सा	१ संज्ञी	२	४ ज्ञा२ द २
पंचेंद्री ति. मिश्र रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ. १	३	४	३ मिश्र	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	१ भव्य	१ मिश्र	१ संज्ञी	१ आ हा	५ ज्ञा३ द २
पंचेंद्री ति. असंयत रचना	१ असं	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२का१	३	४	३ मत्या दिक	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भव्य	३ उ १ वे १ क्षा१	१ संज्ञी	२	६ ज्ञा३ द३
पंचेंद्री ति. असंयत प. रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ. १	३	४	३ मत्या दिक	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भव्य	३ उ १ वे १ क्षा१	१ संज्ञी	१ आ हा	६ ज्ञा३ द३
पंचेंद्री ति. असंयत अप.रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का. १	१ पुरु ष	४	३ मत्या दिक	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र२ क१शु१ भा १ कपोत	१ भव्य	२ क्षा १ वे १	१ संज्ञी	२	६ ज्ञा३ द३

नाम	गुण	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
पंचेंद्री ति. देशसंयत रचना	१ देश	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ. १	३	४	३ मत्या दिक	१ देश	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भव्य	२ उ १ वे १	१ संज्ञी	१ आ हा	६ ज्ञा३ द ३
पंचें प.ति. रचना पंचे ति. जैसी	पंचेंद्रीवत्	पं. वत्	पं. वत्	पं. वत्	पं. वत्	पं. वत्	पं. वत्	पं. वत्	पं. वत्	पं. वत्	पं. वत्	पं. वत्	पं. वत्	पं. वत्	पं. वत्	पं. वत्	पं. वत्	पं. वत्	पं. वत्	पं. वत्
योनिमति तिर्यंच रचना	५ आदिके	४संप१ संअ१ असंप१ असंअ १	६|६ ५|५	१०|७ ९|७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२का१	१ स्त्री	४	६ कुज्ञान३ मत्या दिक ३	२ असं१ देश१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	२	५ क्षा. विना	२	२	९ ज्ञा६ द ३
योनिमति तिर्यंच प. रचना	५ आदिके	२ संप१ असं प १	६|५	१०|९	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ. १	१ स्त्री	४	६ कुज्ञान३ मत्या दिक ३	२ असं१ देश१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	२	५ क्षा. विना	२	१ आ हा	९ ज्ञा६ द ३
योनिमति तिर्यंच अप रचना	२ मिथ्या १ सा १	२ संअ१ असं अ १	६|५	७|७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का. १	१ स्त्री	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र२ क१शु१ भा ३ अशुभ	२	२ मि१ सासा१	२	२	४ ज्ञा२ द२
योनिमति ति.मिथ्या दृष्टि रचना	१ मिथ्या	४संप१ संअ१ असंप१ असंअ १	६|६ ५|५	१०|७ ९|७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२का१	१ स्त्री	४	३ कुज्ञा न	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	२	१ मिथ्या	२	२	५ ज्ञा३ द२
योनिमति ति.मिथ्या प. रचना	१ मिथ्या	२ संप१ असं प१	६|५	१०|९	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ. १	१ स्त्री	४	३ कुज्ञा न	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	२	१ मिथ्या	२	१ आ हा	५ ज्ञा३ द२

नाम	गुण	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
योनिमति तिर्यंच मि अप.रचना	१ मिथ्या	२ संअ१ असं अ१	६।५	७।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का. १	१ स्त्री	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र२ क१शु१ भा ३ अशुभ	२	१ मिथ्या	२	२	४ ज्ञा२ द २
योनिमति ति.सासा-दन रचना	१ सासा	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२का१	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	१ भव्य	१ सासा	१ संज्ञी	२	५ ज्ञा३ द२
योनिमति ति.सासा. प. रचना	१ सासा	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ. १	१ स्त्री	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	१ भव्य	१ सासा	१ संज्ञी	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
योनिमति ति.सासा. अप.रचना	१ सासा	१ संअ	६	७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का. १	१ स्त्री	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र२ क१शु१ भा ३ अशुभ	१ भव्य	१ सासा	१ संज्ञी	२	४ ज्ञा२ द२
योनिमति ति. मिश्र रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ. १	१ स्त्री	४	३ मिश्र	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	१ भव्य	१ मिश्र	१ संज्ञी	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
योनिमति ति. असं-यत रचना	१ असंयत	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ. १	१ स्त्री	४	३ मत्यादिक	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भव्य	२ उ १ वे १	१ संज्ञी	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
योनिमति ति.देशसं-यत रचना	१ देशसंयत	१ संप	६	१०	४	१ ति	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ. १	१ स्त्री	४	३ मत्यादिक	१ देश	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भव्य	२ उ १ वे १	१ संज्ञी	१ आहा	६ ज्ञा३ द३

नाम	गुण	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
पंचें तिर्यंच लब्धि अप रचना	१ मिथ्या	२ संअ१ असं अ१	६ ५	७।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का. १	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र२ क१शु१ भा ३ अशुभ	२	१ मिथ्या	२	२	४ ज्ञा२ द २
चार प्रकार के मनुष्यमें सा.मनुष्य रचना	१४	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७। ४।२।१	४	१ म	१ पं	१ त्र	१३ वैक्रि. द्विकबिना	३	४	८	७	४	द्र ६ भा ६	२	६	१ संज्ञी	२	१२
सामान्य मनुष्य प. रचना	१४	१ संप	६	१० ४ १	४	१ म	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१आ१	३	४	८	७	४	द्र ६ भा ६	२	६	१ संज्ञी	२	१२
सामान्य मनुष्य अप रचना	५ मिथ्या१ सा१अवि१ प्र१स१	१ संअ	६	७ २	४	१ म	१ पं	१ त्र	३ औमि १ आमि १ का १	३	४	६ विभंग मनःप बिना	४ असं १ सा १ छे १ यथा १	४	द्र २ क १ शु १ भा ६	२	४ मिथ्या१ सा१ वे१क्षा१	१ संज्ञी	२	१० ज्ञा६ द४
सामा.मनु मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिथ्या	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२का१	३	४	३ कु ज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	२	१ मिथ्या	१ संज्ञी	२	५ ज्ञा३ द२
सामा.मनु मिथ्यादृष्टि प. रचना	१ मि	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ कु ज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	२	१ मिथ्या	१ संज्ञी	१ आ हा	५ ज्ञा३ द२
सामा.मनु मिथ्यादृष्टि अप रचना	१ मि	१ संअ	६	७	४	१ म	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का १	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र२ क१शु१ भा ३ अशुभ	२	१ मिथ्या	१ संज्ञी	२	४ ज्ञा२ द२

नाम	गुण	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
सामा.मनु सासादन रचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२का१	३	४	३ कु ज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	१ भव्य	१ सा	१ संज्ञी	२	५ ज्ञा३ द २
सामा.मनु सासादन प. रचना	१ सा	१ संप	६	१० (७८२)	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ. १	३	४	३ कु ज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	१ भव्य	१ सा	१ संज्ञी	१ आ हा	५ ज्ञा३ द २
सामा.मनु सासादन अप रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	१ म	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का १	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र२ क१शु१ भा ३ अशुभ	१ भव्य	१ सा	१ संज्ञी	२	४ ज्ञा२ द २
सामा.मनु सम्यग्मि रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ. १	३	४	३ मिश्र	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	१ भव्य	१ मिश्र	१ संज्ञी	१ आ हा	५ ज्ञा३ द २
सामा.मनु असंयत रचना	१ असंयत	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१का१	३	४	३ मत्या दिक	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भव्य	३ उ १ वे १ क्षा १	१ संज्ञी	२	६ ज्ञा३ द३
सामा.मनु असंयत प. रचना	१ असंयत	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ. १	३	४	३ मत्या दिक	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भव्य	३ उ १ वे १ क्षा १	१ संज्ञी	१ आ हा	६ ज्ञा३ द३
सामा.मनु असंयत अप रचना	१ असंयत	१ संअ	६	७	४	१ म	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का १	१ पु	४	३ मत्या दिक	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ क १ शु १ भा ६	१ भव्य	२ वे १ क्षा १	१ संज्ञी	२	६ ज्ञा३ द३

नाम	गुण	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
सामा.मनु देशसंयत रचना	१ देशसंयत	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ. १	३	४	३ मत्या दिक	१ देश	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भव्य	३ उ १ वे १ क्षा १	१ संज्ञी	१ आ हा	६ ज्ञा३ द ३
सामा.मनु प्रमत्त रचना	१ प्रमत्त	२ संप संअ	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१आ२	३ भाव अपेक्षा द्रव्य पुरुष	४	४ मत्या दिक	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भव्य	३ उ १ वे १ क्षा १	१ संज्ञी	१ आ हा	७ ज्ञा४ द३
सामा.मनु प्रमत्त प. रचना	१ प्रमत्त	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१आ१	३	४	४ मत्या दिक	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भव्य	३ उ १ वे १ क्षा १	१ संज्ञी	१ आ हा	७ ज्ञा४ द३
सामा.मनु प्र.आहा अप.रचना	१ प्रमत्त	१ संअ	६	७	४	१ म	१ पं	१ त्र	१ आहारक मिश्र	१ पुरुष	४	३ मत्या दिक	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र १ कपोत भा३ शुभ	१ भव्य	२ वे १ क्षा १	१ संज्ञी	१ आ हा	६ ज्ञा३ द ३
सामा.मनु अप्रमत्त रचना	१ अप्रमत्त	१ संप	६	१०	३ आहा बिना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ. १	३	४	४ मत्या दिक	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भव्य	३ उ १ वे १ क्षा १	१ संज्ञी	१ आ हा	७ ज्ञा४ द३
सामा.मनु अपूर्व. रचना	१ अपूर्व करण	१ संप	६	१०	३ आहा बिना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ. १	३	४	४ मत्या दिक	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भव्य	२ द्वितीय उ.१ क्षा १	१ संज्ञी	१ आ हा	७ ज्ञा४ द३
सामा.मनु अनिवृ.प्र भाग रचना	१ अनिवृत्ति करण	१ संप	६	१०	२ मै १ प १	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ. १	३	४	४ मत्या दिक	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भव्य	२ उ १ क्षा १	१ संज्ञी	१ आ हा	७ ज्ञा४ द३

नाम	गुण	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
सामा.मनु अनिवृ.द्वि भाग रचना	अनि.	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ १	०	४	४ मत्या दिक	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भव्य	२ उ १ क्षा १	१ संज्ञी	१ आ हा	७ ज्ञा४ द३
सामा.मनु अनिवृ तृ. भाग रचना	१ अनि.	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ १	०	३ मान१ माया१ लोभ१	४ मत्या दिक	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भव्य	२ उ १ क्षा १	१ संज्ञी	१ आ हा	७ ज्ञा४ द३
सामा.मनु अनिवृ.च. भाग रचना	१ अनि.	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ १	०	२ माया१ लोभ१	४ मत्या दिक	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भव्य	२ उ १ क्षा १	१ संज्ञी	१ आ हा	७ ज्ञा४ द३
सामा.मनु अनिवृ.पं भाग रचना	१ अनि.	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ १	०	१ लो भ	४ मत्या दिक	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भव्य	२ उ १ क्षा १	१ संज्ञी	१ आ हा	७ ज्ञा४ द३
सामा.मनु सूक्ष्म सांप रचना	१ सू	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ १	०	१ लो भ	४ मत्या दिक	१ सूक्ष्म	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भव्य	२ उ १ क्षा १	१ संज्ञी	१ आ हा	७ ज्ञा४ द३
सामा.मनु उप.कषाय रचना	१ उ	१ संप	६	१०	०	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ १	०	०	४ मत्या दिक	१ यथा	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भव्य	२ उ १ क्षा १	१ संज्ञी	१ आ हा	७ ज्ञा४ द३
सामा.मनु क्षीण कषा रचना	१ क्षी	१ संप	६	१०	०	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ १	०	०	४ मत्या दिक	१ यथा	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भव्य	१ क्षा १	१ संज्ञी	१ आ हा	७ ज्ञा४ द३

नाम	गुण	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
सामा.मनु सयोग के. रचना	१ सयोग	२ संप संअ	६।६	४।२	०	१ म	१ पं	१ त्र	७ म२ व२ औरका१	०	०	१ के	१ यथा	१ के	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भव्य	१ क्षा	०		२ ज्ञा१ द१
सामा.मनु अयोग के रचना	१ अयोग	१ प	६	१ आयु	०	१ म	१ पं	१ त्र	०	०	०	१ के	१ यथा	१ के	द्र ६ भा ० नास्ति	१ भव्य	१ क्षा	०	१ अना	२ ज्ञा१ द१
पर्या. मनु. रचना सा. मनुष्य पर्या.वत्	सामान्य मनुष्य पर्या.वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्
योनिमत मनुष्यणी की रचना	१४	२ संप संअ	६।६	१०।७ ४।२ १	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२का१	१ स्त्री	४	७ मन. बिना	६ परि. विशु बिना	४	द्र ६ भा ६	२	६	१ संज्ञी	२	११ ज्ञा७ द४
मनुष्यणी पर्याप्त रचना	१४	१ संप	६	१० ४ १	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ. १	१ स्त्री	४	७ मनः बिना	६ परि. विशु बिना	४	द्र ६ भा ६	२	६	१ संज्ञी	१ आ हा	११ ज्ञा७ द४
मनुष्यणी अपर्याप्त रचना	३ मि१ सा१ सयो१	१ संअ	६	७।२	४	१ म	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का १	१ स्त्री	४	३ कुम१ कुश्रु१ केव१	२ असं१ यथा१	३ चक्षु१ अच१ के१	द्र२क१ शु१भा४ अशुभ३ शुक्ल१	२	३ मि १ सा १ क्षा १	१ संज्ञी	२	६ ज्ञा३ द३
मनुष्यणी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	२ संप संअ	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२का१	१ स्त्री	४	३ कु ज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	२	१ मिथ्या	१ संज्ञी	२	५ ज्ञा३ द२

नाम	गुण	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
मनुष्यणी मिथ्यादृष्टि प रचना	१ मि	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ. १	१ स्त्री	४	३ कु ज्ञान	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा ६	२	१ मिथ्या	१ संज्ञी	१ आ हा	५ ज्ञा३ द२
मनुष्यणी मिथ्यादृष्टि अप रचना	१ म	१ संअ	६	७	४	१ म	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का १	१ स्त्री	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च १ अच१	द्र २ का१शु१ भा ३ अशुभ	२	१ मिथ्या	१ संज्ञी	२	४ ज्ञा२ द२
मनुष्यणी सासादन रचना	१ सा	२ संप संअ	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२का१	१ स्त्री	४	३ कु ज्ञान	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सा	१ संज्ञी	२	५ ज्ञा३ द२
मनुष्यणी सासादन प रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ स्त्री	४	३ कु ज्ञान	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सा	१ संज्ञी	१ आ हा	५ ज्ञा३ द२
मनुष्यणी सासादन अप रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	१ म	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का १	१ स्त्री	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च १ अच१	द्र २ का१शु१ भा ३ अशुभ	१ भ	१ सा	१ संज्ञी	२	४ ज्ञा२ द२
मनुष्यणी सम्यग्मि थ्या रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ. १	१ स्त्री	४	३ मिश्र	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा ६	१ भ	१ मिश्र	१ संज्ञी	१ आ हा	५ ज्ञा३ द२
मनुष्यणी असंयत रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ. १	१ स्त्री	४	३ मत्या दि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ संज्ञी	१ आ हा	६ ज्ञा३ द३

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
मनुष्यणी देशसंयत रचना	१ देशसंयत	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ स्त्री	४	३ मत्या दिक	१ देश	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
मनुष्यणी प्रमत्त रचना	१ प्रमत्त	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ स्त्री	४	३ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
मनुष्यणी अप्रमत्त रचना	१ अप्रमत्त	१ संप	६	१०	३ आहा विना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ स्त्री	४	३ मत्या दिक	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
मनुष्यणी अपूर्वकरण रचना	१ अपू	१ संप	६	१०	३ आहा बिना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ स्त्री	४	३ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
मनुष्यणी अनिवृ.प्र. भागरचना	१ अनि	१ संप	६	१०	२ मै१ प१	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ स्त्री	४	३ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
मनुष्यणी अनिवृ.द्वि भागरचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	४	३ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
मनुष्यणी अनिवृ.तृ. भागरचना	१ अनि	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	३ मान१ माया१ लोभ१	३ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
मनुष्यणी अनिवृ.चतु भागरचना	१ अनिवृ	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	२ माया१ लोभ१	३ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
मनुष्यणी अनिवृ पं. भागरचना	१ अनिवृ	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	१ बा. लोभ	३ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
मनुष्यणी सू.सांपराय रचना	१ सूक्ष्म सांपराय	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	१ सूक्ष्म लोभ	३ मति आदि	१ सूक्ष्म	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
मनुष्यणी उप.कषाय रचना	१ उप	१ संप	६	१०	०	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	०	३ मति आदि	१ यथा	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
मनुष्यणी क्षीणकषाय रचना	१ क्षी	१ संप	६	१०	०	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	०	३ मति आदि	१ यथा	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
मनुष्यणी सयोगी रचना	१ सयोग	२ संप१ संअ१	६।६	४।२	०	१ म	१ पं	१ त्र	७ म२ व२ औ२का१	०	०	१ के	१ यथा	१ के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	०	२	२ ज्ञा१ द१
मनुष्यणी अयोगी रचना	१ अयोग	१ संप	६	१ आयु	०	१ म	१ पं	१ त्र	०	०	०	१ के	१ यथा	१ के	द्र ६ भा०	१ भ	१ क्षा	०	१ अना	२ ज्ञा१ द१

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
मनुष्य लब्धि अ. रचना	१ मिथ्या	१ संअ	६	७	४	१ म	१ पं	१ त्र	२ औमि१ का १	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ क१शु१ भा३ अशुभ	२	१ मिथ्या	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
देवगति रचना	४ आदिके	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	२ स्त्री१ पु१	४	६ कुज्ञा३ मति आदि३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	२	६	१ सं	२	९ ज्ञा६ द३
देवगति पर्याप्त रचना	४ आदिके	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	२ स्त्री१ पु१	४	६ कुज्ञा३ मति आदि३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	२	६	१ सं	१ आहा	९ ज्ञा६ द३
देवगति अपर्याप्त रचना	३ मि१ सा१ अवि१	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का १	२ स्त्री१ पु१	४	५ कुम१ कुश्रु१ मति आदि ३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ क१शु१ भा६	२	५ मिश्र बिना	१ सं	२	८ ज्ञा५ द३
देव मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	२ स्त्री१ पु१	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
देव मिथ्यादृष्टि प. रचना	१ मि	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	२ स्त्री१ पु१	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा३ शुभ	२	१ मिथ्या	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
देव मिथ्यादृष्टि अप.रचना	१ मि	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का १	२ स्त्री१ पु१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ क१शु१ भा६	२	१ मिथ्या	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२

नाम	गुण	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
देव सासादन सामान्य रचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	२ स्त्री१ पु१	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ सासा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
देव सासादन प. रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	२ स्त्री१ पु१	४	३ कुज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञ३ द२
देव सासादन अप.रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का १	२ स्त्री१ पु१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ क१शु१ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
देव सम्य-ग्मिथ्या-दृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	२ स्त्री१ पु१	४	३ मिश्र	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
देव असंयत रचना	१ असं	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	२ स्त्री१ पु१	४	३ मत्या दिक	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
देव असंयत प. रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	२ स्त्री१ पु१	४	३ मति आदि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
देव असंयत अप.रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का १	१ पु	४	३ मति आदि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ क१शु१ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
भवनत्रिक देव रचना	४ आदिके	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	२ स्त्री१ पु१	४	६ कुज्ञान३ मत्यादि ३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा४ अशुभ३ पीत१	२	५ क्षा यिक बिना	१ स	२	९ ज्ञा६ द३
भवनत्रिक देव प. रचना	४ आदिके	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	२ स्त्री१ पु१	४	६ कुज्ञान३ मत्यादि ३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ पीत	२	५ क्षा यिक बिना	१ सं	१ आहा	९ ज्ञा६ द३
भवनत्रिक देव अप.रचना	२ मि१ सा१	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का १	२ स्त्री१ पु१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ क१शु१ भा३ अशुभ	२	२ मिथ्या १ सा१	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
भवनत्रिक देव मिथ्या दृष्टि रचना	१ मि	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	२ स्त्री१ पु१	४	३ कु-ज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा४ अशु३ पीत१	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
भवनत्रिक देव मिथ्या प. रचना	१ मि	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	२ स्त्री१ पु१	४	३ कु-ज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा१ पीत	२	१ मिथ्या	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
भवनत्रिक देव मिथ्या अप रचना	१ मि	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का १	२ स्त्री१ पु१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ क१शु१ भा३ अशुभ	२	१ मिथ्या	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
भवनत्रिक देव सासा दन रचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	२ स्त्री१ पु१	४	३ कु-ज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा४ अशु३ पीत१	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
भवनत्रिक देव सासा. प. रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	२ स्त्री१ पु१	४	३ कु-ज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा१ पीत	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
भवनत्रिक देव सासा. अप रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का १	२ स्त्री१ पु१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ क१शु१ भा३ अशुभ	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
भवनत्रिक देव सम्य-मि. रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	२ स्त्री१ पु१	४	३ मिश्र	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा१ पीत	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
भवन. देव असंयत रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	२ स्त्री१ पु१	४	३ मत्या दि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ पीत	१ भ	२ उ१ वे१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
सौधर्म ईशान देव रचना	४ आदिके	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	२ स्त्री१ पु१	४	६ कुज्ञान३ मत्यादि ३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र३पी१ क१शु१ भा१ पीत	२	६	१ सं	२	९ ज्ञा६ द३
सौधर्म ईशान देव प. रचना	४ आदिके	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	२ स्त्री१ पु१	४	६ कुज्ञान३ मत्यादि ३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र १ पीत भा१ पीत	२	६	१ सं	१ आहा	९ ज्ञा६ द३
सौधर्म ईशान देव अप रचना	३ मि१ सा१ अवि१	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का १	२ स्त्री१ पु१	४	५ कुम१ कुश्रु१ मत्यादि ३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ क१शु१ भा१ पीत	१ भ	५ मिश्र बिना	१ सं	२	८ ज्ञा५ द३

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
सौधर्म ईशान देव मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	२ स्त्री१ पु१	४	३ कु-ज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र३पी१ क१शु१ भा१ पीत	२	१ मिथ्या	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
सौधर्म ईशान देव मिथ्यादृष्टि प. रचना	१ मि	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	२ स्त्री१ पु१	४	३ कु-ज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र १ पीत भा १ पीत	२	१ मिथ्या	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
सौधर्म ईशान देव मिथ्यादृष्टि अप.रचना	१ मि	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का १	२ स्त्री१ पु१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ क१शु१ भा१ पीत	२	१ मिथ्या	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
सौधर्म ईशान देव सासादन रचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	२ स्त्री१ पु१	४	३ कु-ज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र३पी१ क१शु१ भा१ पीत	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
सौधर्म ईशान देव सासादन प. रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	२ स्त्री१ पु१	४	३ कु-ज्ञान	१ असं	२ च१ अच१	द्र १ पीत भा १ पीत	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
सौधर्म ईशान देव सासादन अप.रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का १	२ स्त्री१ पु१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ क१शु१ भा१ पीत	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
सौधर्म ईशान देव सम्यग्मिथ्या.रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	२ स्त्री१ पु१	४	३ मिश्र	१ असं	२ च१ अच१	द्र १ पीत भा १ पीत	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
सौधर्म ईशान देव असंयत रचना	१ असं.	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	२ स्त्री१ पु१	४	३ मति आदि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र३पी१ क१शु१ भा१ पीत	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३
सौधर्म ईशान देव असंयत प. रचना	१ असं.	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	२ स्त्री१ पु१	४	३ मति आदि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र १ पीत भा १ पीत	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द ३
सौधर्म ईशान देव असंयत अप.रचना	१ असं.	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का १	१ पु	४	३ मति आदि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ क१शु१ भा१ पीत	१ भ	३ द्विउ१ वे १ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३
कल्पवासी देवांगना असंयत प. रचना	सौधर्म असंयत पर्या.वत्	सौ. अ.प वत्	सौ. अ.प वत्	सौ. अ.पर्याप्त वत्	सौ. अ.प वत्	सौ. अ.प वत्	सौ. अ.प वत्	सौ. अ.प वत्	सौ. अ.प वत्	१ स्त्री	सौ. अ.प वत्	सौ. अ.प वत्	सौ. अ.प वत्	सौ. अ.प वत्	सौ. अ.प वत्	सौ. अ.प वत्	२ उ १ वे १	सौ. अ.प वत्	सौ. अ.प वत्	सौ. अ.प वत्
सनत्कुमार माहेन्द्र देव रचना	४ आदिके	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै२ का१	१ पु देवां. सौधर्म में ही उपजते	४	६ कुज्ञा३ मति- आदि३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ४ पी१ प१ क१ शु१ भा २ पी१ प१	२	६	१ सं	२	९ ज्ञा६ द३
सनत्कुमार माहेन्द्र देव पर्या.रचना	४ आदिके	१ संप	६	१०	४	१ दे	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ वै१	१ पु	४	६ कुज्ञा३ मति- आदि३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ पी१प१ भा२ पी१प१	२	६	१ सं	१ आहा	९ ज्ञा६ द३
सनत्कुमार माहेन्द्र देव अपर्याप्त रचना	३ मि१ सा१ अविरत १	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि १ का १	१ पु	४	५ कुम१ कुश्रु१ मति आदि ३	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ क१शु१ भा२ पी१प१	२	५ मिश्र बिना	१ सं	२	८ ज्ञा५ द३

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
सनत्कुमार माहेंद्र मिथ्या से असंय सौधर्म पुरुषवत् रचना	सौधर्म वत्	सौ. वत्	सौधर्म वत्	सौधर्म वत्	सौ. वत्	सौ. वत्	सौ. वत्	सौ. वत्	सौ. वत्	१ पुरुष	सौ. वत्	सौ. वत्	सौ. वत्	सौ. वत्	स्वकीय स्वर्ग जैसी	सौ. वत्	सौ. वत्	सौ. वत्	सौ. वत्	सौ. वत्
ब्रह्मब्रह्मोत्तरादि ग्रैवेयक पर्यंत सनत्कुमार-वत् रचना	सनत्कुमार वत्	स. वत्	स. वत्	सनत्कुमार वत्	स. वत्	स. वत्	स. वत्	स. वत्	स. वत्	स. वत्	स. वत्	स. वत्	स. वत्	स. वत्	स्वकीय स्वर्ग जैसी	स. वत्	स. वत्	स. वत्	स. वत्	स. वत्
अनुदिशअनुत्तर देवरचना सौधर्म पुरुष असंयतवत्	सौधर्म असंयत वत्	सौ असं वत्	सौधर्म असंयत वत्	सौधर्म असंयत वत्	सौ असं वत्	सौ असं वत्	सौ असं वत्	सौ असं वत्	सौ असंयत वत्	१ पुरुष	सौ असं वत्	सौ असं वत्	सौ असं वत्	सौ असं वत्	स्वकीय स्वर्ग जैसी	सौ असं वत्	सौ असं वत्	सौ असं वत्	सौ असं वत्	सौ असं वत्
सिद्धगति रचना	०	०	०	०	०	सिद्ध गति	०	०	०	०	०	१ के	०	१ के	०	०	१ क्षा	०	१ अना	२ ज्ञा१ द१
इं.मार्गणा में सामान्य एकेंद्रीरचना	१ मि	४ बा.सू. पर्या. अप.	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	५ त्रस विना	३ औ २ का १	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ ज्ञा२ द१
सामान्य एकेंद्रिय पर्या.रचना	१ मि	२ बा. सू. पर्या	४	४	४	१ ति	१ ए	५ त्रस विना	१ औ	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	१ आहा	३ ज्ञा२ द१
सामान्य एकेंद्रिय अप.रचना	१ मि	२ बा. सू. अप.	४	३	४	१ ति	१ ए	५ त्रस विना	२ औमि १ का १	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र २ क१शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ ज्ञा२ द१

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
बादर एकेंद्री रचना	१ मि	२ बादर पर्या अप	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	५ त्रस बिना	३ औ २ का १	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ ज्ञा२ द१
बादर एकेंद्री प. रचना	१ मि	१ वाद पर्या	४	४	४	१ ति	१ ए	५ त्रस बिना	१ औ	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	१ आहा	३ ज्ञा२ द१
बा.एकें. अप.रचना बा.एकेंलब्धि अपर्या रचना	१ मि	१ बाद अप	४	३	४	१ ति	१ ए	५ त्रस बिना	२ औमि १ का १	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र २ क१शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ ज्ञा२ द१
सूक्ष्म एकेंद्री रचना	१ मि	२ सूक्ष्म प१अ१	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	५ त्रस बिना	३ औ २ का १	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र २ क१शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ ज्ञा२ द१
सूक्ष्म एकेंद्री प. रचना	१ मि	१ सूक्ष्म पर्या	४	४	४	१ ति	१ ए	५ त्रस बिना	१ औ	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र १ कपोत भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	१ आहा	३ ज्ञा२ द१
सू.एकेंद्री अपर्याप्त, लब्धि अप रचना	१ मि	१ सूक्ष्म अप	४	३	४	१ ति	१ ए	५ त्रस बिना	२ औमि १ का १	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र २ क१शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ ज्ञा२ द१
द्वीन्द्रिय रचना	१ मि	२ द्वि इं प१ अ१	५।५	६।४	४	१ ति	१ द्वि	१ त्र	४ औ२का१ व१ अनु	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ ज्ञा२ द१

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
द्वीन्द्रिय पर्याप्त रचना	१ मि	१ द्वि इं पर्या	५	६	४	१ ति	१ द्वि इं	१ त्र	२ व १ अनु औ१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	१ आहा	३ ज्ञा२ द१
द्वीन्द्रिय अप. वा लब्धि अप रचना	१ मि	१ द्वि इं अप	५	४	४	१ ति	१ द्वि इं	१ त्र	२ औमि१ का १	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र २ क१शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ ज्ञा२ द१
त्रीन्द्रिय रचना	१ मि	२ त्रि इं प १ अप१	५।५	७।५	४	१ ति	१ त्रि इं	१ त्र	४ व १ अनु औ२ का १	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ ज्ञा२ द१
त्रीन्द्रिय पर्याप्त रचना	१ मि	१ त्रि इं पर्या	५	७	४	१ ति	१ त्रि इं	१ त्र	२ व १ अनु औ१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	१ आहा	३ ज्ञा२ द१
त्रीन्द्रिय अप. वा लब्धि अप रचना	१ मि	१ त्रि इं अप	५	५	४	१ ति	१ त्रि इं	१ त्र	२ औमि१ का १	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र २ क१शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	३ ज्ञा२ द१
चतुरिन्द्रिय रचना	१ मि	२ चतुइं प १ अप१	५।५	८।६	४	१ ति	१ चतु इं	१ त्र	४ व१ अनु औ२ का १	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	४ ज्ञा२ द२
चतुरिन्द्रिय पर्याप्त रचना	१ मि	१ चतुइं पर्या	५	८	४	१ ति	१ चतु इं	१ त्र	२ व१ अनु औ १	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ च १ अच१	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	१ आहा	४ ज्ञा२ द२

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
चतुरिन्द्रिय अप. वा लब्धि अप रचना	१ मि	१ चतुइं अप	५	६	४	१ ति	१ चतु इंद्रि	१ त्र	२ औमि१ का १	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च १ अच१	द्र२ क१ शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	४ ज्ञा२ द२
पंचेंन्द्रिय रचना	१४	४ सं पर्या अर्याप्त असंज्ञी प-अप	६।६ ५।५	१०।७। ९।७। ४।२। अयोगी १	४	४	१ पं	१ त्र	१५	३	४	८	७	४	द्र ६ भा ६	२	६	२	२	१२ ज्ञा८ द४
पंचेन्द्रिय पर्याप्त रचना	१४	२ संज्ञी प १ असंप१	६।५	१०।९ सयोगी ४ अयोगी १	४	४	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ वै१ आ १	३	४	८	७	४	द्र ६ भा ६	२	६	२	२	१२ ज्ञा८ द४
पंचेन्द्रिय अपर्याप्त रचना	५ मि१ सा१ अवि १ प्र१ स१	२ संज्ञी असं अप	६।५	७।७ सयोगी २	४	४	१ पं	१ त्र	४ औमि१ वैमि१ आ मि१ का१	३	४	६ विभं मनः बिना	४ अ १ सा १ छे १ य १	४	द्र२ क१ शु१ भा६	२	५ मिश्र बिना	२	२	१० ज्ञा६ द४
पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	४ सं पर्या अर्याप्त असंज्ञी प-अप	६।६ ५।५	१०।७ ९।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारक द्विक बिना	३	४	३ कु- ज्ञान	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	२	५ ज्ञा३ द२
पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	२ संज्ञी प १ असंप१	६।५	१०।९	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कु- ज्ञान	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
पंचेन्द्रिय मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	२ संज्ञी अप१ असं. अप१	६।५	७।७	४	४	पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का १	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च १ अच१	द्र २ क१शु१ भा ६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द२

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
पंचे सासा आदिरचना गुणस्थान-वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्
असंज्ञी पंचेन्द्रिय रचना	१ मि	२ असं प अ	५।५	९।७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	४ अनु व१ औ२का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा ४ अशुभ३ पीत १	२	१ मि	१ असं	२	४ ज्ञा२ द२
असंज्ञी पं. पर्याप्त रचना	१ मि	१ अ-संज्ञी पर्या	५	९	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ अनु व१ औ १	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च १ अच१	द्र ६ भा ४ अशुभ३ पीत १	२	१ मि	१ असं	१ आहा	४ ज्ञा२ द२
असंज्ञी पं. अपर्याप्त रचना	१ मि	१ अ-संज्ञी अप.	५	७	४	१ ति	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का १	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च १ अच१	द्र२ क१शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	४ ज्ञा२ द२
पं. लब्धि अपर्याप्त रचना	१ मि	२ सं. असं अप	६।५	७।७	४	२ ति १ म १	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का १	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च १ अच१	द्र२ क१शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द२
संज्ञी पं. लब्धि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ संज्ञी अप-र्याप्त	६	७	४	२ ति १ म १	१ पं	१ त्र	२ औमि १ का १	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च १ अच१	द्र२ क१शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
असंज्ञी पं. लब्धि अपर्याप्त रचना	१ मि	१ असं अप-र्याप्त	५	७	४	१ ति	पं	१ त्र	२ औमि १ का १	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च १ अच१	द्र२ क१शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ असं	२	४ ज्ञा२ द२

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संर.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
अतींद्रिय रचना सिद्धगति वत्	सिद्धगति वत्	सिद्ध वत्	सिद्ध वत्	सिद्धगति वत्	सिद्ध वत्	सिद्ध वत्	सिद्ध वत्	सिद्ध वत्	सिद्धगति वत्	सिद्ध वत्	सिद्ध वत्	सिद्ध वत्	सिद्ध वत्	सिद्ध वत्	सिद्ध वत्	सिद्ध वत्	सिद्ध वत्	सिद्ध वत्	सिद्ध वत्	सिद्ध वत्
षट्काय मार्गणा में सामा.षट्-कायरचना	१४	५७। ९८। ४०६	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९। ७।८।६।७ ५।६।४।४ ३।४।२।१	४	४	५	६	१५	३	४	८	७	४	द्र ६ भा ६	२	६	२	२	१२
षट्काय पर्याप्त रचना	१४	१९। ३७। १८६	६ ५ ४	१०।९।८। ७।६।४। ४।१	४	४	५	६	११ म४ व४ औ१वै१ आ१	३	४	८	७	४	द्र ६ भा ६	२	६	२	२	१२
षट्काय अपर्याप्त रचना	५ मि१ सा१ अवि १ प्र१ स१	३८। ६१। २२०	६ ५ ४	७।७।६। ५।४।३।२	४	४	५	६	४ औमि१ वैमि१आ मि१का१	३	४	६ मनः विभं बिना	४ अ१ सा१ छे१ य१	४	द्र२ क१ शु१ भा६	२	५ मिश्र बिना	२	२	१० ज्ञा६ द४
षट्काय मिथ्यादृष्टि आदिरचना गुण.वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्
पृथ्वीकाय रचना	१ मि	४ बा-सू पर्या. अप.	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	१ पृ	३ औ २ का १	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द१
पृथ्वीकाय पर्याप्त रचना	१ मि	२ बाद सूक्ष्म पर्या	४	४	४	१ ति	१ ए	१ पृ	१ औदा	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आहा	३ ज्ञा२ द१

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
पृथ्वीकाय अपर्याप्त रचना	१ मि	२ बादर सूक्ष्म अपर्याप्त	४	३	४	१ ति	१ ए	१ पृ	२ औमि १ का १	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र२ क१शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द१
पृथ्वीकाय बादर रचना	१ मि	२ बादर प अपर्याप्त	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	१ पृ	३ औमि १ औ१का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र ६ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द१
पृथ्वीकाय बादर प. रचना	१ मि	१ बादर पर्याप्त	४	४	४	१ ति	१ ए	१ पृ	१ औ	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र ६ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आहा	३ ज्ञा२ द१
पृथ्वीकाय बादरअप/ लब्धि अप रचना	१ मि	१ वादर अपर्याप्त	४	३	४	१ ति	१ ए	१ पृ	२ औमि १ का १	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र२ क१शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द१
पृथ्वीकाय सूक्ष्मरचना सूक्ष्म एकें. वत्	सूक्ष्म एकें वत्	सूक्ष्म एकेंद्रिय वत्	सूक्ष्म एकें. वत्	सूक्ष्म एकेंद्रिय वत्	सूक्ष्म एकें वत्	सूक्ष्म एकें वत्	सूक्ष्म एकें वत्	१ पृ	सूक्ष्म एकें वत्	सूक्ष्म एकें वत्	सूक्ष्म एकें वत्	सूक्ष्म एकें वत्	सूक्ष्म एकें वत्	सूक्ष्म एकें वत्	सूक्ष्म एकें वत्	सूक्ष्म एकें वत्	सूक्ष्म एकें वत्	सूक्ष्म एकें वत्	सूक्ष्म एकें वत्	सूक्ष्म एकें वत्
अप्, तेज, वायु रचना पृथ्वीकाय वत्	पृथ्वी काय वत्	पृथ्वीकाय वत्	पृथ्वी. वत्	पृथ्वीकाय वत्	पृथ्वी काय वत्	पृथ्वी काय वत्	पृथ्वी काय वत्	पृथ्वी काय वत्	१ स्वकीय काय	पृथ्वी काय वत्	पृथ्वी काय वत्	पृथ्वी काय वत्	पृथ्वी काय वत्	पृथ्वी काय वत्	द्र स्वकीय भा ३ अशुभ	पृथ्वी काय वत्	पृथ्वी काय वत्	पृथ्वी काय वत्	पृथ्वी काय वत्	पृथ्वी काय वत्
वनस्पती काय रचना	१ मि	१२ प्रति. अप्र.प्रत्येक बा.सू.नित्य -इतरनिगोद पर्या-अपर्या	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	१ व	३ औमि १ औ१का१	१ नपुं	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र ६ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द१

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
वनस्पति-काय पर्या. रचना	१ मि	६ पर्या	४	४	४	१ ति	१ ए	१ व	१ औ	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र ६ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आ	३ ज्ञा२ द१
वनस्पति-काय अप. रचना	१ मि	६ अपर्याप्त	४	३	४	१ ति	१ ए	१ व	२ औमि १ का १	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र २ क१शु१ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द१
प्रत्येक वनस्पति रचना	१ मि	४ प्र.अ प.अ	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	१ व	३ औ २ का १	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र ६ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द१
प्रत्येक वनस्पति प. रचना	१ मि	२ प्रति अप्र. पर्या	४	४	४	१ ति	१ ए	१ व	१ औ	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र ६ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आ	३ ज्ञा२ द१
प्रत्ये.वन अपर्या/ लब्धि अप.रचना	१ मि	२ प्रति अप्र. अपर्या	४	३	४	१ ति	१ ए	१ व	२ औमि १ का १	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र २ क१शु१ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द१
साधारण वनस्पति रचना	१ मि	८ सू.बा नि.इ प.अ	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	१ व	३ औ २ का १	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र ६ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द१
साधारण वनस्पति प. रचना	१ मि	४ सू.बा नि.इ पर्या	४	४	४	१ ति	१ ए	१ व	१ औ	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र ६ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आ	३ ज्ञा२ द१

नाम	गुण.	जी.	पर्या	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
साधारण वनस्पति अप.रचना	१ मि	४ सू.बा. नित्य इ. अप.	४	३ (८०३)	४	१ ति	१ ए	१ व	२ औमि १ का १	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र २ क१शु१ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द१
साधा.वन बादर रचना	१ मि	४ बादर नि इतर नि. प. अप.	४।४	४।३	४	१ ति	१ ए	१ व	३ औ २ का १	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र ६ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द१
साधा.वन बादर प. रचना	१ मि	२ बादर नित्य इ. पर्याप्त	४	४	४	१ ति	१ ए	१ व	१ औ	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र ६ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	१ आ	३ ज्ञा२ द१
साधा.वन. बा.अ/ लब्धि अप.रचना	१ मि	२ बादर नित्य इ. अपर्याप्त	४	३	४	१ ति	१ ए	१ व	२ औमि १ का १	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	१ अच	द्र २ क१शु१ भा ३ अशुभ	२	१ मि	१ अ	२	३ ज्ञा२ द१
साधा-सर्व सूक्ष्म की रचनासूक्ष्म पृथ्वी. वत्	सूक्ष्म पृथ्वीकाय वत्	४ सूक्ष्म नित्य इ. प. अप.	सू.पृ वत्	सूक्ष्म पृथ्वीकाय वत्	सू.पृ वत्	सू.पृ वत्	सू.पृ वत्	१ स्व-कीय	सू.पृ वत्	सू.पृ वत्	सू.पृ वत्	सू.पृ वत्	सू.पृ वत्	सू.पृ वत्	सू.पृ वत्	सू.पृ वत्	सू.पृ वत्	सू.पृ वत्	सू.पृ वत्	सू.पृ वत्
नित्य नि. चतुर्गति.नि रचना साधा.वत्	साधारण वत्	स्वकीय वत्	सा. वत्	साधारण वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	साधारण वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्
त्रसकाय रचना	१४	१० द्वी२ त्री२ चतु२ सं२ असं २	६।६ ५।५	१०।७।९।७ ८।६।७। ५।६।४।४। २।१।	४	४	४ द्वी १ त्री १ चतु१ पं १	१ त्र	१५	३	४	८	७	४	द्र ६ भा ६	२	६	२	२	१२

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
त्रसकाय पर्याप्त रचना	१४	५ द्वी१ त्री१ चतु १ सं१असं१	६।५	१०।९।८। ७।६।४।१।	४	४	४ द्वी १ त्रि १ चतु १ पं १	१ त्र	११ म४ व४ औ१ वै१ आ १	३	४	८	७	४	द्र ६ भा ६	२	६	२	१ आहा	१२
त्रसकाय अपर्याप्त रचना	५ मि१ सा१ अवि १ प्र१ स१	५ द्वी१ त्री१ चतु १ सं१असं१	६।५	७।७।६।५ ४।२	४	४	४ द्वी १ त्रि १ चतु १ पं १	१ त्र	४ औमि१ वैमि१ आ मि१ का१	३	४	६ विभं मनः बिना	४ सा १ छे १ य१अ१	४	द्र २ क१ शु १ भा६	२	५ मिश्र बिना	२	२	१० ज्ञा८ द४
त्रसकाय मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१० द्वी२ त्री२ चतु २ सं२असं२	६।६ ५।५	१०।७।९। ७।८।६।७। ५।६।४।	४	४	४ द्वी १ त्रि १ चतु १ पं १	१ त्र	१३ आहारक द्विक बिना	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	२	५ ज्ञा३ द२
त्रसकाय मिथ्यादृष्टि पर्या.रचना	१ मि	५ पर्याप्त द्वी१ त्री१ चतु १ सं१असं१	६।५	१०।९। ८।७।६।	४	४	४ द्वी १ त्रि १ चतु १ पं १	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा ६	२	१ मि	२	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
त्रसकाय मिथ्यादृष्टि अप.रचना	१ मि	५ अपर्याप्त द्वी१ त्री१ चतु १ सं१असं१	६।५	७।७।६। ५।४।	४	४	४ द्वी १ त्रि १ चतु १ पं १	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का १	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ क१ शु १ भा६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द२
त्रसकाय सासादन से अयोगी तक रचना	गुणस्थान वत्	गु. वत्	गु. वत्	गुणस्थान वत्	गु. वत्	गु. वत्	गु. वत्	गु. वत्	गु. वत्	गु. वत्	गु. वत्	गु. वत्	गु. वत्	गु. वत्	गु. वत्	गु. वत्	गु. वत्	गु. वत्	गु. वत्	गु. वत्
अकाय रचना	०	०	०	०	०	सिद्ध गति	०	०	०	०	०	१ के	०	१ के	०	०	१ क्षा	०	१ अना	२ ज्ञा १ द १

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
त्रसकाय लब्धि अपर्याप्त	१ मि	५ अप द्वी १ त्री १ चतु१ सं१अ१	६ ५	७।७ ६।५।४	४	२ ति१ मनु१	४ द्वी १ त्री १ चतु १ पं १	१ त्र	२ औमि १ का १	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च १ अच१	द्र २ क१शु१ भा ३ अशुभ	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द२
योगमार्गणा रचना गुण.वत् गुण. १३	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्
मनोयोगी रचना	१३ आदिके	१ संप	६	१०।४	४	४	१ पं	१ त्र	४ मन के	३	४	८	७	४	द्र ६ भा ६	२	६	१ सं	१ आहा	१२
मनोयोगी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	४ मन के	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च १ अच१	द्र ६ भा ६	२	१ मि	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
मनोयोगी सासादन रचना	१ सासा	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	४ मन के	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च १ अच१	द्र ६ भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
मनोयोगी मिश्र रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	४ मन के	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च १ अच१	द्र ६ भा ६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
मनोयोगी असंयत रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	४ मन के	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
मनोयोगी देशसंयत रचना	१ दे	१ संप	६	१०	४	२ ति१ म१	१ पं	१ त्र	४ मन के	३	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
मनोयोगी प्रमत्त रचना	१ प्रमत्त	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	४ मन के	३	४	४ मति आदि	३ सामा आदि	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ३ शुभ	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
मनोयोगी अप्रमत्त से सयोग तक गुण.वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	४।२ मन के	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्
सत्य मनो. अनु. मनो. रचना मनोयोगवत्	मनोयोगी वत्	मन. वत्	मन. वत्	मनोयोगी वत्	मन. वत्	मन. वत्	मन. वत्	मन. वत्	२ सत्य वा अनु. मन वत्	मन. वत्	मन. वत्	मन. वत्	मन. वत्	मन. वत्	मन. वत्	मन. वत्	मन. वत्	मन. वत्	मन. वत्	मन. वत्
असत्यमनो या उभय मनोयोगी रचना	१२ आदिके	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	२ असत्य मन वा उ. मन	३	४	७ केवल बिना	७	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	२	६	१ सं	१ आहा	१० ज्ञा७ द३
असत्य उभ मनो. रचना मिथ्याआदि क्षीणकषाय तक रचना	सत्य मनोयोगी वत्	सत्य मनो वत्	सत्य मनो वत्	सत्य मनोयोगी वत्	सत्य मनो वत्	सत्य मनो वत्	सत्य मनो वत्	सत्य मनो वत्	२ असत्य वा उभय	सत्य मनो वत्	सत्य मनो वत्	सत्य मनो वत्	सत्य मनो वत्	सत्य मनो वत्	सत्य मनो वत्	सत्य मनो वत्	सत्य मनो वत्	सत्य मनो वत्	सत्य मनो वत्	सत्य मनो वत्
वचनयोगी रचना	१३ आदिके	५ पर्या द्वी१त्री१ चतु १ सं१अ१	६ ५	१०।९।८।७।६।४	४	४	४ एकें बिना	१ त्र	४ वचन के	३	४	८	७	४	द्र ६ भा ६	२	६	२	१ आहा	१२

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
वचनयोगी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	५ पर्या द्वी१त्री १ चतु १ अ१ सं१	६ ५	१०।९। ८।७। ६।	४	४	४ एकें बिना	१ त्र	४ वचन के	३	४	३ कु- ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मि	२	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
वचनयोगी सासा से सयोग तक मनवत्-वचन योग में विशेष	मनोयोगी वत्	मन. वत्	मन. वत्	मन. वत्	मन. वत्	मन. वत्	मन. वत्	मन. वत्	४ वचन के	मन. वत्	मन. वत्	मन. वत्	मन. वत्	मन. वत्	मन. वत्	मन. वत्	मन. वत्	मन. वत्	मन. वत्	मन. वत्
काययोगी रचना	१३ आदिके	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९। ७।८।६।७ ।५।६।४।४ ।३।४।२	४	४	५	६	७ काय के	३	४	८	७	४	द्र ६ भा६	२	६	२	२	१२
काययोगी पर्याप्त रचना	१३ आदिके	७ पर्या	६ ५ ४	१०।९।८ ७।६।४।४	४	४	५	६	३ औ १ वै १ आ १	३	४	८	७	४	द्र ६ भा६	२	६	२	१ आहा	१२
काययोगी अपर्याप्त रचना	५ मि१ सा१ अवि १ प्र१ स१	७ अप	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३ २	४	४	५	६	४ औमि१ वैमि१आ मि१का१	३	४	६ विभं. मन. बिना	४ अ १ सा १ छे १ य १	४	द्र २ क१शु१ भा६	२	५ मिश्र बिना	२	२	१० ज्ञा६ द२
काययोगी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६। ५।५। ४।४।	१०।७।९। ७।८।६।७ ।५।६।४। ४।३	४	४	५	६	५ काय के आ.द्विक बिना	३	४	३ कु- ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मि	२	२	५ ज्ञा३ द२
काययोगी मिथ्यादृष्टि पर्या.रचना	१ मि	७ पर्या	६ ५ ४	१०।९। ८।७। ६।४	४	४	५	६	२ औ १ वै १	३	४	३ कु- ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मि	२	१ आहा	५ ज्ञा३ द२

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
काययोगी मिथ्यादृष्टि अप.रचना	१ मि	७ अप	६ ५ ४	७।७।६। ५।४।३	४	४	५	६	३ औमि १ वैमि १ का १	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ क१शु१ भा६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द२
काययोगी सासादन रचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	५ औ २ वै २ का १	३	४	३ कु-ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
काययोगी सासादन पर्या.रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	२ औ १ वै १	३	४	३ कु-ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
काययोगी सासादन अपर्याप्त रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का १	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ क१शु१ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
काययोगी सम्यग्मि. रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	२ औ १ वै १	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
काययोगी असंयत रचना	१ असं	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	५ औ २ वै २ का १	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
काययोगी असंयत पर्याप्त रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	२ औ १ वै १	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
काययोगी असंयत अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का १	२ नपुं१ पु १	४	३ मति आदि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ क१शु१ भा ६	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३
काययोगी देशसंयत रचना	१ दे	१ संप	६	१०	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	१ औ	३	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द ३
काययोगी प्रमत्त रचना	१ प्र	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	३ औ १ आहा २	३	४	४ मति आदि	३ सा१ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	७ ज्ञा४ द ३
काययोगी अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ संप	६	१०	३ आहा बिना	१ म	१ पं	१ त्र	१ औ	३	४	४ मति आदि	३ सा१ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	७ ज्ञा४ द ३
का. अपूर्व से क्षीणक तक रचना गुण.वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	१ औ. काययोग	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्
काययोगी सयोग के. रचना	१ सयोग	२ प अ	६।६	४।२	०	१ म	१ पं	१ त्र	३ औ २ का १	०	०	१ के	१ य	१ के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	०	२	२ ज्ञा१ द१
औदारिक काययोगी रचना	१३ आदिके	७ पर्या	६।५ ४	१०।९।८। ७।६।४।४	४	२ म१ ति१	५	६	१ औ	३	४	८	७	४	द्र ६ भा ६	२	६	२	१ आ	१२

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
औदारिक काययोगी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	७ पर्या	६। ५।४।	१०।९।८। ७।६।४।	४	२ म१ ति१	५	६	१ औ	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मि	२	१ आ	५ ज्ञा३ द २
औदारिक काययोगी सासादन रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	१ औ	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द २
औदारिक काययोगी सम्यग्मि. रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	१ औ	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द २
औदारिक काययोगी असंयत रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	१ औ	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द ३
औदारिक काययोगी देशसंयत रचना	१ देश	१ संप	६	१०	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	१ औ	३	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा १	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द ३
औ.का.प्र. से सयोग तक रचना का.यो.वत्	काययोगी वत्	का. वत्	का. वत्	काययोगी वत्	का. वत्	का. वत्	का. वत्	का. वत्	औदा रिक	का. वत्	का. वत्	का. वत्	का. वत्	का. वत्	का. वत्	का. वत्	का. वत्	का. वत्	का. वत्	का. वत्
औदारिक मिश्रयोगी रचना	४ मि१ सा१ अवि १ स १	७ अप	६ ५ ४	७।७।६।५ ।४।३।२	४	२ म१ ति१	५	६	१ औ.मि	३	४	६ विभं. मनः बिना	२ अ१ य१	४	द्र १ कपोत भा ६	२	४ मि१ सा१वे १क्षा१	२	१ आ	१० ज्ञा६ द ४

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
औदारिक मिश्रयोगी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७।६ ५।४।३	४	२ म१ ति१	५	६	१ औमि	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र १ कपोत भा३ अशुभ	२	१ मि	२	१ आहा	४ ज्ञा२ द २
औदारिक मिश्रयोगी सासादन रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	१ औमि	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र १ कपोत भा३ अशुभ	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	४ ज्ञा२ द २
औदारिक मिश्रयोगी असंयत रचना	१ असं	१ संअ	६ अ	७	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	१ औमि	१ पु	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र १ कपोत भा६	१ भ	२ वे १ क्षा १	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द ३
औदारिक मिश्रयोगी सयोगी रचना	१ सयोग	१ संअ	६ अ	२	०	१ म	१ पं	१ त्र	१ औमि	०	०	१ के	१ य	१ के	द्र १ कपोत भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	०	१ आहा	२ ज्ञा१ द १
वैक्रियिक काययोगी रचना	४ मि१ सा१ मिश्र१ अ१	१ संप	६	१०	४	२ न१ दे१	१ पं	१ त्र	१ वै	३	४	६ कुज्ञा३ मति आदि३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	२	६	१ सं	१ आहा	९ ज्ञा६ द ३
वैक्रियिक काययोगी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१ संप	६	१०	४	२ न१ दे१	१ पं	१ त्र	१ वै	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मि	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द २
वैक्रियिक काययोगी सासादन रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	२ न१ दे१	१ पं	१ त्र	१ वै	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द २

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
वैक्रि.योगी सम्यग्मि. रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	२ न१ दे१	१ पं	१ त्र	१ वै	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२
वैक्रि.योगी असंयत रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	२ न१ दे१	१ पं	१ त्र	१ वै	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३
वैक्रि.मिश्र योगी रचना	३ मि१ सा१ अवि१	१ संअ	६	७	४	२ न१ दे१	१ पं	१ त्र	१ वैमि	३	४	५ कुम१ कुश्रु१ मति आदि३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र१ कपोत भा६	२	५ मिश्र बिना	१ सं	१ आ	८ ज्ञा५ द३
वैक्रि.मिश्र योगी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१ संअ	६	७	४	२ न१ दे१	१ पं	१ त्र	१ वैमि	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र१ कपोत भा६	२	१ मि	१ सं	१ आ	४ ज्ञा२ द२
वैक्रि.मिश्र योगी सासादन रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	१ वैमि	२ स्त्री१ पु१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र१ कपोत भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	४ ज्ञा२ द२
वैक्रि.मिश्र योगी असंयत रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	२ न१ दे१	१ पं	१ त्र	१ वैमि	२ नपुं१ पु१	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र १ कपोत भा ४ शुभ ३ कपोत१	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३
आहारक काययोगी रचना	१ प्रमत्त	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	१ आहा	१ पु	४	३ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र१ शुक्ल भा३ शुभ	१ भ	२ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
आहा.मिश्र काययोगी रचना	१ प्रमत्त	१ अपर्याप्त	६	७	४	१ म	१ पं	१ त्र	१ आहा मिश्र	१ पु	४	३ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र १ कपोत भा ३ शुभ	१ भ	२ वे१ क्षा१	१ सं	१ आ	६ ज्ञा३ द३
कार्माण काययोगी रचना	४ मि१ सा१ अवि१ स१	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३।२	४	४	५	६	१ का	३	४	६ विभं मनः बिना	२ अ १ य १	४	द्र १ शुक्ल भा ६	२	५ मिश्र बिना	२	१ अना	१० ज्ञा६ द४
कार्माण काययोगी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	७ अपर्याप्त	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	१ का	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र १ शुक्ल भा ६	२	१ मि	२	१ अना	४ ज्ञा२ द२
कार्माण काययोगी सासादन रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	३ ति१ म१ दे१	१ पं	१ त्र	१ का	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र १ शुक्ल भा ६	१ भ	१ सा	१ सं	१ अना	४ ज्ञा२ द२
कार्माण काययोगी असंयत रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	४	१ पं	१ त्र	१ का	२ नपुं१ पु१	४	३ मति आदि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र १ शुक्ल भा ६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ अना	६ ज्ञा३ द३
कार्माण काययोगी सयोगी रचना	१ सयोग	१ संअ	६	२	०	१ म	१ पं	१ त्र	१ का	०	०	१ के	१ य	१ के	द्र१ शुक्ल भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	०	१ अना	२ ज्ञा१ द१
वेदमार्गणा मूलवत् स्त्रीवेदी रचना	९ आदिके	४ सं असं प २ अ २	६।६ ५।५	१०।७ ९।७	४	३ ति१ म१ दे१	१ पं	१ त्र	१३ आहारक द्विक बिना	१ स्त्री	४	६ मनः केवल बिना	४ अ १ दे १ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा ६	२	६	२	२	९ ज्ञा६ द३

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
स्त्रीवेदी पर्याप्त रचना	९ आदिके	२ सं अ. पर्या	६।५	१०।९	४	३ ति१ म१ दे१	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ स्त्री	४	६ मनः केवल बिना	४ अ १ दे १ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	२	६	२	१ आहा	९ ज्ञा६ द३
स्त्रीवेदी अपर्याप्त रचना	२ मि १ सा १	२ सं अ. अप.	६।५	७।७	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का १	१ स्त्री	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ क१शु१ भा ४ अशुभ३ पीत १	२	२ मि१ सा१	२	२	४ ज्ञा२ द२
स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	४ सं अ पर्या अप.	६।६ ५।५	१०।७ ९।७	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१३ आहारक द्विक बिना	१ स्त्री	४	३ कु-ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मि	२	२	५ ज्ञा३ द२
स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि प.रचना	१ मि	२ सं अ. पर्या	६।५	१०।९	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ स्त्री	४	३ कु-ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मि	२	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टि अप.रचना	१ मि	२ सं अ. अप.	६।५	७।७	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	३ औमि १ वैमि १ का १	१ स्त्री	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ क१शु१ भा ४ अशुभ३ पीत १	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द२
स्त्रीवेदी सासादन रचना	१ सा	२ संप१ संअ १	६।६	१०।७	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१३ आहारक द्विक बिना	१ स्त्री	४	३ कु-ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
स्त्रीवेदी सासादन प.रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ स्त्री	४	३ कु-ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
स्त्रीवेदी सासादन अप.रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	१ स्त्री	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ क१शु१ भा४ अशुभ३ पीत१	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
स्त्रीवेदी स.मिथ्या. रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१वै१	१ स्त्री	४	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
स्त्रीवेदी असंयत रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१वै१	१ स्त्री	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
स्त्रीवेदी देशसंयत प.रचना	१ दे	१ संप	६	१०	४	२ ति१ म१	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ १	१ स्त्री	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
स्त्रीवेदी प्रमत्त रचना	१ प्र	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ १	१ स्त्री	४	३ मति आदि मनः नहीं	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
स्त्रीवेदी अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ संप	६	१०	३ आ-हार बिना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ १	१ स्त्री	४	३ मति आदि मनः नहीं	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
स्त्रीवेदी अपूर्वकरण रचना	१ अपू	१ संप	६	१०	३ आ-हार बिना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ १	१ स्त्री	४	३ मति आदि मनः नहीं	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
स्त्रीवेदी अनिवृत्ति. रचना	१ अनि	१ संप	६	१०	२ मै१ प१	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ १	१ स्त्री	४	३ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
पुरुषवेदी रचना	९ आदिके	४ संअ प २ अ २	६।६ ५।५	१०।७ ९।७	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१५	१ पु	४	७ केवल बिना	५ अ१दे१ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	२	६	२	२	१० ज्ञा७ द३
पुरुषवेदी पर्याप्त रचना	९ आदिके	२ संअ पर्या	६।५	१०।९	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ वै१ आहा१	१ पु	४	७ केवल बिना	५ अ१दे१ सा १ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	२	६	२	१ आहा	१० ज्ञा७ द३
पुरुषवेदी अपर्याप्त रचना	४ मि१ सा१ अवि १ प्र १	२ संअ अप	६।५	७।७	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	४ औमि १ वैमि१ आमि१ का१	१ पु	४	५ कुम१ कुश्रु१ मति आदि३	३ अ१ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र २ क१शु१ भा६	२	५ मिश्र बिना	२	२	८ ज्ञा५ द३
पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	४ संअ प २ अ २	६।६ ५।५	१०।७ ९।७	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१३ आहा द्विक बिना	१ पु	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मि	२	२	५ ज्ञा३ द२
पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि पर्याप्त रचना	१ मि	२ संअ पर्या	६।५	१०।९	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ पु	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मि	२	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टि अपर्याप्त रचना	१ मि	२ संअ अप	६।५	७।७	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	१ पु	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ क१शु१ भा६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द२

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
पु.वेदी सा से अनि. तक गु.वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	मिश्र असं ३ गति देश २ गति	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	१ पु	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्
नपुंसकवेदी रचना	९ आदिके	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९। ७।८।६। ७।५।६।४ ।४।३	४	३ देव बिना	५	६	१३ आहारक द्विक बिना	१ न	४	६ मनः केवल बिना	४ अ१दे१ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	२	६	२	२	९ ज्ञा६ द३
नपुंसकवेदी पर्याप्त रचना	९ आदिके	७ पर्या	६ ५ ४	१०।९ ८।७ ६।४	४	३ देव बिना	५	६	१० म४ व४ औ१ वै१	१ न	४	६ मनः केवल बिना	४ अ१दे१ सा १ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	२	६	२	१ आहा	९ ज्ञा६ द३
नपुंसकवेदी अपर्याप्त रचना	३ मि१ सा१ अवि १	७ अप	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	३ देव बिना	५	६	३ औमि१ वैमि१ का१	१ न	४	५ कुम १ कुश्रु १ मति आदि३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ क१शु१ भा३ अशुभ	२	४ मि १ सा १ वे १ क्षा १	२	२	८ ज्ञा५ द३
नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९। ७।८।६। ७।५।६।४ ।४।३	४	३ देव बिना	५	६	१३ आहारक द्विक बिना	१ न	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मि	२	२	५ ज्ञा३ द२
नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि प. रचना	१ मि	७ पर्या	६ ५ ४	१०।९ ८।७ ६।४	४	३ देव बिना	५	६	१० म४ व४ औ१ वै१	१ न	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मि	२	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टि अप रचना	१ मि	७ अप	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	३ देव बिना	५	६	३ औमि१ वैमि१ का१	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ क१शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द२

नाम	गुण	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
नपुंसकवेदी सासादन रचना	१ सा	२ संप१, संअ१	६।६	१०।७	४	३ देव बिना	१ पं	१ त्र	१२ आहारक द्विक वैमि बिना	१ न	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
नपुंसकवेदी सासादन प.रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	३ देव बिना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ न	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
नपुंसकवेदी सासादन अप.रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	२ औमि१ का१	१ न	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ क१शु१ भा ३ अशुभ	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
नपुंसकवेदी सम्यग्मिथ्या रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	३ देव बिना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ न	४	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
नपुंसकवेदी असंयत रचना	१ असं	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	३ देव बिना	१ पं	१ त्र	१२ म४ व४ औ१ वै२ का१	१ न	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
नपुंसकवेदी असंयत पर्या.रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	३ देव बिना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	१ न	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	३ उ १ वे १ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
नपुंसकवेदी असंयत अप.रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	१ नरक	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ न	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ क१शु१ भा १ कपोत	१ भ	२ वे १ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
नपुंसकवेदी देशसंयत रचना	१ दे	१ संप	६	१०	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ १	१ नपुं	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
नपुंसकवेदी प्रमत्त से १ ला भाग अनि तक स्त्री.वत् वेद १ नपुं	स्त्री. वत्	स्त्री. वत्	स्त्री. वत्	स्त्री. वत्	स्त्री. वत्	स्त्री. वत्	स्त्री. वत्	स्त्री. वत्	स्त्री. वत्	१ नपुं	स्त्री. वत्	स्त्री. वत्	स्त्री. वत्	स्त्री. वत्	स्त्री. वत्	स्त्री. वत्	स्त्री. वत्	स्त्री. वत्	स्त्री. वत्	स्त्री. वत्
वेदरहित अपगतवेदी रचना	६ अनिवृत्ति आदि	२ संप संअ	६।६	१०।४ २।१	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ २ का१	०	४।३ २।१ ०	५ मति आदि सुज्ञान	४ सा १ छे१सू १ य१	४	द्र ६ भा १ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	सं ०	२	९ ज्ञा५ द४
अपगतवेदी २रा भा अनि से सिद्ध तक मूलौघवत्	मूलौघ वत्	मू. वत्	मू. वत्	मूलौघ वत्	मू. वत्	मू. वत्	मू. वत्	मू. वत्	मूलौघ वत्	मू. वत्	मू. वत्	मू. वत्	मू. वत्	मू. वत्	मू. वत्	मू. वत्	मू. वत्	मू. वत्	मू. वत्	मू. वत्
कषाय मार्गणा गुण.वत् क्रोधरचना	९ आदिके	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९। ७।८।६।७ ।५।६।४। ४।३	४	४	५	६	१५	३	१ क्रो	७ केवल बिना	५ अ १ सा १ छे१ प१ दे१	३ केवल बिना	द्र ६ भा ६	२	६	२	२	१० ज्ञा७ द३
क्रोध कषायी प. रचना	९ आदिके	७ पर्या	६ ५ ४	१०।९।८। ७।६।४	४	४	५	६	११ म४ व४ औ २ आ १	३	१ क्रो	७ केवल बिना	५ अ १ सा १ छे१ प१ दे१	३ केवल बिना	द्र ६ भा ६	२	६	२	१ आहा	१० ज्ञा७ द३
क्रोध कषायी अप.रचना	४ मि१ सा१ अवि१प्र१	७ अप	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	४ औमि१ वै मि१ आ मि१ का१	३	१ क्रो	५ कुम १ कुश्रु १ मत्या३	३ अ१ सा१ छे१	३ केवल बिना	द्र २ क१शु१ भा ६	२	५ मिश्र बिना	२	२	८ ज्ञा५ द३

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
क्रोधी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९। ७।८।६। ७।५।६।४ ४।३	४	४	५	६	१३ आहारक द्विक बिना	३	१ क्रो	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मि	२	२	५ ज्ञा३ द२
क्रोधी मिथ्यादृष्टि प. रचना	१ मि	७ पर्या	६ ५ ४	१०।९।८ ७।६।४	४	४	५	६	१० म४ व४ औ१ वै१	३	१ क्रो	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मि	२	१ आ	५ ज्ञा३ द२
क्रोधी मिथ्यादृष्टि अप.रचना	१ मि	७ अप	६ ५ ४	७।७।६।५ ४।३	४	४	५	६	३ औमि१ वैमि१ का१	३	१ क्रो	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ क१शु१ भा६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द२
क्रोधी सासादन रचना	१ सा	२ संप संअ	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारक द्विक बिना	३	१ क्रो	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
क्रोधी सासादन प. रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	१ क्रो	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२
क्रोधी सासादन अप.रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	३	१ क्रो	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ क१शु१ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
क्रोधी सम्यग्मिथ्या रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	१ क्रो	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आ	५ ज्ञा३ द२

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
क्रोधी असंयत रचना	१ असं	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारक द्विक बिना	३	१ क्रो	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र. ६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३
क्रोधी असंयत प. रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	१ क्रो	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द ३
क्रोधी असंयत अप रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	२ न१ पु१	१ क्रो	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ क१शु१ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द ३
क्रोधी देशसंयत रचना	१ दे	१ संप	६	१०	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	१ क्रो	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द ३
क्रोधी प्रमत्त रचना	१ प्र	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ आ२	३	१ क्रो	४ मति आदि	३ सा१ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द ३
क्रोधी अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ संप	६	१०	३ आहा बिना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	१ क्रो	४ मति आदि	३ सा१ छे १ प १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द ३
क्रोधी अपूर्वकरण रचना	१ अपू	१ संप	६	१०	३ आहा बिना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	१ क्रो	४ मति आदि	२ सा१ छे १	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द ३

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
क्रोधी अनिवृत्ति. प्रथमभाग रचना	१ अनिवृत्ति करण	१ संप	६	१०	२ मै१ प१	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	१ क्रो	४ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
क्रोधी अनिवृत्ति. द्वितीयभाग रचना	१ अनिवृत्ति करण	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	१ क्रो	४ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
मान,माया, लोभ रचना अपनी व्यु. तक	मान-मायामें९, लोभ में १० गुण.	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	१ स्वकीय	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं	एवं
अकषायी रचना	४ उपशांत कषायादि	२ संप१ संअ१	६।६	१०।४।२।१	०	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२का१	०	०	५ मति आदि	१ य	४	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	२	९ ज्ञा५ द४
अकषायी उप. कषाय से सिद्ध तक गुणस्थानवत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्
ज्ञानमार्गणा में गुण.वत् वहां कुमति कुश्रुत रचना	२ मि१ सा१	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९।७।८।६।७ ५।६।४।४।३	४	४	५	६	१३ आहारक द्विक बिना	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	२ मि१ सा१	२	२	४ ज्ञा२ द२
कुमति कुश्रुत प. रचना	२ मि१ सा१	७ पर्या	६ ५ ४	१०।९ ८।७ ६।४	४	४	५	६	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	२ मि१ सा१	२	१ आहा	४ ज्ञा२ द२

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
कुमतिकुश्रुत अपर्याप्त रचना	२ मि१ सा१	७ अप	६ ५ ४	७।७ ६।५।४।३	४	४	५	६	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ क१शु१ भा६	२	२ मि१ सा१	२	२	४ ज्ञा२ द२
कुमतिकुश्रुत मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९। ७।८।६।७ ५।६।४। ४।३	४	४	५	६	१३ आहारक द्विक बिना	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द२
कुमतिकुश्रुत मिथ्यादृष्टि प. रचना	१ मि	७ पर्या	६ ५ ४	१०।९ ८।७ ६।४	४	४	५	६	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	२	१ मि	२	१ आहा	४ ज्ञा२ द२
कुमतिकुश्रुत मिथ्यादृष्टि अप.रचना	१ मि	७ अप	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ क१शु१ भा६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द२
कुमतिकुश्रुत सासादन रचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारक द्विक बिना	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
कुमतिकुश्रुत सासादन प. रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	४ ज्ञा२ द२
कुमतिकुश्रुत सासादन अप.रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ क१शु१ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
विभंगज्ञानी रचना	२ मि१ सा१	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	१ विभंग	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	२ मि१ सा१	१ सं	१ आहा	३ ज्ञा१ द२
विभंगज्ञानी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	१ विभंग	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मि	१ सं	१ आहा	३ ज्ञा१ द२
विभंगज्ञानी सासादन रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	१ विभंग	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	३ ज्ञा१ द२
मतिश्रुत ज्ञानी रचना	९ असंयत आदि	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१५	३	४	२ म१ श्रु१	७	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	५ ज्ञा२ द३
मतिश्रुत ज्ञानी प. रचना	९ असंयत आदि	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ वै१ आ१	३	४	२ म१ श्रु१	७	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा२ द३
मतिश्रुत ज्ञानी अप रचना	२ असं१ प्र१	१ संअ	६	७	४	४	१ पं	१ त्र	४ औमि१ वै मि१ आ मि१ का१	२ न१ पु१	४	२ म१ श्रु१	३ अ१ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र२ क१शु१ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	५ ज्ञा२ द३
मतिश्रुत ज्ञानी असं.रचना	१ असं	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारक द्विक बिना	३	४	२ म१ श्रु१	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	५ ज्ञा२ द३

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
मतिश्रुत ज्ञानी असंयत प.रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	२ म१ श्रु१	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा२ द३
मतिश्रुत ज्ञानी असंयत अप.रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	२ न१ पु१	४	२ म१ श्रु१	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ क१शु१ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	५ ज्ञा२ द३
मतिश्रुतज्ञानी देशसंयत से क्षी.कषाय तक गुण.वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	२ म१ श्रु१	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	५ ज्ञा२ द३
अवधिज्ञानी रचना मतिश्रुत ज्ञान वत्१	मतिश्रुत वत्	मति श्रुत वत्	मति श्रुत वत्	मति श्रुत वत्	मति श्रुत वत्	मति श्रुत वत्	मति श्रुत वत्	मति श्रुत वत्	मति श्रुत वत्	मति श्रुत वत्	मति श्रुत वत्	१ अवधि ३ म१ श्रु १ अ१ या म१ श्रु १ मन १ या ४ म१ श्रु १ अ१ मन १	मति श्रुत वत्	मति श्रुत वत्	मति श्रुत वत्	मति श्रुत वत्	मति श्रुत वत्	मति श्रुत वत्	मति श्रुत वत्	मति श्रुत वत्
मन:पर्ययज्ञानी रचना	७ प्रमत्तादि	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ पु	४	१ मन:	४ सा१ छे१ सू१ य१	२ च१ अच१ अव१	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	२ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	४ ज्ञा१ द३

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
मन:पर्यय ज्ञानी प्रमत्त रचना	१ प्र	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ १	१ पु	४	१ मन: पर्यय	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	२ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	४ ज्ञा१ द३
मन:पर्यय ज्ञानी अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ संप	६	१०	३ आहा बिना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ १	१ पु	४	१ मन: पर्यय	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	२ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	४ ज्ञा१ द३
मन: ज्ञानी अपूर्व. से क्षीणकषाय तक गुण.वत् वेद१ ज्ञान १	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	१ पु या ०	गुण. वत्	१ मन: पर्यय	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	४ ज्ञा१ द३
केवलज्ञानी रचना	२ सयोगी१ अयोगी१	२ प१ अ१	६।६	४।२।१	०	१ म	१ पं	१ त्र	७ म२ व२ औ२का१	०	०	१ केवल	१ य	१ के	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा१	०	२	२ ज्ञा१ द१
केवलज्ञानी सयोगी अयोगी सिद्धरचना गुण.वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्
सामान्य संयममार्ग. में संयम रचना	९ प्रमत्तादि	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७ ४।२।१	४	१ म	१ पं	१ त्र	१३ वैक्रियिक द्विक बिना	३	४	५ मति आदि	५ सा१ छे१ प १ सू१ य १	४	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	९ ज्ञा५ द४

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
सामान्य संयमी प्रमत्त रचना	१ प्र	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१आ२	३	४	४ मति आदि	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
सामान्य संयमी अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ संप	६	१०	३ आहा बिना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ १	३	४	४ मति आदि	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
सामान्य संयमी अपूर्व. से अयोगी तक गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्
सामायिक संयमी रचना	४ प्रमत्त आदि	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१आ२	३	४	४ मति आदि	१ सा	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
सामायिक संय प्रमत्त से अनिवृ. तक गुणस्थानवत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	१ सा	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्
छेदो. संयमी रचना सामायिकवत्	सामा- यिक वत्	सा. वत्	सामा- यिक वत्	सामायिक वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सामा- यिक वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	१ छे	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्	सा. वत्
परिहारविशुद्धि संयमी रचना	२ प्र१ अप्र१	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ १	१ पु	४	३ मति आदि	१ परि	३ च१ अच१ अव१	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	२ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
परि.विशु. प्र-अप्र. रचना मूलौघवत्	१ स्वकीय	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	१ पु	४	३ मति आदि	१ परि	३ च१ अच१ अव१	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	२ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
सूक्ष्मसांप. संय.रचना सूक्ष्मसांप. गुण.वत्	१ सू.	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	१ लो	४ मति आदि	१ सू	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
यथाख्यात संयमी रचना	४ उपशांत कषाय आदि	२ संप१ संअ१	६।६	१०।४ २।१	०	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ२का१	०	०	५ मति आदि	१ य	४	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	२	९ ज्ञा५ द४
यथा.संय. उप.कषाय से अयोगी तक गु.वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्
देशसंयमी रचना देशसंयत गुण.वत्	१ दे	१ संप	६	१०	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
असंयमी रचना	४ मिथ्यादृष्टि आदि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९। ७।८।६।७ ।५।६।४। ४।३	४	४	५	६	१३ आहारक द्विक बिना	३	४	६ कुज्ञा३ मति आदि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	२	६	२	२	९ ज्ञा६ द३
असंयमी पर्याप्त रचना	४ आदिके	७ पर्या	६ ५ ४	१०।९।८। ७।६।४	४	४	५	६	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	६ कुज्ञा३ मति आदि ३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	२	६	२	१ आहा	९ ज्ञा६ द३

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
असंयमी अपर्याप्त रचना	३ मि१ सा१ अवि १	७ अप.	६ ५ ४	७।७।६। ५।४।३	४	४	५	६	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	५ कुम१ कुश्रु१ मत्यादि३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ क१शु१ भा६	२	५ मिश्र बिना	२	२	८ ज्ञा५ द३
असंयमी मिथ्या.से असं. तक गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्
दर्शनमार्गणा में गुण.वत् वहां चक्षु-दर्शन रचना	१२ आदिके	६ च२ अ२ सं२	६।६ ५।५	१०।७ ९।७ ८।६	४	४	२ चतु१ पं१	१ त्र	१५	३	४	७ केवल बिना	७	१ च	द्र ६ भा६	२	६	२	२	८ ज्ञा७ द१
चक्षुदर्शनी पर्याप्त रचना	१२ आदिके	३ प च१ अ१ सं१	६ ५	१० ९ ८	४	४	२ चतु१ पं१	१ त्र	११ म४ व४ औ१ वै१ आ१	३	४	७ केवल बिना	७	१ च	द्र ६ भा६	२	६	२	१ आहा	८ ज्ञा७ द१
चक्षुदर्शनी अपर्याप्त रचना	४ मि१ सा१ अवि१ प्र१	३ अ च१ अ१ सं१	६ ५	७ ७ ६	४	४	२ चतु१ पं१	१ त्र	४ औमि१ वैमि१आमि१का१	३	४	५ कुम१ कुश्रु१ मत्यादि३	३ अ१ सा१ छे१	१ च	द्र २ क१शु१ भा६	२	५ मिश्र बिना	२	२	६ ज्ञा५ द१
चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	६ च२ अ२ सं२	६।६ ५।५	१०।७ ९।७ ८।६	४	४	२ चतु१ पं१	१ त्र	१३ आहारक द्विक बिना	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	१ च	द्र ६ भा६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा३ द१
चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि पर्या.रचना	१ मि	३ प च१ अ१ सं१	६।५	१०।९।८	४	४	२ चतु१ पं१	१ त्र	१० म४ व४ औ१वै१	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	१ च	द्र ६ भा६	२	१ मि	२	१ आहा	४ ज्ञा३ द१

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
चक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि अ.रचना	१ मि	३ अ च १ अ १ सं १	६ ५	७ ७।६	४	४	२ चतु१ पं१	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	१ चक्षु	द्र२ क१शु१ भा६	२	१ मि	२	२	३ ज्ञा२ द१
चक्षुदर्शनी सासा. से क्षीणक.तक गुण.वत्द१	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	१ चक्षु	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्
अचक्षुदर्श. रचना	१२ आदिके	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९। ७।८।६।७ ।५।६।४। ४।३	४	४	५	६	१५	३	४	७ केवल बिना	७	१ अचक्षु	द्र६ भा६	२	६	२	२	८ ज्ञा७ द१
अचक्षुदर्श. पर्याप्त रचना	१२ आदिके	७ पर्या	६ ५ ४	१०।९ ८।७ ६।४	४	४	५	६	११ म४ व४ औ१वै१ आ१	३	४	७ केवल बिना	७	१ अचक्षु	द्र६ भा६	२	६	२	१ आहा	८ ज्ञा७ द१
अचक्षुदर्श. अपर्याप्त रचना	४ मि१ सा१ अवि१ प्र१	७ अप	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	४ औमि१ वैमि१आ मि१का१	३	४	५ कुम१ कुश्रु१ मत्यादि३	३ अ१ सा१ छे१	१ अचक्षु	द्र२ क१शु१ भा६	२	५ मिश्र बिना	२	२	६ ज्ञा५ द१
अचक्षुदर्श. मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९। ७।८।६। ७ ।५।६।४। ४।३	४	४	५	६	१३ आहा. द्विक बिना	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	१ अचक्षु	द्र६ भा६	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा३ द१
अचक्षुदर्श. मिथ्यादृष्टि प.रचना	१ मि	७ पर्या	६ ५ ४	१०।९।८। ७।६।४	४	४	५	६	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	१ अचक्षु	द्र६ भा६	२	१ मि	२	१ आहा	४ ज्ञा३ द१

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप.
अचक्षुदर्शनी मिथ्यादृष्टि अप.रचना	१ मि	७ अप.	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	१ अच	द्र२ क१शु१ भा६	२	१ मि	२	२	३ ज्ञा२ द१
अचक्षुदर्शनी सासा. से क्षी.क.तक यथासंभव गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	१ अच	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	यथा संभव
अवधि-दर्शनी रचना	९ असंयत आदि	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१५	३	४	४ मति आदि	७	१ अवधि	द्र६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	५ ज्ञा४ द१
अवधि-दर्शनी प.रचना	९ असंयत आदि	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ वै१ आ१	३	४	४ मति आदि	७	१ अवधि	द्र६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा४ द१
अवधि-दर्शनी अप.रचना	२ असं१ प्र१	१ संअ	६	७	४	४	१ पं	१ त्र	४ औमि१वै मि१का१ आमि१	२ पु१ न१	४	३ म१ श्रु१ अ१	३ अ१ सा१ छे१	१ अवधि	द्र२ क१शु१ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	४ ज्ञा३ द१
अवधिदर्शनी असंयत से क्षीणकषाय तक अवधि ज्ञानी वत्	अवधि-ज्ञान वत्	अव. ज्ञान वत्	अव. ज्ञान वत्	अवधि-ज्ञान वत्	अव. ज्ञान वत्	अव. ज्ञान वत्	अव. ज्ञान वत्	अव. ज्ञान वत्	अवधि-ज्ञान वत्	अव. ज्ञान वत्	अव. ज्ञान वत्	३ या ४ मति आदि	अव. ज्ञान वत्	१ अवधि	अव. ज्ञान वत्	अव. ज्ञान वत्	अव. ज्ञान वत्	अव. ज्ञान वत्	अव. ज्ञान वत्	अव. ज्ञान वत्
केवलदर्शनी रचना केवलज्ञान वत्	केवलज्ञान वत्	के. ज्ञान वत्	के. ज्ञान वत्	केवलज्ञान वत्	के. ज्ञान वत्	के. ज्ञान वत्	के. ज्ञान वत्	के. ज्ञान वत्	के. ज्ञान वत्	के. ज्ञान वत्	के. ज्ञान वत्	के. ज्ञान वत्	के. ज्ञान वत्	के. दर्शन	के. ज्ञान वत्	के. ज्ञान वत्	के. ज्ञान वत्	के. ज्ञान वत्	के. ज्ञान वत्	के. ज्ञान वत्

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
लेश्यामार्गणा में गुण. वत् वहां कृष्णलेश्या रचना	४ आदिके	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९। ७।८।६।७ ।५।६।४। ४।३	४	४	५	६	१३ आहारक द्विक बिना	३	४	६ कुज्ञान ३ मति आदि३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ कृष्ण	२	६	२	२	९ ज्ञा६ द३
कृष्णलेश्या पर्याप्त रचना	४ आदिके	७ पर्या	६ ५ ४	१०।९।८। ७।६।४	४	३ देव बिना	५	६	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	६ कुज्ञान ३ मति आदि३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ कृष्ण	२	६	२	१ आहा	९ ज्ञा६ द३
कृष्णलेश्या अपर्याप्त रचना	३ मि१ सा१ अवि१	७ अप	६ ५ ४	७।७।६।५ ४।३	४	४	५	६	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	५ कुम१ कुश्रु१ मति आदि३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र२ क१शु१ भा१ कृष्ण	२	३ मि१ सा१ वे१	२	२	८ ज्ञा५ द३
कृष्णलेश्या मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९। ७।८।६।७ ।५।६।४। ४।३	४	४	५	६	१३ आहारक द्विक बिना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ कृष्ण	२	१ मि	२	२	५ ज्ञा३ द२
कृष्णलेश्या मिथ्यादृष्टि प. रचना	१ मि	७ पर्या	६ ५ ४	१०।९।८। ७।६।४	४	३ देव बिना	५	६	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ कृष्ण	२	१ मि	२	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
कृष्णलेश्या मिथ्यादृष्टि अप.रचना	१ मि	७ अप	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ क१शु१ भा१ कृष्ण	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द२
कृष्णलेश्या सासादन रचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारक द्विक बिना	३	४	३ कुज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ कृष्ण	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
कृष्णलेश्या सासादन प. रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	३ देव बिना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ कृष्ण	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
कृष्णलेश्या सासादन अप. रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	३ ति१ म१ दे१	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ क१शु१ भा१ कृष्ण	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
कृष्णलेश्या सम्यग् मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	३ देव बिना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ कृष्ण	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
कृष्णलेश्या असंयत रचना	१ असं	२ संप१ संअ१	६|६	१०|७	४	३ देव बिना	१ पं	१ त्र	१२ म४ व४ औ२ वै१ का१	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ कृष्ण	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
कृष्णलेश्या असंयत प. रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	३ देव बिना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ कृष्ण	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
कृष्णलेश्या असंयत अप. रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	१ मनु पंचम पृथ्वी से आये	१ पं	१ त्र	२ औमि१ का१	१ पु	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र२ क१शु१ भा१ कृष्ण	१ भ	१ वेदक पंचम पृथ्वी से आये	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
नीललेश्या रचना कृष्ण लेश्यावत्	कृष्ण लेश्या वत्	कृ. वत्	कृ. वत्	कृष्ण लेश्या वत्	कृ. वत्	कृ. वत्	कृ. वत्	कृ. वत्	कृष्ण लेश्या वत्	कृ. वत्	कृ. वत्	कृ. वत्	कृ. वत्	कृ. वत्	द्र६ भा१ नील	कृ. वत्	कृ. वत्	कृ. वत्	कृ. वत्	कृ. वत्

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
कपोत लेश्या रचना	४ आदिके	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९। ७।८।६।७ ।५।६।४। ४।३	४	४	५	६	१३ आहारक द्विक बिना	३	४	६ कुज्ञान ३ मति आदि३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ कपोत	२	६	२	२	९ ज्ञा६ द३
कपोत लेश्या पर्या.रचना	४ आदिके	७ प	६ ५ ४	१०।९ ८।७ ६।४	४	३ देव बिना	५	६	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	६ कुज्ञान ३ मति आदि३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ कपोत	२	६	२	१ आहा	९ ज्ञा६ द३
कपोत लेश्या अप.रचना	३ मि१ सा१ अवि१	७ अ	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	५ कुम१ कुश्रु१ मति आदि३	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र२ क१शु१ भा१ कपोत	२	४ मि१ सा१ वे१ क्षा१	२	२	८ ज्ञा५ द३
क.लेश्या मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९। ७।८।६।७ ।५।६।४। ४।३	४	४	५	६	१३ आहारक द्विक बिना	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ कपोत	२	१ मि	२	२	५ ज्ञा३ द२
क.लेश्या मिथ्यादृष्टि पर्या.रचना	१ मि	७ प	६ ५ ४	१०।९ ८।७ ६।४	४	३ देव बिना	५	६	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ कपोत	२	१ मि	२	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
क.लेश्या मिथ्यादृष्टि अप.रचना	१ मि	७ अ	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ क१शु१ भा१ कपोत	२	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द२
क.लेश्या सासादन रचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारक द्विक बिना	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ कपोत	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
क.लेश्या सासादन पर्या.रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	३ देव बिना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ कपोत	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
क.लेश्या सासादन अप.रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ क१शु१ भा१ कपोत	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
क.लेश्या सम्यग् मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	३ देव बिना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ कपोत	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
क.लेश्या असंयत रचना	१ असं	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	३ देव बिना	१ पं	१ त्र	१३ आहारक द्विक बिना	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ कपोत	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
क.लेश्या असंयत पर्या.रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	३ देव बिना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ कपोत	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
क.लेश्या असंयत अप.रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	३ देव बिना	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	२ पु१ न१	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र२ क१शु१ भा१ कपोत	१ भ	२ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
तेजोलेश्या रचना	७ आदिके	३ संप१ संअ१ असं प१	६।६ ५	१०।७ ९	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१५	३	४	७ केवल बिना	५ अ१ दे१सा १ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ तेजो	२	६	२ सं१ अ१	२	१० ज्ञा७ द३

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
तेजोलेश्या पर्याप्त रचना	७ आदिके	२ संप१ असं प१	६ ५	१० ९	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ वै१ आ १	३	४	७ केवल ज्ञान बिना	५ अ१ सा१ छे१ प १ दे१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ तेज	२	६	२ सं१ अ१	१ आहा	१० ज्ञा७ द३
तेजोलेश्या अपर्याप्त रचना	४ मि१ सा१ अवि१ प्र१	१ संअ	६	७	४	२ म१ दे१	१ पं	१ त्र	४ औमि१वै मि१ आ मि१का१	२ स्त्री१ पु१	४	५ कुम१ कुश्रु१ मति आदि३	३ अ१ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र२ क१शु१ भा१ तेज	२	५ मिश्र बिना	१ सं	२	८ ज्ञा५ द३
तेजोलेश्या मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	३ संप१ संअ१ असंप१	६ ६ ५	१०।७ ९	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१२ म४ व४ औ१ वै२ का१	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ तेज	२	१ मि	२ सं१ अ१	२	५ ज्ञा३ द२
तेजोलेश्या मिथ्यादृष्टि पर्या.रचना	१ मि	२ संप१ असं प१	६ ५	१० ९	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ तेज	२	१ मि	२ सं१ अ१	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
तेजोलेश्या मिथ्यादृष्टि अप.रचना	१ मि	१ संअ	६	७	४	१ देव	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	२ स्त्री१ पु१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ क१शु१ भा१ तेज	२	१ मि	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
तेजोलेश्या सासादन रचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१२ म४ व४ औ१ वै२ का१	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ तेज	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
तेजोलेश्या सासादन पर्या.रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ तेज	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
तेजोलेश्या सासादन अप.रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	१ देव	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	२ स्त्री१ पु१	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ क१शु१ भा१ तेज	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
तेजोलेश्या सम्यग्मि. रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ तेज	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
तेजोलेश्या असंयत रचना	१ असं	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१३ आहारक द्विक बिना	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ तेज	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
तेजोलेश्या असंयत प. रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ तेज	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
तेजोलेश्या असंयत अप.रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	२ म१ दे१	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	१ पु	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र२ क१शु१ भा१ तेज	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
तेजोलेश्या देशसंयत रचना	१ दे	१ संप	६	१०	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ तेज	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
तेजोलेश्या प्रमत्त रचना	१ प्र	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१आ२	३	४	४ मति आदि	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ तेज	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
तेजोलेश्या अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ संप	६	१०	३ आ-हार बिना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	४ मति आदि	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ तेज	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
पद्मलेश्या रचना	७ आदिके	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१५	३	४	७ केवल बिना	५ अ१दे १ सा १ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ पद्म	२	६	१ सं	२	१० ज्ञा७ द३
पद्मलेश्या पर्याप्त रचना	७ आदिके	१ संप	६	१०	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ वै१ आ१	३	४	७ केवल बिना	५ अ१दे १ सा १ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ पद्म	२	६	१ सं	१ आहा	१० ज्ञा७ द३
पद्मलेश्या अपर्याप्त रचना	४ मि१ सा१ अवि१ प्र१	१ संअ	६	७	४	२ म१ दे१	१ पं	१ त्र	४ औमि१वै मि१ आ मि१का१	१ पु	४	५ कुम१ कुश्रु१ मति आदि३	३ अ१ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र२ क१शु१ भा१ पद्म	२	५ मिश्र बिना	१ सं	२	८ ज्ञा५ द३
पद्मलेश्या मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१२ म४ व४ औ१ वै२ का१	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ पद्म	२	१ मि	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
पद्मलेश्या मिथ्यादृष्टि पर्या.रचना	१ मि	१ संप	६	१०	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ पद्म	२	१ मि	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
पद्मलेश्या मिथ्यादृष्टि अप.रचना	१ मि	१ संअ	६	७	४	१ देव	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ पु	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ क१शु१ भा१ पद्म	२	१ मि	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
पद्मलेश्या सासादन रचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१२ म४ व४ औ१ वै२ का१	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ पद्म	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
पद्मलेश्या सासादन पर्या.रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ पद्म	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
पद्मलेश्या सासादन अप.रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	१ दे	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ पु	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ क१शु१ भा१ पद्म	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
पद्मलेश्या सम्यग् मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ पद्म	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
पद्मलेश्या असंयत रचना	१ असं	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१३ आहारक द्विक बिना	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ च१ अच१ अव१	द्र६ भा१ पद्म	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
पद्मलेश्या असंयत पर्या.रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ च१ अच१ अव१	द्र६ भा१ पद्म	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
पद्मलेश्या असंयत अप.रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	२ म१ दे१	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	१ पु	४	३ मति आदि	१ अ	३ च१ अच१ अव१	द्र२ क१शु१ भा१ पद्म	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
पद्मलेश्या देशसंयत रचना	१ दे	१ संप	६	१०	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ पद्म	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
पद्मलेश्या प्रमत्त रचना	१ प्र	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ आ२ औ१	३	४	४ मति आदि	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ पद्म	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
पद्मलेश्या अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ संप	६	१०	३ आ- हार बिना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	४ मति आदि	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ पद्म	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
शुक्ललेश्या रचना	१३ आदिके	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७ ४।२	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१५	३	४	८	७	४	द्र६ भा१ शुक्ल	२	६	१ सं	२	१२
शुक्ललेश्या पर्याप्त रचना	१३ आदिके	१ संप	६	१० ४	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ वै१ आ १	३	४	८	७	४	द्र६ भा१ शुक्ल	२	६	१ सं	१ आहा	१२
शुक्ललेश्या अपर्याप्त रचना	५ मि१ सा१ अवि१ प्र१ स१	१ संअ	६	७ २	४	२ म१ दे१	१ पं	१ त्र	४ औमि१वै मि१ आ मि१का१	१ पु	४	६ विभंग मनः पर्यय बिना	४ अ १ सा १ छे १ य१	४	द्र२ क१शु१ भा१ शुक्ल	२	५ मिश्र बिना	१ सं	२	१० ज्ञा६ द४
शुक्ललेश्या मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१२ म४ व४ औ१ वै२ का१	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ शुक्ल	२	१ मि	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
शुक्ललेश्या मिथ्यादृष्टि पर्या.रचना	१ मि	१ संप	६	१०	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ शुक्ल	२	१ मि	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
शुक्ललेश्या मिथ्यादृष्टि अप.रचना	१ मि	१ संअ	६	७	४	१ देव	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ पु	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ क१शु१ भा१ शुक्ल	२	१ मि	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
शुक्ललेश्या सासादन रचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६ ६	१०।७	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१२ म४ व४ औ१ वै२ का १	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
शुक्ललेश्या सासादन पर्या.रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
शुक्ललेश्या सासादन अप.रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	१ देव	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ पु	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ क१शु१ भा१ शुक्ल	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
शुक्ललेश्या सम्यग् मिथ्यादृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
शुक्ललेश्या असंयत रचना	१ असं	२ संप१ संअ१	६ ६	१० ७	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१३ आहारक द्विक बिना	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
शुक्ललेश्या असंयत पर्या.रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
शुक्ललेश्या असंयत अप.रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	२ म१ दे१	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	१ पु	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र२ क१शु१ भा१ शुक्ल	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
शुक्ललेश्या देशसंयत रचना	१ देश	१ संप	६	१०	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
शुक्ललेश्या प्रमत्त रचना	१ प्र	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ आ२	३	४	४ मति आदि	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
शुक्ललेश्या अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ संप	६	१०	३ आहा बिना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	४ मति आदि	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
शुक्ललेश्या अपूर्व. से सयोगी तक वा अलेश्य अयोगीसिद्ध गुणस्थानवत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	भा १ शुक्ल -- ०	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्
भव्य मार्गणा में भव्यरचना गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	१ भ	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
अभव्य रचना	१ मिथ्या	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९। ७।८।६।७ ५।६।४। ४।३	४	४	५	६	१३ आहारक द्विक बिना	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ अभ	१ मि	२	२	५ ज्ञा३ द२
अभव्य पर्याप्त रचना	१ मिथ्या	७ पर्या	६ ५ ४	१०।९।८ ७।६।४	४	४	५	६	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र६ भा६	१ अभ	१ मि	२	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
अभव्य अपर्याप्त रचना	१ मिथ्या	७ अप.	६ ५ ४	७।७।६ ५।४।३	४	४	५	६	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र२ क१शु१ भा६	१ अभ	१ मि	२	२	४ ज्ञा२ द२
भव्याभव्य रहित सिद्ध रचना	०	०	०	०	०	सिद्ध गति	०	०	०	०	०	१ के	०	१ के	०	०	१ क्षा	०	१ अना	२ ज्ञा१ द१
सम्यक्त्व मार्गणा में सम्यग्दृष्टि रचना	११ असंयत आदि	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७ ४।२।१	४	४	१ पं	१ त्र	१५	३	४	५ मति आदि	७	४	द्र६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	९ ज्ञा५ द४
सामान्य सम्यग्दृष्टि पर्या.रचना	११ असंयत आदि	१ संप	६	१० ४।१	४	४	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ वै१ आ१	३	४	५ मति आदि	७	४	द्र६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	९ ज्ञा५ द४
सामान्य सम्यग्दृष्टि अप.रचना	३ असं१ प्र१ सयोग १	१ संअ	६	७ २	४	४	१ पं	१ त्र	४ औमि१वैमि१ आमि१का१	२ न१ पु१	४	४ म१श्रु१अ१ के१	४ अ१ सा१ छे१ य१	४	द्र२ क१शु१ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	८ ज्ञा४ द४

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
सामान्य सम्यग्दृष्टि असंयत से अयोगीतक गुण.वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्
क्षायिक सम्यग्दृष्टि रचना	११ असंयत आदि	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७ ४।२।१	४	४	१ पं	१ त्र	१५	३	४	५ मति आदि	७	४	द्र ६ भा६	१ भ	१ क्षा	१ सं	२	९ ज्ञा५ द४
क्षायिक सम्यग्दृष्टि पर्याप्त रचना	११ असंयत आदि	१ संप	६	१० ४।१	४	४	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ वै१ औ१ आ १	३	४	५ मति आदि	७	४	द्र ६ भा६	१ भ	१ क्षा	१ सं	२	९ ज्ञा५ द४
क्षायिक सम्यग्दृष्टि अपर्याप्त रचना	३ असं१ प्र१ सयोग १	१ संअ	६	७ २	४	४	१ पं	१ त्र	४ औमि१वै मि१ आ मि१का१	२ न१ पु१	४	४ म१ श्रु १ अव १ के१	४ अ१ सा१ छे१ य१	४	द्र२ क१शु१ भा४ क१शुभ३	१ भ	१ क्षा	१ सं	२	८ ज्ञा४ द४
क्षायिक सम्यग्दृष्टि असंयत रचना	१ असंयत	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारक द्विक बिना	३	४	३ म१ श्रु१ अव१	१ अ	३ च१ अच१ अव१	द्र ६ भा६	१ भ	१ क्षा	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
क्षायिक सम्यग्दृष्टि असंयत पर्या.रचना	१ असंयत	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ वै१ औ१	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	१ क्षा	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
क्षायिक सम्यग्दृष्टि असंयत अप.रचना	१ असंयत	१ संअ	६	७	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	२ न१ पु१	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र२ क१शु१ भा४ क१शुभ३	१ भ	१ क्षा	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
क्षायिक सम्यग्दृष्टि देशसंयत रचना	१ देश	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ १	३	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	१ क्षा.	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
क्षा. सम्य. प्र.से सिद्ध तक गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	१ क्षा.	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्
वेदक सम्यग्दृष्टि रचना	४ असंयत आदि	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१५	३	४	४ मति आदि	५ अ१ दे१ सा१ छे१प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	१ वेदक	१ सं	२	७ ज्ञा४ द३
वेदक सम्यग्दृष्टि पर्याप्त रचना	४ असंयत आदि	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ वै१ आ१	३	४	४ मति आदि	५ अ१ दे१ सा१ छे१प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	१ वेदक	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
वेदक सम्यग्दृष्टि अपर्याप्त रचना	२ असंयत१ प्रमत्त१	१ संअ	६	७	४	४	१ पं	१ त्र	४ औमि१वैमि१ आमि१का१	२ न१ पु१	४	३ मति आदि	३ अ१ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र २ क१शु१ भा६	१ भ	१ वेदक	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
वेदक सम्यग्दृष्टि असंयत रचना	१ असंयत	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारक द्विक बिना	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	१ वेदक	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
वेदक सम्यग्दृष्टि असंयत पर्या.रचना	१ असंयत	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	१ वेदक	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
वेदक सम्यग्दृष्टि असंयत अप.रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	२ न१ पु१	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र२ क१शु१ भा६	१ भ	१ वे	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
वेदक सम्यग्दृष्टि देशसंयत रचना	१ देश	१ संप	६	१०	४	२ म१ ति१	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ १	३	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	१ वे	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
वेदक सम्यग्दृष्टि प्रमत्त रचना	१ प्र	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ आ२	३	४	४ मति आदि	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	१ वे	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
वेदक सम्यग्दृष्टि अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ संप	६	१०	३ आ-हार बिना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ १	३	४	४ मति आदि	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	१ वे	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
उपशम सम्यग्दृष्टि रचना	८ असंयत आदि	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१२ म४ व४ औ१ वै२ का १	३	४	३ मति आदि	६ परि. वि. बिना	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	१ उ	१ सं	२	७ ज्ञा४ द३
उपशम सम्यग्दृष्टि पर्याप्त रचना	८ असंयत आदि	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ मति आदि	६ परि. वि. बिना	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	१ उ	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
उपशम सम्यग्दृष्टि अपर्याप्त रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	१ देव	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ पु	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र२ क१शु१ भा३ शुभ	१ भ	१ उ	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३

नाम	गुण	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
उपशम सम्यग्दृष्टि असं.रचना	१ असं	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१२ म४ व४ औ१ वै२ का१	३	४	३ मति आदि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	१ उप	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
उप.सम्य. असंयत पर्या.रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ मति आदि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	१ उप	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
उप.सम्य. असंयत अप.रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	१ देव	१ पं	१ त्र	२ वैमि१ का१	१ पु	४	३ मति आदि	१ असं	३ चक्षु आदि	द्र २ क१शु१ भा३ शुभ	१ भ	१ उप	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
उप.सम्य. देशसंयत रचना	१ देश	१ संप	६	१०	४	२ ति१ म१	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ मति आदि	१ देश	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	१ उप	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
उप.सम्य. प्रमत्त रचना	१ प्र	१ संप	६	१०	४	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	१ उप	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
उप.सम्य. अप्रमत्त रचना	१ अप्र	१ संप	६	१०	३ आहा बिना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	१ उप	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
उप.सम्य. अपूर्व.से उपशांत क. तक गुणवत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	१ उप	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्
मिथ्यात्व सासादन मिश्रसम्यग्दृष्टि स्वकीय गु.व.	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
संज्ञी मार्ग. में संज्ञी रचना	१२ आदिके	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१५	३	४	७ केवल बिना	७	३ केवल बिना	द्र ६ भा६	२	६	१ सं	२	१० ज्ञा७ द३
संज्ञी पर्याप्त रचना	१२ आदिके	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१ वै१ आ१	३	४	७ केवल बिना	७	३ केवल बिना	द्र ६ भा६	२	६	१ सं	१ आह	१० ज्ञा७ द३
संज्ञी अपर्याप्त रचना	४ मि१ सा१ अवि१ प्र१	१ संअ	६	७	४	४	१ पं	१ त्र	४ औमि१वै मि१ आ मि१का१	३	४	५ कुम१ कुश्रु१ मति आदि३	३ अ१ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र २ क१शु१ भा६	२	५ मिश्र बिना	१ सं	२	८ ज्ञा५ द३
संज्ञी मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारक द्विक बिना	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मि	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२
संज्ञी मिथ्यादृष्टि पर्या.रचना	१ मि	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मि	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
संज्ञी मिथ्यादृष्टि अप.रचना	१ मि	१ संअ	६	७	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ क१शु१ भा६	२	१ मि	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
संज्ञी सासादन रचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारक द्विक बिना	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	५ ज्ञा३ द२

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
संज्ञी सासादन पर्या.रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
संज्ञी सासादन अप.रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र २ क१शु१ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	२	४ ज्ञा२ द२
संज्ञी सम्यग्मि. रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
संज्ञी असंयत रचना	१ असं	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१३ आहारक द्विक बिना	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
संज्ञी असंयत पर्या.रचना	१ असं	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
संज्ञी असंयत अप.रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	४	१ पं	१ त्र	३ औमि१ वैमि१ का१	२ पु१ न१	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र २ क१शु१ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	२	६ ज्ञा३ द३
संज्ञी देश. से क्षीण कषाय तक गुण.वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	१ सं	गुण. वत्	गुण. वत्

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
असंज्ञी रचना	१ मिथ्या	१२ संज्ञी प अ बिना	५।५ ४।४	९।७।८।६ ।७।५।६। ४।४।३	४	१ ति	५	६	४ अनु.व१ औ२का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा४ अशुभ३ पीत१	२	१ मि	१ अ-संज्ञी	२	४ ज्ञा२ द२
असंज्ञी पर्याप्त रचना	१ मिथ्या	६ सं प बिना पर्या	५ ४	९।८।७ ६।४	४	१ ति	५	६	२ अनु.व१ औ१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र ६ भा४ अशुभ३ पीत१	२	१ मि	१ अ-संज्ञी	१ आहा	४ ज्ञा२ द२
असंज्ञी अपर्याप्त रचना	१ मिथ्या	६ सं अ बिना अप	५।४	७।६।५ ४।३	४	१ ति	५	६	२ औमि१ का१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ असं	२ च१ अच१	द्र २ क१शु१ भा३ अशुभ	२	१ मि	१ अ-संज्ञी	२	४ ज्ञा२ द२
संज्ञी-असंज्ञी रहित सयोगी अयोगी, सिद्ध रचना	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	०	गुण. वत्	गुण. वत्
आहार मार्गणा में आहारक रचना	१३ आदिके	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९। ७।८।६।७ ।५।६।४। ४।३।४।२	४	४	५	६	१४ कार्मण बिना	३	४	८	७	४	द्र ६ भा६	२	६	२	१ आहा	१२
आहारक पर्याप्त रचना	१३ आदिके	७ पर्या	६ ५ ४	१०।९।८। ७।६।४।४	४	४	५	६	११ म४ व४ औ१ वै१ आ१	३	४	८	७	४	द्र ६ भा६	२	६	२	१ आहा	१२
आहारक अपर्याप्त रचना	५ मि१ सा१ अवि१प्र१ सयोगी१	७ अप	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३।२	४	४	५	६	३ औमि१ वैमि१ आमि१	३	४	६ विभं मनः बिना	४ अ १ सा १ छे १ य १	४	द्र १ कपोत भा६	२	५ मिश्र बिना	२	१ आहा	१० ज्ञा६ द४

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
आहारक मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	१४	६।६ ५।५ ४।४	१०।७।९। ७।८।६।७ ।५।६।४। ४।३	४	४	५	६	१२ म४ व४ औ२ वै२	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मि	२	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
आहारक मिथ्यादृष्टि पर्या.रचना	१ मि	७ पर्या	६ ५ ४	१०।९ ८।७ ६।४	४	४	५	६	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	२	१ मि	२	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
आहारक मिथ्यादृष्टि अप.रचना	१ मि	७ अप	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	२ औमि१ वैमि१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र १ कपोत भा६	२	१ मि	२	१ आहा	४ ज्ञा२ द२
आहारक सासादन रचना	१ सा	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१२ म४ व४ औ२ वै२	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
आहारक सासादन पर्या.रचना	१ सा	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ कु ज्ञान	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२
आहारक सासादन अप.रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	२ औमि१ वैमि१	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र १ कपोत भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ आहा	४ ज्ञा२ द२
आहारक सम्यग्मिथ्या दृष्टि रचना	१ मिश्र	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ मिश्र	१ अ	२ च१ अच१	द्र ६ भा६	१ भ	१ मिश्र	१ सं	१ आहा	५ ज्ञा३ द२

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
आहारक असंयत रचना	१ असंयत	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	४	१ पं	१ त्र	१२ म४ व४ औ२ वै२	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
आहारक असंयत पर्या.रचना	१ असंयत	१ संप	६	१०	४	४	१ पं	१ त्र	१० म४ व४ औ१ वै१	३	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
आहारक असंयत अप.रचना	१ असंयत	१ संअ	६	७	४	४	१ पं	१ त्र	२ औमि१ वैमि१	२ न१ पु१	४	३ मति आदि	१ अ	३ चक्षु आदि	द्र १ कपोत भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
आहारक देशसंयत रचना	१ देशसंयत	१ संप	६	१०	४	२ ति१ म१	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	३ मति आदि	१ दे	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
आहारक प्रमत्त रचना	१ प्रमत्त	२ संप१ संअ१	६।६	१०।७	४	१ म	१ पं	१ त्र	११ म४ व४ औ१आ२	३	४	४ मति आदि	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
आहारक अप्रमत्त रचना	१ अप्रमत्त	१ संप	६	१०	३ आ-हार बिना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	४ मति आदि	३ सा१ छे१ प१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा३ शुभ	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
आहारक अपूर्वकरण रचना	१ अपूर्वक.	१ संप	६	१०	३ आ-हार बिना	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	४ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र ६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
आहारक अनिवृत्ति. प्र.भाग रचना	१ अनि	१ संप	६	१०	२ मै१ प१	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	३	४	४ मति आदि	२ सा१ छे१	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
आहारक अनि.द्वि. भाग रचना गुण.वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण वत्	गुणस्थान वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	गुण. वत्	१ आहा	गुण. वत्
आहारक सूक्ष्म सां. रचना	१ सू	१ संप	६	१०	१ प	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	१ लोभ	४ मति आदि	१ सूक्ष्म	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
आहारक उप.कषाय रचना	१ उप	१ संप	६	१०	०	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	०	४ मति आदि	१ य	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	२ उ१ क्षा१	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
आहारक क्षीणकषाय रचना	१ क्षी	१ संप	६	१०	०	१ म	१ पं	१ त्र	९ म४ व४ औ१	०	०	४ मति आदि	१ य	३ चक्षु आदि	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	१ सं	१ आहा	७ ज्ञा४ द३
आहारक सयोग के. रचना	१ सयोग	२ संप१ संअ१	६।६	४।२	०	१ म	१ पं	१ त्र	६ म२ व२ औ२	०	०	१ के	१ य	१ के	द्र६ भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	०	१ आहा	२ ज्ञा१ द१
अनाहारक रचना	५ मि१ सा१ अवि१ स१ अ१	८ अप७ अयो. प १	६।६ ५ ४	७।७।६।५ ४।३।२।१	४	४	५	६	१ का	३	४	६ विभं मनः बिना	२ अ१ य१	४	द्र१/६ शुक्ल भा ६/०	२	५ मिश्र बिना	२	१ अना	१० ज्ञा६ द४

नाम	गुण.	जी.	पर्या.	प्राण	संज्ञा	गति	इंद्रि.	काय	योग	वेद	कषा	ज्ञान	संय.	दर्श.	ले.	भव्य	सम्य	संज्ञी	आहा	उप
अनाहारक मिथ्यादृष्टि रचना	१ मि	७ अप	६ ५ ४	७।७ ६।५ ४।३	४	४	५	६	१ कार्माण	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र१ शुक्ल भा६	२	१ मि	२	१ अना	४ ज्ञा२ द२
अनाहारक सासादन रचना	१ सा	१ संअ	६	७	४	३ नरक बिना	१ पं	१ त्र	१ कार्माण	३	४	२ कुम१ कुश्रु१	१ अ	२ च१ अच१	द्र१ शुक्ल भा६	१ भ	१ सा	१ सं	१ अना	४ ज्ञा२ द२
अनाहारक असंयत रचना	१ असं	१ संअ	६	७	४	४	१ पं	१ त्र	१ कार्माण	२ न१ पु१	४	३ म१ श्रु१ अ१	१ अ	३ च१ अच१ अव१	द्र१ शुक्ल भा६	१ भ	३ उ१ वे१ क्षा१	१ सं	१ अना	६ ज्ञा३ द३
आहा.मिश्र वाला प्रमत्त औदा.अपेक्षा अना. है, उसकी रचना	१ प्र	१ संअ	६	७	४	१ म	१ पं	१ त्र	१ आहारक मिश्र	१ पु	४	३ म१ श्रु१ अ१	२ सा१ छे१	३ च१ अच१ अव१	द्र१ कपोत भा३ शुभ	१ भ	२ वे१ क्षा१	१ सं	१ आहा	६ ज्ञा३ द३
अनाहारक स.केवली रचना	१ सयोगी	१ संअ	६	२ काय१ आयु१	०	१ म	१ पं	१ त्र	१ कार्माण	०	०	१ के	१ य	१ के	द्र१ शुक्ल भा१ शुक्ल	१ भ	१ क्षा	०	१ अना	२ ज्ञा१ द१
अनाहारक अ.केवली रचना	१ अयोगी	१ संप	६	१ आयु	०	१ म	१ पं	१ त्र	०	०	०	१ के	१ य	१ के	द्र६ भा नास्ति	१ भ	१ क्षा	०	१ अना	२ ज्ञा१ द१
अनाहारक सिद्ध परमेष्ठी रचना	०	०	०	०	०	सिद्ध गति	०	०	०	०	०	१ के	०	१ के	०	०	१ क्षा	०	१ अना	२ ज्ञा१ द१

मणपज्जयपरिहारो पढमुवसम्मत्त दोण्णि आहारो ।
एदेसु एक्कपगदे णत्थि त्ति असेसयं जाणे ।।७२९।।

मनःपर्ययपरिहारौ प्रथमोपसम्यक्त्वं द्वावाहारौ ।
एतेषु एकप्रकृते नास्तीति अशेषकं जानीहि ।।७२९।।

टीका – मनःपर्ययज्ञान, परिहारविशुद्धिसंयम, प्रथमोपशम सम्यक्त्व और आहारकद्विक योग इन चारों में से किसी एक के होते हुये, शेष तीन नहीं होते, ऐसा नियम है।

बिदियुवसमसम्मत्तं सेढीदोदिण्णि अविरदादीसु ।
सगसगलेस्सामरिदे देवअपज्जत्तगेव हवे ।।७३०।।

द्वितीयोपशमसम्यक्त्वं श्रेणीतोऽवतीर्णेऽविरतादिषु ।
स्वकस्वकलेश्यामृते देवापर्याप्तक एव भवेत् ।।७३०।।

टीका – उपशमश्रेणी से संक्लेश परिणामों के वश से नीचे असंयतादि गुणस्थानों में उतरे हुये असंयतादि अपनी अपनी लेश्या में यदि मरते हैं तो नियम से अपर्याप्त असंयत देव होते हैं; क्योंकि देवायु का जिसके बंध हुआ है उनके बिना अन्य जीवों का उपशमश्रेणी में मरण नहीं है । अन्य आयु जिसके बंधी हो उसके देशसंयम, सकलसंयम भी नहीं हो सकता । इसलिये वह जीव अपर्याप्त असंयत देव होता है उनमें द्वितीयोपशम सम्यक्त्व सम्भव है; इसलिये वैमानिक अपर्याप्त देव में उपशमसम्यक्त्व कहा है ।

सिद्धाणं सिद्धगई केवलणाणं च दंसणं खयियं ।
सम्मत्तमणाहारं उवजोगाणक्कमपउत्ती ।।७३१।।

सिद्धानां सिद्धगतिः केवलज्ञानं च दर्शनं क्षायिकं ।
सम्यक्त्वमनाहारमुपयोगानामक्रमप्रवृत्तिः ।।७३१।।

टीका – सिद्ध परमेष्ठी के सिद्धगति, केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिकसम्यक्त्व, अनाहार और ज्ञानोपयोग दर्शनोपयोग की अनुक्रमता से रहित प्रवृत्ति ये प्ररूपणा पायी जाती हैं ।

गुणजीव ठाणरहिया सण्णापज्जत्तिपाणपरिहीणा ।
सेसणवमग्गणूणा सिद्धा सुद्धा सदा होंति ।।७३२।।

गुणजीवस्थानरहिताः संज्ञापर्याप्तिप्राणपरिहीनाः ।
शेषनवमार्गणोनाः सिद्धाः शुद्धाः सदा भवंति ।।७३२।।

टीका – चौदह गुणस्थान और चौदह जीवसमासों से रहित हैं । चार संज्ञा, छह पर्याप्ति, दस प्राण से रहित हैं । सिद्धगति, ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्व, अनाहार इन बिना शेष नौ मार्गणाओं से रहित हैं । ऐसे सिद्ध परमेष्ठी द्रव्यकर्म, भावकर्म के अभाव से सदा काल शुद्ध हैं ।

णिक्खेवे एयत्थे णयप्पमाणे णिरुत्तिअणियोगे ।
मग्गइवीसं भेयं सो जाणइ अप्पसब्भावं ।।७३३।।

निक्षेपे एकार्थे नयप्रमाणे निरुक्त्यनुयोगयोः ।
मार्गयति विंशं भेदं स जानाति आत्मसद्भावम् ।।७३३।।

टीका – नाम, स्थापना, द्रव्य, भावरूप चार **निक्षेप**, तथा प्राणी, भूत, जीव, सत्त्व इन चारों का एक अर्थ है, वह **एकार्थ**, तथा द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक **नय**, तथा मतिज्ञानादिकरूप प्रत्यक्ष परोक्ष **प्रमाण**, तथा जी रहा है, जीयेगा, जीया ऐसी जीव शब्द की **निरुक्ति**, तथा '**किं कस्स केण कत्थवि केवचिरं कतिविहा य भावा**' अर्थात् क्या ? किसके ? किसने ? कहां ? कितने काल ? कितने प्रकार के भाव हैं ? ऐसे छह प्रश्न होनेपर निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति, विधान इन छहों से साधना वह **नियोग** ऐसे निक्षेप, एकार्थ, नय, प्रमाण, निरुक्ति, नियोग इनसे जो भव्य जीव गुणस्थानादिक बीस प्ररूपणारूप भेदों को जानता है, वह भव्य जीव आत्मा के सत्-समीचीन भाव को जानता है ।

अज्जज्जसेणगुणगणसमूहसंधारि अजियसेणगुरू ।
भुवणगुरू जस्स गुरू सो रायो गोम्मटो जयदु ।।७३४।।

आर्यार्यसेन गुणगणसमूहसंधार्यजितसेनगुरुः ।
भुवनगुरुर्यस्य गुरुः स राजा गोम्मटो जयतु ।।७३४।।

टीका – आर्य जो आर्यसेन नामक आचार्य उनके गुण और उनका गण अर्थात् संघ उसके धरनेवाले ऐसे जगत के गुरु जो अजितसेन नामक गुरु जिसके गुरु हैं ऐसा गोम्मट जो चामुंडराय राजा, वह जयवंत प्रवर्तो ।

यहां प्रश्न – जयवंत प्रवर्तो ऐसे शब्द से जिनदेवादिक पूज्य को कहने में आते हैं, यहां अपने सेवक के लिये आचार्य ने ऐसा कैसे कहा ?

उसका समाधान – जैसे यहां प्रवृत्ति (लौकिक) में याचक आदि हीन पुरुष को सुखी हो इत्यादि वचन कहते हैं, वे इच्छापूर्वक नम्रता युक्त वचन हैं । वैसे जिनदेवादिक को जयवंत प्रवर्तो ऐसे कहना जानना । जैसे पिता आदि पूज्य पुरुष पुत्रादिक को सुखी हो ऐसे वचन कहते हैं, वे आशीर्वादरूप वचन हैं, वैसे यहां राजा को जयवंत प्रवर्तो ऐसा कहना युक्त जानना ।

इति आचार्य श्री नेमिचन्द्रसिद्धांतचक्रवर्ती विरचित गोम्मटसार द्वितीय नाम पंचसंग्रह ग्रंथ की जीवतत्त्वप्रदीपिका नामक संस्कृत टीका के अनुसार सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका नामक भाषा-टीका में जीवकाण्ड में प्ररूपित जो बीस प्ररूपणा उनमें से आलाप प्ररूपणा नामक बाइसवां अधिकार पूर्ण हुआ ।।२२।।

अर्थसंदृष्टि संबंधी प्रकरण

वहां (जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड, लब्धिसार-क्षपणासार में) जो संदृष्टि हैं उनका अर्थ तथा कहे हुये अर्थों की संदृष्टि जानने के लिये इस भाषाटीका में अलग ही संदृष्टि अधिकार में वर्णन होगा ।

यहां कोई कहेगा – अर्थ का स्वरूप जानना चाहिये, संदृष्टि को जानने से क्या सिद्धि होगी ?

उसका समाधान – संदृष्टि को जाननेपर पूर्वाचार्यों की परम्परा से चला आया जो संकेतरूप अभिप्राय उसको जानते हैं । तथा थोड़े में बहुत अर्थ को अच्छी तरह से पहचानते हैं । तथा मूलशास्त्र और संस्कृत टीका में और अन्य ग्रंथों में जहां संदृष्टिरूप व्याख्यान है, वहां प्रवेश पा सकते हैं । तथा अलौकिक गणित आदि लिखने का विधान आदि चमत्कार लगता है । तथा संदृष्टि को देखते ही ग्रंथ की गंभीरता प्रकट होती है – इत्यादि प्रयोजन जानकर संदृष्टि अधिकार करने का विचार किया है ।

वहां कितनी ही संदृष्टि आकाररूप हैं, कितनी ही अंकरूप हैं, कितनी ही अक्षररूप हैं, कितनी ही लिखने के ही विशेषरूप हैं; इसलिये संदृष्टि अधिकार में पहले तो सामान्यपने संदृष्टियों का वर्णन है । वहां पदार्थों के नाम से, संख्या से, अक्षरों से अंकों की और प्रभृति आदि की संदृष्टियों का वर्णन है ।

पुनश्च सामान्य संख्यात, असंख्यात, अनंत की और इनके इक्कीस भेदों की और पल्य आदि आठ उपमाप्रमाण की तथा इनके अर्धच्छेद और वर्गशलाकाओं की संदृष्टियों का वर्णन है । पुनश्च परिकर्माष्टक में संकलनादि होनेपर जैसी सहनानी होती है और बहुत प्रकार सहनानी होनेपर और संकलनादि आठ में एकत्र दो, तीन आदि होनेपर जो सहनानी होती है और संकलनादि में अनेक सहनानी का एक अर्थ होता है इत्यादि का वर्णन है । तथा स्थिति-अनुभागादिक में आकाररूप सहनानी है और कितनी ही इच्छित सहनानी है इत्यादि का वर्णन है ।

इसप्रकार सामान्य वर्णन करके पश्चात् श्रीमद् गोम्मटसार नामक मूलशास्त्र और उसकी जीवतत्त्वप्रदीपिका नामक टीका में जिस जिस अधिकार में कथन के अनुक्रम सहित संख्यादिक अर्थ की जैसी जैसी संदृष्टि है, उनका अनुक्रम से वर्णन है । वहां कितने ही करण और

त्रिकोण यंत्र का जोड़ इत्यादि का संस्कृत टीका में वर्णन था जिसका भाषाटीका करते समय अर्थ नहीं लिखा था, उनका इस संदृष्टि अधिकार में अर्थ लिखेंगे । तथा मूलशास्त्र के यंत्ररचना में और संस्कृत टीका में कितनी ही संदृष्टिरूप रचना ही लिखी थी उनको अर्थपूर्वक इस संदृष्टि अधिकार में लिखेंगे । यहां उनकी सूचनिका लिखने से विस्तार होगा इसलिये वहां ही वर्णन होगा, वह जानना ।

यहां कोई कहेगा – मूलशास्त्र में और टीका में जहां संदृष्टि और अर्थ लिखा था, वहां तुमने भी उनके अर्थों का निरूपण करके क्यों नहीं लिखान किया ? वहां छोड़कर उनको एकत्रित करके संदृष्टि अधिकार में वर्णन किया उसका क्या कारण है ?

वहां समाधान – यह टीका मंदबुद्धियों को ज्ञान होने के हेतु से कर रहे हैं, इसलिये इसमें बीच बीच में संदृष्टि लिखने से उनको कठिनता भासित होगी तो अभ्यास से विमुख होंगे । इसलिये जिनका अर्थमात्र ही प्रयोजन हो वे अर्थ ही का अभ्यास करें तथा जिनको संदृष्टि भी जाननी हो वे संदृष्टि अधिकार में से उनका भी अभ्यास करें ।

पुनश्च वहां कोई कहे – तुमने ऐसा विचार किया परंतु कोई इस टीका के अवलंबन से संस्कृत टीका का अभ्यास करना चाहे, तो कैसे अभ्यास करें ?

उसको कहते हैं – अर्थ का तो अनुक्रम जैसे संस्कृत टीका में है, वैसे इसमें भी है ही। तथा जहां जो संदृष्टि आदि का कथन बीच में आयेगा उसको संदृष्टि अधिकार में उसी स्थान में बाकी कथन है उसको जानकर वहां अभ्यास करें ।

इस प्रकार विचार करके संदृष्टि अधिकार करने का विचार किया है ।

-पं. टोडरमलजी

— ० —

ॐ

अर्थसंदृष्टि अधिकार

सामान्य संदृष्टि स्वरूप

शुध्दात्मानमनेकांतं साधुमुत्तममंगलं ।
वंदे संदृष्टिसिध्यर्थं संदृष्ट्यर्थप्रकाशकं ।।१।।
पंचसंग्रहसद्वृत्तं त्रिलोकीसारदीपकं ।
माधवादे स्तुतं स्तौमि नेमिचंद्र गुणोज्ज्वलं ।।२।।

इसतरह मंगल द्वारा अर्थसंदृष्टि का स्वरूप कहते हैं - वहां विवक्षित द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव इनका प्रमाणादिक, वह अर्थ है। अर्थ की जो संदृष्टि अर्थात् सहनानी (चिन्ह), वह अर्थसंदृष्टि जाननी । क्योंकि गोम्मटसारादि ग्रंथों में संदृष्टियों द्वारा जो अर्थ प्रकट किया है, वह संदृष्टियों का स्वरूप जाने बिना जानने में नहीं आता, इसलिये मेरी बुध्दि के अनुसार किंचित् मात्र अर्थसंदृष्टि का स्वरूप कहता हूँ । वहां जो कुछ भूल होगी, वह मेरी मंद बुध्दि की भूल जानकर बुध्दिमान उसे कृपा करके शुध्द करें । क्योंकि जैसे प्रकटरूप अनुक्रम सहित संदृष्टि का स्वरूप मंदबुध्दियों के भी जानने में आये वैसे गोम्मटसारादि प्रवर्तमान ग्रंथों में लिखा नहीं है तथा उनको बतानेवाले का निमित्त हुआ नहीं, उन ग्रंथों से विधि मिलाकर जहां वहां से जैसी मेरी बुध्दि में यथासंभव स्वरूप जाना वैसे ठीक करके यहां वर्णन किया है। और मेरी मति हीन है, इसलिये भूल होगी, उसको शुध्द करने के लिये विशेष बिनती कर रहा हूँ ।

वहां कहीं पदार्थों के नाम से संख्या की सहनानी होती है । जहां जिस पदार्थ का नाम लिखा हो वहां उस पदार्थ की जितनी संख्या हो, उतनी संख्या जाननी । जैसे विधु शब्द से एक जानना, क्योंकि दृश्यमान चन्द्रमा एक है । निधि शब्द से नौ जानना, क्योंकि निधि का प्रमाण नौ है । ऐसे ही अन्य जानने । पुनश्च कहीं अक्षरों को अंकों की सहनानी करके संख्या कहते हैं । उसका सूत्र –

कटपयपुरस्थवर्णैर्नवनवपंचाष्टकल्पितैः क्रमशः ।
स्वरञनशून्यं संख्यामात्रोपरिमाक्षरं त्याज्यं ।।

अर्थ - ककारादि नौ, टकारादि नौ, पकारादि पांच, यकारादि आठ इन अक्षरों के क्रम से एक आदि अंकों की सहनानी है । जैसे ककार से एक का अंक, खकार से दो का अंक इत्यादि अक्षरों द्वारा अंक जानने ।

क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ट	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	प	फ	ब	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१	२	३	४	५	१	२	३	४	५	६	७	८

अकारादि स्वर तथा ञकार और नकार द्वारा शून्य जानना। अक्षर की मात्रा और कोई ऊपर अक्षर हो तो उसका प्रयोजन कुछ ग्रहण नहीं करना। [जैसे च की सहनानी ६ है, तो चा हो या चो हो या ची हो उसकी सहनानी ६ ही जाननी।] सो व्यवहार पल्य की, पर्याप्त मनुष्यों की और श्रुतज्ञान में पदों की संख्या इस सूत्र के अनुसार टीका में कही है, वहां जानना ।

प्रभृति की सहनानी ऐसी = है, सो आदि के अंक या अक्षर लिखकर उन प्रभृति अर्थात् आदि देकर (उनसे लेकर) अन्य अंक या अक्षरों के ग्रहण के निमित्त उनके आगे ऐसी = सहनानी होती है । जैसे पैंसठ हजार पांच सौ छत्तीस को पणट्ठी कहते हैं । वहां आदि के अंक ६, ५ लिखकर आगे = ऐसी सहनानी करनेपर पणट्ठी की सहनानी ६५= ऐसी होती है । उसी तरह बादाल की सहनानी ४२= ऐसी होती है । यहां चार और दो आदि अंक जान लेने । इकट्ठी की सहनानी १८= ऐसी है, यहां एक, आठ आदि अंक जानने । अक्षरों द्वारा जैसे जघन्य की सहनानी ऐसी **ज=** । यहां जकार आदि अक्षर जानना । ऐसे ही अन्य जानना ।

पुनश्च जहां आदि और अंत के भेद तो लिखते हैं और मध्य के भेद बहुत जानकर नहीं लिखते, वहां आदि और अंत के भेदों के बीच में कितनी ही बिंदी (शून्य) लिखते हैं, उन बिंदियों द्वारा मध्य के भेद ग्रहण करना । जैसे अंकसंदृष्टि द्वारा कर्मस्थिति रचना में आदि का निषेक पांच सौ बारह का, अंत का निषेक नौ का लिखकर बीच में बिंदी

९
०
०
०
५१२

लिखी हो, वहां बिंदियों द्वारा मध्य के सर्व निषेक जान लेना।

पुनश्च कहीं नाम का आदि अक्षर है उसे सम्पूर्ण नाम की सहनानी जानना। जैसे लक्ष की **ल**, कोटि की **को**, जघन्य की **ज**, ऐसी इत्यादि । जहां दो आदि नाम ग्रहण करने हो वहां दो आदि नामों के आदि अक्षर जानने । जैसे लक्ष कोटि की सहनानी **लको**, जघन्य ज्ञान की **जज्ञा** । कहीं एक ही नाम दो बार आदि कहना हो वहां नाम के आदि अक्षर के आगे दो आदि अंक लिखने । जैसे कोडाकोडि की सहनानी **को२** है । कहीं दो विशेषण ग्रहण करने हो वहां दो सहनानी होती हैं। जैसे द्वितीय मूल की सहनानी **मू२** है । जहां तीन विशेषण ग्रहण करने हो वहां तीन सहनानी होती हैं। जैसे अंत:कोडाकोडि की सहनानी **अंको२** इत्यादि यथासंभव जानना।

कहीं बिंदी की सहनानी ऊपर बिंदी देना जानना । जैसे पैंसठ हजार की सहनानी **६५।३̊**। यहां तीन के अंक के ऊपर बिंदी देने से पैंसठ के आगे तीन बिंदी जाननी। ऐसे अन्य भी अनेक प्रकार यथासंभव सहनानी जाननी ।

अलौकिक गणित में कहे हुये जो संख्यामान और उपमामान, उनकी संदृष्टि कहते हैं - वहां सामान्यपने संख्यात की सहनानी ऐसी **ղ**, असंख्यात की ऐसी **a**, अनंत की ऐसी **ख** है । तथा विशेषपने जघन्य संख्यात की सहनानी अपने प्रमाणरूप दो का अंक **२** है । पुनश्च मध्य संख्यात की सहनानी अनेक प्रकार है, क्योंकि मध्य के भेद बहुत हैं । उत्कृष्ट संख्यात की सहनानी पंद्रह का अंक **१५** है, क्योंकि जघन्य परीतासंख्यात से एक कम इसका प्रमाण है । जघन्य परीतासंख्यात की सहनानी सोलह का अंक **१६** है । मध्य परीतासंख्यात की सहनानी बहुत प्रकार है । उत्कृष्ट परीतासंख्यात की सहनानी $\frac{१८}{२}$ ऐसी है। क्योंकि जघन्य युक्तासंख्यात से इसका प्रमाण एक कम है । सो एक कम की ऊपर की सहनानी **१८̲** ऐसी जाननी । जघन्य युक्तासंख्यात की सहनानी दो का अंक **२** है । वही आवली की सहनानी दो का अंक **२** है, क्योंकि आवली के समय जघन्य युक्तासंख्यात प्रमाण हैं । पुनश्च मध्यम युक्तासंख्यात की सहनानी अनेक प्रकार है । उत्कृष्ट युक्तासंख्यात की सहनानी $\frac{१८}{४}$ ऐसी है, क्योंकि इसका प्रमाण जघन्य असंख्यातासंख्यात से एक कम है ।

जघन्य असंख्यातासंख्यात की सहनानी चार का अंक **४** है, वही प्रतरावली की सहनानी चार का अंक **४** है, क्योंकि जघन्य युक्तासंख्यात का वर्गमात्र दोनों का प्रमाण है। पुनश्च मध्य असंख्यातासंख्यात के भेदों में से घनावली की सहनानी आठ का अंक ८ है, क्योंकि आवली के घनप्रमाण घनावली है। अन्य भेदों के अनेक प्रकार हैं। उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात की सहनानी $\frac{\text{१}\frown}{\text{२५६}}$ है अथवा **२५५** है, क्योंकि इसका प्रमाण जघन्य परीतानंत से एक कम है। जघन्य परीतानंत की सहनानी दो सौ छप्पन का अंक **२५६** है । मध्य परीतानंत की सहनानी बहुत प्रकार है। उत्कृष्ट परीतानंत की ऐसी $\frac{\text{१}\frown}{\text{जजुअ}}$ है । क्योंकि इसका प्रमाण जघन्य युक्तानंत से एक कम है । जघन्य युक्तानंत की सहनानी **जजुअ** ऐसी है । यहां जघन्य और प्राकृत में जुत और अनंत इन तीनों विशेषणों के आदि अक्षरों द्वारा सहनानी जाननी । मध्य युक्तानंत की सहनानी बहुत प्रकार है । उत्कृष्ट युक्तानंत की सहनानी $\frac{\text{१}\frown}{\text{जजुअव}}$ ऐसी है । क्योंकि इसका प्रमाण जघन्य अनंतानंत से एक कम है । जघन्य अनंतानंत की सहनानी **जजुअव** ऐसी है। क्योंकि जघन्य युक्तानंत का वर्गमात्र इसका प्रमाण है। सो यहां वर्ग की सहनानी आगे वकार जानना ।

पुनश्च मध्य अनंतानंत के भेदों में जीवराशिप्रमाण की सहनानी सोलह का अंक **१६** है । वहां भी संसारी जीवराशिप्रमाण की तेरह का अंक **१३** है । सिध्दराशिप्रमाण की तीन का अंक **३** है । जीवराशि से अनंतगुणा पुद्गलराशि की संदृष्टि **१६ख** ऐसी है । इससे अनंतगुणा कालसमयराशि की **१६खख** ऐसी है । इससे अनंतगुणा आकाशप्रदेशराशि की **१६खखख** ऐसी है । इनमें अनंत के गुणकार की सहनानी आगे **ख** ऐसी क्रम से जाननी ।

केवलज्ञान के प्रथम मूल (प्रथम वर्गमूल) की संदृष्टि **केमू१** ऐसी है। उसी के द्वितीय मूल की **केमू२** ऐसी इत्यादि है । मध्य अनंतानंत की संदृष्टि बहुत प्रकार है। उत्कृष्ट अनंतानंत की संदृष्टि **के** ऐसी है, क्योंकि केवलज्ञान मात्र इसका प्रमाण है सो उसके आदि अक्षर की सहनानी जाननी। इसतरह संख्यामान की संदृष्टि कही।

अब उपमामान की संदृष्टि कहते हैं । वहां पल्य की संदृष्टि आदि अक्षररूप **प** है । सागर की आदि अक्षररूप **सा** ऐसी है । सूच्यंगुल की दो का अंक **२** है। प्रतरांगुल की चार का अंक **४** है । घनांगुल की छह का अंक **६** है । जगत्श्रेणी की **—** ऐसी है । जगत्प्रतर की **=** ऐसी है। घनलोक की **≡** ऐसी है । जगत्श्रेणी का सातवां भाग राजू उसकी संदृष्टि **७** ऐसी है । भागहार की सहनानी सर्वत्र नीचे जाननी । पुनश्च राजूप्रमाण प्रतरक्षेत्र की $\frac{=}{४९}$ ऐसी है । यहां जगत्प्रतर को **४९** का भाग जानना । राजू प्रमाण घनक्षेत्र की $\frac{≡}{३४३}$ ऐसी है । यहां घनलोक को तीन सौ तैंतालीस का भाग जानना । पल्य के अर्धच्छेदराशि की **छे** ऐसी संदृष्टि है । पल्य की वर्गशलाकाराशि की **व** ऐसी है । सागर के अर्धच्छेदराशि की **छे** (ऊपर **ॻ**) ऐसी है, क्योंकि पल्य के अर्धच्छेदों से इसके अर्धच्छेद संख्यात से अधिक हैं, सो संख्यात अधिक की संदृष्टि ऊपर **ॻ** ऐसी जाननी । सागर की वर्गशलाका है नहीं । सूच्यंगुल के अर्धच्छेदराशि की संदृष्टि **छेछे** ऐसी है । यहां पल्य के अर्धच्छेदों को पल्य के अर्धच्छेदों के गुणकार की सहनानी जाननी । सूच्यंगुल की वर्गशलाकाराशि की संदृष्टि **व२** ऐसी है । क्योंकि इसका प्रमाण पल्य की वर्गशलाका से दो गुणा है । इसलिये आगे दो के गुणकार की सहनानी जानना । प्रतरांगुल के अर्धच्छेदराशि की **छेछे२** ऐसी है । क्योंकि सूच्यंगुल के अर्धच्छेदों से दोगुणा इसका प्रमाण है । इसलिये आगे दो का गुणकार जानना।

प्रतरांगुल के वर्गशलाकाराशि की संदृष्टि $\frac{१}{व\ २}$ ऐसी है । क्योंकि सूच्यंगुल की वर्गशलाका से एक अधिक है, सो ऊपर एक अधिक की सहनानी जाननी। घनांगुल के अर्धच्छेदराशि की संदृष्टि **छेछे३** ऐसी है । क्योंकि सूच्यंगुल के अर्धच्छेदराशि से तीनगुणा है । सो आगे तीन के गुणकार की सहनानी जाननी । घनांगुल की वर्गशलाकाराशि सूच्यंगुल की वर्गशलाका के समान है । इसलिये उसकी वही संदृष्टि है **व२**। क्योंकि द्विरूपवर्गधारा में जितने स्थान होनेपर सूच्यंगुल होता है, उतने ही स्थान होनेपर द्विरूपघनधारा में घनांगुल होता है । जगत्श्रेणी के अर्धच्छेदराशि की संदृष्टि **छेछेछे३** (प्रथम छे के नीचे **a**) ऐसी है अथवा **विछेछे३** ऐसी है । यहां पल्य के अर्धच्छेदराशि के असंख्यातवें भाग की संदृष्टि **छे** (नीचे **a**) ऐसी अथवा उसप्रमाण जो विरलनराशि उसकी संदृष्टि **वि** ऐसी, उसके आगे घनांगुल के अर्धच्छेदराशि

का गुणकार जानना । पुनश्च जगत्श्रेणी के वर्गशलाका की संदृष्टि $\overset{\text{व}}{\underset{\text{व २}}{\textbf{१६।२}}}$ ऐसी है । यहां पल्य की वर्गशलाका ऐसी **व** उसको दोगुणा जघन्य परीतासंख्यात की ऐसी **१६।२**, उसका भाग देनेपर जो प्रमाण होता है उससे अधिक जो घनांगुल की वर्गशलाका **व२** ऐसी, उसमात्र प्रमाण जानना ।

पुनश्च जगत्प्रतर के अर्धच्छेदराशि की संदृष्टि $\underset{a}{\textbf{छेछेछे६}}$ ऐसी अथवा **विछेछे६** ऐसी, क्योंकि जगत्श्रेणी के अर्धच्छेदराशि से यह दोगुणा है, इसलिये तीन के गुणकार की जगह छह का गुणकार जानना । पुनश्च जगत्प्रतर के वर्गशलाकाराशि की संदृष्टि $\overset{\frac{१}{\text{व}}}{\underset{\text{व २}}{\textbf{१६।२}}}$ ऐसी, क्योंकि जगत्श्रेणी की वर्गशलाका से एक अधिक है । सो यहां एक अधिक की ऊपर सहनानी जाननी । पुनश्च घनलोक के अर्धच्छेदराशि की संदृष्टि $\underset{a}{\textbf{छेछेछे९}}$ ऐसी अथवा **विछेछे९** ऐसी, क्योंकि जगत्श्रेणी के अर्धच्छेदराशि से यह तीनगुणा है, इसलिये तीन की जगह नौ का गुणकार जानना । पुनश्च घनलोक की वर्गशलाकाराशि जगत्श्रेणी की वर्गशलाकाराशि के समान ही है । उसकी संदृष्टि $\overset{\text{व}}{\underset{\text{व २}}{\textbf{१६।२}}}$ ऐसी है। क्योंकि द्विरूपघनधारा में जितने स्थान होनेपर जगत्श्रेणी होती हैं उतने ही स्थान द्विरूपघनाघनधारा में होनेपर घनलोक होता है । इसप्रकार उपमाप्रमाण की संदृष्टि कही ।

यहां प्रश्न – आवली आदि की और सूच्यंगुल आदि की संदृष्टि परस्पर समान है, उनका जुदा-जुदा ज्ञान कैसे होगा ?

उसका समाधान – जैसे सारंगादि एक शब्द के अनेक अनेक अर्थ होते हैं, परंतु जैसा जैसा जहां संबंध हो, वैसा वैसा वहां ग्रहण करना । उसीप्रकार एक संदृष्टि अनेक अर्थों की होती हो परंतु जैसा जहां संबंध हो वैसा वहां ग्रहण करना । कहीं विवक्षित संदृष्टि जाननी । जैसे कहीं संख्यात की सहनानी चार का अंक **४** है, कहीं

पांच का अंक ५ है । कहीं असंख्यात की सहनानी नौ का अंक ९ है, कहीं आवली के असंख्यातवें भाग की सहनानी नौ का अंक ९ है । इत्यादि यथासंभव संदृष्टि जाननी। इसप्रकार मान की संदृष्टि का स्वरूप किंचित् मात्र जानना ।

अब संकलनादि की संदृष्टि कहते हैं – वहां किसी राशि में अन्य राशि का जोड़ना संकलन है । वहां राशि में जितनी राशि को जोड़ना है उतनी राशि को ऊपर लिखना अथवा मूलराशि के ऊपर मिलावने योग्य धनराशि को लिखकर वहां पूछडि जैसा आकार करे ऐसी संदृष्टि होती है । जैसे एक अधिक लक्ष की सहनानी $\overset{१}{\text{ल}}$ ऐसी अथवा $\frac{१}{\text{ल}}$ ऐसी । दो अधिक लोक की $\overset{२}{\equiv}$ ऐसी । घनलोक से अधिक अनंत की $\overset{\equiv}{\text{ख}}$ ऐसी इत्यादि यथासंभव जाननी। जहां दो राशि आदि मिलाना हो वहां दो राशि आदि ऊपर लिखते हैं । जैसे लोकप्रमाण कालद्रव्य और धर्मादि तीन द्रव्य ऐसी दो राशि पुद्‌गलराशि में मिलानेपर अजीव द्रव्य के प्रमाण की संदृष्टि $\overset{\overset{३}{\equiv}}{\text{१६।ख}}$ ऐसी होती है । इत्यादि यथासंभव जानना । पुनश्च किंचित् अधिक की सहनानी ऊपर '।' ऐसी जाननी । जैसे किंचित् अधिक अनंत की संदृष्टि $\overset{।}{\text{ख}}$ ऐसी है । पुनश्च कहीं सामान्यपने एक दो आदि राशि मिलाना हो वहां एक दो आदि खड़ी रेषा की ऊपर संदृष्टि होती है । जैसे संख्यात के ऊपर कोई दो राशि मिलाना हो वहां $\overset{।।}{१}$ ऐसी संदृष्टि होती है, इत्यादि जानना ।

पुनश्च व्यवकलन अर्थात् राशि में से घटाना उसकी संदृष्टि कहते हैं – जितना घटाना हो उतना मूल राशि के ऊपर लिखकर अथवा उससे लगाकर पूछडी जैसा आकार करके ऊपर बिंदी देना । जैसे एक कम कोटि की संदृष्टि $\overset{\overset{०}{१}}{\text{को}}$ ऐसी अथवा $\frac{१\frown}{\text{को}}$ ऐसी है । एक कम अनंत की $\frac{१\frown}{\text{ख}}$ ऐसी, दो कम घनलोक की $\underset{\equiv}{\overset{०}{२}}$ ऐसी । तथा कहीं राशि के नीचे बिंदी देकर उसके नीचे जितना घटाना हो उतना लिखते हैं । ऐसी भी संदृष्टि होती है । जैसे एक कम लक्ष की $\underset{\underset{१}{०}}{\text{ल}}$ ऐसी इत्यादि । तथा कहीं

राशि के आगे – ऐसा लिखकर उसके आगे जितना घटाना हो उतना लिखनेपर भी संदृष्टि होती है । जैसे दो कम लक्ष की **ल–२** ऐसी इत्यादि । पुनश्च कहीं राशि के आगे ~ ऐसे लिखकर उसके आगे जितना घटाना हो उतना लिखने से भी संदृष्टि होती है । जैसे दो कम कोटि की **को ~ २** ऐसी इत्यादि । तथा कहीं प्रमाण लिखकर उसके ऊपर बिंदी देने से ऋणराशि की संदृष्टि होती है, जैसे कोटि में दो ऋण की संदृष्टि **को२̊** ऐसी है । तथा जहां सामान्यपने किंचित् घटाना हो वहां राशि के आगे – ऐसी संदृष्टि जाननी। जैसे किंचित् कम अनंत की संदृष्टि **ख–** ऐसी है इत्यादि । तथा जहां राशि में से सामान्यपने दो आदि राशि घटाना हो वहां दो आदि बार वैसी संदृष्टि राशि के आगे जाननी । जैसे विकलेन्द्रिय, सकलेन्द्रिय इन दो राशि रहित संसारी जीव प्रमाण एकेन्द्रिय जीवराशि की संदृष्टि **१३=** ऐसी है इत्यादि । तथा कहीं राशि के आगे या नीचे जितना घटाना हो उतना लिखकर उस घटाने योग्य राशि से लेकर धनराशि तक ‿ ऐसे लिखने से भी संदृष्टि होती है । जैसे पांच कम लक्ष की **ल‿५** ऐसी अथवा ल/५) ऐसी। पुनश्च पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेद से हीन पल्य के अर्धच्छेदराशि की **छे‿वछे** ऐसी है, इत्यादि ।

पुनश्च गुणकार की संदृष्टि आगे लिखना है । जिसको गुणा करना है उस गुण्य के आगे जिससे गुणा करना हो उस गुणकार को लिखते हैं । जैसे पांच गुणा लाख की संदृष्टि **ल५** ऐसी है । संख्यात गुणा पल्य की **प१** ऐसी । असंख्यात गुणा पल्य की **पa** ऐसी, इसको भी असंख्यात गुणा करनेपर **पaa** ऐसी । संख्यात गुणा आवली की **२१** ऐसी, सो ऐसी ही अंतर्मुहूर्त की संदृष्टि है। क्योंकि अंतर्मुहूर्त का प्रमाण संख्यात आवली मात्र है, इसको संख्यात गुणा करनेपर **२११** ऐसी । संख्यात गुणा घनांगुल की **६१** ऐसी । असंख्यात गुणा लोक की **≡a** ऐसी, इसको असंख्यात लोक से गुणा करनेपर **≡a ≡a** ऐसी । अनंतगुणी जीवराशि की **१६ख** ऐसी इत्यादि यथासंभव जाननी ।

भागहार की संदृष्टि नीचे लिखना है । जिसको भाग देना है ऐसी भाज्यराशि को ऊपर लिखकर जिसका भाग देना हो उस भागहार को उसके नीचे लिखते हैं।

जैसे कोटि के पांचवें भाग की संदृष्टि $\frac{\text{को}}{५}$ ऐसी । पल्य के संख्यातवें भाग की $\frac{\text{प}}{१}$ ऐसी, पल्य के असंख्यातवें भाग की $\frac{\text{प}}{a}$ ऐसी, सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग की $\frac{२}{a}$ ऐसी, आवली के असंख्यातवें भाग की $\frac{२}{a}$ ऐसी, सो यथास्थान जाननी । घनांगुल के असंख्यातवें भाग की $\frac{६}{a}$ ऐसी, घनलोक के असंख्यातवें भाग की $\frac{\equiv}{a}$ ऐसी, जगत्श्रेणी के संख्यातवें भाग की $\frac{\overline{}}{१}$ ऐसी, जीवराशि के अनंतवें भाग की $\frac{१६}{\text{ख}}$ ऐसी, केवलज्ञान के अनंतवें भाग की $\frac{\text{के}}{\text{ख}}$ ऐसी इत्यादि जाननी । जहां अंशों का ग्रहण करना हो वहां भी ऐसी ही संदृष्टि जाननी । अंशों के नीचे हारों को लिखते हैं । जैसे एक के तीसरे भाग की $\frac{१}{३}$ ऐसी, आधे की $\frac{१}{२}$ ऐसी, पौण की $\frac{३}{४}$ ऐसी, यहां तीन चौथा भाग जानना, इत्यादि । पुनश्च जहां रूप (एक का अंक) भी हो और अंश भी हो वहां इन दोनों को जुदा जुदा लिखते हैं अथवा समच्छेद विधान द्वारा मिलाकर लिखते हैं। जैसे डेढ़ की संदृष्टि $१|\frac{१}{२}$ ऐसी, वहां एक जुदा लिखा, आधा जुदा लिखा अथवा मिलानेपर $\frac{३}{२}$ ऐसी, यहां तीन को दो का भाग जानना इत्यादि । वर्ग की संदृष्टि दो बार लिखनी है । जिसका वर्ग करना हो उसको बराबर (एकसाथ - एक के आगे एक) दो बार लिखते हैं । जैसे पांच के वर्ग की संदृष्टि **५|५** ऐसी, बादाल के वर्ग की **४२=|४२=** ऐसी, अनंत के वर्ग की **ख|ख** ऐसी, सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग के वर्ग की $\frac{२}{a}|\frac{२}{a}$ ऐसी इत्यादि।

पुनश्च घन की संदृष्टि तीन बार लिखना है । जिसका घन करना हो उसको तीन बार बराबर (एक साथ) लिखते हैं । जैसे आठ के घन की संदृष्टि ८|८|८ ऐसी, पणट्ठी के घन की **६५=|६५=|६५=** ऐसी, असंख्यात के घन की **a|a|a** ऐसी, घनांगुल के संख्यातवें भाग के घन की $\frac{६}{१}|\frac{६}{१}|\frac{६}{१}$ ऐसी इत्यादि ।

पुनश्च वर्गमूल की संदृष्टि **मू** ऐसी है । वहां प्रथम वर्गमूल की **मू१** ऐसी, द्वितीय वर्गमूल की **मू २** ऐसी, इत्यादि जितनेवां वर्गमूल हो उतने का अंक आगे लिखनेपर

संदृष्टि होती है । कहीं एक, दो आदि का अंक ही प्रथम, द्वितीय आदि मूलों की संदृष्टि होती है जैसे चतुर्थ मूल की संदृष्टि **४** है । पुनश्च घनमूल की संदृष्टि **घमू** ऐसी है । इसप्रकार परिकर्माष्टक की संदृष्टि जाननी । अब संदृष्टि में विशेष कहते हैं–

जहां भाज्यराशि और भागहारराशि की किसी प्रमाण द्वारा शुद्धता होती हो, अर्थात् भाज्य और भागहार को किसी समान प्रमाण का भाग देनेपर यथायोग्य लब्धराशि पाकर निरवशेषता होती हो, वहां उस प्रमाण द्वारा अपवर्तन करना । जैसे, जहां अट्ठाइस के भाज्य को आठ का भागहार हो $\frac{२८}{८}$, वहां चार से अपवर्तन करनेपर अट्ठाइस को चार का भाग देनेपर सात आये उसे अट्ठाइस के जगह लिखते हैं और आठ को चार का भाग देनेपर दो आये, उसे आठ की जगह $\frac{७}{२}$ लिखते हैं । यहां अट्ठाइस को आठ का भाग देनेपर भी तथा सात को दो का भाग देनेपर भी लब्धराशि साढ़े तीन होती है । इसीप्रकार अन्यत्र भी अपवर्तन जानना ।

तथा जहां भाज्य और भागहार में समानता हो, वहां दोनों का अभाव करके अपवर्तन करना । जैसे चौगुणा अस्सी को चौगुणा पांच का जहां भाग हो $\frac{८० \times ४}{५ \times ४}$, वहां चौगुणापने को भाज्य भागहार में समान जानकर अपवर्तन करनेपर अस्सी को पांच का भागहार होता है $\frac{८०}{५}$ ।

पुनश्च कहीं महत्प्रमाण में एक आदि हीन अधिक होते हुये भी संदृष्टि में अपवर्तन करते हैं । जैसे जीवराशि को एक अधिक अनंत का गुणकार और अनंत का भागहार हो वहां अपवर्तन करके जीवराशि मात्र **१६** प्रमाण लिखते हैं ।

पुनश्च जहां घटाने योग्य ऋणराशि हो और उस ऋणराशि का भी ऋण हो, वहां ऋणराशि में से अपना ऋण घटाकर अवशेष मूलराशि में से घटाते हैं अथवा 'ऋणस्य ऋणं राशेर्धनं' इस वचन से उस ऋण को मूलराशि में जोड़कर उसमें से ऋण घटाते हैं । जैसे दस कम सौ (९०) हजार में से घटाना हो तो हजार में से नब्बे घटाते हैं अथवा दस अधिक हजार में से सौ घटाते हैं, दोनों का एक ही अर्थ है । इसीप्रकार अन्यत्र जानना ।

पुनश्च जहां संदृष्टि के लिये किसी प्रमाण द्वारा राशि का भेदन करते हैं, वहा उस प्रमाण का राशि को भाग देनेपर जो आता है, उसे तो राशि की जगह लिखकर उसके आगे उस प्रमाणमात्र गुणकार को लिखते हैं। जैसे पांच सौ बारह को सोलह से भेदना हो वहां पांच सौ बारह की जगह बत्तीस लिखकर उसके आगे सोलह का गुणकार लिखते हैं । इसीप्रकार अन्यत्र जानना ।

पुनश्च जहां भागहार के गुणकार हो, वहां उन गुणकारों को भागहार के आगे लिखते हैं। तथा उस भागहार को उन गुणकारों से गुणा करनेपर जो प्रमाण आता है उतने का वहां भागहार जानना । जैसे लक्ष को नौ और तीन गुणा नौ का भाग हो, वहां ऐसे $\frac{\text{ल}}{९।९।३}$ लिखते हैं । यहां नौ नौ तीन को परस्पर गुणा करनेपर दो सौ तैंतालीस हुआ उसका भागहार जानना । ऐसे ही पांच बार संख्यात से गुणा हुआ पणट्ठीप्रमाण प्रतरांगुल का भाग जहां जगत्प्रतर को हो, वहां इसतरह लिखते हैं $\overline{\overline{४}}$।६५=१।१।१।१।१ अर्थ वैसे ही जानना । ऐसे ही अन्यत्र जानना ।

पुनश्च जहां भाज्य के गुणकार हो, वहां उन गुणकारों को भाज्य के आगे लिखते हैं । भाज्य को उन गुणकारों से गुणित करनेपर जो प्रमाण हो उतना वहां भाज्य जानना । जैसे चार, पांच से गुणित कोटि को लक्ष का भाग हो, वहां ऐसा $\frac{\text{को}४।५}{\text{ल}}$ लिखते हैं । यहां कोटि को चार और पांच गुणा करनेपर बीस कोटि हुये, उनको लक्ष का भाग जानना । ऐसे ही पल्य से गुणित संख्यात घनांगुल को सूच्यंगुल का भाग हो, वहां $\frac{६}{२}$।१।प ऐसे लिखना, अर्थ वैसे ही जानना । ऐसे ही अन्यत्र जानना ।

पुनश्च किसी राशि के गुणकार का भागहार हो, वहां उस भागहार को उस गुणकार के नीचे लिखते हैं । उस भागहार का उस गुणकार को भाग देनेपर जो प्रमाण आये उसका वहां गुणकार जानना । जैसे सौ के चौथे भाग से लक्ष को गुणा करना हो, वहां ल$\frac{१००}{४}$ ऐसे लिखते हैं । यहां सौ को चार का भाग देनेपर पच्चीस आये, उसका गुणकार जानना । इसीप्रकार पल्य के असंख्यातवें भाग से गुणित लोक ≡$\frac{\text{प}}{a}$

ऐसा उसका अर्थ जानना ।

पुनश्च जहां भाज्य वा भागहार का गुणकार भागहार सहित हो, वहां भी अपने भागहार का भाग गुणकार को देनेपर जो आये, उतने का भाज्य वा भागहार का गुणकार जानना । जैसे सौ के चौथे भाग से गुणित लक्ष को पचास का भाग देना हो, तब ऐसा $\frac{\text{ल १००}}{\text{५० । ४}}$ है । कोटि को सौ के चौथे भाग से गुणित लक्ष का भाग देनेपर ऐसा $\frac{\text{को}}{\text{ल १०० / ४}}$ । पल्य के असंख्यातवें भाग से गुणित लोक को घनांगुल का भाग देनेपर ऐसा ≡ / ६ । प / ० । घनांगुल के संख्यातवें भाग से गुणित जगत्श्रेणी का भाग जगत्प्रतर को देनेपर ऐसा = / –६ / ७ , ऐसे ही अन्यत्र जानना ।

पुनश्च गुण्य में या गुणकार में या भाज्य में या भागहार में कुछ मिलाना हो तो उसके ऊपर संकलन की संदृष्टि करनी और घटाना हो तो ऋण की संदृष्टि करनी। जैसे असंख्यात गुणा एक अधिक लोक की ऐसी १ ≡ ० संदृष्टि है। एक अधिक संख्यातगुणा सूच्यंगुल की ऐसी १ २ ७, पल्य से भाजित एक अधिक लोक की ऐसी १ ≡ / प । एक अधिक प्रतरांगुल से भाजित लोक की ऐसी ≡ / १ ४ इत्यादि । तथा अनंत से गुणित एक कम जीवराशि की ऐसी १ ∩ / १६ ख । एक कम अनंत से गुणित जीवराशि की ऐसी १६ १ ∩ / ख , अनंत से भाजित दो कम पुद्गलराशि की ऐसी २ ∩ / १६ ख / ख । दो कम अनंत से भाजित पुद्गलराशि की ऐसी १६ ख / २ ∩ / ख इत्यादि जाननी ।

पुनश्च जहां भाज्यराशि के गुणकार हो अथवा भागहारराशि के गुणकार हो और उन गुणकारों में कोई गुणकार भागहार संयुक्त हो या कुछ अधिक या कुछ हीन हो तो वहां उन भाज्य भागहारों के आगे उन गुणकारों को लिखकर जिस गुणकार

का भागहार हो उसके नीचे लिखना । अधिक या हीन हो उसे ऊपर संदृष्टिरूप लिखना। भागहार का भाग देकर अधिक को मिलाने या हीन को घटानेपर जो प्रमाण हो, उसे वहां गुणकार का प्रमाण जानना । जैसे लाख को तीन से, लाख के चौथे भाग से तथा एक अधिक हजार से गुणा करते हैं, इतना तो भाज्य और दस को लाख के पांचवें भाग से और एक कम सौ से गुणा करके उसका भाग देना हो, वहां ऐसे लिखते हैं - $\frac{\text{ल ३ }\frac{\text{ल}}{४}\ \frac{१}{१०००}}{१०\frac{\text{ल}}{५}\ \frac{१\frown}{१००}}$ । यहां यथोक्त करनेपर सात लाख पचास हजार सात सौ पचास कोडि तो भाज्य और एक कोडि अठ्याणबे लाख भागहार जानना । इसीप्रकार जहां घनांगुल को घनावली के असंख्यातवें भाग से और एक अधिक संख्यात से गुणा करके इतना तो भाज्य और पल्य के असंख्यातवें भाग को एक कम घनावली के असंख्यातवें भाग से गुणा करके इतना तो भागहार हो, वहां ऐसे लिखते हैं $\frac{६ \mid \frac{८}{a} \mid \overset{१-}{\text{ॄ}}}{\frac{\text{प}}{a}\ \frac{१\frown}{\frac{८}{a}}}$ (भाज्य $६ \mid \frac{८}{a} \mid \overset{१-}{\text{ॄ}}$) (भागहार $\frac{\text{प}}{a}\ \frac{१\frown}{\frac{८}{a}}$)

पुनश्च कहीं राशि के गुणकारों के जो भागहार हैं उनको राशि के भागहारों को लिखकर उनसे गुणित करते हैं। जैसे लक्ष के पचासवें भाग को सौ के चौथे भाग से गुणित करना हो, वहां ऐसे लिखते हैं $\frac{\text{ल}\ १००}{५० \mid ४}$ । यहां सौ गुणा लक्ष को चार गुणा पचास का भाग जानना । क्योंकि दोनों प्रकार से प्रमाण समान होता है। इसीप्रकार अन्यत्र जानना ।

जहां भागहार या गुणकार दो, तीन आदि बार हो वहां उस गुणकार के आगे दो, तीन आदि का अंक लिखने की भी सहनानी जाननी । जैसे लक्ष को तीन बार चार का भाग देना हो वहां ऐसा लिखते हैं $\frac{\text{ल}}{४ \mid ३}$ । यहां तीन बार चार को परस्पर गुणा करनेपर चौंसठ आये इसलिये चौंसठ का भागहार जानना । इसीप्रकार घनांगुल को उन्नीस बार पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देना हो वहां ऐसे लिखते हैं $\frac{६}{\frac{\text{प}}{a}\ १९}$ ।

तथा चार बार दो से गुणित कोटि को ऐसे लिखते हैं **को२।४** । यहां चार बार दो को परस्पर गुणा करनेपर सोलह आये, सो सोलह का गुणकार जानना । इसीप्रकार जहां घनांगुल को बाइस बार घनावली के असंख्यातवें भाग से गुणित करना हो वहां ऐसे लिखते हैं **६।८।२२**
ə
। इसीप्रकार अन्यत्र संदृष्टि जाननी ।

जहां भागहार का भागहार या प्रतिभागहार हो वहां उनको नीचे नीचे लिखते हैं । नीचे से लेकर क्रम से ऊपर ऊपर भाग देनेपर जो आये, सो वहां प्रमाण जानना। जैसे जहां हजार को सौ का भाग, उसको बीस का भाग, उसको पांच का भाग देना हो वहां ऐसे लिखते हैं **१०००**
१००
२०
५
। यहां यथोक्त करनेपर चालीस प्रमाण आता है।

ऐसे ही जगत्प्रतर को प्रतरांगुल का भाग और उसको आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देना है वहां ऐसा लिखते हैं **=**
४
२
ə
। ऐसे ही अन्यत्र जानना ।

पुनश्च 'हारस्य हारो गुणकोऽत्रराशेः' इस वचन से कहीं भागहार के भागहार को भाज्यराशि का गुणकार करना । जैसे हजार को बीस के पांचवें भाग का भाग **१०००**
२०
५
जहां हो, वहां हजार को पांच गुणा करके बीस का भाग देते हैं **१०००।५**
२०
क्योंकि बीस को पांच का भाग देनेपर चार आते हैं, उसका भाग हजार को देनेपर भी दो सौ पचास आते हैं और पांच गुणा हजार को बीस का भाग देनेपर भी उतने ही आते हैं, दोनों का अर्थ एक ही है, ऐसे ही अन्यत्र जानना ।

पुनश्च जहां धनराशि या ऋणराशि के दोनों के गुणकार भागहारादि हो, वहां अलग अलग गुणनादि करके जो धनराशि हो उसमें से ऋणराशि घटानेपर जो प्रमाण हो, उसे वहां ग्रहण करना। जैसे धनराशि दो बार सोलह से गुणित चार प्रमाण **४।१६।१६** और ऋणराशि दो बार चार से गुणित दो प्रमाण **२।४।४** जहां हो, वहां चार, सोलह, सोलह को परस्पर गुणा करनेपर एक हजार चौबीस हुये। उनमें से दो, चार, चार को परस्पर गुणा करनेपर बत्तीस हुये उन्हें घटाते हैं, ऐसे ही अन्यत्र जानना ।

पुनश्च जहां विवक्षित भागहार का भाग देकर वहां एक भाग छोड़कर बहुभाग ग्रहण करना हो वहां एक कम भागहार के प्रमाण से भाज्य को गुणा करना और सम्पूर्ण भागहार का भाग देना । क्योंकि समच्छेद द्वारा वहां मूलराशि ऋणराशि के गुण्य को समान देखकर मूलराशि के गुणकार में से एक कम करते हैं । जैसे जहां लक्ष को दस का भाग देकर वहां एक भाग छोड़कर नौ भागों का ग्रहण करना हो वहां लक्ष को नौ गुणा करके दस का भाग देना $\frac{\text{ल ९}}{\text{१०}}$ ऐसे नौ भागों का नब्बे हजार प्रमाण आया । ऐसे ही पुद्‌गल राशि को अनंत का भाग देकर जहां बहुभाग ग्रहण करना हो, वहां भी ऐसा ही जानना । उसकी संदृष्टि ऐसी $\frac{\text{१६ ख ख}^{\text{१}}}{\text{ख}}$ है । ऐसे ही अन्यत्र जानना।

पुनश्च जहां राशि को विवक्षित भागहार का भाग देकर बहुभाग ग्रहण करके पुनश्च एक भाग रहा, उसको उसी भागहार का भाग देकर बहुभाग ग्रहण करना हो तथा पुनश्च इसीप्रकार एक भाग रहता जाय उसको उसी भागहार का भाग दे देकर बहुभाग ग्रहण करने हो वहां राशि को एक बार एक कम भागहार से गुणा करना और जितनी बार बहुभाग का ग्रहण करना हो, उतनी बार सम्पूर्ण भागहार का भाग देना। अंत में जहां अवशेष रहे एक भाग ही का ग्रहण हो, वहां उस राशि को एक से गुणा करना और जितनी बार बहुभाग ग्रहण किये थे उतनी बार सम्पूर्ण भागहार का भाग देना । जैसे दस से भाजित लक्ष को दस का भाग देनेपर बहुभाग ऐसा $\frac{\text{ल ९}}{\text{१०।१०}}$ । यहां एक भाग के दस हजार थे उसको दस का भाग देकर नौ भागों को ग्रहण करनेपर नौ हजार आये, वही लाख को नौ गुणा करके दो बार दस का भाग देनेपर भी नौ हजार आये । पुनश्च अवशेष एक भाग को दस का भाग देकर बहुभाग ग्रहण करनेपर ऐसा $\frac{\text{ल ९}}{\text{१०।१०।१०}}$ । यहां अवशेष एक भाग के हजार थे उनमें से बहुभाग के नौ सौ जानने । पुनश्च अवशेष एक भाग ऐसा $\frac{\text{ल १}}{\text{१०।१०।१०}}$ । यहां लक्ष को एक गुणा करनेपर लक्ष ही हुआ उसको तीन बार दस का भाग देनेपर सौ आये, वही अवशेष एक भाग का प्रमाण जानना । तथा ऐसे ही घनलोक को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर वहां एक भाग को छोड़कर बहुभाग ग्रहण

करना हो वहां ऐसा $\frac{\equiv}{\frac{प}{ə}}\frac{१\frown}{\frac{प}{ə}}$ । पुनश्च अवशेष एक भाग को उसी भागहार का भाग देकर बहुभाग ग्रहण करनेपर ऐसा $\frac{\equiv}{\frac{प}{ə}\frac{प}{ə}}\frac{१\frown}{\frac{प}{ə}}$ । पुनश्च अवशेष एक भाग को उसी भागहार का भाग देकर बहुभाग ग्रहण करनेपर ऐसा $\frac{\equiv}{\frac{प}{ə}\frac{प}{ə}\frac{प}{ə}}\frac{१\frown}{\frac{प}{ə}}$ । अवशेष एक भाग ऐसा $\frac{\equiv\ १}{\frac{प}{ə}\frac{प}{ə}\frac{प}{ə}}$ जानना । ऐसे ही अन्यत्र जानना।

पुनश्च जहां विवक्षित राशि को विवक्षित भागहार का भाग देकर एक भाग को उस विवक्षित राशि में मिलाना हो, वहां उस राशि को एक अधिक भागहार के प्रमाण से गुणित करना और सम्पूर्ण भागहार का भाग देना । क्योंकि समच्छेद करके पश्चात् दोनों राशि के गुण्य को समान देखकर गुणकार में एक अधिक करते हैं । जैसे कोटि में कोटि ही का दसवां भाग जहां मिलाना हो, वहां कोटि को ग्यारह से गुणा करके दस का भाग देना **को$\frac{११}{१०}$** । ऐसा करनेपर लब्धराशि एक कोटि दस लाख आते हैं । ऐसे ही पुद्‌गलराशि में पुद्‌गलराशि का अनंतवां भाग मिलाना हो, वहां पुद्‌गलराशि को एक अधिक अनंत से गुणा करना और अनंत का भाग देना, उसकी संदृष्टि ऐसी **$१६\frac{ख\,\overset{१-}{ख}}{ख}$** । तथा अंतर्मुहूर्त में अंतर्मुहूर्त का संख्यातवां भाग मिलाना हो, वहां अंतर्मुहूर्त को एक अधिक संख्यात से गुणा करना और संख्यात का भाग देना । उसकी संदृष्टि ऐसी **$२ॢ\frac{५}{४}$** । यहां संख्यात की संदृष्टि चार का अंक जानना । ऐसे ही अन्य जानने। पुनश्च इसका संख्यातवां भाग इसमें मिलाना हो, वहां ऐसी **$२ॢ।\frac{५}{४}।\frac{५}{४}$** संदृष्टि जाननी। ऐसे ही अन्य जानने।

पुनश्च जहां कोई राशि गुणकार संयुक्त हो उसमें उस राशि के समान प्रमाण

जोड़ना हो, वहां गुणकार में एक अधिक कर देना और उससे दो गुणा, तीनगुणा आदि प्रमाण मिलाना हो तो दो, तीन आदि अधिक करना। जैसे पांच गुणा लक्ष में लक्ष मिलाना हो वहां एक अधिक पांच का गुणकार करना ल $\overset{१-}{५}$ । अंतर्मुहूर्त से गुणित लोक में लोक से दोगुणा प्रमाण मिलाना हो वहां दो अधिक अंतर्मुहूर्त का गुणकार करना, उसकी संदृष्टि ऐसी ≡ $\overset{२-}{२ॢ}$ ।

पुनश्च कोई राशि गुणकार से संयुक्त हो, उसमें उस राशि मात्र या उससे दोगुणा आदि प्रमाण घटाना हो, वहां उस गुणकार में से एक, दो आदि कम कर देना । जैसे पांच गुणा कोटि में कोटि घटाना हो वहां एक कम पांच का गुणकार करना को $\overset{१\frown}{५}$ । ऐसे ही असंख्यात गुणा पल्य में से पल्य से तीनगुणा प्रमाण घटाना हो, वहां पल्य को तीन कम असंख्यात से गुणा करना । उसकी संदृष्टि ऐसी प $\overset{३\frown}{ə}$ । ऐसे ही अन्य जानने ।

पुनश्च जहां राशि दो, तीन आदि गुणकारों से संयुक्त हो और वहां पूर्व गुण्य या गुणकार से गुणा करनेपर जो प्रमाण हो, उतना घटाना या बढ़ाना हो तो वहां उसके आगे गुणकारों में से एक घटाना या बढ़ाना । जैसे लाख पांच, चार, तीन से गुणित हो ल५।४।३, उसका प्रमाण साठ लाख उसमें से लाख घटाना हो तो पांच के ऊपर से लेकर सर्व गुणकारों के ऊपर एक कम की संदृष्टि करनी ल $\overset{१\quad\frown}{\overline{५।४।३}}$ और पांच लाख घटाना हो तो चार के ऊपर से लेकर ल५।$\overset{१\frown}{\overline{४।३}}$ और बीस लाख घटाना हो तो तीन के ऊपर एक कम की संदृष्टि करनी ल५।४।$\overset{१\frown}{३}$ । ऐसे ही संख्यात गुणित असंख्यात लोक में से लोकमात्र घटाना हो तो असंख्यात के ऊपर से लेकर एक कम की संदृष्टि ≡ $\overset{१\frown}{əॢ}$ करनी और असंख्यात लोकमात्र घटाना हो तो संख्यात के ऊपर एक कम की संदृष्टि ऐसी करना ≡ ə$\overset{१\frown}{ॢ}$ इत्यादि । तथा इसीप्रकार मिलाने

में अधिक की संदृष्टि जाननी और उससे दुगुणा आदि प्रमाण घटाना बढ़ाना हो तो वहां दो, तीन आदि घटाने बढ़ाने की संदृष्टि करनी। जैसे उस राशि में से तीन लाख घटाना हो तो पांच के ऊपर से लेकर तीन कम की संदृष्टि करनी ल५।४।३ (ऊपर ३ ⌒) । ऐसे ही सर्वत्र जानना ।

पुनश्च यदि राशि के बीच के किसी गुणकार के आगे या पीछे के गुण्य या गुणकार से गुणित करनेपर जो प्रमाण हो उतना घटाना या बढ़ाना हो तो वहां उस बीच के गुणकार में से एक घटाना या बढ़ाना । पुनश्च उससे दोगुणा, तीनगुणा आदि प्रमाण घटाना या बढ़ाना हो तो दो, तीन आदि घटाना या बढ़ाना । जैसे उसी पांच, चार, तीन गुणित लाख में से बारह लाख घटाना हो तो पांच में से एक कम करना ल ५।४।३ (५ के ऊपर १⌒), पंद्रह लाख घटाना हो तो चार के ऊपर एक कम करना ल५।४।३ (४ के ऊपर १⌒), तीस लाख घटाना हो तो चार के ऊपर दो कम करना ल५।४।३ (४ के ऊपर २⌒) । इसीप्रकार बढ़ाने में अधिक की संदृष्टि जाननी । ऐसे ही अन्यत्र जानना ।

पुनश्च जो राशि गुणकार संयुक्त हो और उसमें से गुणकार मात्र घटाना या बढ़ाना हो या उससे दोगुणा आदि प्रमाण घटाना या बढ़ाना हो तो वहां गुण्य के ऊपर एक, दो आदि हीन या अधिक की संदृष्टि करनी । जैसे चार और तीन गुणा लाख में से बारह घटाना हो तो लाख में एक कम करना ल ४।३ (ल के ऊपर १⌒) । ऐसे ही असंख्यात गुणा लोक में से असंख्यात घटाना हो तो लोक के ऊपर एक कम की संदृष्टि करनी ≡ ɑ (ऊपर १⌒) इत्यादि । तथा इसीप्रकार उसमें मिलाना हो तो अधिक की संदृष्टि जाननी।

पुनश्च जहां राशि के गुण्य और गुणकार में से एक, दो आदि घटाये या बढ़ाये हो उसके प्रमाण को अलग स्थापना हो, वहां उस एक, दो आदि को उस गुण्य या गुणकार से आगे या पीछे के गुण्य या गुणकार द्वारा गुणित करनेपर जितना हो उतना अलग स्थापित करना । जैसे दो अधिक पांच और चार और तीन द्वारा गुणित लाख प्रमाण राशि में से दो अधिक पांच में से दो घटाकर अलग स्थापित करनेपर उसका प्रमाण लाख चार_तीन द्वारा गुणित_दो जानना । २ल४।३ ऐसे ही घटाने में ऋण का

प्रमाण अलग स्थापित करना । ऐसे ही अन्यत्र जानना । उसको अलग स्थापित करके अवशेष गुण्य और गुणकार का प्रमाण रहे, सो उस राशि में लिखना।

पुनश्च जहां समच्छेद विधान में अंशों को और हारों को परस्पर हारों द्वारा गुणित करना हो, वहां कहीं परस्पर दोनों राशियों के जो समान हार हो, उनको छोड़कर अधिक हारों द्वारा ही समच्छेद करना जैसे पांच, चार द्वारा भाजित लाख में पांच, चार, तीन द्वारा भाजित लाख जोड़ना हो $\left[\frac{ल}{५।४}+\frac{ल}{५।४।३}\right]$ वहां दोनों राशियों में पांच, चार के हार समान देखकर तीन द्वारा ही समच्छेद करते हैं तब मूलराशि ऐसी $\frac{ल।३}{५।४।३}$ और धनराशि ऐसी $\frac{ल}{५।४।३}$ होती है । यहां लाख गुण्य को समान देखकर तीन के गुणकार में एक अधिक करनेपर $\left[\frac{ल३}{५।४।३}+\frac{ल}{५।४।३}\right]$ दोनों राशियों का जोड़ $\frac{\overset{१—}{ल३}}{५।४।३}$ होता है । ऐसे ही अन्यत्र जानना ।

जहां राशि का आधा करना हो वहां दो का भाग देना । जैसे एक कम अंतर्मुहूर्त के आधे की संदृष्टि ऐसी $\frac{\overset{१}{२\,२१}}{२}$ है । इसीप्रकार राशि के तीसरे, चौथे आदि भाग के ग्रहण में तीन, चार आदि का भाग जानना।

जहां भागहार संयुक्त भाज्यराशि को अंश या हार से गुणित करना हो, वहां अंश को भाज्य के आगे और हार को भागहार के आगे लिखना। जैसे जहां घनरज्जू को डेढ़ गुणा करना हो, वहां संदृष्टि ऐसी होती हैं $\frac{\equiv\,३}{३४३।२}$ । ऐसे ही अन्यत्र जाननी। इत्यादि संदृष्टि के विशेष यथासंभव अनेक प्रकार जानने । यहां उदाहरण मात्र कितने ही कहे हैं । पुनश्च अन्य कई संदृष्टि विशेष कहते हैं –

कहीं षट्स्थानपतित वृध्दि या हानि में अनंतभाग की संदृष्टि ऊर्वंक **उ**, असंख्यातभाग की चार का अंक **४**, संख्यातभाग की पांच का अंक **५**, संख्यातगुण की छह का अंक **६**, असंख्यातगुण की सात का अंक **७**, अनंतगुण की आठ का अंक ८, संदृष्टि जाननी।

पुद्गलपरिवर्तन में गृहीत की एक का अंक १, अगृहीत की बिंदी ०, मिश्र की हंसपद X संदृष्टि जाननी ।

कहीं दो बार लिखने से बहुत बार जानना । जैसे दो बार ऊर्वक लिखने से सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागमात्र बार अनंतभागवृध्दि जाननी ।

कहीं आलाप समान पाये जाते हैं तथापि अन्य की अपेक्षा अल्पबहुत्व जनावने के लिये संदृष्टि करते हैं । जैसे तीनों करणों का काल आलाप द्वारा [कथन में] अंतर्मुहूर्तमात्र है, तथापि उनमें अनिवृत्तिकरण का काल सबसे अल्प संख्यात आवली प्रमाण है । उसकी संदृष्टि ऐसी २ॢ । इससे संख्यातगुणा अपूर्वकरण के काल की संदृष्टि ऐसी २ॢॢ, इससे संख्यातगुणा अध:करण के काल की संदृष्टि ऐसी २ॢॢॢ है।

पुनश्च जैसे कर्मस्थिति रचना में समयप्रबध्द की संदृष्टि ऐसी **सa**, यहां जघन्य समयप्रबध्द से उत्कृष्ट समयप्रबध्द असंख्यातगुणा है इसलिये जघन्य समयप्रबध्द की संदृष्टि आदि अक्षररूप ऐसी **स**, उसके आगे असंख्यात का गुणकार करनेपर उत्कृष्ट समयप्रबध्द का संदृष्टि **सa** ऐसी होती है ।

कहीं अंकसंदृष्टि ही को अर्थसंदृष्टि में भी लिखते हैं । जैसे उत्कृष्ट समयप्रबध्द की संदृष्टि ऐसी **स३२** है । यहां जघन्य समयप्रबध्द को अंकसंदृष्टि की अपेक्षा बत्तीस का गुणकार जानना ।

किंचित् कम डेढ़ गुणहानि से गुणित समयप्रबध्द की संदृष्टि ऐसी **सa१२–** है । यहां उत्कृष्ट समयप्रबध्द ऐसा **सa**, उसको अंकसंदृष्टि की अपेक्षा डेढ़ गुणहानि का प्रमाण बारह उसके आगे किंचित् कम करने के लिये संदृष्टि ऐसी –, उसका गुणकार जानना । ऐसे ही अन्य भी यथायोग्य संदृष्टि जाननी ।

कहीं आकाररूप संदृष्टि होती है । जैसे कर्मस्थिति के कथन में संदृष्टि ऐसी △ । यहां नीचे ऊभी लकीर, वह तो आबाधाकाल की संदृष्टि जाननी। और उसके ऊपर ऐसी △ संदृष्टि वह निषेकों की जाननी । क्योंकि निषेकों का प्रमाण क्रम से घटता घटता है, इसलिये क्रम से हीनरूप संदृष्टि करते हैं । तथा जहां निषेकों का ही ग्रहण हो, वहां संदृष्टि ऐसी ही जाननी △। जहां स्थिति में अचलावली, उदयावली,

उपरितनस्थिति, उच्छिष्टावली की रचना हो वहां संदृष्टि ऐसी । यहां नीचे की ऊभी लकीर अचलावली की संदृष्टि है । उसके ऊपर ऐसी △ उदयावली की संदृष्टि है । उसके ऊपर ऐसी संदृष्टि उपरितन स्थिति की है । उसके ऊपर ऐसी △ संदृष्टि उच्छिष्टावली की है । यहां उदयावली, उपरितनस्थिति, उच्छिष्टावली के निषेक क्रम से हीनरूप हैं इसलिये क्रम से हीन आकाररूप संदृष्टि जाननी ।

इनमें प्रकृतिबंध होने के पश्चात् आवली कालमात्र उदय, उदीरणादिरूप होनेयोग्य नहीं है सो अचलावली है । आवली काल में उदय आने योग्य निषेकसमूह वह उदयावली है । उसके ऊपर के जो निषेक, उनका समूह वह उपरितन स्थिति है। अंतिम आवलीमात्र निषेक अवशेष रहे, वह उच्छिष्टावली है ऐसे जानना ।

पुनश्च कर्म के अनुभाग के कथन में संदृष्टि ऐसी । यहां अनुभाग में अविभाग प्रतिच्छेदों की समानतावाले वर्ग एक एक वर्गणामें पाये जाते हैं, उनकी संदृष्टि ऐसी । और वर्गों का प्रमाण वर्गणा में क्रम से हीनरूप है इसलिये आगे ऐसी संदृष्टि जाननी, इत्यादि ।

पुनश्च अध:करण के कथन में अंकुशरचना, लांगलरचना होती है, वह टीका में लिखी ही है ।

जहां क्षेत्रफल करना हो वहां ऐसा आकार लिखते हैं – □ । वहां ऊंचाई का प्रमाण बीच में लिखते हैं । लम्बाई और चौड़ाई का प्रमाण नीचे और पार्श्वभाग में लिखते हैं । वहां करणसूत्र द्वारा यथासंभव क्षेत्रफल हो, वह जानना । ऐसे अन्य भी अनेक प्रकार की संदृष्टि जाननी । इसप्रकार सामान्य संदृष्टि स्वरूप वर्णन समाप्त होता है ।

संस्कृत टीका में, सूत्रों के यंत्ररचना में तथा कहीं इस संदृष्टिअधिकार में भी जो संदृष्टिरचना जिस अर्थ की हो, उस रचना की और उस अर्थ की जैसी तैसी उस आकाररूप सहनानी समान होती है अथवा अर्थ से लेकर रचना तक रेषा खींच देते हैं वहां ऐसा जानते हैं कि इस अर्थ की यह रचना है । इत्यादि बुध्दि के बल से यथासंभव शास्त्रों में से अभिप्राय जानकर यथार्थज्ञानी होकर परमज्ञानी होना ।

अब श्रीमद् गोम्मटसार शास्त्र के यंत्रों में और संस्कृत टीका में जो अर्थ संदृष्टि द्वारा कहे हैं, उनके प्रकट करने के लिये तथा कहे हुये अर्थ की संदृष्टि रचना जानने के लिये कुछ वर्णन करते हैं –

यहां कितनी ही अर्थसंदृष्टि कहते हैं । उनको जानकर अन्य भी अर्थसंदृष्टि अपनी बुध्दि से यथासंभव जान लेनी या अन्य ग्रंथों से जान लेना । यहां जिन अर्थों की संदृष्टि कहते हैं उनमें से जिन अर्थों का स्वरूप यहां सामान्य वर्णन द्वारा स्पष्ट जानने में न आये तो उनका स्वरूप विशेषपने से टीका में अपने अपने अधिकार में वर्णन किया है वहां से उन अर्थों का स्वरूप जानकर उसके अनुसार यहां संदृष्टियों का स्वरूप जानना । यहां जिस अर्थ के वर्णन के आगे जो संदृष्टि लिखते हैं, वह संदृष्टि उस अर्थ की जाननी। कहीं लिखने में आगे पीछे भी संदृष्टि लिखी जाय, तो वहां अर्थ संबंध से संदृष्टि जान लेनी ।

अब श्रीमद् गोम्मटसार के दो महाअधिकार हैं, उनमें से प्रथम जीवकाण्ड में संदृष्टि कहते हैं ।

वहां प्रथम **गुणस्थानाधिकार** है, उसमें संदृष्टि कहते है । जहां तीन करणों का स्वरूप वर्णन है, वहां अध:प्रवृत्तकरण में अंकसंदृष्टि द्वारा **सर्वधन** तीन हजार बहत्तर **३०७२** । उसको **गच्छ** सोलह **१६** के वर्ग **२५६** का और संख्यात तीन **३** का भाग देनेपर $\frac{३०७२}{२५६|३}$ चार आये, वह **चय** है।

पुनश्च एक कम गच्छ **१५** का आधा $\frac{१५}{२}$ को चय **४** से गुणा करनेपर $\frac{१५|४}{२}$ और पुनश्च गच्छ **१६** से गुणा करनेपर **चयधन ४८०** होता है । इसको सर्वधन **३०७२** में से घटानेपर **२५९२** और गच्छ **१६** का भाग देनेपर $\frac{२५९२}{१६}$ प्रथम समय संबंधी परिणाम संख्या **१६२** होती है । इससे एक एक चय **४** बढ़ानेपर द्वितीयादि अंतिम समय तक संबंधी परिणाम संख्या होती है । इसीप्रकार अर्थसंदृष्टि द्वारा **सर्व परिणाम धन** असंख्याततलोक मात्र ऐसा **≡ a** ।

पुनश्च अनिवृत्तिकरण के अंतर्मुहूर्त मात्र काल से दो बार संख्यात गुणा अध:प्रवृत्तकरण

के कालप्रमाण **गच्छ** ऐसा २णृणृणृ । उसका वर्ग ऐसा २णृणृणृ।२णृणृणृ तथा संख्यात का प्रमाण ऐसा णृ । इनका भाग उस सर्वधन को देनेपर ऊर्ध्वचय का प्रमाण ऐसा जानना ≡७ / २णृणृणृ।२णृणृणृ।णृ । पुनश्च एक कम गच्छ ऐसा २णृणृणृ⌒ − १ उसका आधा ऐसा (२णृणृणृ⌒ − १) / २ । इससे चय को गुणा करने पर ऐसा ≡७।(२णृणृणृ⌒ − १) / २णृणृणृ।२णृणृणृ।णृ।२ प्रमाण होता है । उसको गच्छ ऐसा २णृणृणृ से गुणा करनेपर ऐसा होता है–

≡७।(२णृणृणृ⌒ − १)।२णृणृणृ / २णृणृणृ।२णृणृणृ।णृ।२ । यहां भाज्य में और भागहार में ऐसा २णृणृणृ प्रमाण समान जानकर अपवर्तन करनेपर **चयधन** का प्रमाण होता है । उसकी संदृष्टि ऐसी होती है

≡७।(२णृणृणृ⌒ − १) / २णृणृणृ।णृ।२ । इसको सर्वधन ऐसा ≡७ उसमें से घटाना । सो भिन्न गणित में समच्छेदविधान है उसके अनुसार धनराशि ऐसी ≡७। उसको ऋणराशि के भागहार से गुणा करके और 'कल्प्यो हरो रूपमहारराशेः' इस वचन से हार से रहित धनराशि का एक हार मानकर उसको ऋणराशि के भागहार से गुणा करते हैं तब धनराशि ऐसी

≡७।२णृणृणृ।णृ।२ / २णृणृणृ।णृ।२ होती है । और ऋणराशि चयधन मात्र ऐसी ≡७।(२णृणृणृ⌒ − १) / २णृणृणृ।णृ।२ । सो धनराशि में से ऋणराशि घटाना । वहां ऋणराशि के गुणकार में जो एक कम कहा था उसका प्रमाण इतना है ≡७ / २णृणृणृ।णृ।२ क्योंकि वह गुणकार इतने प्रमाण गुण्य का है, सो इसको अलग स्थापित करनेपर ऋणराशि ऐसी हुयी ≡७।२णृणृणृ / २णृणृणृ।णृ।२ । सो यहां धनराशि और ऋणराशि में असंख्यातलोक और तीन बार संख्यात गुणित आवली इनको समान जानकर धनराशि में जो संख्यात और दो का गुणकार आगे था उसमें से एक घटाया तब यह सर्व ऋणराशि धनराशि में से घट गयी, क्योंकि वह गुणकार ऋणराशिप्रमाण गुण्य का है ।

[≡ ə।२ ળૃળૃળૃ।ળૃ।२ / २ ળૃળૃળૃ।ળૃ।२ (धनराशि) − ≡ ə।२ ળૃળૃળૃ / २ ળૃળૃળૃ।ળૃ।२ (ऋणराशि) = ≡ ə।२ ળૃળૃળૃ।ળૃ।२ (ऊपर १ ∩) / २ ળૃળૃળૃ।ળૃ।२]

पुनश्च अलग स्थापित किया हुआ ऋणराशि का ऋण, सो 'ऋणस्य ऋणं राशेर्धनं' इस वचन से इसको धनराशि में जोड़ते हैं । इस अलग से स्थापित ऋण के ऋण की और धनराशि के असंख्याततलोक की समानता देखकर असंख्यात लोक के आगे जो गुणकार था उसके ऊपर एक अधिक करते हैं । क्योंकि यह गुणकार उस ऋणराशि के ऋण प्रमाण गुण्य का है । ऐसे सर्वधन में से चयधन घटानेपर आदिधन ऐसा

१ / ≡ ə।२ ળૃળૃળૃ।ળૃ।२ (ऊपर १ ∩) / २ ળૃળૃળૃ।ળૃ।२ । यहां असंख्यात लोक के गुणकार के ऊपर एक अधिक की संदृष्टि तो असंख्यात लोक के आगे जो सर्व गुणकार थे उनके ऊपर जाननी तथा संख्यात और दो इन गुणकार के ऊपर जो एक कम की संदृष्टि सो इन्हीं के ऊपर जाननी । ऐसे ही आगे भी समझना।

इसको गच्छ ऐसा २ળૃળૃ, उसका भाग देनेपर प्रथम समय संबंधी प्रमाण पुंज की संदृष्टि ऐसी १ / ≡ ə।२ ળૃળૃળૃ।ળૃ।२ (ऊपर १ ∩) / २ ળૃળૃ।२ ળૃળૃળૃ।ળૃ।२ । पुनश्च इसके ऊर्ध्वचय का प्रमाण ऐसा ≡ ə / २ ળૃળૃ।२ ળૃળૃળૃ।ળૃ, उसको मिलानेपर द्वितीय समय संबंधी परिणाम पुंज होता है, उसे यहां समच्छेद विधान द्वारा मिलाते हैं । सो दोनों राशियों के अन्य हार तो समान हैं और दो का हार समान नहीं है, इसलिये दो से समच्छेद करनेपर मिलाने योग्य धन ऐसा ≡ ə।२ / २ ળૃળૃ।२ ળૃળૃળૃ।ળૃ।२ हुआ । यहां दोनों राशियों में असंख्यात लोक की समानता देखकर आगे गुणकार में जहां एक के अधिक की अधिकता थी वहां इस

धन का दो का गुणकार मिलानेपर तीन की अधिकता करनेपर द्वितीय समय संबंधी

परिणाम पुंज की संदृष्टि ऐसी $\dfrac{3}{\dfrac{\equiv \text{ə।२ગૃગૃગૃ।}\overset{\text{१ ∩}}{\overline{\text{ગૃ।२}}}}{\text{२ગૃગૃગૃ।२ગૃગૃગૃ।ગૃ।२}}}$ ।

[**विशेषार्थ** – आदिधन ÷ गच्छ = प्रथम समय संबंधी परिणाम पुंज

$$\dfrac{1}{\dfrac{\equiv \text{ə।२ગૃગૃગૃ।}\overset{\text{१ ∩}}{\overline{\text{ગૃ।२}}}}{\text{२ગૃગૃગૃ।ગૃ।२}}} \div \text{२ગૃગૃ} = \dfrac{1}{\dfrac{\equiv \text{ə।२ગૃગૃગૃ।}\overset{\text{१ ∩}}{\overline{\text{ગૃ।२}}}}{\text{२ગૃગૃગૃ।२ગૃગૃગૃ।ગૃ।२}}}$$

प्रथम समय संबंधी परिणाम पुंज + चय = द्वितीय समय संबंधी परिणाम पुंज

$$\dfrac{1}{\dfrac{\equiv \text{ə।२ગૃગૃગૃ।}\overset{\text{१ ∩}}{\overline{\text{ગૃ।२}}}}{\text{२ગૃગૃગૃ।२ગૃગૃગૃ।ગૃ।२}}} + \dfrac{\equiv \text{ə}}{\text{२ગૃગૃગૃ।२ગૃગૃગૃ।ગૃ}}$$

समच्छेद करने के लिये चय के अंश और हार को दो से गुणा करेंगे ।
ऐसा करनेपर -

$$\dfrac{1}{\dfrac{\equiv \text{ə।२ગૃગૃગૃ।}\overset{\text{१ ∩}}{\overline{\text{ગૃ।२}}}}{\text{२ગૃગૃગૃ।२ગૃગૃગૃ।ગૃ।२}}} + \dfrac{\equiv \text{ə।२}}{\text{२ગૃગૃગૃ।२ગૃગૃગૃ।ગૃ।२}}$$

जोड़ने पर -

$$\dfrac{3}{\dfrac{\equiv \text{ə।२ગૃગૃગૃ।}\overset{\text{१ ∩}}{\overline{\text{ગૃ।२}}}}{\text{२ગૃગૃગૃ।२ગૃગૃગૃ।ગૃ।२}}}$$]

ऐसे ही समयसमय प्रति करना । वहां एक कम गच्छ से गुणित चय को प्रथम समय संबंधी परिणाम पुंज में मिलानेपर अंतिम समय संबंधी परिणाम पुंज होता है । सो एक कम गच्छ

ऐसा (१ / २ॡॡ⌒ॡ) उससे गुणित चय ऐसा ≡ a । (१ / २ॡॡॡ) / (२ॡॡ । २ॡॡॡ । ॡ) और प्रथम समय संबंधी परिणाम पुंज ऐसा ≡ a । २ॡॡॡ । (१ ⌒ / ॡ । २) − १ / (२ॡॡ । २ॡॡॡ । ॡ । २) ।

सो इन दोनों के अन्य हार तो समान हैं, दो का हार समान नहीं है। इसलिये दो से समच्छेद करनेपर मिलाने योग्य धनराशि ऐसी हुयी ≡ a । २ॡॡॡ । २ (१ ⌒) / (२ॡॡ । २ॡॡॡ । ॡ । २) । यहां गुणकार में एक घटाया है और उसके आगे दो का गुणकार है इसलिये इस ऋणरूप राशि (एक) का प्रमाण ऐसा ≡ a । २ / (२ॡॡ । २ॡॡॡ । ॡ । २) । इसको जुदा स्थापित करनेपर अवशेष धन ऐसा ≡ a । २ॡॡॡ । २ / (२ॡॡ । २ॡॡॡ । ॡ । २) हुआ, सो इसके और प्रथम समय संबंधी परिणाम पुंज के ऐसा ≡ a । २ॡॡॡ समान है आगे (१ ⌒ / ॡ । २) ऐसा गुणकार समान नहीं है, सो इसके ऊपर एक कम है सो यह ऐसे ≡ a । २ॡॡॡ प्रमाण गुण्य के गुणकार में हीन है और धनराशि में ऐसे ही प्रमाण का दो गुणकार है। इसलिये उस दो गुणकार में से एक घटानेपर उस आगे के ऐसे ॡ । २ गुणकार में अवशेष एक की अधिकता करनी (१ / ॡ । २) । पुनश्च यहां ऋणराशि को जुदा स्थापित किया था वहां 'धनस्य ऋणं राशेः ऋणं भवति' इस न्याय से मिलाने योग्य राशि का ऋण अपने हार सहित असंख्यात लोक के आगे दो का गुणकाररूप था उसको जो मूलराशि में असंख्यात लोक के आगे गुणकार थे उनमें से घटाना । सो पहले असंख्यात लोक के आगे गुणकार में एक अधिक था उसको दूर करना और अवशेष एक और घटाना । ऐसे करनेपर अंतिम समय संबंधी परिणाम पुंज की संदृष्टि ऐसी ≡ a । २ॡॡॡ । (१ / ॡ । २) − १ ⌒ / (२ॡॡ । २ॡॡॡ । ॡ । २) ।

[**विशेषार्थ** - (१ कम गच्छ X चय) + प्रथम समय संबंधी परिणाम पुंज
= अंतिम समय संबंधी परिणाम पुंज

$$\frac{\text{१}\ \cap}{\text{२गृगृ}} \times \frac{\equiv \text{ə}}{\text{२गृगृ।२गृगृ।गृ}} + \frac{\overset{\text{१}}{\overline{\equiv \text{ə।२गृगृ।}\overset{\text{१}\ \cap}{\overline{\text{गृ।२}}}}}}{\text{२गृगृ।२गृगृ।गृ।२}}$$

$$\frac{\equiv \text{ə।}\overset{\text{१}\ \cap}{\overline{\text{२गृगृ}}}}{\text{२गृगृ।२गृगृ।गृ}} + \frac{\overset{\text{१}}{\overline{\equiv \text{ə।२गृगृ।}\overset{\text{१}\ \cap}{\overline{\text{गृ।२}}}}}}{\text{२गृगृ।२गृगृ।गृ।२}}$$

समच्छेद करनेपर

$$\frac{\equiv \text{ə।}\overset{\text{१}\ \cap}{\overline{\text{२गृगृ।२}}}}{\text{२गृगृ।२गृगृ।गृ।२}} + \frac{\overset{\text{१}}{\overline{\equiv \text{ə।२गृगृ।}\overset{\text{१}\ \cap}{\overline{\text{गृ।२}}}}}}{\text{२गृगृ।२गृगृ।गृ।२}}$$

एक कम को जुदा स्थापना

$$\underset{\text{धनराशि}}{\frac{\equiv \text{ə।२गृगृ।२}}{\text{२गृगृ।२गृगृ।गृ।२}}} - \underset{\text{ऋणराशि}}{\frac{\equiv \text{ə।२}}{\text{२गृगृ।२गृगृ।गृ।२}}} + \underset{\text{धनराशि}}{\frac{\overset{\text{१}}{\overline{\equiv \text{ə।२गृगृ।}\overset{\text{१}\ \cap}{\overline{\text{गृ।२}}}}}}{\text{२गृगृ।२गृगृ।गृ।२}}}$$

दो धनराशि का जोड़

$$\frac{\equiv \text{ə।२गृगृ।२}}{\text{२गृगृ।२गृगृ।गृ।२}} + \frac{\overset{\text{१}}{\overline{\equiv \text{ə।२गृगृ।}\overset{\text{१}\ \cap}{\overline{\text{गृ।२}}}}}}{\text{२गृगृ।२गृगृ।गृ।२}} = \frac{\overset{\text{१}}{\overline{\equiv \text{ə।२गृगृ।}\overset{\text{१}}{\overline{\text{गृ।२}}}}}}{\text{२गृगृ।२गृगृ।गृ।२}}$$

जोड़रूप धनराशि – ऋणराशि

$$\frac{\overset{\text{१}}{\overline{\equiv \text{ə।२गृगृ।}\overset{\text{१}}{\overline{\text{गृ।२}}}}}}{\text{२गृगृ।२गृगृ।गृ।२}} - \frac{\equiv \text{ə।२}}{\text{२गृगृ।२गृगृ।गृ।२}} = \frac{\overset{\text{१}\ \ \cap}{\overline{\equiv \text{ə।२गृगृ।}\overset{\text{१}}{\overline{\text{गृ।२}}}}}}{\text{२गृगृ।२गृगृ।गृ।२}}$$

अंतिम समय संबंधी परिणाम पुंज]

इसमें से दो के समच्छेद से एक चय ऐसा ≡ ə।२ / २ગૃગૃ।२ગૃગૃગૃ।ગૃ।२ इसको घटानेपर असंख्यातलोक के आगे गुणकार के ऊपर जहां एक कम था वहां तीन कम करने से उपांत समय संबंधी परिणाम पुंज की संदृष्टि ऐसी जाननी-

३ ∩ / १

≡ə।२ગૃગૃગૃ।ગૃ।२ / २ગૃગૃ।२ગૃગૃગૃ।ગૃ।२ ।

[**विशेषार्थ –** अंतिम समय संबंधी परिणाम पुंज – एक चय = उपांत समय संबंधी परिणाम पुंज

१ ∩ / १ — ≡ə।२ગૃગૃગૃ।ગૃ।२ / २ગૃગૃ।२ગૃગૃગૃ।ગૃ।२ – ≡ə।२ / २ગૃગૃ।२ગૃગૃગૃ।ગૃ।२ = ३ ∩ / १ — ≡ə।२ગૃગૃગૃ।ગૃ।२ / २ગૃગૃ।२ગૃગૃગૃ।ગૃ।२]

इसप्रकार अध:प्रवृत्तकरण के समय समय संबंधी ऊर्ध्वरचना में संदृष्टि जाननी।

अब अनुकृष्टि को कहते हैं - सो जैसे आगे अंकसंदृष्टि द्वारा अनुकृष्टि का गच्छ (४) है, इसका भाग ऊर्ध्वचय ४ को देनेपर ४/४, अनुकृष्टि का चय १ होता है । पुनश्च एक कम गच्छ ३ का आधा ३/२ को चय १ से तथा गच्छ ४ से गुणा करनेपर चयधन ३।४।१ / २ होता है । इसको प्रथमादि समय संबंधी परिणाम पुंज में से घटाकर अवशेष को गच्छ का भाग देनेपर प्रथम खण्ड का प्रमाण होता है । एक एक चय बढ़ानेपर द्वितीयादि खण्ड का प्रमाण होता है । इसीप्रकार अर्थसंदृष्टि द्वारा यहां अध:प्रवृत्तकरण काल के संख्यातवें भाग मात्र अनुकृष्टि गच्छ है, सो संख्यात का अपवर्तन करनेपर दो बार संख्यात गुणित आवली प्रमाण ऐसा है २ગૃગૃ । पुनश्च इसका भाग ऊर्ध्वचय ऐसा ≡ə / २ગૃગૃ।२ગૃગૃગૃ।ગૃ उसको देनेपर अनुकृष्टि चय ऐसा

≡ə / २ગૃગૃ।२ગૃગૃગૃ।ગૃ।२ગૃગૃ ।

[**विशेषार्थ -** अनुकृष्टि गच्छ २ गृगृ

ऊर्ध्वचय ÷ अनुकृष्टि गच्छ = अनुकृष्टि चय

≡ ə
२ गृगृगृ । २ गृगृगृ । गृ ÷ २ गृगृ = ≡ ə
२ गृगृगृ । २ गृगृगृ । गृ । २ गृगृ]

पुनश्च एक कम गच्छ का आधा ऐसा (१ ∩ / २ गृगृ) / २, इसको चय से तथा गच्छ से गुणा

करनेपर चयधन ऐसा होता है ≡ ə । २ गृगृ (१ ∩) । २ गृगृ / २ गृगृगृ । २ गृगृगृ । गृ । २ गृगृ । २ । यहां दो बार संख्यात

गुणित आवली को भाज्य और भागहार में समान देखकर अपवर्तन करनेपर ऐसा हुआ

१ ∩
≡ ə । २ गृगृ
२ गृगृगृ । २ गृगृगृ । गृ । २

[**विशेषार्थ –** चयधन = (एक कम गच्छ / २) x चय x गच्छ

(१ ∩ / २ गृगृ) / २ x ≡ ə / २ गृगृगृ । २ गृगृगृ । गृ । ~~२ गृगृ~~ x ~~२ गृगृ~~ = ≡ ə । २ गृगृ (१ ∩) / २ गृगृगृ । २ गृगृगृ । गृ । २]

इस चयधन को प्रथम समय संबंधी परिणाम पुंज ऐसा ≡ ə । २ गृगृगृ । गृ । २ (१ / १ ∩) / २ गृगृगृ । २ गृगृगृ । गृ । २ उसमें

से घटाना । सो यहां ऋणराशि के गुणकार के ऊपर एक कमरूप ऋण का ऋण

ऐसा ≡ ə / २ गृगृगृ । २ गृगृगृ । गृ । २ उसको जुदा रखकर अवशेष ऋण ऐसा

≡ ə । २ गृगृ / २ गृगृगृ । २ गृगृगृ । गृ । २ । सो धनराशि और इस राशि में ऐसा ≡ ə । २ गृगृ

गुण्य समान देखकर धनराशि में उसके आगे ऐसे $\dfrac{१\ ∩}{\dfrac{१\ ∩}{\text{ॠ।ॠ।२}}}$ गुणकार के ऊपर एक कम की संदृष्टि करने से उसका घटाना होता है। पुनश्च 'ऋणस्य ऋणं राशेर्धनं' इस वचन से जो ऋण का ऋण जुदा रखा था उसके और इस राशि के असंख्यात लोक की समानता देखकर असंख्यात लोक के आगे गुणकार के ऊपर जहां एक का अधिकपना था वहां दो अधिक करने। ऐसे करनेपर चयधन से हीन सर्वधन ऐसा $\dfrac{\equiv ə\text{।२ॠॠ।ॠ।२}\ \dfrac{२}{\dfrac{१\ ∩}{१\ ∩}}}{\text{२ॠॠ।२ॠॠ।ॠ।२}}$ हुआ। उसका अनुकृष्टि गच्छ ऐसा **२ॠ** उसका भाग देनेपर प्रथम समय संबंधी प्रथम खण्ड का प्रमाण ऐसा होता है $\dfrac{\equiv ə\text{।२ॠॠ।ॠ।२}\ \dfrac{२}{\dfrac{१\ ∩}{१\ ∩}}}{\text{२ॠॠ।२ॠॠ।ॠ।२।२ॠ}}$

[**विशेषार्थ** – प्रथम समय संबंधी परिणाम पुंज – चयधन = आदिधन

$$\dfrac{\equiv ə\text{।२ॠॠ।ॠ।२}\ \dfrac{१}{१\ ∩}}{\text{२ॠॠ।२ॠॠ।ॠ।२}} - \dfrac{\equiv ə\text{।२ॠ।२ॠ}\ \dfrac{१\ ∩}{}}{\text{२ॠॠ।२ॠॠ।ॠ।२ॠ।२}} = \text{आदिधन}$$

$$\dfrac{\equiv ə\text{।२ॠॠ।ॠ।२}\ \dfrac{१}{१\ ∩}}{\text{२ॠॠ।२ॠॠ।ॠ।२}} - \dfrac{\equiv ə\text{।२ॠ}}{\text{२ॠॠ।२ॠॠ।ॠ।२}} \mp \dfrac{\equiv ə}{\text{२ॠॠ।२ॠॠ।ॠ।२}} = \text{आदिधन}$$

$$\dfrac{\equiv ə\text{।२ॠॠ।ॠ।२}\ \dfrac{१}{\dfrac{१\ ∩}{१\ ∩}}}{\text{२ॠॠ।२ॠॠ।ॠ।२}} + \dfrac{\equiv ə}{\text{२ॠॠ।२ॠॠ।ॠ।२}} = \dfrac{\equiv ə\text{।२ॠॠ।ॠ।२}\ \dfrac{२}{\dfrac{१\ ∩}{१\ ∩}}}{\text{२ॠॠ।२ॠॠ।ॠ।२}}$$

आदिधन ÷ अनुकृष्टि गच्छ = प्रथम समय संबंधी प्रथम खण्ड

२
१ ∩
१ ∩
≡ ə । २ ॢ ॢ ॢ । ॢ । २
२ ॢ ॢ ॢ । २ ॢ ॢ ॢ । ॢ । २ । २ ॢ ॢ]

इसमें अनुकृष्टि चय मिलाना (प्रथम खण्ड + अनुकृष्टि चय = द्वितीय खण्ड) सो अन्य भागहार समान जानकर दो से समच्छेदन किया हुआ अनुकृष्टि चय ऐसा हुआ

≡ ə । २
२ ॢ ॢ ॢ । २ ॢ ॢ ॢ । २ ॢ ॢ ॢ । २

। सो दोनों के भागहार सहित असंख्यात लोक की समानता देखकर आगे के गुणकार में जोड़ने । इसलिये जहां दो अधिक की संदृष्टि थी, वहां चार अधिक की संदृष्टि करनेपर द्वितीय खण्ड के प्रमाण की संदृष्टि ऐसी

४
१ ∩
१ ∩
≡ ə । २ ॢ ॢ ॢ । ॢ । २
२ ॢ ॢ ॢ । २ ॢ ॢ ॢ । ॢ । २ ॢ ॢ । २

।

[**विशेषार्थ** - प्रथम खण्ड + अनुकृष्टि चय = द्वितीय खण्ड

२
१ ∩
१ ∩
≡ ə । २ ॢ ॢ ॢ । ॢ । २
२ ॢ ॢ ॢ । २ ॢ ॢ ॢ । ॢ । २ ॢ ॢ । २

\+ ≡ ə । २
२ ॢ ॢ ॢ । २ ॢ ॢ ॢ । ॢ । २ ॢ ॢ । २

४
१ ∩
१ ∩
= ≡ ə । २ ॢ ॢ ॢ । ॢ । २
२ ॢ ॢ ॢ । २ ॢ ॢ ॢ । ॢ । २ ॢ ॢ । २]

ऐसे ही आगे भी असंख्यात लोक के आगे गुणकार के ऊपर दो दो अधिक

की संदृष्टि करनेपर एक एक चय अधिक होता है । सो एक एक चय अधिक होनेपर तृतीयादि खण्ड होते हैं। प्रथम खण्ड में एक कम गच्छमात्र चय मिलनेपर अंतिम खण्ड होता है, सो एक कम गच्छ से गुणित अनुकृष्टि चय ऐसा

१ ∩
≡ ә।२ ળૃળૃ
२ ળૃળૃળૃ। २ ળૃળૃળૃ।ળૃ।२ળૃળૃ

। सो प्रथम खण्ड के और इसके अन्य हार समान है । इसलिये असमान हार दो से समच्छेद करनेपर ऐसा होता है -

१ ∩
≡ ә।२ળૃળૃ।२
२ ળૃળૃળૃ। २ ળૃળૃળૃ।ળૃ।२ળૃળૃ।२

। इसको प्रथम खण्ड का प्रमाण ऐसा –

२
१ ∩
१ ∩
≡ ә।२ળૃળૃળૃ।ળૃ।२
२ ળૃળૃળૃ। २ ળૃળૃળૃ।ળૃ।२ળૃળૃ।२

उसमें मिलाना । सो मिलाने योग्य धनराशि में असंख्यात लोक के आगे गुणकार में एक कम है और आगे दो का गुणकार है। सो अपने भागहार सहित असंख्यात लोक दोगुणा प्रमाण यह ऋण हुआ और मूलराशि में असंख्यात लोक के आगे गुणकार में दो अधिक थे सो इन दोनों का समान प्रमाण देखकर अपवर्तन किया तब धनराशि ऐसी हुयी

≡ ә।२ળૃળૃ।२
२ ળૃળૃળૃ। २ ળૃળૃળૃ।ળૃ।२ળૃળૃ।२

और मूलराशि ऐसी हुयी उसकी संदृष्टि

१ ∩
१ ∩
≡ ә।२ળૃળૃળૃ।ળૃ।२
२ ળૃળૃળૃ। २ ળૃળૃળૃ।ળૃ।२ળૃળૃ।२

इन दोनों में असंख्यात लोक और दो बार संख्यात गुणित आवली की समानता देखकर आगे धनराशि में जो दो का गुणकार था उसमें मूलराशि में जो आगे गुणकारों के ऊपर एक कम था उसे दूर करके, अवशेष एक को उन गुणकारों के ऊपर अधिक करनेपर अंतिम खण्ड के प्रमाण की संदृष्टि ऐसी होती है -

१
१ ∩
≡ ә।२ળૃળૃળૃ।ળૃ।२
२ ળૃળૃળૃ। २ ળૃળૃળૃ।ળૃ।२ળૃળૃ।२

[**विशेषार्थ** – प्रथमखण्ड + (अनुकृष्टिचय X १ कम अनुकृष्टिगच्छ) = अंतिम खण्ड

(समच्छेद करनेपर)

```
       २
   ──────────
       १ ∩
      ───────
        १ ∩                       १ ∩
≡ ə । २ णृ णृ । णृ । २        + ≡ ə । २ णृ णृ । २
२ णृ णृ । २ णृ णृ । २ णृ णृ । २   २ णृ णृ । २ णृ णृ । २ णृ णृ । २
```

मूलराशि + धनराशि – ऋणराशि

```
       २
   ──────────
       १ ∩
      ───────
        १ ∩
≡ ə । २ णृ णृ । णृ । २    + ≡ ə । २ णृ णृ । २    – ≡ ə । २
२ णृ णृ । २ णृ णृ । २ णृ णृ । २  २ णृ णृ । २ णृ णृ । २ णृ णृ । २  २ णृ णृ । २ णृ णृ । २ णृ णृ । २
```

मूलराशि में से ऋणराशि बाद करनेपर (दो अधिक की संदृष्टि निकल गयी)

```
       १ ∩
      ───────
        १ ∩
≡ ə । २ णृ णृ । णृ । २        + ≡ ə । २ णृ णृ । २
२ णृ णृ । २ णृ णृ । २ णृ णृ । २    २ णृ णृ । २ णृ णृ । २ णृ णृ । २
```

```
       १
      ───────
        १ ∩
≡ ə । २ णृ णृ । णृ । २
२ णृ णृ । २ णृ णृ । २ णृ णृ । २
```

अंतिम खण्ड]

इसमें से दो से समच्छेद किया हुआ अनुकृष्टि चय घटाना, सो असंख्यात के आगे गुणकारों के ऊपर दो कम की संदृष्टि करनेपर उपांत खण्ड की संदृष्टि ऐसी –

```
     २ ∩
   ──────────
       १
      ───────
        १ ∩
≡ ə । २ णृ णृ । णृ । २
२ णृ णृ । २ णृ णृ । २ णृ णृ । २
```

होती है ।

[**विशेषार्थ** - अंतिम खण्ड – चय = उपांत खण्ड

१
१ ∩
≡ ə । २ गृगृगृ । गृ । २ – ≡ ə । २ (समच्छेद करनेपर चय)
२ गृगृगृ । २ गृगृगृ । २ गृगृगृ । २ 	२ गृगृगृ । २ गृगृगृ । २ गृगृगृ । २

२ ∩
१
१ ∩
≡ ə । २ गृगृगृ । गृ । २
२ गृगृगृ । २ गृगृगृ । २ गृगृगृ । २]

पुनश्च जो प्रथम समय संबंधी द्वितीय खण्ड की संदृष्टि है वही द्वितीय समय संबंधी प्रथम अनुकृष्टि खण्ड की संदृष्टि ऐसी

४
१ ∩
१ ∩
≡ ə । २ गृगृगृ । गृ । २
२ गृगृगृ । २ गृगृगृ । गृ । २ गृगृ । २

जाननी। क्योंकि द्वितीय समय संबंधी परिणाम पुंज ऐसा

३
१ ∩
≡ ə । २ गृगृगृ । गृ । २
२ गृगृगृ । २ गृगृगृ । गृ । २

उसमें से चयधन ऐसा

१ ∩
≡ ə । २ गृगृ
२ गृगृगृ । २ गृगृगृ । गृ । २

घटाना । वहां ऋण के ऋण को धन करनेपर अवशेष प्रमाण ऐसा हुआ

४
१ ∩
१ ∩
≡ ə । २ गृगृगृ । गृ । २
२ गृगृगृ । २ गृगृगृ । गृ । २

उसको अनुकृष्टि गच्छ ऐसा २ गृगृ

उसका भाग देनेपर प्रथम खण्ड होता है ।

[**विशेषार्थ** - द्वितीय समय संबंधी परिणाम पुंज - चयधन = आदिधन

```
         ३
   -------------
          १ ∩
         -----                  १ ∩
 ≡ a।२નૃનૃનૃ।નૃ।२         -  ≡ a।२નૃનૃ
 २નૃનૃ।२નૃનૃનૃ।નૃ।२         २નૃનૃ।२નૃનૃનૃ।નૃ।२

         ३
   -------------
          १ ∩
 ≡ a।२નૃનૃનૃ।નૃ।२     - ≡ a।२નૃનૃ                 ∓ ≡ a
 २નૃનૃ।२નૃનૃનૃ।નૃ।२     २નૃનૃ।२નૃનૃનૃ।નૃ।२        २નૃનૃ।२નૃનૃનૃ।નૃ।२
```

मूलराशि में ऋण का ऋण धन होता है उसे मिलानेपर -

```
         ४
   -------------
          १ ∩
 ≡ a।२નૃનૃનૃ।નૃ।२     - ≡ a।२નૃનૃ
 २નૃનૃ।२નૃનૃનૃ।નૃ।२     २નૃનૃ।२નૃનૃનૃ।નૃ।२

         ४
   -------------
          १ ∩
        -------
          १ ∩          आदिधन
 ≡ a।२નૃનૃનૃ।નૃ।२
 २નૃનૃ।२નૃનૃનૃ।નૃ।२
```

आदिधन ÷ अनुकृष्टि गच्छ = द्वितीय समय संबंधी प्रथम खण्ड

```
         ४
   -------------
          १ ∩
        -------
          १ ∩
 ≡ a।२નૃનૃનૃ।નૃ।२
 २નૃનૃ।२નૃનૃનૃ।નૃ।२।२નૃ
```
]

इसमें दो से समच्छेद किया हुआ अनुकृष्टि चय मिलाना, सो असंख्यात लोक के आगे गुणकारों के ऊपर चार की जगह छह की अधिकता करनेपर द्वितीय खण्ड

६
―――――
१ ∩
―――
१ ∩

की संदृष्टि ऐसी ≡ ७।२ aaa।a।२
२aa।२aaa।a।२।२aa

[**विशेषार्थ** - प्रथम खण्ड + अनुकृष्टि चय = द्वितीय खण्ड

४
―――――
१ ∩
―――
१ ∩

≡ ७।२aaa।a।२ + ≡ ७।२ (समच्छेद करनेपर चय)
२aa।२aaa।a।२aa।२ २aaa।२aaa।२aaa।२

६
―――――
१ ∩
―――
१ ∩

≡ ७।२aaa।a।२
२aa।२aaa।२aaa।२]

इसीप्रकार एक एक खण्ड में एक एक चय बढाते हुये अंत में एक कम गच्छ

२
―――――
१
―――
१ ∩

प्रमाण चय मिलनेपर द्वितीय समय संबंधी अंतिम खण्ड ऐसा- ≡ ७।२aaa।a।२
२aaa।२aaa।a।२aa।२

[**विशेषार्थ** - द्वितीय समय का प्रथमखण्ड + एक कम अनुकृष्टि गच्छ से गुणित चय = द्वितीय समय का अंतिम खण्ड

(समच्छेद करनेपर)

४
१ ∩
१ ∩
≡ ३ । २ ॠॠॠ । ॠ । २ + ≡ ३ । २ ॠॠ । २
२ ॠॠॠ । २ ॠॠॠ । २ ॠॠॠ । २   २ ॠॠॠ । २ ॠॠॠ । २ ॠॠॠ । २

४
१ ∩
१ ∩
≡ ३ । २ ॠॠॠ । ॠ । २ + ≡ ३ । २ ॠॠ । २ − ≡ ३ । २
२ ॠॠॠ । २ ॠॠॠ । २ ॠॠॠ । २   २ ॠॠॠ । २ ॠॠॠ । २ ॠॠॠ । २   २ ॠॠॠ । २ ॠॠॠ । २ ॠॠॠ । २

२
१ ∩
१ ∩
≡ ३ । २ ॠॠॠ । ॠ । २ + ≡ ३ । २ ॠॠ । २
२ ॠॠॠ । २ ॠॠॠ । २ ॠॠॠ । २   २ ॠॠॠ । २ ॠॠॠ । २ ॠॠॠ । २

२
१
१ ∩
≡ ३ । २ ॠॠॠ । ॠ । २   द्वितीय समय का अंतिम खण्ड]
२ ॠॠॠ । २ ॠॠॠ । २ ॠॠॠ । २

यहां प्रथम समय संबंधी अंतिम खण्ड में दो से समच्छेद किया हुआ एक चय मिलाने के लिये असंख्यात लोक के आगे गुणकार के ऊपर दो अधिक की संदृष्टि जाननी।

पुनश्च इसमें से एक चय घटानेपर प्रथम समय संबंधी अंतिम खण्ड के समान

१
१ ∩
≡ ३ । २ ॠॠॠ । ॠ । २
द्वितीय समय संबंधी उपांत खण्ड की संदृष्टि ऐसी जाननी २ ॠॠॠ । २ ॠॠॠ । ॠ । २ ॠॠॠ । २

ऐसे ही समय समय प्रति खण्डों की रचना होनेपर अंतिम समय में समस्त परिणाम पुंज

१ ∩
१
ऐसा जानना ≡ ७ । २ ঀঀঀ । ঀ । २ इसमें से अपवर्तन किया हुआ अनुकृष्टि चयधन
२ ঀঀঀ । २ ঀঀঀ । ঀ । २

१ ∩
ऐसा ≡ ७ । २ ঀঀ घटाना । सो ऋण के ऋण को राशि का धन करके
२ ঀঀঀ । २ ঀঀঀ । ঀ । २

राशि में असंख्यात लोक के आगे गुणकार के ऊपर एक कम था उसको दूर करना तथा अवशेष ≡ ७ । २ ঀঀ प्रमाण दोनों जगह समान देखकर राशि में इसके आगे

१
गुणकार ऐसा ঀ । ঀ । २ उसके ऊपर एक कम करनेपर (अंतिम समय संबंधी आदिधन आयेगा इसको अनुकृष्टि गच्छ से भाग देनेपर) अंतिम समय संबंधी प्रथम खण्ड ऐसा

१ ∩
१
जानना ≡ ७ । २ ঀঀঀ । ঀ । २
२ ঀঀঀ । २ ঀঀঀ । ঀ । २ ঀঀ । २

[**विशेषार्थ** - अंतिम समय का परिणाम पुंज – चयधन = आदिधन

१ ∩ १ ∩
१
≡ ७ । २ ঀঀঀ । ঀ । २ – ≡ ७ । २ ঀঀ
२ ঀঀঀ । २ ঀঀঀ । ঀ । २ २ ঀঀঀ । २ ঀঀঀ । ঀ । २

१ ∩
१
≡ ७ । २ ঀঀঀ । ঀ । २ – ≡ ७ । २ ঀঀ ∓ ≡ ७
२ ঀঀঀ । २ ঀঀঀ । ঀ । २ २ ঀঀঀ । २ ঀঀঀ । ঀ । २ २ ঀঀঀ । २ ঀঀঀ । ঀ । २

१
≡ ७ । २ ঀঀঀ । ঀ । २ – ≡ ७ । २ ঀঀ
२ ঀঀঀ । २ ঀঀঀ । ঀ । २ २ ঀঀঀ । २ ঀঀঀ । ঀ । २

१ ∩
१
≡ ७ । २ ঀঀঀ । ঀ । २ आदिधन ।
२ ঀঀঀ । २ ঀঀঀ । ঀ । २

आदिधन ÷ गच्छ = प्रथम खण्ड । गच्छ = २aa

इसलिये प्रथम खण्ड ऐसा

$$\equiv ə।२aaa।a।२ \times \frac{१ ∩}{१} \Big/ २aaa।२aaa।a।२aa।२$$

इसमें दो से समच्छेद किया हुआ अनुकृष्टि चय मिलाने के लिये असंख्यात लोक के आगे गुणकार के ऊपर दो अधिक की संदृष्टि करनेपर उसके दूसरे खण्ड का प्रमाण

ऐसा होता है -

$$\equiv ə।२aaa।a।२ \times \frac{२}{\frac{१ ∩}{१}} \Big/ २aaa।२aaa।a।२aa।२$$

[**विशेषार्थ** - अंतिम समय का प्रथम खण्ड + चय = द्वितीय खण्ड

$$\equiv ə।२aaa।a।२ \times \frac{१ ∩}{१} \Big/ २aaa।२aaa।२aaa।२ \; + \; \equiv ə।२ \Big/ २aaa।२aaa।२aaa।२ \quad \text{(समच्छेद)}$$

$$\equiv ə।२aaa।a।२ \times \frac{२}{\frac{१ ∩}{१}} \Big/ २aaa।२aaa।२aaa।२$$]

ऐसे ही क्रम होनेपर दो से समच्छेद किया हुआ एक कम गच्छ प्रमाण अनुकृष्टि

चय ऐसा

$$\equiv ə।\overline{२aa}^{\,१ ∩}।२ \Big/ २aaa।२aaa।a।२aa।२$$

उसको प्रथम खण्ड में मिलाना । सो यहां

धनराशि का ऋण ऐसा ≡ ə।२ / २गृगृ।२गृगृगृ।गृ।२गृगृ।२ उसको जुदा रखनेपर अवशेष ऐसा ≡ ə।२गृगृ।२ / २गृगृगृ।२गृगृगृ।गृ।२गृगृ।२ उनमें ऐसा ≡ ə।२गृगृ को दोनों जगह समान देखकर, इसके आगे राशि में गुणकार के ऊपर जहां एक कम था, वहां धनराशि का दो मिलानेपर एक का अधिकपना करना और ऋणरूप दो जुदे रखे थे उनको घटाने को असंख्यात लोक के आगे गुणकारों के ऊपर दो कम की संदृष्टि करनी। ऐसे करनेपर अंतिम समय संबंधी अंतिम खण्ड के प्रमाण की संदृष्टि ऐसी –

२ ∩
१
१
≡ ə।२गृगृगृ।गृ।२ |
२गृगृगृ।२गृगृगृ।२गृगृगृ।२

[**विशेषार्थ** - प्रथमखण्ड + एक कम गच्छ गुणित चय = अंतिम खण्ड

(समच्छेद करनेपर)

१ ∩
१
≡ ə।२गृगृगृ।गृ।२ / २गृगृगृ।२गृगृगृ।२गृगृगृ।२ + ≡ ə।२गृगृ।२ (ऊपर १ ∩) / २गृगृगृ।२गृगृगृ।२गृगृगृ।२

१ ∩
१
≡ ə।२गृगृगृ।गृ।२ / २गृगृगृ।२गृगृगृ।२गृगृगृ।२ + ≡ ə।२गृगृ।२ / २गृगृगृ।२गृगृगृ।२गृगृगृ।२ – ≡ ə।२ / २गृगृगृ।२गृगृगृ।२गृगृगृ।२

२ ∩
१ ∩
१
≡ ə।२गृगृगृ।गृ।२ / २गृगृगृ।२गृगृगृ।२गृगृगृ।२ + ≡ ə।२गृगृ।२ / २गृगृगृ।२गृगृगृ।२गृगृगृ।२

२ ∩
१
१
≡ ə।२गृगृगृ।गृ।२ / २गृगृगृ।२गृगृगृ।२गृगृगृ।२]

इसमें दो से समच्छेद किया हुआ एक चय घटाने के लिये असंख्यात लोक के आगे गुणकार के ऊपर जहां दो कम की संदृष्टि थी, वहां चार कम की संदृष्टि

४ ∩
१
१

करनेपरअंतिमसमयसंबंधीउपांतखण्डकीसंदृष्टिऐसीहोतीहै ≡ a।२ ग़ृग़ृग़ृ।ग़ृ।२
२ ग़ृग़ृ।२ ग़ृग़ृ।ग़ृ।२ग़ृग़ृ।२ ।

[**विशेषार्थ** - अंतिम खण्ड - चय = उपांत खण्ड

२ ∩
१
१
≡ a।२ ग़ृग़ृग़ृ।ग़ृ।२ − ≡ a।२
२ ग़ृग़ृ।२ ग़ृग़ृग़ृ।२ग़ृग़ृग़ृ।२   २ ग़ृग़ृग़ृ।२ ग़ृग़ृग़ृ।२ ग़ृग़ृग़ृ।२

४ ∩
१
१
≡ a।२ ग़ृग़ृग़ृ।ग़ृ।२
२ ग़ृग़ृ।२ ग़ृग़ृग़ृ।२ग़ृग़ृग़ृ।२]

पुनश्च अंतिम समय के प्रथम खण्ड की संदृष्टि में दो से समच्छेद किया हुआ एक अनुकृष्टि चय घटाने के लिये असंख्यात लोक के आगे गुणकार के ऊपर दो कम की संदृष्टि करनेपर उपांत समय संबंधी प्रथम खण्ड की संदृष्टि ऐसी होती है

२ ∩
१ ∩
१
≡ a।२ग़ृग़ृग़ृ।ग़ृ।२
२ ग़ृग़ृ।२ ग़ृग़ृग़ृ।ग़ृ।२।२ग़ृग़ृ

[**विशेषार्थ** - अंतिम समय का प्रथम खण्ड – चय = उपांत समय का प्रथम खण्ड

१ ∩
———
१
≡ ∂ । २ ॄॄॄ । ॄ । २
२ ॄॄॄ । २ ॄॄॄ । २ ॄॄॄ । २　–　≡ ∂ । २
　　　　　　　　　　　　　　　　　२ ॄॄॄ । २ ॄॄॄ । २ ॄॄॄ । २

२ ∩
———
१ ∩
———
१
≡ ∂ । २ ॄॄॄ । ॄ । २
२ ॄॄॄ । २ ॄॄॄ । २ ॄॄॄ । २　]

पुनश्च इसमें दो से समच्छेद किया हुआ अनुकृष्टि चय मिलाने के लिये असंख्यात लोक के आगे गुणकार के ऊपर दो कम किये थे, सो न करनेपर उपांत समय के द्वितीय खण्ड की संदृष्टि ऐसी होती है

१ ∩
———
१
≡ ∂ । २ ॄॄॄ । ॄ । २
२ ॄॄॄ । २ ॄॄॄ । ॄ । २ । २ ॄॄ

[**विशेषार्थ** - उपांत समय का प्रथम खण्ड + चय = उपांत समय का द्वितीय खण्ड

२ ∩
———
१ ∩
———
१
≡ ∂ । २ ॄॄॄ । ॄ । २
२ ॄॄॄ । २ ॄॄॄ । २ ॄॄॄ । २　+　≡ ∂ । २
　　　　　　　　　　　　　　　　　२ ॄॄॄ । २ ॄॄॄ । २ ॄॄॄ । २

१ ∩
———
१
= ≡ ∂ । २ ॄॄॄ । ॄ । २
　२ ॄॄॄ । २ ॄॄॄ । २ ॄॄॄ । २　]

ऐसे खण्ड खण्ड प्रति करते हुये दो से समच्छेद किये हुये एक कम गच्छ प्रमाण चय प्रथम खण्ड में जोड़नेपर, अंतिम खण्ड की संदृष्टि अंतिम समय के उपांत खण्ड

४ ∩
१
१

की संदृष्टि के समान ऐसी होती है ≡ ३।२गृगृ।गृ।२
२गृगृ।२गृगृ।२गृगृ।२

[**विशेषार्थ** - उपांत समय का प्रथमखण्ड + एक कम गच्छ प्रमाण चय
= उपांत समय का अंतिम खण्ड

२ ∩
१ ∩
१
≡ ३।२गृगृ।गृ।२
२गृगृ।२गृगृ।२गृगृ।२
+
१ ∩
≡ ३।२गृगृ।२
२गृगृ।२गृगृ।२गृगृ।२

२ ∩
१ ∩
१
≡ ३।२गृगृ।गृ।२
२गृगृ।२गृगृ।२गृगृ।२
+ ≡ ३।२गृगृ।२
२गृगृ।२गृगृ।२गृगृ।२
− ≡ ३।२
२गृगृ।२गृगृ।२गृगृ।२

ऋणराशि घटानेपर –

४ ∩
१ ∩
१
≡ ३।२गृगृ।गृ।२
२गृगृ।२गृगृ।२गृगृ।२
+ ≡ ३।२गृगृ।२
२गृगृ।२गृगृ।२गृगृ।२

४ ∩
१
१
≡ ३।२गृगृ।गृ।२
२गृगृ।२गृगृ।२गृगृ।२]

इसमें से दो से समच्छेद किया हुआ एक चय घटाने के लिये असंख्यात लोक के आगे गुणकार के ऊपर चार की जगह छह घटानेपर उपांत समय संबंधी उपांत

६ ∩
———
१
———
१
———

खण्ड की संदृष्टि ऐसी होती है ≡ ə।२ળૃળૃળૃ।ળૃ।२ ।
२ળૃળૃળૃ।२ળૃળૃળૃ।२ળૃળૃળૃ।२

[**विशेषार्थ** - उपांत समय का अंतिम खण्ड – चय = उपांत समय का उपांत खण्ड

४ ∩
———
१
———
१
———
≡ ə।२ળૃળૃળૃ।ળૃ।२　　–　≡ ə।२
२ળૃળૃળૃ।२ળૃળૃળૃ।२ળૃળૃળૃ।२　　२ળૃળૃળૃ।२ળૃળૃળૃ।२ળૃળૃળૃ।२

६ ∩
———
१
———
१
———
= ≡ ə।२ળૃળૃળૃ।ળૃ।२ ।
२ળૃળૃળૃ।२ળૃળૃળૃ।२ળૃળૃળૃ।२]

इसप्रकार समय समय संबंधी परिणाम पुंज की और उनके खण्डों की संदृष्टि अध:करण में जाननी । इनका जो यंत्र है उनमें प्रथम समय संबंधी जघन्य (प्रथम)

२
———
१ ∩
———
१ ∩
———

अनुकृष्टि खण्ड के परिणाम ऐसे ≡ ə।२ળૃળૃળૃ।ળૃ।२ ।
२ળૃળૃળૃ।२ળૃળૃળૃ।२ળૃળૃળૃ।२

इनका अपवर्तन करनेपर संख्यात प्रतरांगुल ४ળૃ से भाजित असंख्यात लोक मात्र होता है उनकी संदृष्टि ऐसी ≡ ə / ४ળૃ । पुनश्च एक अधिक सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग

ऐसा $\frac{१}{२}$ ə उसको तीन बार मांडनेपर उसका घन होता है और दो बार मांडनेपर वर्ग होता है । ऐसे घन और वर्ग का परस्पर गुणन करने के लिये पांच बार आगे आगे लिखते हैं $\frac{१}{२}\frac{१}{२}\frac{१}{२}\frac{१}{२}\frac{१}{२}$ əəəəə । सो इतने स्थानों में एक बार षट्स्थान होता है, तो इतने ≡ə / ४ ग्ृ परिणामों में कितनी बार होगा, ऐसा त्रैराशिक करनेपर लब्धराशि ऐसी ≡ə / ४ ग्ृ $\frac{१}{२}\frac{१}{२}\frac{१}{२}\frac{१}{२}\frac{१}{२}$ əəəəə होती है । ऐसे ही अन्य खण्डों में जानना । इसप्रकार अधःकरण में संदृष्टि कही।

अपूर्वकरण में अंकसंदृष्टि द्वारा समस्त परिणाम धन चार हजार छानबे **४०९६**, कालप्रमाण गच्छ आठ ८, संख्यात की संदृष्टि **४** जानकर, गच्छ आठ ८ का वर्ग **८X८=६४** और संख्यात **४** का भाग सर्वद्रव्य को देनेपर **४०९६ / ८।८।४** लब्धराशि मात्र चय **१६** होता है । पुनश्च एक कम गच्छ का आधा $\frac{८-१}{२}$ को चय **१६** और गच्छ ८ से गुणा करनेपर $\frac{८-१}{२}$।१६।८ चयधन **४४८** होता है । इसको सर्वधन **४०९६** में से घटाकर अवशेष **३६४८** को गच्छ का भाग देनेपर **३६४८ / ८ =[४५६]** लब्धराशिमात्र प्रथम समय संबंधी संख्या होती है। इसमें एक एक चय मिलनेपर द्वितीयादि समय संबंधी संख्या होती है, ऐसे ही एक कम गच्छमात्र चय **१६।८-१** मिलनेपर अंतिम समय संबंधी संख्या होती है।

[**विशेषार्थ** – अपूर्वकरण अंकसंदृष्टि –

सर्वपरिणाम **४०९६**, गच्छ ८ (समय), संख्यात **४**,

∴ **चय = ४०९६ / ८।८।४ = १६**

चयधन = $\frac{\text{एक कम गच्छ}}{२}$ x चय x गच्छ; $\frac{७}{२}$ x १६ x ८ = ४४८

सर्वधन - चयधन = आदिधन; ४०९६ - ४४८ = ३६४८

आदिधन ÷ गच्छ = प्रथम समय संबंधी परिणाम संख्या ३६४८ / ८ = ४५६

प्रथम समय संबंधी संख्या + चय = द्वितीय समय संबंधी संख्या

४५६ + १६ = ४७२

एक कम गच्छ प्रमाण चय मिलानेपर ४५६ + (१६x७) = ४५६ + ११२ = ५६८]

इसीप्रकार अर्थसंदृष्टि द्वारा समस्त परिणाम धन असंख्यातलोक से गुणित असंख्यातलोक मात्र ऐसा ≡ə≡ə। गच्छ दो बार संख्यात गुणित आवली प्रमाण अपूर्वकरण का कालमात्र ऐसा २ॠॠ, पुनश्च संख्यात ऐसा ॠ। सो गच्छ २ॠॠ के वर्ग २ॠॠ।२ॠॠ और संख्यात ॠ का सर्वद्रव्य ≡ə≡ə को भाग देनेपर चय ऐसा ≡ə≡ə / २ॠॠ।२ॠॠ।ॠ ।

पुनश्च एक कम गच्छ के आधे (१ ∩ / २ॠॠ) / २ को चय ≡ə≡ə / २ॠॠ।२ॠॠ।ॠ से तथा गच्छ २ॠॠ से गुणित करनेपर चयधन ऐसा ≡ə≡ə।(१ ∩ / २ॠॠ)।२ॠॠ / २ॠॠ।२ॠॠ।ॠ।२ होता है । यहां दो बार संख्यात गुणित आवली को भाज्य और भागहार में समान देखकर अपवर्तन करनेपर ऐसा ≡ə≡ə।(१ ∩ / २ॠॠ) / २ॠॠ।ॠ।२ होता है । इसको सर्वद्रव्य ≡ə≡ə में से घटाना।

सो समच्छेद विधान द्वारा मूलराशि ऐसी ≡ə≡ə।२ॠॠ।ॠ।२ / २ॠॠ।ॠ।२ और ऋणराशि ऐसी ≡ə≡ə।(१ ∩ / २ॠॠ) / २ॠॠ।ॠ।२ । सो ऋणराशि के गुणकार में एक कम है उसका प्रमाण ऐसा ≡ə≡ə / २ॠॠ।ॠ।२ । उसको जुदा रखकर अवशेष ऐसा ≡ə≡ə।२ॠॠ / २ॠॠ।ॠ।२ उसको मूलराशि

में समान देखकर मूलराशि में इसके आगे गुणकार ऐसा ॡ।२ उसके ऊपर एक कम की संदृष्टि करनी । जो ऋण का ऋण जुदा रखा था वह राशि का धन होता है सो असंख्यातलोक गुणित असंख्यात लोक को समान देखकर उसके आगे मूलराशि के गुणकारों के ऊपर एक अधिक की संदृष्टि करनी । इसप्रकार चयधन रहित सर्वधन

```
                          १
                       १ ∩
ऐसा होता है  ≡ə≡ə।२ॡॡ।ॡ।२।
             २ॡॡ।ॡ।२
```

[**विशेषार्थ** - अपूर्वकरण अर्थसंदृष्टि -

समस्त परिणाम धन ≡ə≡ə, गच्छ २ॡॡ, चय ≡ə≡ə / २ॡॡ।२ॡॡ।ॡ

```
                   १ ∩                         १ ∩
चयधन  ≡ə≡ə।२ॡॡ।~~२ॡॡ~~  =  ≡ə≡ə।२ॡॡ
      २ॡॡ।~~२ॡॡ~~।ॡ।२          २ॡॡ।ॡ।२
```

आदिधन = सर्वधन - चयधन ।

```
                 १ ∩
≡ə≡ə  -  ≡ə≡ə।२ॡॡ
         २ॡॡ।ॡ।२
```

समच्छेद करनेपर

```
≡ə≡ə।२ॡॡ।ॡ।२  - [ ≡ə≡ə।२ॡॡ  -  ≡ə≡ə    ]
२ॡॡ।ॡ।२          [ २ॡॡ।ॡ।२      २ॡॡ।ॡ।२ ]
```

ऋण को घटाना और ऋण के ऋण को धन करना ।

```
                                                   १
            १ ∩                                 १ ∩
≡ə≡ə।२ॡॡ।ॡ।२  +  ≡ə≡ə     =  ≡ə≡ə।२ॡॡ।ॡ।२   ]
२ॡॡ।ॡ।२           २ॡॡ।ॡ।२     २ॡॡ।ॡ।२
```

इस आदिधन को गच्छ २ꣳꣳ का भाग देनेपर प्रथमसमय संबंधी परिणाम संख्या

१
१ ∩

की संदृष्टि ऐसी है ≡ə≡ə।२ꣳꣳ।ꣳ।२ । इसमें चय मिलाना । सो चय के
२ꣳꣳ।२ꣳꣳ।ꣳ।२

और इसके अन्य हार समान देखकर दो से समच्छेद करनेपर (चय) ऐसा होता है
≡ə≡ə।२
२ꣳꣳ।२ꣳꣳ।ꣳ।२ । सो यहां असंख्यातलोक गुणित असंख्यात लोक को समान देखकर आगे के गुणकारों के ऊपर एक अधिक की जगह तीन अधिक की संदृष्टि करनेपर

३
१ ∩

द्वितीय समय संबंधी परिणाम संख्या की संदृष्टि ऐसी होती है ≡ə≡ə।२ꣳꣳ।ꣳ।२
२ꣳꣳ।२ꣳꣳ।ꣳ।२

१ ∩

इसप्रकार एक एक चय मिलाते हुये एक कम गच्छमात्र चय ऐसा ≡ə≡ə।२ꣳꣳ
२ꣳꣳ।२ꣳꣳ।ꣳ

इसको प्रथम समय संबंधी परिणाम संख्या में मिलानेपर अंतिम समय संबंधी परिणाम संख्या आती है । सो यहां अन्य हारों की समानता देखकर दो से समच्छेद किया हुआ ऐसा

१ ∩

हुआ - ≡ə≡ə।२ꣳꣳ।२ । यहां गुणकार के ऊपर ऋण है उसका प्रमाण ऐसा
२ꣳꣳ।२ꣳꣳ।ꣳ।२

≡ə≡ə।२
२ꣳꣳ।२ꣳꣳ।ꣳ।२ । सो इसको जुदा रखकर अवशेष ऐसा रहा ≡ə≡ə।२ꣳꣳ।२।
२ꣳꣳ।२ꣳꣳ।ꣳ।२

वहां असंख्यातलोक गुणित असंख्यातलोक और दो बार संख्यात गुणित आवली को समान देखकर, आगे का दो रहा उसे मूलराशि के गुणकार में अधिक करना । सो मूलराशि जो प्रथम समय संबंधी परिणाम पुंज उसमें ꣳ।२ ऐसे गुणकार के ऊपर जहां एक कम था वहां एक अधिक करना । पुनश्च जो ऋण जुदा रखा था, उसके असंख्यातलोक गुणित असंख्यातलोक को समान देखकर आगे जो दो रहे, उसे मूलराशि के उससे आगे के २ꣳꣳ।ꣳ।२ ऐसे गुणकार में से घटाना । सो इनके ऊपर जहां एक अधिक

की संदृष्टि थी, वहां एक कम की संदृष्टि करनी । ऐसे करनेपर अंतिम समय संबंधी परिणाम संख्या की संदृष्टि ऐसी होती है

$$\frac{\equiv a \equiv a।२ ꞷꞷ।ꞷ।२^{\frac{१\,\cap}{१}}}{२ꞷꞷ।२ꞷꞷ।ꞷ।२}$$

। पुनश्च इसमें दो से समच्छेद किया हुआ एक चय घटाने के लिये असंख्यातलोक गुणित असंख्यात लोक के आगे गुणकारों के ऊपर जहां एक कम की संदृष्टि थी, वहां तीन कम की संदृष्टि करनेपर उपांत समय संबंधी परिणाम पुंज की संदृष्टि ऐसी

$$\frac{\equiv a \equiv a।२ ꞷꞷ।ꞷ।२^{\frac{३\,\cap}{१}}}{२ꞷꞷ।२ꞷꞷ।ꞷ।२}$$

होती है । इसप्रकार अपूर्वकरण में संदृष्टि कही ।

यहां अनुकृष्टि रचना है नहीं ।

[विशेषार्थ - प्रथम समय संबंधी परिणाम + चय = द्वितीय समय संबंधी परिणाम

$$\frac{\equiv a \equiv a।२ ꞷꞷ।ꞷ।२^{\frac{१}{१\,\cap}}}{२ꞷꞷ।२ꞷꞷ।ꞷ।२} + \frac{\equiv a \equiv a।२}{२ꞷꞷ।२ꞷꞷ।ꞷ।२} = \frac{\equiv a \equiv a।२ ꞷꞷ।ꞷ।२^{\frac{३}{१\,\cap}}}{२ꞷꞷ।२ꞷꞷ।ꞷ।२}$$

प्रथम समय संबंधी परिणाम + एक कम गच्छप्रमाण चय = अंतिम समय संबंधी परिणाम

$$\frac{\equiv a \equiv a।२ ꞷꞷ।ꞷ।२^{\frac{१}{१\,\cap}}}{२ꞷꞷ।२ꞷꞷ।ꞷ।२} + \frac{\equiv a \equiv a।२ ꞷꞷ।२^{१\,\cap}}{२ꞷꞷ।२ꞷꞷ।ꞷ।२}$$

$$\frac{\equiv a \equiv a।२ ꞷꞷ।ꞷ।२^{\frac{१}{१\,\cap}}}{२ꞷꞷ।२ꞷꞷ।ꞷ।२} + \frac{\equiv a \equiv a।२ ꞷꞷ।२}{२ꞷꞷ।२ꞷꞷ।ꞷ।२} - \frac{\equiv a \equiv a।२}{२ꞷꞷ।२ꞷꞷ।ꞷ।२}$$

```
        १                                          १ ∩
              १                                          १
≡ ə ≡ ə।२ गृगृ। गृ।२  −  ≡ ə ≡ ə।२      =   ≡ ə ≡ ə।२ गृगृ। गृ।२
२ गृगृ।२ गृगृ। गृ।२      २ गृगृ।२ गृगृ। गृ।२    २ गृगृ।२ गृगृ। गृ।२
```

अंत समय परिणाम

अंतिम समय संबंधी परिणाम − चय = उपांत समय संबंधी परिणाम।

```
        १ ∩                                        ३ ∩
              १                                          १
≡ ə ≡ ə।२ गृगृ। गृ।२  −  ≡ ə ≡ ə।२      =   ≡ ə ≡ ə।२ गृगृ। गृ।२
२ गृगृ।२ गृगृ। गृ।२      २ गृगृ।२ गृगृ। गृ।२    २ गृगृ।२ गृगृ। गृ।२   ]
```

पुनश्च अनिवृत्तिकरण में परिणाम विशेष के अभाव से विशेष संदृष्टि है नहीं। उसका काल संख्यात आवली मात्र है, उसकी संदृष्टि ऐसी **२गृ** जाननी । इसप्रकार करणों में संदृष्टि जाननी ।

पुनश्च सूक्ष्मसाम्पराय के वर्णन में पूर्वस्पर्धक आदि की संदृष्टि में जघन्य वर्गणा की संदृष्टि **व** ऐसी, एक गुणहानि में जितने स्पर्धक पाये जाते हैं उनके प्रमाण की **९** ऐसी, नाना गुणहानि के प्रमाण की **ना** ऐसी, अनंत की **ख** ऐसी, स्पर्धक शलाका को असंख्यात गुणा अपकर्षण भागहार का भाग देनेपर जो प्रमाण होता है उसकी ऐसी **९ / उ।ə** , एक स्पर्धक में वर्गणा का जितना प्रमाण है उसकी संदृष्टि ऐसी **४**। इसप्रकार जानकर, वहां अविभाग प्रतिच्छेदों की अपेक्षा नानागुणहानि और स्पर्धकशलाका से गुणित जघन्य वर्ग मात्र उत्कृष्ट पूर्वस्पर्धक के वर्ग की संदृष्टि ऐसी **व९ना**, जघन्य वर्गमात्र जघन्य पूर्वस्पर्धक के वर्ग की ऐसी **व**, इसको अनंत का भाग देनेपर उत्कृष्ट अपूर्वस्पर्धक के वर्ग की ऐसी **व / ख**, इसको असंख्यातगुणा अपकर्षण भागहार से भाजित स्पर्धकशलाका का भाग देनेपर जघन्य अपूर्वस्पर्धक के वर्ग की ऐसी **व / ख ९ / उ ə**, इसको अनंत का भाग देनेपर उत्कृष्ट बादर कृष्टि के वर्ग की ऐसी **व / ख ९ ख / उ ə**, इसको वर्गणाशलाका के अनंतवें

भाग का भाग देनेपर जघन्य बादर कृष्टि के वर्ग की ऐसी $\begin{array}{c}\text{व}\\ \hline \text{ख९ख४}\\ \text{उ७ख}\end{array}$, इसको अनंत का भाग देनेपर उत्कृष्ट सूक्ष्मकृष्टि के वर्ग की ऐसी $\begin{array}{c}\text{व}\\ \hline \text{ख९ख४ख}\\ \text{उ७ख}\end{array}$ । इसको वर्गणाशलाका के अनंतवें भाग का भाग देनेपर जघन्य सूक्ष्मकृष्टि के वर्ग की संदृष्टि ऐसी होती है $\begin{array}{c}\text{व}\\ \hline \text{ख९ख४ख४}\\ \text{उ७ख ख}\end{array}$ ।

पुनश्च इसी गुणस्थान अधिकार में गुणश्रेणी निर्जरा के कथन में संदृष्टि कहते हैं। वहां किंचित् कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबध्दप्रमाण कर्म परमाणु समूहरूप द्रव्य ऐसा स७१२– । सो यह आयु बिना सात कर्मो का है, इसलिये इसको सात का भाग देनेपर ज्ञानावरण का द्रव्य ऐसा $\frac{\text{स७१२–}}{\text{७}}$ इसको अनंत का भाग देकर एक भाग ऐसा $\frac{\text{स७१२–}}{\text{७ ख}}$ सर्वघाति केवलज्ञानावरण को देकर अवशेष बहुभाग ऐसा $\frac{\text{स७।१२–।}\overline{\text{ख}}^{\text{१}\frown}}{\text{७ ख}}$ । यहां बहुभाग में एक कम भागहार से गुणा करके सम्पूर्ण भागहार का भाग देते हैं। पुनश्च यहां गुणकार में एक कम था उसे महत् प्रमाण में नहीं गिना और भाज्य भागहार में अनंत का अपवर्तन किया तब $\frac{\text{स७१२–}}{\text{७}}$ ऐसा हुआ । इसको मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय ज्ञानावरण के भाग करने के लिये चार का भाग देनेपर मतिज्ञानावरण का द्रव्य ऐसा $\frac{\text{स७।१२–}}{\text{७।४}}$। इसको अपकर्षण भागहार की संदृष्टि प्राकृत नाम के आदि अक्षर से ऐसी उ उसका भाग देनेपर बहुभाग ऐसा $\frac{\text{स७।१२–।}\overline{\text{उ}}^{\text{१}\frown}}{\text{७।४।उ}}$ होता है । सो जैसे थे वैसे ही रहते हैं। एक भाग ऐसा $\frac{\text{स७।१२–।१}}{\text{७।४।उ}}$, इसको पल्य का असंख्यातवां भाग ऐसा $\frac{\text{प}}{\text{७}}$, उसका भाग देकर बहुभाग ऐसा $\frac{\text{स७।१२–।}\overline{\text{प}}^{\text{१}\frown}\text{७}}{\text{७।४।उ।}\frac{\text{प}}{\text{७}}}$, उसे उपरितन स्थिति में देना । अवशेष एक भाग ऐसा $\frac{\text{स७१२–१}}{\text{७।४।उ।}\frac{\text{प}}{\text{७}}}$, उसको असंख्यातलोक ऐसा ≡७, उसका भाग

देकर बहुभाग ऐसा स ə।१२–।≡ə (ऊपर १ᴖ) / ७।४।उ।प्।≡ə (प् के नीचे ə) गुणश्रेणी आयाम में देना, अवशेष एक भाग ऐसा

स ə।१२–१ / ७।४।उ।प्।≡ə (प् के नीचे ə) उदयावली में देना ।

पुनश्च जो यह उदयावली में द्रव्य दिया उसको यहां आवली की संदृष्टि चार का अंक (यहां पर आवली के लिये ४ कहा है, पहले दो कहा था और प्रतरावली के लिये ४ कहा था) उसका भाग देनेपर मध्यधन ऐसा स ə।१२– / ७।४।उ।प्।≡ə।४ (प् के नीचे ə) । पुनश्च

एक कम आवली का आधा ऐसा १ᴖ / ४ / २ उससे हीन दो गुणहानि का प्रमाण ऐसा

१६– १ᴖ / ४ / २ यहां गुणहानि आठ से दो गुणा ऐसी दो गुणहानि के प्रमाण की संदृष्टि सोलह १६ उसके आगे घटाने की संदृष्टि जाननी । दो गुणहानि का ही नाम निषेकहार है । सो एक कम आवली के आधे से हीन दो गुणहानि का भाग उस मध्यधन को देनेपर चय का प्रमाण ऐसा है – स ə।१२– / ७।४।उ।प्।≡ə।४।१६– १ᴖ/४/२ (प् के नीचे ə) इसको दो गुणहानि

ऐसी १६ उससे गुणा करनेपर प्रथम निषेक का प्रमाण ऐसा स ə।१२–।१६ / ७।४।उ।प्।≡ə।४।१६– १ᴖ/४/२ (प् के नीचे ə)

उसमें से एक चय घटानेपर द्वितीय निषेक ऐसा स ə।१२–।१६–१ / ७।४।उ।प्।≡ə।४।१६– १ᴖ/४/२ (प् के नीचे ə) । यहां चय की और प्रथम निषेक की अन्य समानता देखकर आगे गुणकार दो गुणहानि में से एक घटाने की आगे ऐसी –१ संदृष्टि की है । इसीप्रकार एक एक चय घटाते हुये एक कम आवली प्रमाण चय प्रथम निषेक में से घटानेपर अंतिम निषेक की संदृष्टि

ऐसी स ə।१२–।१६– १ᴖ/४ / ७।४।उ।प्।≡ə।४।१६– १ᴖ/४/२ (प् के नीचे ə) । यहां गुणकार दो गुणहानि में एक कम आवली

प्रमाण घटाने की आगे ऐसी −१०/४ संदृष्टि जाननी । अब गुणश्रेणी आयाम अंतर्मुहूर्त मात्र, उसमें दिया हुआ द्रव्य ऐसा स ə।१२−।≡ə(१०) / ७।४।उ।प्(ə)।≡ə उसको समय समय असंख्यात गुणा द्वारा निषेक रचना दिखाते हैं । सो यहां असंख्यात की सहनानी चार करनेपर पहले समय शलाका एक १, दूसरे समय चार ४, तीसरे समय सोलह १६, अंतिम समय चौंसठ ६४, सबको जोड़नेपर अंकसंदृष्टि ८५ , उसका भाग गुणश्रेणी द्रव्य को देनेपर ऐसी स ə।१२−।≡ə(१०) / ७।४।उ।प्(ə)।≡ə।८५ , इसको अपनी अपनी एक, चार, सोलह, चौंसठ शलाका से गुणित करनेपर प्रथमादि निषेकों का प्रमाण ऐसा होता है

प्रथम निषेक	द्वितीय निषेक	तृतीय निषेक	अंतिम निषेक
स ə।१२−।≡ə(१०)।१ / ७।४।उ।प्(ə)।≡ə।८५	स ə।१२−।≡ə(१०)।४ / ७।४।उ।प्(ə)।≡ə।८५	स ə।१२−।≡ə(१०)।१६ / ७।४।उ।प्(ə)।≡ə।८५	स ə।१२−।≡ə(१०)।६४ / ७।४।उ।प्(ə)।≡ə।८५

पुनश्च यहां अंतर्मुहूर्त के भेदों में जघन्य अंतर्मुहूर्त संख्यात आवली मात्र ऐसा २१, इससे संख्यात गुणा उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त ऐसा २११ । सो उत्कृष्ट में से जघन्य घटाने के लिये संख्यात गुणित आवली को समान देखकर आगे के संख्यात में से एक घटानेपर ऐसा २१ १(१०) इसके ऊपर एक जोडनेपर अंतर्मुहूर्त के सर्व भेदों का प्रमाण ऐसा १ / २१ १(१०) होता है ।

अब **जीवसमास अधिकार** में संदृष्टि कहते हैं –

पृथ्वी आदि के प्राकृत नाम के आदि अक्षररूप संदृष्टि लिखकर उसके नीचे पर्याप्त, अपर्याप्त वा निर्वृत्ति अपर्याप्त लब्धि अपार्यप्तपने के यथासंभवपना से दो या तीन का अंक लिखनेपर जीवसमास की संदृष्टि होती है । जैसे चौदह जीवसमास की संदृष्टि ऐसी -

सू.ए. बा.ए. द्वी त्री च अपं संपं ऐसे ही अन्यत्र जानना ।
२ २ २ २ २ २ २

पुनश्च **जीवों की अवगाहना** में सबसे जघन्य अवगाहना की संदृष्टि ऐसी $६।\underset{७}{८}।२२$ इसका अर्थ आगे लिखेंगे । पुनश्च उत्कृष्ट अवगाहना में एकेन्द्रिय $\underset{७}{प}।१९।\underset{७}{८}।९।\frac{१}{\underset{७}{८}}।२२।ॄ।९$ कमल का व्यास एक योजन उससे तीन गुणा **१।३** परिधि को व्यास की चौथाई के भाग $\frac{१}{४}$ से और वेध (ऊंचाई) हजार योजन से गुणा करनेपर क्षेत्रफल इतना **७५०** (घनयोजन) होता है । द्वीन्द्रिय शंख का व्यास बारह योजन **१२** को उतने ही से गुणा करके **१४४** उसमें मुख चार **४** योजन का आधा **२** घटाकर **१४२**, मुख के आधे का वर्ग **४** जोड़कर **१४६**, उसको दोगुणा करके **२९२**, चार का भाग देनेपर **७३**, पांचगुणा करनेपर **३६५** (घनयोजन) क्षेत्रफल होता है ।

त्रीन्द्रिय रक्त बिच्छू का भुज (लम्बाई) तीन योजन का चौथा भाग, कोटि (चौड़ाई) उसका आठवां भाग, वेध (ऊंचाई) इसका भी आधा इनको परस्पर गुणा करनेपर $\frac{३}{४}।\frac{३}{३२}।\frac{३}{६४}$ क्षेत्रफल $\frac{२७}{८१९२}$ (घनयोजन) होता है । चतुरिन्द्रिय भ्रमर का भुज एक योजन, कोटि पौन योजन, वेध आधा योजन को परस्पर गुणा करनेपर $\frac{१}{१}।\frac{३}{४}।\frac{१}{२}$ क्षेत्रफल $\frac{३}{८}$ (घनयोजन) होता है ।

पंचेन्द्रिय मत्स्य (महामत्स्य) का भुज हजार योजन, कोटि पांच सौ योजन, वेध अढ़ाई सौ योजन इनको परस्पर गुणा करनेपर **१०००।५००।२५०** क्षेत्रफल **१२५०००००००** (घनयोजन) होता है ।

इसप्रकार अवगाहना के प्रदेशों के प्रमाण द्वारा एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय की उत्कृष्ट अवगाहना क्रम से चार, तीन, एक, दो, पांच बार संख्यात गुणित घनांगुल प्रमाण ऐसी जाननी –

ए	द्वी	त्री	च	पं
६ॄॄॄॄ	**६ॄॄॄ**	**६ॄ**	**६ॄॄ**	**६ॄॄॄॄॄ**

पुनश्च जघन्य अवगाहना पर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय में क्रम

से चार, तीन, दो, एक बार संख्यात से भाजित घनांगुल प्रमाण ऐसी जाननी –

द्वी	त्री	च	पं
६	६	६	६
११११	१११	११	१

पुनश्च जीवों के अवगाहना के चौंसठ स्थानों में प्रथम सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्तक की जघन्य अवगाहना ऐसी होती है ६।८ə।२२ / पə।१९।८ə।९।(१/८ə)।२२।१।९ । यहां घनांगुल की संदृष्टि ऐसी ६, उसके आगे गुणकाररूप आवली (घनावली) का असंख्यातवां भाग बाइस बार उसकी संदृष्टि ऐसी ८ə।२२ और उसके नीचे भागहाररूप पल्य का असंख्यातवां भाग उन्नीस बार उसकी संदृष्टि ऐसी पə।१९, आवली का असंख्यातवां भाग नौ बार उसकी संदृष्टि ऐसी ८ə।९, एक अधिक आवली का असंख्यातवां भाग बाइस बार उसकी संदृष्टि ऐसी (१/८ə)।२२, संख्यात नौ बार की संदृष्टि ऐसी १।९ जाननी ।

इसको आवली का असंख्यातवां भाग ऐसा ८ə उससे गुणा करनेपर सूक्ष्म अपर्याप्त वायुकायिक की जघन्य अवगाहना होती है । सो इस गुणकार का और भागहार में एक बार आवली का असंख्यातवां भाग है उसका अपवर्तन करनेपर भागहार में नौ बार की जगह आठ बार आवली का असंख्यातवां भाग लिखनेपर सूक्ष्म अपर्याप्त वायुकायिक की जघन्य अवगाहना की संदृष्टि ऐसी होती है – ६।८ə।२२ / पə।१९।८ə।८।(१/८ə)।२२।१।९ ।

इसीप्रकार सूक्ष्म अपर्याप्त तेजस्कायिक, अप्कायिक, पृथ्वीकायिक में ऐसे ही गुणकार से अपवर्तन करनेपर भागहार में आवली के असंख्यातवें भाग को सात, छह, पांच बार लिखने से उनकी संदृष्टि होती है। पुनश्च इससे बादर अपर्याप्त वायुकायिक, तेजस्कायिक, अप्कायिक, पृथ्वीकायिक, निगोद और प्रतिष्ठित वनस्पति, अप्रतिष्ठित वनस्पति, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय की जघन्य अवगाहना में क्रम से पल्य

के असंख्यातवें भाग का गुणकार है । उससे उन्नीस बार पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र गुणकार में से एक एक बार अपवर्तन करनेपर उन्नीस की जगह एक एक कम करते हुये पंचेन्द्रिय में आठ बार पल्य के असंख्यातवें भाग का भागहार होता है ।

पुनश्च इससे सूक्ष्म निगोद पर्याप्त की जघन्य अवगाहना आवली के असंख्यातवें भाग गुणा है । सो यहां भी ऐसे भागहार से अपवर्तन करना । पुनश्च इससे सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त की उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है । सो विशेष का प्रमाण पूर्व स्थान को आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर एक भाग मात्र है । सो यहां पूर्व स्थान को एक अधिक आवली के असंख्यातवें भाग से गुणा करके आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर एक भाग का मिलाना होता है । सो इनके द्वारा पहले एक अधिक आवली के असंख्यातवें भाग का बाइस बार भागहार और आवली के असंख्यातवें भाग का बाइस बार गुणकार था, उनमें से एक बार अपवर्तन करनेपर इक्कीस बार करना ।

इसीप्रकार आगे भी पूर्व स्थान जिस जिस गुणकार से गुणित हो, उस उस गुणकार द्वारा भागहार में से उस उस प्रमाण को एक एक बार घटाना और जहां विशेष अधिक हो वहां आवली के असंख्यातवें भाग को गुणकार में से और एक अधिक आवली के असंख्यातवें भाग को भागहार में से एक एक बार घटाना । घटानेपर जितनी बार था उतनी बार पूर्ण होनेपर वह भागहार वा गुणकार नहीं लिखना ।

सो सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त की उत्कृष्ट अवगाहना से सूक्ष्म निगोद पर्याप्त की उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है । इससे सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त की जघन्य अवगाहना आवली के असंख्यातवें भाग गुणा है । इससे सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त की उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है । इससे सूक्ष्म वायुकायिक पर्याप्त की उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है ।

इसीतरह तेजस्कायिक, अप्कायिक, पृथ्वीकायिक इन पर्याप्तों की एक एक जघन्य अवगाहना पूर्व स्थान से आवली के असंख्यातवें भाग गुणा और इनके अपर्याप्त और पर्याप्त की दो दो उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक जाननी । ऐसे आठ स्थान होनेपर सूक्ष्म पृथ्वीकायिक की उत्कृष्ट अवगाहना से बादर पर्याप्त वायुकायिक की जघन्य अवगाहना

पल्य के असंख्यातवें भाग गुणा है । इससे बादर अपर्याप्त वायुकायिक की उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है । इससे बादर पर्याप्त वायुकायिक की उत्कृष्ट अवगाहना विशेष अधिक है ।

इसीतरह बादर तेजसूकायिक, अपूकायिक, पृथ्वीकायिक, निगोद, प्रतिष्ठितप्रत्येक इनके पर्याप्त का जघन्य का एक स्थान पल्य के असंख्यातवें भाग गुणा और इनके अपर्याप्त-पर्याप्त के उत्कृष्ट के दो दो स्थान विशेष अधिक जानने । पुनश्च उससे पर्याप्त अप्रतिष्ठित प्रत्येक, द्वीन्द्रिय इन दोनों की जघन्य अवगाहना क्रम से पल्य के असंख्यातवें भाग गुणा है ।

पुनश्च उससे पर्याप्त त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय पर्याप्तों की जघन्य अवगाहना और त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, अप्रतिष्ठित प्रत्येक, पंचेन्द्रिय अपर्याप्तों की उत्कृष्ट अवगाहना क्रम से संख्यात गुणा है । पुनश्च इससे त्रीन्द्रिय पर्याप्त की उत्कृष्ट अवगाहना संख्यात गुणा है । सो गुणकार का प्रमाण यहां भागहार से बहुत अधिक है, इसलिये संख्यात घनांगुल प्रमाण जानना । पुनश्च उससे चतुरिन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, अप्रतिष्ठितप्रत्येक, पंचेन्द्रिय इनकी उत्कृष्ट अवगाहना क्रम से संख्यात गुणा जानना । [सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका जीवकाण्ड में अवगाहना का यंत्र देखना ।]

पुनश्च सूक्ष्म निगोद लब्धिअपर्याप्त के जघन्य अवगाहनास्थान से लेकर एक एक प्रदेश वृद्धि के अनुक्रम से सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त के जघन्य अवगाहनास्थान तक चतु:स्थानपतित वृद्धि होती है । वहां संदृष्टि कहते हैं -

वहां असंख्यातभागवृद्धि में सूक्ष्म निगोद लब्धिअपर्याप्त की जघन्य अवगाहना ऐसी $६।\underset{७}{८}।२२$ । उसकी लघु संदृष्टि करनेपर जघन्य के आदि अक्षररूप संदृष्टि
$\underset{७}{प}।१९।\underset{७}{८}।९।\underset{७}{\overline{८}}^{१}।२२।७ृ।९$

ऐसी **ज**, इसमें एक जोडनेपर संदृष्टि ऐसी $\overset{१}{\overline{ज}}$। यहां एक अधिक की संदृष्टि ऊपर जाननी । ऐसे ही दो आदि अधिक की संदृष्टि ऐसी - $\overset{१}{\overline{ज}}\overset{२}{\overline{ज}}\overset{३}{\overline{ज}}\overset{४}{\overline{ज}}\overset{५}{\overline{ज}}$ इत्यादि मध्य भेदों के ग्रहण निमित्त बीच में बिंदी लिखकर अंत में उस जघन्य को जघन्य परीतासंख्यात

की संदृष्टि ऐसी **१६** उसका भाग देनेपर ऐसा ${\text{ज} \atop \text{१६}}$ इसको जघन्य के ऊपर अधिक करनेपर ऐसा होता है $\frac{\text{ज} \atop \text{१६}}{\text{ज}}$ ।

यहां आदि ऐसा $\frac{\text{१}}{\text{ज}}$, अंत ऐसा $\frac{\text{ज} \atop \text{१६}}{\text{ज}}$ है । अंत में से आदि घटानेपर ऐसा $\frac{\text{१}\cap}{\text{ज} \atop \text{१६}}$ होता है । [**विशेषार्थ** - ज + ${\text{ज} \atop \text{१६}}$ −(ज+ १) = ज+ ${\text{ज} \atop \text{१६}}$ −ज−१ = ${\text{ज} \atop \text{१६}}$ −१ = $\frac{\text{१}\cap}{\text{ज} \atop \text{१६}}$]

इसको वृध्दि का प्रमाण एक का भाग देनेपर ऐसा $\frac{\text{१}\cap}{\text{ज} \atop \text{१६।१}}$ और इसमें एक जोड़नेपर ${\text{ज} \atop \text{१६।१}}$ [**विशेषार्थ** - ${\text{ज} \atop \text{१६।१}}$ −१+१= ${\text{ज} \atop \text{१६।१}}$]

इतना सर्व असंख्यातभागवृध्दि के स्थानों का प्रमाण होता है । पुनश्च असंख्यातभागवृध्दि के अंत स्थान में एक जोड़नेपर अवक्तव्यभागवृध्दि का आदिस्थान ऐसा $\frac{\frac{\text{१}}{\text{ज}} \atop \text{१६}}{\text{ज}}$ । पुनश्च एक एक प्रदेश की वृध्दि द्वारा उत्कृष्ट संख्यात की संदृष्टि ऐसी **१५** उसका भाग जघन्य को देकर एक घटानेपर ऐसा $\frac{\text{१}\cap}{\text{ज} \atop \text{१५}}$। उसको जघन्य में जोड़नेपर अवक्तव्यभागवृध्दि का अंतस्थान ऐसा $\frac{\frac{\text{१}\cap}{\text{ज}} \atop \text{१५}}{\text{ज}}$ [**विशेषार्थ** – ज + ($\frac{\text{ज}}{\text{१५}}$−१)] । वहां समच्छेद विधान द्वारा या ऋण के धन को राशि का ऋण करके अंत में से आदि घटानेपर ऐसा $\frac{\text{२}\cap}{\text{ज} \atop \text{१६।१५}}$ । यहां आदि और अंत में **ज** की समानता देखकर दूर करनेपर अवशेष अधिक दोनों राशि ऐसी $\frac{\text{१}}{\text{ज} \atop \text{१६}}$ $\frac{\text{१}\cap}{\text{ज} \atop \text{१५}}$ । इनके ऊपर अधिक और हीन है । उनको जुदा रखकर दोनों

का समच्छेद करनेपर दोनों राशि ऐसी $\frac{ज|१५}{१६|१५}$ $\frac{ज|१६}{१६|१५}$ । यहां दोनों की अन्य समानता देखकर धनराशि के सोलह के गुणकार में से ऋणराशि का पंद्रह का गुणकार घटानेपर ऐसा $\frac{ज\ १}{१५|१६}$ । पुनश्च इसके ऊपर एक तो ऋण का धन और एक धनराशि का ऋण ये दो घटानेपर ऐसी $\frac{२\cap}{\frac{ज}{१६|१५}}$ संदृष्टि सिध्द होती है । इसमें एक जोड़नेपर अवक्तव्यभागवृध्दि के सर्व स्थानों का प्रमाण ऐसा होता है $\frac{१\cap}{\frac{ज}{१६|१५}}$ ।

[**विशेषार्थ** - अवक्तव्यभागवृध्दि के स्थान = $\frac{\text{अवक्तव्यभागवृध्दि का अंतस्थान – आदिस्थान}}{१}$ + १

$$\frac{\frac{\frac{१\cap}{ज}}{\frac{१५}{ज}} - \frac{\frac{१}{ज}}{\frac{१६}{ज}}}{१} + १ = \frac{\frac{१\cap}{ज}}{१५} - \frac{\frac{१}{ज}}{१६} + १$$

$$\frac{१\cap}{\frac{ज|१६}{१५|१६}} - \frac{१}{\frac{ज|१५}{१६|१५}} + १ = \frac{२\cap}{\frac{ज}{१५|१६}} + १ = \frac{१\cap}{\frac{ज}{१५|१६}}$$]

पुनश्च अवक्तव्यभागवृध्दि के अंतस्थान में एक जोड़नेपर संख्यातभागवृध्दि का आदिस्थान ऐसा $\frac{\frac{ज}{१५}}{ज}$ और जघन्य का आधा ऐसा $\frac{ज}{२}$ (क्योंकि २ संख्या जघन्य संख्यात है)। उसको जघन्य में जोड़नेपर अंतस्थान ऐसा $\frac{\frac{ज}{२}}{ज}$ । वहां पूर्वोक्तप्रकार समच्छेद करके अंत में से आदि घटानेपर ऐसा $\frac{ज|१५-२}{२|१५}$ । यहां उत्कृष्ट संख्यात की संदृष्टि पंद्रह के आगे दो घाटि की संदृष्टि ऐसी जाननी –२ । इसको एक का भाग देकर उसमें एक जोड़नेपर संख्यातभागवृध्दि के सर्व स्थानों का प्रमाण ऐसा $\frac{१}{\frac{ज|१५-२}{२|१५}}$ ।

[**विशेषार्थ** -संख्यातभागवृध्दि के स्थान = $\frac{\text{संख्यातभागवृध्दि का अंतस्थान – आदिस्थान}}{१}$ + १

अंत-आदि $= \frac{\frac{ज}{२}}{ज} - \frac{\frac{ज}{१५}}{ज} = ज + \frac{ज}{२} - (ज + \frac{ज}{१५}) = \frac{ज}{२} - \frac{ज}{१५} = \frac{ज।१५}{२।१५} - \frac{ज।२}{२।१५}$

एक अधिक करनेपर - $\frac{ज।१५-२}{२।१५} + १ = \frac{१}{\frac{ज।१५-२}{२।१५}}$]

पुनश्च संख्यातभागवृध्दि के अंतस्थान में एक जोड़नेपर अवक्तव्यभागवृध्दि का आदिस्थान ऐसा $\frac{\frac{१}{ज}}{\frac{२}{ज}}$ । पुनश्च एक कम जघन्य अवगाहना का प्रमाण ऐसा $\frac{१\frown}{ज}$ उसको जघन्य में जोड़नेपर अंतस्थान ऐसा $\frac{\frac{१\frown}{ज}}{ज}$ । यहां पूर्वोक्त प्रकार से समच्छेद विधान द्वारा या ऋण के धन को राशि का ऋण करके अंत में से आदि घटाकर उसमें एक जोड़ते हैं तब सर्व अवक्तव्यभागवृध्दि के स्थान ऐसे $\frac{१\frown}{\frac{ज}{२}}$ होते हैं।

[**विशेषार्थ** - सर्वस्थान = अंतस्थान – आदिस्थान + १

$(\frac{\frac{१\frown}{ज}}{ज} - \frac{\frac{१}{ज}}{\frac{२}{ज}}) + १ = (\frac{१\frown}{ज} - \frac{\frac{१}{ज}}{२}) + १ = (ज - १ - \frac{ज}{२} - १) + १ = \frac{ज}{२} - १ = \frac{१\frown}{\frac{ज}{२}}$]

पुनश्च अवक्तव्यभागवृध्दि के अंतस्थान में एक जोड़नेपर संख्यातगुणवृध्दि का आदिस्थान ऐसा **ज२** । यहां जघन्य को दो का गुणकार जानना । पुनश्च प्रदेशवृध्दि के क्रम से उत्कृष्ट संख्यात ऐसा **१५**, उससे जघन्य को गुणा करनेपर अंतस्थान ऐसा **ज।१५** । यहां अंत में से आदि घटाने को दोनों जगह जघन्य का समानपना देखकर पंद्रह के आगे दो कम की संदृष्टि करनी **ज।१५–२**। इसमें एक जोड़नेपर सर्व संख्यातगुणवृध्दि

के स्थानों का प्रमाण ऐसा $\frac{१}{\text{ज।१५–२}}$ ।

पुनश्च संख्यातगुणवृध्दि के अंतस्थान में एक जोड़नेपर अवक्तव्यगुणवृध्दि का आदिस्थान ऐसा $\frac{१}{\text{ज।१५}}$ और एक एक प्रदेश वृध्दि के क्रम से जघन्य परीतासंख्यात ऐसा **१६**, उससे जघन्य को गुणा करके एक घटानेपर अंतस्थान ऐसा $\frac{१\cap}{\text{ज।१६}}$ । यहां अंत में से आदि घटाकर एक मिलानेपर अवक्तव्यगुणवृध्दि के सर्व स्थानों का प्रमाण ऐसा $\frac{१\cap}{\text{ज}}$ होता है ।

[**विशेषार्थ** - अवक्तव्यगुणवृध्दि का अंतस्थान – आदिस्थान + १

$\frac{१\cap}{\text{ज।१६}} - \frac{१}{\text{ज।१५}} + १ = \text{ज१६} - १ - (\text{ज१५} + १) + १ = \text{ज} - १ = \frac{१\cap}{\text{ज}}$.]

पुनश्च अवक्तव्यगुणवृध्दि के अंतस्थान में एक जोड़नेपर असंख्यातगुणवृध्दि का आदिस्थान ऐसा **ज१६**। पुनश्च प्रदेशवृध्दि के क्रम से आवली के असंख्यातवें भाग से जघन्य को गुणा करनेपर अंतस्थान ऐसा $\text{ज}\underset{\partial}{८}$। अंत में से आदि घटाकर एक मिलानेपर असंख्यातगुणवृध्दि के सर्व स्थानों का प्रमाण ऐसा होता है $\frac{१}{\text{ज।}\underset{\partial}{८}–१६}$ । यहां जघन्य का गुणकार आवली के असंख्यातवें भाग, उसके आगे जघन्य परीतासंख्यात घटाने की संदृष्टि जाननी ।

[**विशेषार्थ : ज$\underset{\partial}{८}$ – ज१६ = ज।$\underset{\partial}{८}$–१६** इसमें एक मिलानेपर $\frac{१}{\text{ज।}\underset{\partial}{८}–१६}$]

इसप्रकार आवली के असंख्यातवें भाग से सूक्ष्म निगोद लब्धिअपर्याप्त के जघन्य स्थान को गुणा करनेपर सूक्ष्म लब्धिअपर्याप्त वायुकायिक का जघन्य अवगाहना स्थान ऐसा $६।\underset{\partial}{८}।२२।\underset{\partial}{८}$ $\frac{\quad}{\underset{\partial}{प}।१९।\underset{\partial}{८}।९।\overline{\underset{\partial}{८}}^{१}।२२।ग़ृ।९}$ । वहां उस जघन्य स्थान को इस उत्कृष्ट स्थान में से घटाना।

सो अन्य सर्व समान देखकर आगे लिखा हुआ जो आवली के असंख्यातवें भाग का गुणकार उसमें से एक घटाकर जो हुआ उसमें एक जोड़ना तब जघन्य सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त के जघन्य स्थान से लेकर सूक्ष्म वायुकायिक अपर्याप्त के जघन्य स्थान तक सर्व स्थानों का प्रमाण ऐसा होता है $\frac{१}{६।८_{२}।२२।८_{२}^{१n}}$ ऐसे ही अन्य में जानना।

$$प_{२}।११९।८_{२}।९।\frac{१}{८_{२}}।२२।ॣ।९$$

[**विशेषार्थ** – $ज८_{२} - ज + १ = ज\,८_{२}^{१n} + १ = \frac{१}{ज\,८_{२}^{१n}}$]

पुनश्च सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त के जघन्य स्थान से लेकर उत्कृष्ट स्थान तक कितने स्थान पाये जाते हैं उनकी संख्या लाने के लिये जघन्य स्थान ऐसा । $\frac{६।८_{२}।२२}{प_{२}।११९।८_{२}।९।\frac{१}{८_{२}}।२२।ॣ।९}$ इसको आवली का असंख्यातवां भाग चार बार $८_{२}।४$ और पल्य का असंख्यातवां भाग ग्यारह बार $प_{२}।११$ तथा आवली का असंख्यातवां भाग और एक अधिक आवली का असंख्यातवां भाग इनसे गुणा करके और आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर अपवर्तन करनेपर उसका उत्कृष्ट स्थान ऐसा [**विशेषार्थ**–$ज।८_{२}।४।प_{२}।११।\frac{८_{२}}{८_{२}}।\frac{१}{८_{२}}$] अर्थात् $\frac{६।८_{२}।२२।८_{२}।४।प_{२}।११।८_{२}।\frac{१}{८_{२}}}{प_{२}।११९।८_{२}।९।\frac{१}{८_{२}}।२२।ॣ।९।८_{२}}$

पुनश्च इस उत्कृष्ट स्थान में से जघन्य स्थान घटाना, सो दोनों के अन्य हार तो समान है । इसलिये आवली के असंख्यातवें भाग द्वारा समच्छेद करके घटाने योग्य ऋणराशि ऐसी होती है - $\left[ज\,\frac{८_{२}}{८_{२}} \right] = \frac{६।८_{२}।२२।८_{२}}{प_{२}।११९।८_{२}।९।\frac{१}{८_{२}}।२२।ॣ।९।८_{२}}$ ।

और धनराशि में आवली के असंख्यातवें भाग का गुणकार आगे था उसको बाइस

के आगे लिखनेपर धनराशि ऐसी हुयी $६।८_{a}।२२।८_{a}।८_{a}।४।प_{a}।११।\overline{८_{a}}^{\,१}$ । यहां धनराशि

$प_{a}।१९।८_{a}।९।\overline{८_{a}}^{\,१}।२२।ग्रू।९।८_{a}$

और ऋणराशि में ऐसा $६।८_{a}।२२।८_{a}$ समान देखकर उसके आगे का गुणकार जो

ऐसा है $८_{a}।४।प_{a}।११।\overline{८_{a}}^{\,१}$ उसके ऊपर एक घटाने की संदृष्टि करनेपर अंत में से आदि घटाना हुआ, उसमें एक जोड़नेपर सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त के अवगाहना के

सर्व स्थानों का प्रमाण ऐसा होता है- $$\frac{१}{\dfrac{१ \;\; \cap}{\begin{array}{c} ६।८_{a}।२२।८_{a}।८_{a}।४।प_{a}।११।\overline{८_{a}}^{\,१} \\ प_{a}।१९।८_{a}।९।\overline{८_{a}}^{\,१}।२२।ग्रू।९।८_{a} \end{array}}}$$ इनमें से दो घटानेपर

सूक्ष्म निगोद अपर्याप्त के मध्यम अवगाहना के भेदों का प्रमाण ऐसा होता है

$$\frac{१ \quad \cap}{\dfrac{१ \;\; \cap}{\begin{array}{c} ६।८_{a}।२२।८_{a}।८_{a}।४।प_{a}।११।\overline{८_{a}}^{\,१} \\ प_{a}।१९।८_{a}।९।\overline{८_{a}}^{\,१}।२२।ग्रू।९।८_{a} \end{array}}}$$ यहां दो घटाने के लिये एक अधिक की जगह एक कम

की संदृष्टि जाननी, ऐसे ही अन्यत्र जानना।

पर्याप्ति अधिकार में संदृष्टि कहते हैं ।

वहां प्रथम अलौकिक गणित का कथन है । वहां पहले सामान्य वर्णन में जैसी संदृष्टि कही है वैसी जाननी । वहां संख्याप्रमाण में जघन्य संख्यात आदि की संदृष्टि सामान्य में कही है वैसी जाननी । पुनश्च अनवस्था आदि कुंड में एक नौ आदि प्रमाण रोम भरते हैं उनकी संदृष्टि **१९=** है । पुनश्च जघन्य असंख्यातासंख्यात प्रमाण शलाका,

विरलन ,देय राशि करते हैं वहां संदृष्टि ऐसी **श४ वि४ दे४**। शलाकाराशि में से एक घटानेपर ऐसी **४–१**, दो घटानेपर ऐसी ऐसी **४–२** इत्यादि । पुनश्च दूसरी बार शलाका विरलन देयराशि करते हैं उसकी संदृष्टि ऐसी **श१ वि१ दे१**। शलाकाराशि में से एक घटानेपर ऐसी **१–१**, दो घटानेपर ऐसी **१–२** इत्यादि । पुनश्च तीसरी बार शलाकादिक की भी ऐसी ही संदृष्टि जाननी । ऐसा करने के पश्चात् वहां छह राशियां मिलाते हैं, उनकी संदृष्टि धर्म, अधर्म, एक जीव, लोकाकाश के प्रदेश लोकप्रमाण हैं उनकी जुदी जुदी संदृष्टि ऐसी ≡, इनसे असंख्यात गुणा अप्रतिष्ठित प्रत्येकों की ऐसी ≡**a**, इनसे असंख्यात लोकगुणे प्रतिष्ठित प्रत्येकों की ऐसी ≡**a** ≡**a**।

पुनश्च शलाकात्रय निष्ठापन करने के पश्चात् पुनः चार राशियां और मिलाते हैं । वहां संख्यात पल्यप्रमाण – कल्पप्रमाण कल्पकाल की ऐसी **प१**

[**विशेषार्थ** - १ कल्प = २० कोडाकोडीसागर । १ सागर = १० कोडाकोडी पल्य, इसलिये १ कल्प = २० को.को. X १० को. को. पल्य = संख्यात पल्य **प१**],

असंख्यातलोक मात्र स्थितिबंधप्रत्ययों की ऐसी ≡**a**, इनसे असंख्यातलोक गुणा अनुभागबंधअध्यवसाय स्थानों की ऐसी ≡**a** ≡**a**, इनसे असंख्यातलोक गुणा योगों के उत्कृष्ट अविभागप्रतिच्छेदों की ऐसी जाननी – ≡**a** ≡**a** ≡**a**।

अनंत के कथन में पहली बार मिलायी हुयी छह राशियों में से सिध्दराशि की संदृष्टि ऐसी **३**, निगोदराशि की ऐसी **१३**≡ । यहां पृथ्वीकायिकादि, प्रत्येक वनस्पति और त्रस इन तीन राशियों को घटाने की संसारीराशि के आगे ≡ ऐसी संदृष्टि जाननी। पुद्गलराशि की ऐसी **१६ख,** कालसमयराशि की ऐसी **१६खख**, आकाशप्रदेशराशि की ऐसी **१६खखख**, पुनश्च दूसरी बार मिलाये हुये धर्म, अधर्म के अगुरुलघुगुण के अविभागप्रतिच्छेद उनकी ऐसी **खख** संदृष्टि जाननी ।

द्विरूपवर्गधारा आदि तीन धाराओं के कथन में स्थानों की संदृष्टि सामान्य कथन जैसी जाननी । मध्य के स्थानों के लिये बीच में बिंदी की संदृष्टि जाननी । आगे की स्थानरूप जो राशि उसके वर्गशलाका की संदृष्टि ऐसी **व** जाननी । अर्धच्छेद राशि की ऐसी **छे** जाननी । प्रथम मूल (वर्गमूल) की ऐसी जाननी **मू१**, घन की संदृष्टि तीन बार लिखने से जाननी । – —

द्विरूपवर्गधारा के स्थानों की संदृष्टि

[**विशेषार्थ** - मूल पुस्तक में अनेक जगह **व** और **०** लिखा है कहांपर कौनसा अर्थ है उसे यहां लिखते हैं । पहली बार **व** लिखा है उसका अर्थ है जघन्य परीतासंख्यात की वर्गशलाका । आवली का अर्थ है जघन्य युक्तासंख्यात । आवली तक जहां जहां बिंदी लिखी है उसका अर्थ है संख्यात वर्गस्थान, आवली के पश्चात् और जघन्य युक्तानंत तक जहां जहां बिंदी लिखी है उसका अर्थ है असंख्यात वर्गस्थान और जघन्य युक्तानंत से केवलज्ञान तक जहां जहां बिंदी लिखी है उसका अर्थ है अनंतानंत वर्गस्थान। आवली के पश्चात् जो **व** लिखा है उसका अर्थ है पल्य की वर्गशलाका, और **छे** का अर्थ है पल्य का अर्धच्छेद । तथा **मू१** का अर्थ है पल्य का प्रथम वर्गमूल । इसीप्रकार जहां जहां **व, छे** और **मू१** लिखा है वे **मू१** के आगेवाली राशि के **व, छे** और **मू१** जानने ।]

संदृष्टि -

२	४	१६	२५६	६५=	४२=	१८=	०	व	०	छे	०	मू१	जघन्य परीता संख्यात १६	०	आवली २	प्रतरावली ४

०	व	०	छे	०	मू१	पल्य प	०	सूच्यंगुल २	प्रतरांगुल ४	०	जगत्श्रेणी घनमूल	०	व	०	छे	०	मू१	जघन्य परीतानंत २५६

०	जघन्ययुक्तानंत जजुअ	जघन्यअनंतानंत जजुअव	०	व	०	छे	०	मू१	जीवराशि १६	०	पुद्गलराशि १६ख	०	कालराशि १६खख

०	श्रेणीआकाश १६खखख	प्रतराकाश १६खखखव	०	धर्म अधर्म के अगुरुलघु अविभाग प्रतिच्छेद खख	०	एकजीव के अगुरुलघु अविभाग प्रतिच्छेद खखख	०	जघन्यज्ञान खखखख

०	जघन्यक्षायिकलब्धि खखखखख	०	व	०	छे	०	केवलज्ञान का आठवां मूल आदि **मू८ । मू७ । मू६ । मू५ । मू४ । मू३ । मू२ । मू१**	केवलज्ञान

द्विरूपघनधारा के स्थानों की संदृष्टि

[**विशेषार्थ** - जगत्श्रेणी के पहले जो बिंदी है वहां असंख्यात वर्गस्थान समझना, जगत्प्रतर के बाद जो बिंदी है वहां अनंतानंतअनंतानंत वर्गस्थान समझना।]

८	६४	४०९६	२५६।६५=	६५=।४२=	४२=।१८=	०	आवली घन ८	प्रतरावली घन ६४	०	
ववव	०	छेछेछे	०	मू१मू१मू१	पल्यघन पपप	०	घनांगुल ६	०	जगत्श्रेणी –	जगत्प्रतर =	०
ववव	०	छेछेछे	०	मू१मू१मू१	जीवराशिघन १६।१६।१६	०	ववव	०	छेछेछे	०	मू१मू१मू१

सर्व आकाश (श्रेणी आकाश का घन)	०	केवलज्ञान के द्वितीय मूल का घन मू२।मू२।मू२

द्विरूपघनाघनधारा के स्थानों की संदृष्टि

[**विशेषार्थ** - लोकाकाश के पहले जो बिंदी है वहां असंख्यात वर्गस्थान जानना, अग्निकायिक गुणकारशलाका के पश्चात् जहां जहां बिंदी है, वहां वहां असंख्यात असंख्यात वर्गस्थान जानना तथा उत्कृष्ट योगस्थान अविभाग प्रतिच्छेद के पश्चात् जहां बिंदी है वहां अनंतानंत वर्गस्थान जानना ।]

८।८।८	०	लोकाकाश ≡	०	अग्निकायिक गुणकारशलाका	०	व	०	छे	०	मू१	अग्निकायिकराशि				
०	व	०	छे	०	मू१	अग्निकायिक स्थिति	०	व	०	छे	०	मू१	अवधिविषय उत्कृष्ट क्षेत्र	०	व	०	छे
०	मू१	स्थितिबंधअध्यवसाय स्थान	०	व	०	छे	०	मू१	अनुभागबंधअध्यवसाय स्थान	०	व	०	छे		
०	मू१	निगोद शरीर की उत्कृष्ट संख्या ≡ə≡ə≡ə≡ə≡ə	० ≡ə≡ə	व	० ≡ə≡ə	छे	० ≡ə≡ə	मू१	निगोद काय स्थिति						

०	व	०	छे	०	मू१	उत्कृष्ट योगस्थान अविभाग प्रतिच्छेद	० अनंतानंत	केवलज्ञान के चतुर्थ मूल का घनाघन मू ४।९ (चतुर्थमूल ९ बार)

उपमामान - उपमाप्रमाण में गर्त (गड्ढा) में चार एक आदि अंक प्रमाण रोम भरे हैं उनकी संदृष्टि ऐसी है ४१= । पुनश्च दो बार संख्यात गुणित आवली मात्र व्यवहार पल्य की ऐसी २११। पुनश्च उध्दारपल्य की संदृष्टि ऐसी है विछेछे३ (ऊपर ०, ३; नीचे १), ३।२५ को २) कैसे? सो कहते हैं -

श्रेणी के अर्धच्छेदों की संदृष्टि ऐसी विछेछे३ । इसके ऊपर तीन कम की संदृष्टि करनेपर रज्जू (राजू) के अर्धच्छेदों की संदृष्टि ऐसी विछेछे३ (ऊपर ०, ३) इसमें से संख्यात अधिक सूच्यंगुल के अर्धच्छेद घटाने के लिये यहां विरलनराशि गुण्य के आगे सूच्यंगुल के अर्धच्छेदों से तिगुणा गुणकार देखकर अपनयन त्रैराशिक द्वारा गुण्य विरलनराशि में से साधिक तीसरा भाग घटानेपर समस्त द्वीपसमुद्रोंके संख्या की संदृष्टि ऐसी है विछेछे३ (ऊपर ०, ३; नीचे १), ३) यहां विरलनराशि से लेकर एक तृतीयांश $\frac{1}{3}$ तक घटाने की ऐसी) संदृष्टि जाननी। इसको २५ कोडाकोडी का भाग देनेपर उध्दारपल्य की संदृष्टि ऐसी विछेछे३ (ऊपर ०, ३; नीचे १), ३।२५ को २) सिध्द होती है ।

[**विशेषार्थ -** $\frac{\text{श्रेणी}}{७}$ = १ राजू । श्रेणी के अर्धच्छेद – ७ के अर्धच्छेद = राजू के अर्धच्छेद

∵ २५ कोडाकोडी उध्दारपल्य में विछेछे३ (ऊपर ०, ३; नीचे १), ३) रोमखंड

∴ १ उध्दारपल्य में विछेछे३ (ऊपर ०, ३; नीचे १), ३।२५ को २) रोमखंड]

पुनश्च अध्दापल्य आदि की तथा उनकी वर्गशलाका और अर्धच्छेदराशि की संदृष्टि सामान्योक्त जाननी ।

संदृष्टि

नाम	पल्य	सागर	सूच्यंगुल	प्रतरांगुल	घनांगुल	जगत्श्रेणी	जगत्प्रतर	लोक
प्रमाणकी	प	सा	२	४	६	–	=	≡
अर्धच्छेदकी	छे	छे ꞔ	छेछे	छेछे ।२	छेछे ।३	$\underset{\text{ə}}{\text{छेछेछे}}$ ।३	विछेछे ।६	विछेछे ।९
वर्गशलाकाकी	व	०	व २	$\frac{१}{\text{व२}}$	व २	$\frac{\text{१६}^{\text{व}}\text{।२}}{\text{व २}}$	$\frac{\text{१६}^{\frac{१}{\text{व}}}\text{।२}}{\text{व २}}$	$\frac{\text{१६}^{\text{व}}\text{।२}}{\text{व २}}$

[**विशेषार्थ** - यहां सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका पुस्तक में से पढ़कर इन संदृष्टियों का अर्थ जानना। जैसे जगत्श्रेणी के अर्धच्छेद **$\underset{\text{ə}}{\text{छेछेछे}}$।३** है यहां **$\underset{\text{ə}}{\text{छे}}$** को **वि** जानना इसलिये जगत्प्रतर के अर्धच्छेद उससे दोगुणा **विछेछे।६** होते हैं । सूच्यंगुल की वर्गशलाका **व२** कहा उसे द्विरूपवर्गधारा में **व२** जानना और घनांगुल की वर्गशलाका **व२** कहा उसे द्विरूपघनधारा में **व२** जानना । जगत्श्रेणी की वर्गशलाका ऐसी $\frac{\text{१६}^{\text{व}}\text{।२}}{\text{व२}}$ कही है उसमें ऊपर के **व** का अर्थ हैं अध्दापल्य की वर्गशलाका । **१६** का अर्थ है जघन्य परीतासंख्यात और नीचे **व२** लिखा है उसका अर्थ है घनांगुल की वर्गशलाका । इसतरह जगत्श्रेणी की वर्गशलाका द्विरूपघनधारा में आती है । ($\text{१६}^{\text{व}}\text{।२}$ + **व२**) इसीमें एक मिला देनेपर जगत्श्रेणी का वर्ग जगत्प्रतर, उसकी वर्गशलाका ऐसी $\frac{\text{१६}^{\frac{१}{\text{व}}}\text{।२}}{\text{व२}}$ है, वह भी द्विरूपघनधारा में है।

लोक तथा उसकी अर्धच्छेदराशि और वर्गशलाका द्विरूपघनाघनधारा में आते हैं।

विरलन राशि X देयराशि के अर्धच्छेद = लब्धराशि के अर्धच्छेद ।

पल्य के अर्धच्छेद का असंख्यातवां भाग $\underset{\text{ə}}{\text{छे}}$ X घनांगुल के अर्धच्छेद **छेछे३ = $\underset{\text{ə}}{\text{छे}}$छेछे३**

जगत्श्रेणी के अर्धच्छेद = **विछेछे३** ।
वर्गशलाका = अर्धच्छेद के अर्धच्छेद ।
विरलनराशि के अर्धच्छेद + देयराशि के अर्धच्छेद के अर्धच्छेद (घनांगुल की वर्गशलाका) = लब्धराशि के अर्धच्छेद

$$\overset{\text{व}}{\text{१६}}|\text{२} \quad + \quad \text{व२} \quad = \quad \frac{\overset{\text{व}}{\text{१६}}|\text{२}}{\text{व२}}$$ जगत्श्रेणी की वर्गशलाका]

वहां जगत्श्रेणी की वर्गशलाका के प्रमाण में इतना विशेष जानना । अध्दापल्य के अर्धच्छेदराशि के वर्गमूल दूणे जघन्य परीतासंख्यात के अर्धच्छेद प्रमाण क्रम से करना। वहां पल्य के अर्धच्छेदराशि के अर्धच्छेद पल्य की वर्गशलाका मात्र, उनकी संदृष्टि ऐसी **छेव** । पुनश्च पल्य के अर्धच्छेदराशि के प्रथम मूल के अर्धच्छेद पल्य की वर्गशलाका से आधे, उसकी संदृष्टि ऐसी **मू१ $\frac{\text{व}}{\text{२}}$**; ऐसे आधे आधे होते हुये उपांत वर्गमूल के अर्धच्छेद पल्य की वर्गशलाका को जघन्यपरीतासंख्यात का भाग देनेपर जो प्रमाण हो उतने जानने । अंतमूल के अर्धच्छेद इनसे आधे जानना ।

छे	।	व
मू१	।	$\frac{\text{व}}{\text{२}}$
मू२	।	$\frac{\text{व}}{\text{२}|\text{२}}$
मू३	।	$\frac{\text{व}}{\text{२}|\text{२}|\text{२}}$
० ० ०	।	० ० ०
मू १६	।	$\overset{\text{व}}{\text{१६}}$
मू१६|२		$\overset{\text{व}}{\text{१६}}|\text{२}$

[छे = अर्धच्छेद

व = वर्गशलाका = अर्धच्छेद के अर्धच्छेद]

सो अंतमूल के अर्धच्छेद प्रमाण दो को परस्पर गुणा करनेपर जो पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भागमात्र प्रमाण आता है वही जगत्श्रेणी में विरलनराशि है । इस विरलनराशि के अर्धच्छेद दोगुणा परीतासंख्यात से भाजित पल्य की वर्गशलाका मात्र, उसको देयराशि घनांगुल उसकी वर्गशलाका में जोड़नेपर जगत्श्रेणी की वर्गशलाका होती है । इसलिये

जगत्श्रेणी की वर्गशलाका की संदृष्टि पूर्वोक्त जाननी । अन्य भी मान के कथन में यथासंभव संदृष्टि जाननी ।

पर्याप्तिप्ररूपणा में उनका काल ऐसा जानना -

आहारपर्याप्ति का काल छोटा अंतर्मुहूर्तमात्र ऐसा २१, इसको संख्यात की संदृष्टि चार के अंक का भाग देनेपर एक भाग ऐसा $\frac{२१}{४}$ इन दोनों को २१ और $\frac{२१}{४}$ को मिलानेपर शरीरपर्याप्ति का काल ऐसा $\frac{२१।५}{४}$ । यहां समच्छेद द्वारा एक अधिक भागहार के प्रमाण से गुणित करके सम्पूर्ण भागहार का भाग देनेपर एक भाग का मिलाना जानना।

[**विशेषार्थ** - $२१ + \frac{२१}{४} = \frac{४ \times २१}{४} + \frac{२१}{४} = \frac{२१ \times ५}{४}$]

पुनश्च उस एक भाग का संख्यातवां भाग ऐसा $\frac{२१}{४।४}$ और पहले दो ऐसे $\frac{२१}{४} + २१$ ($\frac{२१।५}{४}$) उनको समच्छेद द्वारा जोड़नेपर इन्द्रियपर्याप्ति का काल ऐसा $\frac{२१।५।५}{४।४}$ । ऐसे ही मन:पर्याप्ति पर्यंत जानना । उनका यंत्र -

					जोड़ $\frac{२१५५५५५}{४।४।४।४।४}$
				जोड़ $\frac{२१५५५५}{४।४।४।४}$	$\frac{२१}{४।४।४।४।४}$
			जोड़ $\frac{२१५५५}{४।४।४}$	$\frac{२१}{४।४।४।४}$	$\frac{२१}{४।४।४।४}$
		जोड़ $\frac{२१५५}{४।४}$	$\frac{२१}{४।४।४}$	$\frac{२१}{४।४।४}$	$\frac{२१}{४।४।४}$
	जोड़ $\frac{२१५}{४}$	$\frac{२१}{४।४}$	$\frac{२१}{४।४}$	$\frac{२१}{४।४}$	$\frac{२१}{४।४}$
जोड़ २१	$\frac{२१}{४}$	$\frac{२१}{४}$	$\frac{२१}{४}$	$\frac{२१}{४}$	$\frac{२१}{४}$
२१	२१	२१	२१	२१	२१
आहारपर्याप्ति	शरीर प.	इन्द्रिय प.	उच्छ्वास प.	भाषा प.	मन: प.

पुनश्च त्रैराशिक के कथन में प्रमाण, फल, इच्छा की संदृष्टि सर्वत्र आदि अक्षररूप जाननी - प्र, फ, इ, लब्ध । उनका जैसा जहां प्रमाण हो, वैसा वहां जानना ।

प्राण अधिकार में विशेष संदृष्टि है नहीं ।

संज्ञा अधिकार में विशेष संदृष्टि है नहीं ।

मार्गणा महाअधिकार में **गतिमार्गणा अधिकार** में संदृष्टि कहते हैं –

जहां जीवों की संख्या का वर्णन है, वहां सामान्य सर्व नारकियों के प्रमाण की संदृष्टि ऐसी **–२मू** [जगत्श्रेणी X घनांगुल का द्वितीय वर्गमूल] यहां जगत्श्रेणी की संदृष्टि ऐसी – उसके आगे घनांगुल के द्वितीय वर्गमूल के गुणकार की संदृष्टि ऐसी **२मू** जाननी ।

वहां द्वितीयादि पृथ्वियों में नारकियों के प्रमाण की संख्या क्रम से ऐसी $\overline{१२}।\overline{१०}।\overline{८}।\overline{६}।\overline{३}।\overline{२}$ यहां जगत्श्रेणी की संदृष्टि ऐसी –, उसके नीचे इस जगत्श्रेणी ही के बारहवें, दसवें, आठवें, छठवें, तीसरे, दूसरे वर्गमूल के भागहार की संदृष्टि जाननी । पुनश्च इन छहों के जोड़ की संदृष्टि ऐसी $\overset{|}{\frac{-१}{१२}}$ यहां जगत्श्रेणी – को एक से गुणित करके इसीके बारहवें वर्गमूल का भागहार $\frac{-१}{१२}$ देकर अन्य को मिलाने के अर्थ उसके ऊपर साधिक की ऐसी । संदृष्टि जाननी । पुनश्च इसको सामान्य नारकियों के प्रमाण में से घटानेपर धर्मा नारकियों के प्रमाण की संदृष्टि ऐसी **–२मू** $\frown \overset{|}{\frac{-१}{१२}}$ यहां सामान्य नारकियों का प्रमाण ऐसा **–२मू** उसके आगे गुणकार में घटाने की संदृष्टि संयुक्त छहों नारकियों के प्रमाण की संदृष्टि जाननी ।

[**विशेषार्थ** - सातों पृथ्वियों के नारकी (सामान्य नारकी) = जगत्श्रेणी X घनांगुल का द्वितीय वर्गमूल **–२मू**

दूसरी पृथ्वी के नारकी ⟶ जगत्श्रेणी ÷ जगत्श्रेणी का बारहवां वर्गमूल $\overline{१२}$

तीसरी पृथ्वी के नारकी ⟶ जगत्श्रेणी ÷ जगत्श्रेणी का दसवां वर्गमूल $\overline{१०}$

दूसरे से सातवें तक के नारकी ⟶ साधिक $\overline{१२}$ ⟶ $\overset{|}{\frac{-१}{१२}}$

पहली पृथ्वी के नारकी ⟶ −२मू ⌒ −१/१२]

यहां अपनयन त्रैराशिक में प्रमाणराशि जगत्श्रेणी **प्र–**, फलराशि **१**, इच्छाराशि छहों पृथ्वियों का जोड़ −१/१२, लब्धराशि साधिक बारहवां वर्गमूलमात्र जगत्श्रेणी का भाग १/१२ गुणकार **२मू** में कम जानना ।

तिर्यंचगति में सामान्य सर्व तिर्यंचों की संदृष्टि ऐसी **१३≡** । यहां संसारीराशि **१३** के आगे नारक, मनुष्य, देव इन तीन राशियों को घटाने की ऐसी ≡ संदृष्टि जाननी। पुनश्च पंचेन्द्रिय तिर्यंचराशि की संदृष्टि ऐसी
=५८३६
४।४।६५६१
७≡
यहां आगे इन्द्रियमार्गणा में पंचेन्द्रिय जीवों के प्रमाण की संदृष्टि कहेंगे । उसमें से तीन गतियों के जीव घटाने की आगे ऐसी ≡ संदृष्टि जाननी। पुनश्च पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंचराशि की संदृष्टि ऐसी
=५८६४
४।४।६५६१
५≡
यहां भी आगे पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंचराशि की संदृष्टि लिखेंगे । उसमें से तीन गतियों के जीव घटाने की ऐसी ≡ संदृष्टि जाननी।

पुनश्च योनिमत् तिर्यंच राशि की संदृष्टि ऐसी =/४।६५=।८१।४।१॰ यहां छह सौ योजन के वर्ग के प्रतरांगुल करनेपर पणट्ठी को इक्यासी और चार से गुणा करके आगे दस बिंदी देते हैं इतना होता है, उसका भाग जगत्प्रतर को जानना । यहां ऊपर जगत्प्रतर की संदृष्टि ऐसी =, उसके नीचे प्रतरांगुल की ऐसी **४**, पणट्ठी की ऐसी **६५=**, आगे इक्यासी और चार के गुणकार की ऐसी **८१।४**, आगे दस बिंदियों की ऐसी **१॰** जाननी ।

पुनश्च अपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच राशि की संदृष्टि ऐसी
=५॰८६४।५≡ है ।
=५८३६।७≡
४।४।६५६१
यहां भी आगे अपर्याप्त पंचेन्द्रिय की संदृष्टि लिखेंगे । उसमें ऋणराशि और धनराशि में तीन गतियों के जीव घटाने की ऐसी ≡ संदृष्टि जाननी।

[**विशेषार्थ** - पंचेन्द्रिय तिर्यंच =५८३६ / ४।४।६५६१ / ७≡ अर्थात् =५८३६।७≡ / ४।४।६५६१

पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच =५८६४ / ४।४।६५६१ / ५≡ अर्थात् =५८६४।५≡ / ४।४।६५६१

पंचेन्द्रिय तिर्यंच - पर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच = अपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यंच

=५̊८६४।५≡
=५८३६।७≡
४।४।६५६१]

पुनश्च मनुष्यगति में सामान्य मनुष्यराशि की संदृष्टि ऐसी १ ∩ / १।३ । यहां जगत्श्रेणी — के नीचे सूच्यंगुल का प्रथम, तृतीय वर्गमूल ऐसा १।३ उसका भाग जानना और ऊपर लब्धराशि में एक कम जानना १ ∩।

पुनश्च पर्याप्त मनुष्यराशि की संदृष्टि ऐसी ४२=।४२=।४२= यह बादाल का घन जानना । इसको तीन से गुणा करके चार का भाग देनेपर योनिमत् मनुष्यराशि की संदृष्टि ऐसी ४२=।४२=।४२=।३ / ४ तथा अपर्याप्त मनुष्यराशि की संदृष्टि ऐसी

१ ∩ / १।३ -१ । यहां समान्य मनुष्यराशि के आगे संख्यात पर्याप्त मनुष्य घटाने की ऐसी -१ संदृष्टि जाननी ।

पुनश्च देवगति में व्यंतरराशि की संदृष्टि ऐसी = / ४।६५=।८१।१०̊ यहां जगत्प्रतर = को तीन सौ योजन के वर्ग के जितने प्रतरांगुल होते हैं अर्थात् इक्यासी ८१ गुणित पणट्ठी ६५= के आगे दस बिंदी १०̊ देनेपर जो प्रमाण हो उतने प्रतरांगुल ४ का भाग जानना ।

पुनश्च ज्योतिष्कराशि की संदृष्टि ऐसी = / ४।६५= यहां जगत्प्रतर = को पणट्ठी ६५= प्रमाण प्रतरांगुल ४ का भाग जानना । पुनश्च भवनवासी राशि की संदृष्टि ऐसी —१। यहां जगत्श्रेणी — को घनांगुल के प्रथम मूल १ का गुणकार जानना । सौधर्मयुगल में देवराशि की संदृष्टि ऐसी —३, यहां जगत्श्रेणी — को घनांगुल के तृतीय वर्गमूल ३ का गुणकार जानना।

सनत्कुमार माहेन्द्र युगल आदि पांच युगलों में देवराशि की क्रम से संदृष्टि ऐसी $\overline{११}$, $\overline{९}$, $\overline{७}$, $\overline{५}$, $\overline{४}$ । यहां जगत्श्रेणी – को क्रम से इसी जगत्श्रेणी के ग्यारहवें, नौवें, सातवें, पांचवें, चौथे वर्गमूल का भाग जानना ।

आनतादि दो युगल और अधस्तन, मध्यम, उपरितन ग्रैवेयक और अनुदिश विमान तथा अनुत्तर विमान इन सात स्थानों में प्रत्येक में पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र देव हैं, उनकी संदृष्टि ऐसी $\frac{प}{a}$ ।

यहां कल्पवासी देवों के प्रमाण की रचना निम्नानुसार है -

यहां पहले, दूसरे, सातवें, आठवें युगल में दो दो इन्द्र संबंधी देवों का प्रमाण है वहां दो बार एक की संदृष्टि है । तीसरे, चौथे, पांचवें युगल में एक एक इन्द्र है वहां एक बार एक और एक बार बिंदी की संदृष्टि है । तीन-तीन अधः, मध्य, उपरिम ग्रैवेयकों संबंधी ऐसी ३, नौ अनुदिश संबंधी ऐसी ९, पांच अनुत्तर संबंधी ऐसी ५ संदृष्टि जाननी ।

नाम और संदृष्टि		संख्या की संदृष्टि
अनुत्तर	५	$\frac{प}{a}$
अनुदिश	९	$\frac{प}{a}$
उपरिमग्रैवेयक	३	$\frac{प}{a}$
मध्यग्रैवेयक	३	$\frac{प}{a}$
अधोग्रैवेयक	३	$\frac{प}{a}$
आरण-अच्युत	१।१	$\frac{प}{a}$
आनत-प्राणत	१।१	$\frac{प}{a}$
शतार-सहस्रार	१।०	$\overline{४}$
शुक्र-महाशुक्र	१।०	$\overline{५}$
लांतव-कापिष्ठ	०।१	$\overline{७}$
ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर	०।१	$\overline{९}$
सनत्कुमार–माहेन्द्र	१।१	$\overline{११}$
सौधर्म–ईशान	१।१	=३

सर्वार्थसिध्दि के देवराशि की संदृष्टि ऐसी ४२=।४२=।४२=। $\frac{३}{४}$ ।३ या ७ है। यहां मनुष्यणी के प्रमाण के आगे तीन या सात का गुणकार जानना ।

सर्व देवराशि की संदृष्टि ऐसी $\overline{\overline{४}}$।६५=$^{\frac{॥ १ \, १}{१}}$ । यहां ज्योतिष्कराशि ऐसी $\overline{\overline{४}}$।६५= और इसके संख्यातवें भागप्रमाण व्यंतरराशि है उसको मिलाने के लिये ज्योतिष्कराशि के आगे एक के संख्यातवें भाग से अधिक एक ऐसा $\frac{१ \, १}{१}$ उसका गुणकार करनेपर व्यंतरराशि सहित ज्योतिष्क राशि ऐसी $\overline{\overline{४}}$।६५=$^{\frac{१ \, १}{१}}$ । इसके ऊपर भवनवासी और कल्पवासी ये दो राशियां मिलाने के लिये ऊपर दो ऊभी लीक (रेषा) की ऐसी ॥ संदृष्टि करनेपर सम्पूर्ण देवराशि की संदृष्टि होती है ।

अब **इन्द्रियमार्गणा** में संदृष्टि कहते हैं –

वहां निर्वृत्तिरूप द्रव्येन्द्रियों की अवगाहना में चक्षुइन्द्रिय की अवगाहना ऐसी $\frac{६ । प_{a}}{प_{a} \, १ \, १ \, \frac{१}{प_{a}}}$

यहां घनांगुल ६ को पल्य के असंख्यातवें भाग $प_{a}$ का गुणकार जानना तथा पल्य के असंख्यातवें भाग $प_{a}$ का और संख्यात १ का और संख्यात १ का और एक अधिक पल्य के असंख्यातवें भाग $\frac{१}{प_{a}}$ का भागहार जानना । इससे संख्यातगुणा श्रोत्रइन्द्रिय की अवगाहना है वहां संख्यात के गुणकार और भागहार का अपवर्तन करनेपर ऐसी संदृष्टि होती है $\frac{६ । प_{a}}{प_{a} \, १ \, \frac{१}{प_{a}}}$ । पुनश्च इसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एक भाग से अधिक घ्राणेन्द्रिय की अवगाहना है । वहां पल्य के असंख्यातवें भाग का भागहार और इससे एक अधिक का गुणकार हुआ उसका अपवर्तन करनेपर ऐसी $\frac{६}{प_{a} \, १}$ संदृष्टि होती है । पुनश्च इससे पल्य के असंख्यातवें भाग गुणा जिव्हाइन्द्रिय की अवगाहना

है उसे अपवर्तन करनेपर घनांगुल का संख्यातवां भागमात्र ऐसी ६/ॄ होती है । पुनश्च स्पर्शनइन्द्रिय की जघन्य अवगाहना (सूक्ष्म निगोद लब्धि अपर्याप्त की जघन्य अवगाहना) ऐसी

६।८।२२
प।१९।८।९।८।२२।ॄ।९

और उत्कृष्ट अवगाहना (महामत्स्य की) ऐसी ६ॄॄॄॄ है । यहां जीवसमास अधिकार में शरीर की जघन्य-उत्कृष्ट अवगाहना का जो प्रमाण कहा था वही जानना ।

पुनश्च जीवों की संख्या में एकेन्द्रियराशि की संदृष्टि ऐसी १३– यहां संसारीराशि के आगे त्रसराशि घटाने की ऐसी – संदृष्टि जाननी । इसको संख्यात की सहनानी यहांपर पांच का अंक है उसका भाग देकर बहुभाग प्रमाण पर्याप्तराशि की संदृष्टि ऐसी १३–।४/५ है । जहां बहुभाग का ग्रहण हो वहां भागहार का भाग देकर एक कम भागहार के प्रमाण का गुणकार जानना । एक भागमात्र अपर्याप्तराशि की ऐसी १३–।१/५ । पुनश्च एकेन्द्रिय सामान्यराशि को असंख्यात लोक की संदृष्टि यहां पर नौ का अंक है उसका भाग देकर एक भागमात्र बादर एकेन्द्रियराशि की संदृष्टि ऐसी १३–।१/९ तथा बहुभाग मात्र सूक्ष्मराशि की ऐसी १३–।८/९ ।

पुनश्च बादर एकेन्द्रियराशि को असंख्यात लोक की संदृष्टि यहांपर सात का अंक है उसका भाग देकर बहुभाग मात्र अपर्याप्तराशि की संदृष्टि ऐसी १३–।६/९।७ और एक भाग मात्र पर्याप्तराशि की ऐसी १३–।१/९।७ है ।

पुनश्च सूक्ष्म एकेन्द्रियराशि को यहांपर संख्यात की सहनानी पांच का अंक है उसका भाग देकर बहुभाग मात्र पर्याप्तराशि की ऐसी १३–।८।४/९।५ तथा एकभागमात्र अपर्याप्तराशि की ऐसी १३–।८/९।५ संदृष्टि जाननी ।

एकेन्द्रिय $१३-$

पर्याप्त $\frac{१३-।४}{५}$ — अपर्याप्त $\frac{१३-।१}{५}$

बादर $\frac{१३-।१}{९}$ — सूक्ष्म $\frac{१३-।८}{९}$

बादर पर्याप्त $\frac{१३-।१}{९।७}$ — बादर अपर्याप्त $\frac{१३-।६}{९।७}$

सूक्ष्म पर्याप्त $\frac{१३-।८।४}{९।५}$ — सूक्ष्म अपर्याप्त $\frac{१३-।८।१}{९।५}$

पुनश्च सामान्य त्रसराशि की संदृष्टि ऐसी $\overset{=}{\underset{ə}{४}}$ यहां प्रतरांगुल के असंख्यातवें भाग का भाग जगत्प्रतर को जानना । पुनश्च इसको आवली के असंख्यातवें भाग की संदृष्टि यहां नौ का अंक, उसका भाग देकर बहुभाग ऐसा $\overset{=}{\underset{ə}{४}}।\frac{८}{९}$ इसको चार का भाग देनेपर ऐसा $\overset{=}{\underset{ə}{४}}।\frac{८}{९}।४$ एक एक समान भाग द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय को देना। अवशेष एक भाग रहा ऐसा $\overset{=}{\underset{ə}{४}}।९$ उसको आवली के असंख्यातवां भागमात्र प्रतिभाग ऐसा ९ उसका भाग देकर बहुभाग ऐसा $\overset{=}{\underset{ə}{४}}।\frac{८}{९}।९$ द्वीन्द्रिय को देना, अवशेष एकभाग ऐसा $\overset{=}{\underset{ə}{४}}।\frac{१}{९}।९$ उसको उसी प्रतिभाग का भाग देकर बहुभाग ऐसा $\overset{=}{\underset{ə}{४}}।\frac{८}{९}।९।९$ त्रीन्द्रिय को देना । पुनश्च अवशेष एक भाग ऐसा $\overset{=}{\underset{ə}{४}}।\frac{१}{९}।९।९$ उसको उसी प्रतिभाग का भाग देकर बहुभाग ऐसा $\overset{=}{\underset{ə}{४}}।\frac{८}{९}।९।९।९$ चतुरिन्द्रिय को देना । पुनश्च अवशेष एक भाग ऐसा $\overset{=}{\underset{ə}{४}}।\frac{१}{९}।९।९।९$ पंचेन्द्रिय को देना। इसप्रकार बहुभाग के चार समान भाग ऊपर स्थापित करना, पश्चात् उसमें दिये हुये देयभाग नीचे स्थापित करना।

नाम	द्वीन्द्रिय	त्रीन्द्रिय	चतुरिन्द्रिय	पंचेन्द्रिय
समभाग	$\overset{=}{\underset{ə}{४}}।\frac{८}{९}।४$	$\overset{=}{\underset{ə}{४}}।\frac{८}{९}।४$	$\overset{=}{\underset{ə}{४}}।\frac{८}{९}।४$	$\overset{=}{\underset{ə}{४}}।\frac{८}{९}।४$
देयभाग	$\overset{=}{\underset{ə}{४}}।\frac{८}{९}।९$	$\overset{=}{\underset{ə}{४}}।\frac{८}{९}।९।९$	$\overset{=}{\underset{ə}{४}}।\frac{८}{९}।९।९।९$	$\overset{=}{\underset{ə}{४}}।९।९।९।९$

यहां अंकों का परस्पर समच्छेद करनेपर समभाग, देयभाग ऐसे होते हैं - कैसे उसे कहते हैं –

नाम	द्वीन्द्रिय	त्रीन्द्रिय	चतुरिन्द्रिय	पंचेन्द्रिय
समभाग	=।८।९।९।९ ४।४।९।९।९।९ a	=।८।९।९।९ ४।४।९।९।९।९ a	=।८।९।९।९ ४।४।९।९।९।९ a	=।८।९।९।९ ४।४।९।९।९।९ a
देयभाग	=।८।४।९।९ ४।४।९।९।९।९ a	=।८।४।९ ४।४।९।९।९।९ a	=।८।४ ४।४।९।९।९।९ a	=१।४ ४।४।९।९।९।९ a

सबसे अधिक देयभाग के भागहार में चार बार नौ के अंक हैं और समभाग के भागहार में एक बार नौ का अंक है । इसलिये सर्वत्र भागहार में चार बार नौ का अंक करने के लिये समभाग में तीन बार नौ के अंक का गुणकार और भागहार लिखा। पुनश्च देयराशि के भागहार में चार का अंक है नहीं परंतु समभाग के भागहार में चार का अंक है । इसलिये समच्छेद करने के लिये सर्वत्र देयराशि में चार का गुणकार और भागहार किया । पुनश्च सर्वत्र चार बार नौ के अंक का भागहार करना और द्वीन्द्रिय की देयराशि में दो बार नौ के अंक का भागहार है इसलिये वहां दो बार नौ के अंक का गुणकार और भागहार किया ।

त्रीन्द्रिय की देयराशि में तीन बार नौ के अंक का भागहार है, इसलिये वहां एक बार नौ के अंक का गुणकार और भागहार किया । चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय की देयराशि में चार बार नौ का भागहार है ही, इसलिये वहां गुणकार भागहार नहीं किया, ऐसा यह समच्छेद जानना ।

पुनश्च समभाग का गुणकार आठ और तीन बार नौ का अंक (८।९।९।९) इनको परस्पर गुणा करनेपर अट्ठावन सौ बत्तीस होते हैं और देयराशि के गुणकार में द्वीन्द्रिय के आठ, चार, नौ, नौ को परस्पर गुणा करनेपर पच्चीस सौ बानबे होते हैं। त्रीन्द्रिय के आठ, चार, नौ को परस्पर गुणा करनेपर दो सौ अट्ठासी होते हैं, चतुरिन्द्रिय के आठ, चार को परस्पर गुणा करनेपर बत्तीस होते हैं । पंचेन्द्रिय के चार ही है। पुनश्च भागहार में सर्वत्र चार के गुणकार को जुदा रखकर चार बार नौ के अंकों को परस्पर गुणा करनेपर पैंसठ सौ इकसठ होते हैं । ऐसा करनेपर समभाग, देयभाग ऐसे हुये –

नाम	द्वीन्द्रिय	त्रीन्द्रिय	चतुरिन्द्रिय	पंचेन्द्रिय
समभाग	=।५८३२ ४।४।६५६१ २	=।५८३२ ४।४।६५६१ २	=।५८३२ ४।४।६५६१ २	=।५८३२ ४।४।६५६१ २
देयभाग	=।२५९२ ४।४।६५६१ २	=।२८८ ४।४।६५६१ २	=।३२ ४।४।६५६१ २	=।४ ४।४।६५६१ २

इन समभागों और देयभागों को जोड़नेपर द्वीन्द्रिय आदि जीवों के प्रमाण की संदृष्टि ऐसी होती है -

नाम	द्वीन्द्रिय	त्रीन्द्रिय	चतुरिन्द्रिय	पंचेन्द्रिय
प्रमाण	=।८४२४ ४।४।६५६१ २	=।६१२० ४।४।६५६१ २	=।५८६४ ४।४।६५६१ २	=।५८३६ ४।४।६५६१ २

पुनश्च पर्याप्त त्रस जीवों का प्रमाण ऐसा =
४
५ यहां संख्यात की संदृष्टि पांच का अंक, उससे भाजित प्रतरांगुल का भाग जगत्प्रतर को जानना । वहां पूर्वोक्त प्रकार से प्रतिभाग [९ = आवली का असंख्यातवां भाग] का भाग देकर बहुभाग में चार समान भाग करके त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय को देना और एक भाग के बहुभाग मात्र क्रम से त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, पंचेन्द्रिय को देना, एक भाग चतुरिन्द्रिय को देना। उनकी संदृष्टि ऐसी होती है -

यंत्र क्र. १ -

नाम	त्रीन्द्रिय	द्वीन्द्रिय	पंचेन्द्रिय	चतुरिन्द्रिय
समभाग	= ८ ४।९।४ ५	= ८ ४।९।४ ५	= ८ ४।९।४ ५	= ८ ४।९।४ ५
देयभाग	= ८ ४।९।९ ५	= ८ ४।९।९।९ ५	= ८ ४।९।९।९।९ ५	= १ ४।९।९।९।९ ५

[यंत्र क्र. २ और यंत्र क्र. ३ मूल पुस्तक में नहीं है, सीधा यंत्र क्र. ४ दिया है। वह कैसे आया समझने के लिये यहां दिखाया है । इनको पूर्वोक्त प्रकार से समच्छेद

करके मिलानेपर पर्याप्त जीवों के प्रमाण की संदृष्टि ऐसी होती है –

यंत्र क्र. २ –

नाम	त्रीन्द्रिय	द्वीन्द्रिय	पंचेन्द्रिय	चतुरिन्द्रिय
समभाग	=।८।९।९।९ ४।४।९।९।९।९ ५	=।८।९।९।९ ४।४।९।९।९।९ ५	=।८।९।९।९ ४।४।९।९।९।९ ५	=।८।९।९।९ ४।४।९।९।९।९ ५
देयभाग	=।८।४।९।९ ४।४।९।९।९।९ ५	=।८।४।९ ४।४।९।९।९।९ ५	=।८।४ ४।४।९।९।९।९ ५	=।४ ४।४।९।९।९।९ ५

यंत्र क्र. ३ –

नाम	त्रीन्द्रिय	द्वीन्द्रिय	पंचेन्द्रिय	चतुरिन्द्रिय
समभाग	=।५८३२ ४।४।६५६१ ५	=।५८३२ ४।४।६५६१ ५	=।५८३२ ४।४।६५६१ ५	=।५८३२ ४।४।६५६१ ५
देयभाग	=।२५९२ ४।४।६५६१ ५	=।२८८ ४।४।६५६१ ५	=।३२ ४।४।६५६१ ५	=।४ ४।४।६५६१ ५

[त्रस पर्याप्तों की संख्या]

यंत्र क्र. ४ –

नाम	त्रीन्द्रिय	द्वीन्द्रिय	पंचेन्द्रिय	चतुरिन्द्रिय
प्रमाण	=।८४२४ ४।४।६५६१ ५	=।६१२० ४।४।६५६१ ५	=।५८६४ ४।४।६५६१ ५	=।५८३६ ४।४।६५६१ ५

पुनश्च पूर्वोक्त सामान्य त्रस जीवों के प्रमाण में से इस पर्याप्त जीवों के प्रमाण को घटानेपर अपर्याप्त जीवों के प्रमाण की संदृष्टि ऐसी होती है –

नाम	त्रीन्द्रिय	द्वीन्द्रिय	पंचेन्द्रिय	चतुरिन्द्रिय
प्रमाण	६१२०।५ = ८४२४।७ ४।४।६५६१	८४२४।५ = ६१२०।७ ४।४।६५६१	५८३६।५ = ५८६४।७ ४।४।६५६१	५८६४।५ = ५८३६।७ ४।४।६५६१

यहां सामान्यराशि सो तो मूलराशि और पर्याप्तराशि सो ऋणराशि इन दोनों में $\frac{=}{४।४।६५६१}$ अर्थात् जगत्प्रतर को प्रतरांगुल और चौगुणा पैंसठ सौ इकसठ का

भाग समान देखकर मूलराशि का गुणकार लिखकर उसमें से ऋणराशि का गुणकार घटाने के लिये ऋणराशि ऊपर लिखकर उसे घटाने की संदृष्टि ऊपर बिंदी की है । पुनश्च भागहार का भागहार भाज्य का गुणकार होता है इस न्याय से मूलराशि में भागहार प्रतरांगुल का भागहार असंख्यात था, उसको मूलराशि के गुणकार का गुणकार किया और ऋणराशि में पांच का अंक था उसको ऋणराशि के गुणकार का गुणकार किया है ।

अब **कायमार्गणा अधिकार** में संदृष्टि कहते हैं -

वहां बादर, सूक्ष्म पृथ्वी आदि चार कायिक जीवों का शरीर घनांगुल के असंख्यातवें भागमात्र कहा है । वहां सूक्ष्म पृथ्वीकायिक अपर्याप्त के जघन्य शरीर अवगाहना की ऐसी ६।८ə।२२ / पə।१९।८ə।५।८ə(१)।२२।ॣ।९ । और बादर पृथ्वीकायिक पर्याप्त की उत्कृष्ट अवगाहना की ऐसी ६।८ə।४ / पə।४।८ə(१)।४।ॣ।९ । इत्यादि जीवसमासोक्त संदृष्टि जाननी । पुनश्च प्रतिष्ठित शरीरों का प्रमाण लाने के लिये प्रमाणराशि प्रतिष्ठित की उत्कृष्ट अवगाहना जीवसमासोक्त ऐसी ६ / पə।२।ॣ।९, फलराशि १, इच्छाराशि संख्यात घनांगुल प्रमाण एक स्कंध ६ॣ; वहां लब्धराशि दो बार पल्य के असंख्यातवें भाग को दस बार संख्यात से गुणा करनेपर जो प्रमाण हो पə।२।ॣ।१०, उतना एक स्कंध में प्रतिष्ठित शरीरों का प्रमाण जानना।

[**विशेषार्थ** - ∵ ६ / पə।२।ॣ।९ में १ शरीर

∴ ६ॣ (स्कंध की अवगाहना) में ६ॣ x १ / (६ / पə।२।ॣ।९) = पə।२।ॣ।१०]

पुनश्च निगोद कथन में असंख्यात लोकप्रमाण स्कंधों की संदृष्टि ऐसी ≡ə इसको क्रम से असंख्यात लोक से गुणा करनेपर अंडर, आवास, पुलवी, शरीर इनके प्रमाण की संदृष्टि ऐसी होती है - **स्कंध** ≡ə, अंडर ≡ə≡ə, आवास ≡ə≡ə≡ə, पुलवी ≡ə≡ə≡ə≡ə, शरीर ≡ə≡ə≡ə≡ə≡ə।

पुनश्च प्रमाणराशि सर्व निगोद शरीरों का प्रमाण ऐसा ≡ ख ≡ ख ≡ ख ≡ ख ≡ ख, फलराशी वक्ष्यमाण बादर निगोद जीव प्रमाण ऐसा १३– / ९, इच्छाराशि एक करनेपर लब्धराशि मात्र एक बादर निगोद शरीर में जीवों का प्रमाण ऐसा १३– / ९ ≡ ख ≡ ख ≡ ख ≡ ख ≡ ख जानना।

पुनश्च प्रमाणराशि एक समय और फलराशि एक समय में निगोद में जीव उपजने का प्रमाण असंख्यात लोक मात्र ऐसा ≡ ख और इच्छाराशि जीवों का इतर निगोद में रहने का उत्कृष्ट काल अढ़ाई पुद्गल परावर्तन मात्र काल ऐसा पु५ / २ । वहां लब्धराशि मात्र इतर निगोद के जीवों का प्रमाण ऐसा होता है पु५ / २ ≡ ख।

पुनश्च उपपाद, मारणांतिकवाले का त्रसनाली के बाह्य अस्तित्व पाया जाता है। वहां संदृष्टि ऐसी -

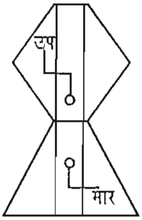

यहां लोक का आकार करके बीच में त्रसनाली के आकार द्वारा उपपादवाले और मारणांतिकवाले का त्रसनाली के अभ्यंतर और बाह्य में प्रदेशों की श्रेणी के आकार की संदृष्टि जाननी ।

पुनश्च जीवों की संख्या में असंख्यात लोकमात्र अग्निकायिक की संदृष्टि ऐसी ≡ ख। उसको प्रतिभाग का प्रमाण यथायोग्य असंख्यात लोकमात्र उसकी संदृष्टि नौ का अंक उसका भाग देकर एक भाग ऐसा ≡ ख १ / ९, उसीमें समच्छेद करके मिलानेपर पृथ्वीकायिकराशि की संदृष्टि ऐसी ≡ ख । १० / ९ यहां एक अधिक भागहार से गुणा करके पूर्ण भागहार का भाग देनेपर एक भाग के मिलाने की संदृष्टि जाननी । इसीप्रकार उसको प्रतिभाग का भाग देकर एक भाग ऐसा ≡ ख । १० । १ / ९ । ९ उसीमें मिलानेपर अप्कायिक (जलकायिक) जीवों की संदृष्टि ऐसी ≡ ख । १० । १० / ९ । ९ । पुनश्च इसको प्रतिभाग का भाग देनेपर एक भाग ऐसा ≡ ख । १० । १० । १ / ९ । ९ । ९ उसीमें मिलानेपर वायुकायिकराशि की संदृष्टि ऐसी

$\frac{≡ə|१०|१०|१०|}{९|९|९}$ । पुनश्च अप्रतिष्ठितप्रत्येक यथायोग्य असंख्यात लोकमात्र उसकी संदृष्टि ऐसी ≡ə, इनसे असंख्यात लोक गुणा प्रतिष्ठितप्रत्येकों की ऐसी ≡ə≡ə इन दोनों को मिलानेपर प्रत्येक वनस्पतिकायिक की ऐसी $≡ə\frac{१}{≡ə}$ । यहां असंख्यात लोक को दोनों में समान देखकर आगे के असंख्यात लोक के गुणकार के ऊपर एक अधिक की संदृष्टि जाननी ।

[अप्रतिष्ठितप्रत्येक + प्रतिष्ठितप्रत्येक ⟶ प्रत्येक वनस्पति

≡ə + ≡ə≡ə ⟶ $≡ə\frac{१}{≡ə}$]

पुनश्च आगे कहेंगे त्रसराशि ऐसी $\frac{≡}{४\;२\;ə}$ $\left[\frac{≡\ \text{जगत्प्रतर}}{४\ \text{प्रतरांगुल}\;\;२\ \text{आवली}\;\;ə\ \text{असंख्यात}}\right]$ और पृथ्वी आदि चार का प्रमाण जोड़नेपर साधिक चौगुणा तेजकायिक राशि मात्र ऐसा ≡ə४ और प्रत्येक वनस्पतिकायिक राशि ऐसी $≡ə\frac{१}{≡ə}$ । इन तीनों राशियों को संसारीराशि में से घटानेपर साधारणराशि का प्रमाण ऐसा १३≡, यहां संसारीराशि १३ के आगे तीन राशि घटाने की ऐसी ≡ संदृष्टि जाननी । पुनश्च जो पृथ्वीकायिक आदि का प्रमाण कहा उसको असंख्यात लोक की संदृष्टि नौ का अंक उसका भाग देकर एक भाग मात्र बादर जीवों का प्रमाण है । वहां अपनी अपनी सामान्यराशि को नौ का भाग देनेपर संदृष्टि होती है ।

पुनश्च अवशेष बहुभाग मात्र सूक्ष्म है । वहां अपनी अपनी सामान्यराशि को आठ से गुणा करके नौ का भाग देनेपर संदृष्टि होती है । पुनश्च अपने अपने सूक्ष्म जीवों के प्रमाण को संख्यात का भाग देनेपर एक भाग मात्र अपर्याप्त है । वहां अपनी अपनी राशि को पांच का भाग देने से संदृष्टि होती है । बहुभाग मात्र पर्याप्त है वहां अपनी अपनी राशि को चार से गुणा करके पांच का भाग देनेपर संदृष्टि होती है । कैसे वह कहते हैं –

[**विशेषार्थ** - ऊपर के कथन को कोष्टक के रूप में नीचे प्रस्तुत किया है –

नाम	सामान्य	बादर	सूक्ष्म	सूक्ष्मपर्याप्त	सूक्ष्मअपर्याप्त
अग्निकायिक	≡ə	≡ə।१ ९	≡ə।८ ९	≡ə।८।४ ९।५	≡ə।८।१ ९।५
पृथ्वीकायिक	≡ə।१० ९	≡ə।१०।१ ९।९	≡ə।१०।८ ९।९	≡ə।१०।८।४ ९।९।५	≡ə।१०।८।१ ९।९।५
अप्कायिक	≡ə।१०।१० ९।९	≡ə।१०।१० ९।९।९	≡ə।१०।१०।८ ९।९।९	≡ə।१०।१०।८।४ ९।९।९।५	≡ə।१०।१०।८।१ ९।९।५
वायुकायिक	≡ə।१०।१०।१० ९।९।९	≡ə।१०।१०।१०।१ ९।९।९।९	≡ə।१०।१०।१०।८ ९।९।९।९	≡ə।१०।१०।१०।८।४ ९।९।९।९।५	≡ə।१०।१०।१०।८।१ ९।९।९।९।५]

अपर्याप्त काल संख्यात आवलीमात्र ऐसा **२ꝗ** इससे संख्यात की संदृष्टि चार गुणा पर्याप्त काल ऐसा **२ꝗ४** । चार के गुणकार के ऊपर एक अधिक की संदृष्टि करनेपर मिश्रकाल ऐसा **२ꝗ १/४** [२ꝗ + २ꝗ४ ⟶ २ꝗ १/४], उसे तो सर्वत्र प्रमाणराशि करते हैं और अपने अपने सूक्ष्म जीवों के प्रमाण को फलराशि करते हैं तथा पर्याप्त कथन में पर्याप्तकाल को और अपर्याप्त कथन में अपर्याप्त काल को इच्छाराशि करते हैं। ऐसा त्रैराशिक करनेपर अपर्याप्त संख्या में अपनी अपनी सूक्ष्मराशि को पांच का भागहार होता है और पर्याप्त संख्या में चार का गुणकार और पांच का भागहार होता है।

पुनश्च पल्य के असंख्यातवें भाग **प/ə** से भाजित जो प्रतरांगुल **४/प/ə** उसका भाग जगत्प्रतर को देनेपर बादर पर्याप्त अप्कायिक के प्रमाण की संदृष्टि ऐसी **=४/प/ə** इसको आवली के असंख्यातवें भाग की संदृष्टि यहां नौ का अंक, उसका भाग देनेपर बादर पर्याप्त पृथ्वीकायिक के प्रमाण की संदृष्टि ऐसी **=४/प/ə।९** । ऐसे ही नौ का अंक भागहार के आगे लिखनेपर पर्याप्त प्रतिष्ठितप्रत्येक, अप्रतिष्ठितप्रत्येक इनकी संदृष्टि होती है।

पुनश्च घनावली के असंख्यातवें भागमात्र बादर तेजकायिक हैं उसकी संदृष्टि ऐसी **८/ə**। पुनश्च लोक के संख्यातवें भागमात्र बादर वायुकायिक पर्याप्त की संदृष्टि ऐसी

≡ॄ । पुनश्च साधारण बादर जीवों का प्रमाण ऐसा $\frac{१३\equiv}{९}$ है । इसको असंख्यात की सहनानी सात का अंक, उसका भाग देकर एक भाग में एक का गुणकार करनेपर पर्याप्तों की ऐसी $\frac{१३\equiv१}{९\;\;७}$, बहुभाग में छह का गुणकार करनेपर अपर्याप्तों की ऐसी $\frac{१३\equiv६}{९\;\;७}$ है।

पुनश्च आवली के असंख्यातवें भाग से २/a भाजित प्रतरांगुल ४/२/a का भाग जगत्प्रतर को देनेपर सामान्य त्रसराशि की संदृष्टि ऐसी ≡/४/२/a है । पुनश्च प्रतरांगुल के संख्यातवें भाग का भाग जगत्प्रतर को देनेपर पर्याप्त त्रसराशि की संदृष्टि ऐसी ≡/४/५ यहां संख्यात की सहनानी पांच का अंक जानना ।

पुनश्च बादर पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, प्रतिष्ठित-अप्रतिष्ठित प्रत्येक तथा त्रसों की अपनी अपनी सामान्यराशि को ऊपर लिखकर घटाने के लिये उसके नीचे अपनी अपनी पर्याप्तराशि लिखकर मूलराशि से लेकर ऋणराशि तक घटाने की संदृष्टि ऐसी ◡ करनेपर अपर्याप्त जीवों की संदृष्टि होती है । इन सबके प्रमाण का यंत्र ऐसा –

[**विशेषार्थ** – बादर ◡ बादर पर्याप्त = बादर अपर्याप्त

बादर तेज ◡ बादर पर्याप्त तेजकायिक = बादर अपर्याप्त तेजकायिक

≡a/९ ◡ ८/a

बादर पृथ्वीकायिक ◡ बादर पर्याप्त पृथ्वीकायिक = बादर अपर्याप्त पृथ्वीकायिक

≡a।१०/९।९ ◡ ≡/४/५/a ।९

बादर अप्कायिक ◡ बादर पर्याप्त अप्कायिक = बादर अपर्याप्त अप्कायिक

≡a।१०।१०/९।९।९ ◡ ≡/४/५/a

बादर वायुकायिक ‿ बादर पर्याप्त वायुकायिक = बादर अपर्याप्त वायुकायिक

≡ ७।१०।१०।१० / ९।९।९।९ ‿ ≡ / ११

साधारण बादर जीव ‿ साधारण बादर पर्याप्त = साधारण बादर अपर्याप्त

१३≡ / ९ ‿ १३≡१ / ९ ७ = १३≡६ / ९ ७

सामान्य प्रतिष्ठितप्रत्येक ‿ पर्याप्त प्रतिष्ठितप्रत्येक = अपर्याप्त प्रतिष्ठितप्रत्येक

≡ ७ ≡ ७ ‿ ४̿ / प / ७ ।९।९

सामान्य अप्रतिष्ठितप्रत्येक ‿ पर्याप्त अप्रतिष्ठितप्रत्येक = अपर्याप्त अप्रतिष्ठितप्रत्येक

≡ ७ ‿ ४̿ / प / ७ ।९।९।९

सामान्य त्रसराशि ‿ पर्याप्त त्रसराशि = अपर्याप्त त्रसराशि

४̿ / २ / ७ ‿ ४̿ / ५]

पुनश्च बादर तेज, अप्रतिष्ठितप्रत्येक, प्रतिष्ठितप्रत्येक, पृथ्वी, अप् इन पांच राशियों के अर्धच्छेद क्रम से एक, दो, तीन, चार, पांच बार आवली के असंख्यातवें भाग का भाग पल्य को देनेपर जो प्रमाण आये उससे हीन सागर प्रमाण जानने । और बादर वायुकायिक के अर्धच्छेद सम्पूर्ण सागर प्रमाण जानने । उनकी संदृष्टि ऐसी -

तेज	अप्रतिष्ठित	प्रतिष्ठित	पृथ्वी	अप्	वायु
सा–प / ९	सा–प / ९।९	सा–प / ९।९।९	सा–प / ९।९।९।९	सा–प / ९।९।९।९।९	सा

यहां तेज आदि में सागर के आगे घटाने की ऐसी – संदृष्टि करके आगे पल्य लिखकर उसके नीचे आवली के असंख्यातवें भाग की संदृष्टि नौ का अंक उसका क्रम से एक, दो, तीन, चार, पांच बार भागहार जानना । पुनश्च वहां तेज से अप्रतिष्ठितप्रत्येक आदि में अधिक अर्धच्छेदों की संदृष्टि ऐसी –

अप्रतिष्ठित	प्रतिष्ठित	पृथ्वी	अप्	वायु
प।८ ९।९	प।८ ९।९।९	प।८ ९।९।९।९	प।८ ९।९।९।९।९	प।१ ९।९।९।९।९

यहां पल्य को भागहार का भाग देकर पुनश्च अवशेष एक एक भाग को भागहार का भाग देते देते बहुभाग बहुभाग अप्रतिष्ठितप्रत्येक आदि में दिया । वहां पल्य को आठ का गुणकार और क्रम से दो, तीन, चार, पांच बार प्रतिभाग का भागहार जानना। तथा अंत में एक भाग ग्रहण किया है इसलिये वहां पल्य को एक का गुणकार और पांच बार भागहार का भाग जानना ।

पुनश्च यहां त्रैराशिक किया । वहां प्रमाणराशि में देयराशि दो, विरलनराशि लोक का अर्धच्छेद मात्र **प्र दे २ / वि छे छे छे ९ (ə)** तथा फलराशि लोक ऐसा **फ ≡** तथा इच्छाराशि में देयराशि दो, विरलनराशि एक बार भागहार का भाग पल्य को देकर उससे हीन सागरमात्र ऐसा **इ दे २ / वि सा-प / ९** । वहां प्रमाणराशि के विरलनराशि का भाग इच्छाराशि के विरलनराशि को देनेपर ऐसा **सा – प / छे छे छे ९।९ (ə)** अपवर्तन करनेपर लोक के अर्धच्छेदराशि से भाजित किंचित् कम संख्यात पल्यमात्र प्रमाण ऐसा **प १– / छे छे छे ९ (ə)** इतने लोक मांडकर परस्पर गुणित करना । वहां मूलराशिमात्र लोक को परस्पर गुणा करनेपर असंख्यात लोक हुये, उसकी संदृष्टि ऐसी ≡ə और न्यूनराशिमात्र लोकों को परस्पर गुणा करनेपर असंख्यात लोक हुये, वह अल्प है इसलिये उसकी संदृष्टि नौ का अंक उससे उसका भाग देनेपर बादर तेजकायिक जीवराशि का प्रमाण ऐसा हुआ ≡ə/९ । ऐसे ही अन्य त्रैराशिक द्वारा प्रमाण साधना।

अब **योगमार्गणा अधिकार** में संदृष्टि कहते हैं –

वहां औदारिक आदि शरीरों के समयप्रबध्द, समयप्रबध्दों की अवगाहना और वर्गणाओं की संदृष्टि का यंत्र ऐसा –

नाम	औदारिक	वैक्रियिक	आहारक	तेजस्	कार्माण
समयप्रबध्द	स	$स_{\bar{७}}$	$स_{\bar{७}\bar{७}}$	$स_{\bar{७}\bar{७}}ख$	$स_{\bar{७}\bar{७}}खख$
समयप्रबध्द की अवगाहना	$\frac{६}{\substack{२\\७}}$	$\frac{६}{\substack{२२\\७७}}$	$\frac{६}{\substack{२२२\\७७७}}$	$\frac{६}{\substack{२२२२\\७७७७}}$	$\frac{६}{\substack{२२२२२\\७७७७७}}$
वर्गणा की अवगाहना	$\frac{६}{\substack{२२\\७७}}$	$\frac{६}{\substack{२२२\\७७७}}$	$\frac{६}{\substack{२२२२\\७७७७}}$	$\frac{६}{\substack{२२२२२\\७७७७७}}$	$\frac{६}{\substack{२२२२२२\\७७७७७७}}$

यहां औदारिक के समयप्रबध्द की संदृष्टि आदि अक्षररूप ऐसी **स** इसको श्रेणी का असंख्यातवां भाग ऐसा **$\bar{७}$** उससे गुणा करनेपर वैक्रियिक की ऐसी होती है $स_{\bar{७}}$ इसको श्रेणी के असंख्यातवें भाग से गुणा करनेपर आहारक की ऐसी $स_{\bar{७}\bar{७}}$ उसको अनंत ऐसा **ख**, उससे गुणा करनेपर तेजस् की ऐसी $स_{\bar{७}\bar{७}}ख$ इसको अंनत से गुणा करनेपर कार्माण की ऐसी $स_{\bar{७}\bar{७}}खख$ ।

पुनश्च घनांगुल ऐसा **६** उसको सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग ऐसा $\substack{२\\७}$ उसका क्रम से एक, दो, तीन, चार, पांच बार भाग देनेपर औदारिक आदि के समयप्रबध्द की अवगाहना का प्रमाण होता है । पुनश्च घनांगुल **६** को सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग $\substack{२\\७}$ का क्रम से दो, तीन, चार, पांच, छह बार भाग देनेपर औदारिकादि की वर्गणा के अवगाहना का प्रमाण आता है ।

पुनश्च विस्रसोपचय के प्रमाण में प्रमाणराशि एक परमाणु **प्र।१**, फलराशि अनंतगुणा जीवराशि मात्र **फ।१६ख**, इच्छाराशि किंचित् कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबध्द **इ।स७१२–**, वहां लब्धराशि मात्र विस्रसोपचय परमाणुओं का प्रमाण ऐसा जानना– **स७१२-१६ख** । पुनश्च औदारिकादि शरीरों के द्रव्य, स्थिति, गुणहानि, नानागुणहानि, दोगुणहानि, अन्योन्याभ्यस्तराशि की संदृष्टियों का यंत्र निम्नप्रकार है ।

नाम	औदारिक	वैक्रियिक	आहारक	तेजस्	कार्मण
द्रव्य	स	स ॖ	स ॖ ॖ	स ॖ ॖ ख	स ॖ ॖ ख ख
स्थिति	प ३	सा ३३	२ ११	सा ६६	सा ७०को २
गुणहानि आयाम	२ १	२ १	२ १	प १ छे‿वछे।ॖ	प १ छे‿वछे
नानागुणहानि	प ३ २ १	सा ३३ २ १	१	छे‿वछे।ॖ	छे‿वछे
दोगुणहानि	२ १।२	२ १।२	२ १।२	प १।२ छे‿वछे।ॖ	प १।२ छे‿वछे
अन्योन्याभ्यस्तराशि	≡ॖ	≡ॖ≡ॖ	१।१	कॖ या २/ॖ	प/व

यहां पहले समयप्रबध्द की संदृष्टि कही थी वही द्रव्य की संदृष्टि जाननी। पुनश्च स्थिति औदारिक की तीन पल्य **प ३**, वैक्रियिक की तैंतीस सागर **सा ३३**, आहारक की दो बार संख्यात गुणित आवली मात्र **२ ११**, तेजस् की छासठ सागर **सा ६६**, कार्मण की मोह अपेक्षा सागर सत्तर कोडाकोडी **सा ७०को २** जाननी। पुनश्च गुणहानि आयाम औदारिकादि तीन का अंतर्मुहूर्त मात्र **२१** और तेजस् कार्मण का अपनी अपनी स्थिति संख्यात पल्य प्रमाण **प १** को अपनी अपनी नानागुणहानि का भाग देनेपर होता है। पुनश्च नानागुणहानि औदारिक वैक्रियिक की अपनी अपनी स्थिति को गुणहानि आयाम **२ १** का भाग देनेपर होती है, आहारक की संख्यात मात्र **१** है, तेजस् की पल्य के अर्धच्छेद **छे** में से पल्य की वर्गशलाका के अर्धच्छेद **वछे** घटाने की आगे लिखी ऐसी ‿ संदृष्टि करके उसको असंख्यात से गुणा करने के लिये आगे ऐसी ॖ संदृष्टि करनेपर ऐसा **छे‿वछे।ॖ** होता है। कार्मण की असंख्यात ॖ के गुणकार के बिना तेजस्वत् संदृष्टि होती है **छे‿वछे**।

पुनश्च दोगुणहानि में जो गुणहानि की संदृष्टि थी उसको दो से गुणा करने के लिये आगे दो के अंक की संदृष्टि होती है। पुनश्च अन्योन्याभ्यस्तराशि की क्रम से औदारिक की असंख्यात लोकप्रमाण ऐसी ≡ॖ, इससे असंख्यात लोकगुणा वैक्रियिक

की ऐसी ≡ a ≡ a, आहारक की संख्यात गुणित संख्यात मात्र ऐसी ꝗ।ꝗ, तेजस् की सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण ऐसी $\frac{२}{a}$ इसका अपवर्तन करनेपर असंख्यात कल्पकाल मात्र होती है, उसकी वहीं पर संदृष्टि ऐसी **क a**, कार्माण की पल्य को वर्गशलाका का भाग देनेपर ऐसी $\frac{प}{व}$ संदृष्टि जाननी । यहां गुणहानि, नानागुणहानि, अन्योन्याभ्यस्तराशि में त्रैराशिक आदि विशेष है । वहां संदृष्टि सुगम है । क्योंकि अपने अपने गुणहानि आयाम को प्रमाणराशि करके, फलराशि एक करके, अपनी अपनी स्थिति को इच्छाराशि करनेपर औदारिकादि शरीरों की नानागुणहानि राशि होती है ।

पुनश्च अपनी अपनी नानागुणहानि राशि को प्रमाणराशि करके, फलराशि अपनी अपनी स्थिति करके, इच्छाराशि एक करनेपर औदारिकादि शरीरों का गुणहानि आयाम होता है।

नाम	प्रमाण गुणहानि	फल एक	इच्छा स्थिति	लब्ध-नानागुणहानि
औदारिक	२ ꝗ	१	प ३	प ३ / २ ꝗ
वैक्रियिक	२ ꝗ	१	सा ३३	सा ३३ / २ ꝗ
आहारक	२ ꝗ	१	२ ꝗꝗ	ꝗ
तेजस्	सा ६६ / छे‿वछे।a	१	सा ६६	छे‿वछे।a
कार्माण	सा ७०को २ / छे‿वछे	१	सा ७०को २	छे‿वछे

नाम	प्रमाण गुणहानि	फल स्थिति	इच्छा एक	लब्ध-नानागुणहानि
औदारिक	प ३ / २ ꝗ	प ३	१	२ ꝗ
वैक्रियिक	सा ३३ / २ ꝗ	सा ३३	१	२ ꝗ
आहारक	ꝗ	२ ꝗꝗ	१	२ ꝗ
तेजस्	छे‿वछे।a	सा ६६	१	सा ६६ / छे‿वछे।a
कार्माण	छे‿वछे	सा ७०को २	१	सा ७०को २ / छे‿वछे

पुनश्च अन्योन्याभ्यस्तराशि का प्रमाण लाने के लिये प्रमाणराशि में देय दो, विरलन लोक का अर्धच्छेद मात्र, फलराशि लोक, इच्छाराशि में देय दो विरलन अंतर्मुहूर्त से भाजित तीन पल्य; प्र दे २ / वि छे छे छे ९ (नीचे ७) फ ≡ इ दे २ / वि प ३ / २१ वहां प्रमाण के विरलनराशि का भाग इच्छाराशि के विरलन को देनेपर ऐसा होता है प ३ / २१ छे छे छे ९ (नीचे ७) । इतने लोक मांडकर परस्पर गुणा करनेपर असंख्यात लोक ≡ ७ हुये । वह औदारिक की अन्योन्याभ्यस्तराशि है।

इसीप्रकार वैक्रियिक की नानागुणहानि को लोक के अर्धच्छेद का भाग देनेपर ऐसा सा ३ ३ / २१ छे छे छे ९ (नीचे ७) इतने लोक मांडकर परस्पर गुणा करनेपर उसकी अन्योन्याभ्यस्तराशि ऐसी ≡ ७ ≡ ७ होती है । अथवा प्रमाणराशि में विरलनराशि औदारिक की नानागुणहानि ऐसी प्र प ३ / २१, फलराशि असंख्यात लोक ≡ ७, इच्छाराशि में विरलनराशि औदारिक की नानागुणहानि से एक सौ दस कोडाकोडी गुणा ऐसा इ प३।११० को २ / २१ । यहां लब्ध एक सौ दस कोडाकोडी बार औदारिक की अन्योन्याभ्यस्तराशि को परस्पर गुणा करनेपर जो प्रमाण हो वह वैक्रियिक की अन्योन्याभ्यस्तराशि जानना । इसलिये औदारिक की अन्योन्याभ्यस्तराशि से वैक्रियिक की अन्योन्याभ्यस्तराशि में गुणकार होता है ।

आहारक के संख्यात मात्र दो को परस्पर गुणा करनेपर अन्योन्याभ्यस्तराशि ऐसी ११ होती है । तेजस् में नानागुणहानि ऐसी छे ‿ वछे।७ इसको पल्य के अर्धच्छेद राशि का भाग देनेपर ऐसा छे ‿ वछे।७ / छे इसमें ऋण ऐसा वछे७ / छे जुदा करनेपर अवशेष ऐसा छे७ / छे, अपवर्तन करनेपर असंख्यात रहे, सो ऐसे ७ इतने पल्य परस्पर गुणा करनेपर सूच्यंगुल का असंख्यातवां भाग ऐसा होता है २ / ७ । पुनश्च ऋणराशि मात्र द्विक (दो संख्या) परस्पर गुणा करनेपर पल्य का असंख्यातवां भाग हुआ उसका भाग देनेपर ऐसा २ / ७प / ७ अपवर्तन करनेपर सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र ही तेजस् की अन्योन्याभ्यस्तराशि

ऐसी हुयी $\underset{\text{७}}{\text{२}}$ ।

कार्माणशरीर में नानागुणहानि ऐसी **छे‿वछे** । वहां मूलराशि पल्य के अर्धच्छेद मात्र ऐसा **छे** इतने द्विक परस्पर गुणा करनेपर पल्य होता है । ऋणराशि वर्गशलाका के अर्धच्छेद मात्र **वछे** द्विक को परस्पर गुणा करनेपर पल्य की वर्गशलाका होती है। पल्य को उसकी वर्गशलाका का भाग देनेपर कार्माण की अन्योन्याभ्यस्तराशि ऐसी $\frac{\text{प}}{\text{व}}$ होती है । ऐसे इनका साधन जानना । पुनश्च यहां रचना कहते हैं ।

कार्माण समयप्रबध्द द्रव्य ऐसा **स $\underset{\text{७}}{-}\underset{\text{७}}{-}$ ख ख**, लघु संदृष्टि करने के लिये उसकी संदृष्टि ऐसी **स**, अन्योन्याभ्यस्तराशि की संदृष्टि आदि अक्षररूप ऐसी **अ** उसमें से एक घटाकर उसका भाग देनेपर अंतिम गुणहानि का द्रव्य ऐसा $\frac{\text{स}}{\overset{१}{\text{अ}}}$ ।

पुनश्च दोगुणा, दोगुणा, दोगुणा क्रम से होकर आधी अन्योन्याभ्यस्तराशि ऐसी $\frac{\text{अ}}{\text{२}}$ उससे अंतिम गुणहानि के द्रव्य को गुणा करनेपर प्रथम गुणहानि का द्रव्य ऐसा है $\frac{\text{स अ}}{\overset{१}{\text{अ}}\ \text{२}}$ । उसको गुणहानि की संदृष्टि आदि अक्षररूप ऐसी **गु** उसका भाग देनेपर मध्यधन ऐसा $\frac{\text{स अ}}{\overset{१}{\text{अ}}\ \text{२ गु}}$ होता है । पुनश्च एक कम गुणहानि के आधे से हीन दो गुणहानि ऐसा $\frac{१}{\text{गु}\frac{३}{२}}$ यहां दो गुणहानि में से आधी गुणहानि घटानेपर डेढ़ गुणहानि ऐसे हुयी $\text{गु}\frac{३}{२}$ और ऋण का ऋण आधे गुणहानि में कम एक का आधा था उसको राशि का धन करने के लिये नीचे दो का भागहार देखकर ऊपर एक अधिक की संदृष्टि की है ।

[**विशेषार्थ** - एक कम गुणहानि के आधे से हीन दोगुणहानि =

$$\text{२गु} - \frac{\text{गु}-१}{२} \longrightarrow \text{२गु} - \left(\frac{\text{गु}}{२} - \frac{१}{२}\right) \longrightarrow \text{२गु} - \frac{\text{गु}}{२} + \frac{१}{२}$$

$\longrightarrow \frac{\text{गु३}}{\text{२}}+\frac{\text{१}}{\text{२}} \longrightarrow \frac{\text{१}}{\frac{\text{गु३}}{\text{२}}}$]

सो इसका उस मध्यधन को भाग देनेपर प्रथम गुणहानि संबंधी चय ऐसा $\frac{\text{स अ}}{\overset{१\frown}{\text{अ}}\ \text{२ गु}}\ \frac{\text{१}}{\frac{\text{गु३}}{\text{२}}}$ इसको दो गुणहानि ऐसा **२गु** उससे गुणा करनेपर प्रथम गुणहानि का प्रथम निषेक ऐसा $\frac{\text{स अ गु२}}{\overset{१\frown}{\text{अ}}\ \text{२ गु}\ \overset{\text{१}}{\frac{\text{गु३}}{\text{२}}}}$ इसमें से एक एक चय घटानेपर एक अधिक गुणहानि ऐसा $\overset{\text{१}}{\text{गु}}$ उससे

गुणित अपने चय मात्र अंतिम निषेक ऐसा $\frac{\text{स अ}\ \overset{\text{१}}{\text{गु}}}{\overset{१\frown}{\text{अ}}\ \text{२ गु}\ \overset{\text{१}}{\frac{\text{गु३}}{\text{२}}}}$ होता है । ऐसे द्वितीयादि गुणहानि

में रचना करके अंतिम गुणहानि में द्रव्य ऐसा $\frac{\text{स}}{\overset{१\frown}{\text{अ}}}$ । इसको गुणहानि का भाग देनेपर

मध्यधन ऐसा $\frac{\text{स}}{\overset{१\frown}{\text{अ}}\ \text{गु}}$, इसको एक कम गुणहानि के आधे से हीन दो गुणहानि का

भाग देनेपर चय ऐसा $\frac{\text{स}}{\overset{१\frown}{\text{अ}}}\ \frac{\text{१}}{\text{गु}\ \frac{\text{३}}{\text{२}}}$ इसको दो गुणहानि **गु२** से गुणा करनेपर प्रथम निषेक

ऐसा $\frac{\text{स गु२}}{\overset{१\frown}{\text{अ}}\ \text{गु}\ \overset{\text{१}}{\frac{\text{गु३}}{\text{२}}}}$ इसमें से एक एक चय घटानेपर एक अधिक गुणहानि $\overset{\text{१}}{\text{गु}}$ से गुणित

निज चय प्रमाण अंतिम निषेक ऐसा $\frac{\text{स}\ \overset{\text{१}}{\text{गु}}}{\overset{१\frown}{\text{अ}}\ \text{गु}\ \overset{\text{१}}{\frac{\text{गु३}}{\text{२}}}}$ होता है ।

[**विशेषार्थ** – समयप्रबध्द – **स** (सर्वद्रव्य), अन्योन्याभ्यस्तराशि – **अ**,

अंतिम गुणहानि का द्रव्य $\frac{\text{स}}{\overset{१\frown}{\text{अ}}}$, उपांत गुणहानि का द्रव्य $\frac{\text{स २}}{\overset{१\frown}{\text{अ}}}$,

पहले गुणहानिका द्रव्य $\frac{\text{स अ}}{\overset{\text{१}\frown}{\text{अ}}\,\text{२}}$, पहले गुणहानि का मध्यधन $\frac{\text{स अ}}{\overset{\text{१}\frown}{\text{अ}}\,\text{२ गु}}$ ।

दो गुणहानि − $\frac{\text{१ कमगच्छ}}{\text{२}}$ ⟶ २गु − $\left(\frac{\text{गु}-\text{१}}{\text{२}}\right)$ ⟶ २गु − $\frac{\text{गु}}{\text{२}}+\frac{\text{१}}{\text{२}}$

⟶ $\frac{\text{गु३}}{\text{२}}+\frac{\text{१}}{\text{२}}$ ⟶ $\frac{\text{१}}{\text{गु}\frac{\text{३}}{\text{२}}}$

पहली गुणहानि का चय = मध्यधन ÷ $\frac{\text{१}}{\text{गु}\frac{\text{३}}{\text{२}}}$ = $\frac{\text{स अ}}{\overset{\text{१}\frown}{\text{अ}}\,\text{२ गु}\frac{\text{१}}{\text{गु}\frac{\text{३}}{\text{२}}}}$

पहली गुणहानि का पहला निषेक = चय X दो गुणहानि ⟶ $\frac{\text{स अ गु२}}{\overset{\text{१}\frown}{\text{अ}}\,\text{२ गु}\frac{\text{१}}{\text{गु}\frac{\text{३}}{\text{२}}}}$

पहली गुणहानि का अंतिम निषेक = चय X $\frac{\text{१}}{\text{गु}}$ ⟶ $\frac{\text{स अ}\frac{\text{१}}{\text{गु}}}{\overset{\text{१}\frown}{\text{अ}}\,\text{२ गु}\frac{\text{१}}{\text{गु}\frac{\text{३}}{\text{२}}}}$]

इस रचना का यंत्र ऐसा जानना –

नाम	प्रथमगुणहानि	द्वितीयगुणहानि	मध्यगुणहानि	उपांतगुणहानि	अंतिमगुणहानि
अंतिमनिषेक	$\frac{\text{स अ}\frac{\text{१}}{\text{गु}}}{\overset{\text{१}\frown}{\text{अ}}\,\text{२ गु}\frac{\text{१}}{\text{गु}\frac{\text{३}}{\text{२}}}}$	$\frac{\text{स अ}\frac{\text{१}}{\text{गु}}}{\overset{\text{१}\frown}{\text{अ}}\,\text{२।२ गु}\frac{\text{१}}{\text{गु}\frac{\text{३}}{\text{२}}}}$	०००००	$\frac{\text{स२}\frac{\text{१}}{\text{गु}}}{\overset{\text{१}\frown}{\text{अ}}\,\text{गु}\frac{\text{१}}{\text{गु}\frac{\text{३}}{\text{२}}}}$	$\frac{\text{स}\frac{\text{१}}{\text{गु}}}{\overset{\text{१}\frown}{\text{अ}}\,\text{गु}\frac{\text{१}}{\text{गु}\frac{\text{३}}{\text{२}}}}$
मध्यनिषेक	० ० ०	० ० ०	० ० ०	० ० ०	० ० ०
आदिनिषेक	$\frac{\text{स अ गु२}}{\overset{\text{१}\frown}{\text{अ}}\,\text{२ गु}\frac{\text{१}}{\text{गु}\frac{\text{३}}{\text{२}}}}$	$\frac{\text{स अ गु २}}{\overset{\text{१}\frown}{\text{अ}}\,\text{२।२ गु}\frac{\text{१}}{\text{गु}\frac{\text{३}}{\text{२}}}}$	०००००	$\frac{\text{स२ गु २}}{\overset{\text{१}\frown}{\text{अ}}\,\text{गु}\frac{\text{१}}{\text{गु}\frac{\text{३}}{\text{२}}}}$	$\frac{\text{स गु २}}{\overset{\text{१}\frown}{\text{अ}}\,\text{गु}\frac{\text{१}}{\text{गु}\frac{\text{३}}{\text{२}}}}$
सर्वद्रव्यप्रमाण	$\frac{\text{स अ}}{\overset{\text{१}\frown}{\text{अ}}\,\text{२}}$	$\frac{\text{स अ}}{\overset{\text{१}\frown}{\text{अ}}\,\text{२।२}}$	०००००	$\frac{\text{स२}}{\overset{\text{१}\frown}{\text{अ}}}$	$\frac{\text{स}}{\overset{\text{१}\frown}{\text{अ}}}$

यहां प्रथम गुणहानि के द्रव्य, निषेक आदि को दो का भाग देनेपर द्वितीय गुणहानि के द्रव्यादिक जानने और अंतिम गुणहानि के द्रव्य आदि को दो से गुणा करनेपर उपांत गुणहानि के द्रव्यादिक जानने । मध्य गुणहानि के द्रव्यादिक में बिंदी की संदृष्टि जाननी। पुनश्च अंकसंदृष्टि द्वारा द्रव्य, निषेक आदि की रचना तथा कर्म का सत्त्व दिखाने के लिये अंकसंदृष्टि अपेक्षा त्रिकोण यंत्र रचना टीका में लिखी है वह जानना । (देखिये - सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका जीवकाण्ड) - त्रिकोण यंत्र में नीचे से लेकर अड़तालीस पंक्तियां हैं । उनमें एक एक पंक्तिरूप एक एक समय संबंधी एक एक निषेक जानना। आठ पंक्तियों के समूह को गुणहानि संज्ञा जाननी । सो यहां त्रिकोण यंत्र का जोड़ कहते हैं । वहां प्रथम ही हीन संकलन अपेक्षा से कहते हैं –

नीचे से लेकर आठ पंक्तिरूप जो प्रथम गुणहानि उसमें जो द्वितीयादि पंक्ति में निषेक घटे, उनके प्रमाणरूप घटाने योग्य जो ऋण, उसको मिलानेपर गुणहानि मात्र पंक्तियों का धन गुणहानि गुणित समयप्रबध्द प्रमाण होता है । क्योंकि प्रथम पंक्ति का जोड़ समयप्रबध्द प्रमाण है और ऋण को मिलानेपर अन्य पंक्तियों का भी जोड़ इसके समान होता है । सो गुणहानि का प्रमाण आठ, उससे गुणित समयप्रबध्द का प्रमाण तिरसठ सौ ऐसा **६३००।८** होता है । अब इसमें से ऋण कितना घटाना वह कहते हैं - प्रथम निषेक तो एक कम गुणहानि मात्र **५१२।७**, द्वितीय निषेक दो कम गुणहानि मात्र **५१२।६**, ऐसे ही एक एक घटते हुये तृतीयादि निषेक होकर अंत में द्विचरम निषेक एक प्रमाण जानना । इसतरह एक निषेक गुणहानि मात्र पंक्तियों में घटता है । अंतिम निषेक का सर्वत्र सद्भाव है । सो यहां द्वितीयादि निषेक प्रथम निषेक में प्रथम निषेक से जितने जितने अपने अपने चय घटे, उनको मिलानेपर सर्व निषेक प्रथम निषेक समान ऐसे हुये **५१२।७** उनका जोड़ एक कम गच्छ का एक

५१२।६
५१२।५
५१२।४
५१२।३
५१२।२
५१२।१

बार संकलन मात्र प्रथम निषेक प्रमाण हुआ । सो यहां गच्छ का प्रमाण आठ, सो 'व्येकपदोत्तरघातः' इत्यादि टीका में ज्ञानमार्गणा अधिकार में बताये हुये संकलन सूत्र

की अपेक्षा से एक कम गच्छ को दो का और सम्पूर्ण गच्छ को एक का भाग देकर उससे प्रथम निषेक यहां पांच सौ बारह उसको गुणा करनेपर इतना जोड़ हुआ $५१२|\frac{\overset{१\frown}{८}}{२}|\frac{८}{१}$ ।

[**विशेषार्थ** - सात का एक बार संकलनधन $\frac{७ \times ८}{२ \times १} = \frac{\overset{१\frown}{८}}{२}|\frac{८}{१}$]

पुनश्च यहां मिलाये हुये चय ज्यों के त्यों घटाने से ऐसे

३२|२१
३२|१५
३२|१०
३२|६
३२|३
३२|१

। यहां प्रथम पंक्ति में कोई निषेक घटा नहीं, दूसरी पंक्ति में एक प्रथम निषेक घटा । वहां कोई चय मिलाया नहीं । तीसरी पंक्ति में एक पहला, एक दूसरा निषेक घटा उसमें दूसरे निषेक में एक चय मिलाया उसे लिखा है । तीसरी पंक्ति में एक पहला, एक दूसरा, एक तीसरा निषेक घटा वहां दूसरे निषेक में एक चय, तिसरे निषेक में दो चय, मिलानेपर वे तीन चय लिखे हैं । ऐसे ही ऊपर जानना । सो इसका जोड़ दो कम गच्छ का दो बार संकलन मात्र चय प्रमाण हुआ । सो संकलन सूत्र के अनुसार दो कम गच्छ ६, एक कम गच्छ ७ सम्पूर्ण गच्छ ८ को तीन, दो, एक का भाग देकर उससे चय का प्रमाण बत्तीस उसको गुणा करनेपर ऐसा $३२|\frac{\overset{२\frown}{८}}{३}|\frac{\overset{१\frown}{८}}{२}|\frac{८}{१}$ हुआ । पुनश्च पूर्वोक्त ऋण द्रव्य ऐसा $५१२|\frac{\overset{१\frown}{८}}{२}|\frac{८}{१}$ वहां प्रथम निषेक को दो गुणहानि ऐसा ८|२ उससे संभेदन करनेपर पांच सौ बारह की जगह बत्तीस के आगे दो गुणा गुणहानि का गुणकार ऐसा होता है $३२|८|२|\frac{\overset{१\frown}{८}}{२}|\frac{८}{१}$ यहां गुणकार और भागहारों की संदृष्टि के लिये तीन से गुणा करनेपर ऐसा $३२|८|\frac{६}{३}|\frac{\overset{१\frown}{८}}{२}|\frac{८}{१}$ । यहां छह गुणहानि ऐसी ८|६

उसमें एक गुणहानि गुणित का प्रमाण ऐसा होता है $३२|\frac{८}{३}|\frac{\overset{१\frown}{\overline{८}}}{२}|\frac{८}{१}$ इसमें घटाने योग्य चयों के जोड़रूप ऋण का ऋण ऐसा $३२|\frac{\overset{२\frown}{\overline{८}}}{३}|\frac{\overset{१\frown}{\overline{८}}}{२}|\frac{८}{१}$ उसको घटाते हैं । सो अन्य सब समान देखकर बत्तीस के आगे गुणहानि आठ का गुणकार था उसमें इसका दो कम गुणहानि का गुणकार घटानेपर अवशेष दो का गुणकार रहा, तब ऐसा हुआ $३२|\frac{२}{३}|\frac{\overset{१\frown}{\overline{८}}}{२}|\frac{८}{१}$ इसको छह गुणहानि में से एक गुणहानि घटानेपर वहां पांच गुणहानियों का प्रमाण ऐसा रहा था $३२|८|\frac{५}{३}|\frac{\overset{१\frown}{\overline{८}}}{२}|\frac{८}{१}$ उसमें जोड़ना । सो अन्य सर्व समान देखकर पांच गुणहानियों के ऊपर दो की अधिकता करनेपर और भागहारों को परस्पर गुणा करनेपर प्रथम गुणहानि में ऋण ऐसा $३२|\frac{\overset{२}{\overline{८}}}{६}|५|\overset{१\frown}{\overline{८}}|८$ होता है । ऐसे प्रथम गुणहानि के धन और ऋण जानना। पुनश्च यहां प्रथम गुणहानि का धन ऐसा ६३००।८ उसमें अंतिम गुणहानि का धन ऐसा १००।८ घटानेपर अवशेष ऐसा ६२००।८ उसका आधा ऐसा ३१००।८ द्वितीय गुणहानि का धन जानना ।

ऐसे ही सर्व ऊपर भी सर्व गुणहानियों के धन जानने । वे ऐसे हैं -

१००।८
३००।८
७००।८
१५००।८
३१००।८
६३००।८

यहां एक एक गुणहानि के धन में चरम गुणहानि का धनमात्र ऋण ऐसा १००।८ मिलाकर दो से संभेदन करनेपर ऐसा धन होता है

१००।८।२
२००।८।२
४००।८।२
८००।८।२
१६००।८।२
३२००।८।२

। यहां **'अंतधणं गुणगुणियं'** इत्यादि सूत्र द्वारा अंतधन ऐसा ३२००।८।२ उसका गुणकार दो से गुणा करनेपर

ऐसा **६४००।८।२** उसमें से आदि ऐसा **१००।८।२** घटानेपर सर्व गुणहानि के धन का जोड़ ऐसा हुआ **६३००।८।२** ।

पुनश्च द्वितीयादि गुणहानि का ऋण भी क्रम से आधा आधा है ।

$१|\overset{२}{\underset{६}{\overline{ट}}}|५|\overset{१\frown}{\overline{ट}}|८$ अंतिम गुणहानि का ऋण

$२|\overset{२}{\underset{६}{\overline{ट}}}|५|\overset{१\frown}{\overline{ट}}|८$ पंचम गुणहानि का ऋण

$४|\overset{२}{\underset{६}{\overline{ट}}}|५|\overset{१\frown}{\overline{ट}}|८$ चतुर्थ गुणहानि का ऋण

$८|\overset{२}{\underset{६}{\overline{ट}}}|५|\overset{१\frown}{\overline{ट}}|८$ तृतीय गुणहानि का ऋण

$१६|\overset{२}{\underset{६}{\overline{ट}}}|५|\overset{१\frown}{\overline{ट}}|८$ द्वितीय गुणहानि का ऋण

$३२|\overset{२}{\underset{६}{\overline{ट}}}|५|\overset{१\frown}{\overline{ट}}|८$ प्रथम गुणहानि का ऋण

यहां गुण्य आधा आधा किया है [३२ - १६ - ८ - ४ - २ -१]। सो '**अंतधणं गुणगुणियं**' इत्यादि सूत्र द्वारा यहां अंतधन ऐसा $३२|\overset{२}{\underset{६}{\overline{ट}}}|५|\overset{१\frown}{\overline{ट}}|८$ गुणकार दो से गुणा करनेपर ऐसा $६४|\overset{२}{\underset{६}{\overline{ट}}}|५|\overset{१\frown}{\overline{ट}}|८$ इसमें से आदि ऐसा $१|\overset{२}{\underset{६}{\overline{ट}}}|५|\overset{१\frown}{\overline{ट}}|८$ घटाने के लिये चौंसठ गुण्य में से एक गुण्य घटानेपर समस्त गुणहानि का ऋण ऐसा $६३|\overset{२}{\underset{६}{\overline{ट}}}|५|\overset{१\frown}{\overline{ट}}|८$ होता है। पुनश्च पश्चात् छहों गुणहानियों में मिलाया हुआ दूसरा ऋण ऐसा

१००।८
१००।८
१००।८
१००।८
१००।८
१००।८

इसका जोड़ नानागुणहानि गुणित अंतगुणहानि का धन मात्र ऐसा १००।८।६ है ।

इसप्रकार ये तीनों राशि ऐसी –

धन	प्रथम ऋण	द्वितीय ऋण
६३००।८।२	२ १∩ ६३।ट।५।ट।८ ६	१००।८।६

यहां उत्कृष्ट समयप्रबध्द प्रमाण शलाका से इनको तिरसठ सौ का भाग देनेपर ऐसा-

धन	प्रथम ऋण	द्वितीय ऋण	
६३००।८।२ ६३००	२ १∩ ६३।ट।५।ट।८ ६३००।६	१००।८।६ ६३००	
अपवर्तन करनेपर –			
८।२	२ १∩ ट।५।ट।८ १००।६	८।६ ६३	
स७।८।२	२ १∩ स७।ट।५।ट।८ १००।६	स७।८।६ ६३	ऐसे हुआ ।

यहां प्रथम ऋण में सौ का भागहार था उसको एक अधिक तीनगुणा गुणहानि के द्वारा संभेदन करनेपर सौ की जगह एक अधिक तीनगुणा गुणहानि ऐसी $\frac{१}{ट।३}$ उसका प्रमाण पच्चीस, उसके आगे चार का गुणकार हुआ । इस चार से आगे के छह को गुणा करनेपर तीन गुणहानि मात्र प्रमाण हुआ । ऐसा करनेपर ऐसा

२ १∩
स७।ट।५।ट।८
१
ट।३।८।३

हुआ। यहां गुणहानि ऐसा ८ उसका अपवर्तन करनेपर प्रथम ऋण ऐसा हुआ

२ १∩
स७।ट।५।ट
१
ट।३।३

पुनश्च यहां आठ के गुणकार के ऊपर एक कम उससे गुणित ऋण के ऋण के प्रमाण को और अवशेष को जुदा जुदा स्थापनेपर दोनों राशि ऐसी –

ऋण राशि	ऋण की ऋण राशि
$\begin{array}{l} स७|\overset{२}{\overline{८}}|५|८ \\ \;\;\underline{१\quad\;} \\ \;\;८|३|३ \end{array}$	$\begin{array}{l} स७|\overset{२}{\overline{८}}|५ \\ \;\;\underline{१\quad\;} \\ \;\;८|३|३ \end{array}$

इन दोनों राशियों में पांच गुणहानि मात्र गुणकार के ऊपर जो अधिक था $\overset{२}{\overline{८|५}}$ उससे गुणित प्रमाण को नीचे जुदा स्थापित करके अवशेष को ऊपर स्थापित करनेपर ऐसा होता है –

ऋण राशि	ऋण का ऋण
$\begin{array}{l} स७|८|५|८ \\ \;\;\underline{१\quad\;} \\ \;\;८|३|३ \end{array}$	$\begin{array}{l} स७|८|५ \\ \;\;\underline{१\quad\;} \\ \;\;८|३|३ \end{array}$
ऋण का धन	ऋण के ऋण का धन
$\begin{array}{l} स७|२|८ \\ \;\;\underline{१\quad\;} \\ \;\;८|३|३ \end{array}$	$\begin{array}{l} स७|२ \\ \underline{१\quad\;} \\ ८|३|३ \end{array}$

यहां प्रथम ऋण के धन में ऊपर गुणकारों को और नीचे भागहारों को तीन से गुणा करनेपर ऐसा होता है $\begin{array}{l} स७|६|८ \\ \;\;\underline{१\quad\;} \\ \;\;८|३|३|३ \end{array}$ यहां छह में पांचरूप ऐसे $\begin{array}{l} स७|५|८ \\ \;\;\underline{१\quad\;} \\ \;\;८|३|३|३ \end{array}$, उनको अपने ऊपर के ऋणराशि में जोड़ते हैं, सो ऊपर के ऋण को तीन से ऊपर नीचे गुणित करनेपर ऐसा $\begin{array}{l} स७|८|३|५|८ \\ \;\;\underline{१\quad\;} \\ \;\;८|३|३|३ \end{array}$ होता है । सो इसके और उसके अन्य समानता देखकर तीनगुणा गुणहानि ऐसी ८।३ उसके ऊपर एक अधिक की संदृष्टि करनेपर ऐसा $\begin{array}{l} स७|\overset{१}{\overline{८|३}}|५|८ \\ \;\;\underline{१\quad\;} \\ \;\;८|३|३|३ \end{array}$ हुआ । यहां एक अधिक तीन गुणहानि ऐसा $\overset{१}{\overline{८|३}}$ उसका अपवर्तन करनेपर और भागहार में दो जो तीन के अंक उनको परस्पर गुणा करनेपर ऐसा होता है $\underset{९}{स७}|५|८$। पुनश्च ऋण के धन के छह रूपों में पांच तो ऋणराशि में

जोड़े और एक अवशेष रहा, सो ऐसा $\dfrac{\text{स}\underset{\text{१}}{\text{७}}|\text{८}|\text{१}}{\text{८}|\text{३}|\text{३}|\text{३}}$ सो इसको ऋण के ऋण में से घटाते हैं । सो ऋण के ऋण को ऊपर नीचे तीन से गुणा करनेपर ऐसा हुआ $\dfrac{\text{स}\underset{\text{१}}{\text{७}}|\text{८}|\text{१५}}{\text{८}|\text{३}|\text{३}|\text{३}}$

इसमें अन्य समान देखकर गुणकार पंद्रह में से एक घटानेपर ऐसा हुआ $\dfrac{\text{स}\underset{\text{१}}{\text{७}}|\text{८}|\overset{\text{१}}{\overline{\text{१५}}}}{\text{८}|\text{३}|\text{३}|\text{३}}$ ।

पुनश्च इसको ऊपर नीचे तीन से गुणित करनेपर ऐसा $\dfrac{\text{स}\underset{\text{१}}{\text{७}}|\text{८}|\text{३}|\text{१४}}{\text{८}|\text{३}|\text{३}|\text{३}|\text{३}}$ इसमें ऋण के ऋण के धन को ऊपर नीचे नौ से गुणित करनेपर ऐसा $\dfrac{\text{स}\underset{\text{१}}{\text{७}}|\text{१८}}{\text{८}|\text{३}|\text{३}|\text{९}}$ इसके अठारह रूपों में चौदह रूप ऐसे $\dfrac{\text{स}\underset{\text{१}}{\text{७}}|\text{१४}}{\text{८}|\text{३}|\text{३}|\text{९}}$ ऋण के ऋण में जोड़ने । सो अन्य समान देखकर तीनगुणा गुणहानि के ऊपर एक अधिक करना तब ऋण का ऋण ऐसा हुआ $\dfrac{\text{स}\underset{\text{१}}{\text{७}}|\text{८}|\overset{\text{१}}{\overline{\text{३}}}|\text{१४}}{\text{८}|\text{३}|\text{३}|\text{३}|\text{३}}$ यहां एक अधिक तीनगुणा गुणहानि को समान देखकर अपवर्तन करनेपर ऐसा $\dfrac{\text{स}\text{७}|\text{१४}}{\text{३}|\text{३}|\text{३}}$ पुनश्च यहां ऊपर तो चौदह और नीचे तीन बार तीन को परस्पर गुणा करनेपर सत्ताइस होते हैं और चौदह द्वारा अपवर्तन अट्ठाइस होनेपर होते हैं । सो यहां एक कम को गिनती में न लेते हुये चौदह से अपवर्तन करनेपर आधा समयप्रबध्द प्रमाण हुआ $\underset{\text{२}}{\text{स}}\text{७}$। पुनश्च अठारह रूपों में चौदह रूप तो जोड़े, अवशेष चार रूप रहे वे ऐसे $\dfrac{\text{स}\underset{\text{१}}{\text{७}}|\text{४}}{\text{८}|\text{३}|\text{३}|\text{९}}$ सो इसका प्रमाण समयप्रबध्द के असंख्यातवें भागमात्र है । उसको मिलाने के लिये किंचित् अधिक की ऊपर ऐसी । संदृष्टि करनेपर ऋण की ऋणराशि ऐसी होती है $\underset{\text{२}}{\overset{।}{\text{स}}}\text{७}$। इसको द्वितीय ऋण एक कम अन्योन्याभ्यस्त से भाजित और नानागुणहानियों

से गुणित समयप्रबध्दमात्र अंकसंदृष्टि द्वारा ऐसा स०।८।६/६३ और अर्थसंदृष्टि द्वारा ऐसा स०।पa।छे‿वछे / छे‿वछे १a/प/० उसमें घटाकर अपवर्तन करनेपर अवशेष किंचित् कम संख्यात पल्य की वर्गशलाका गुणित समयप्रबध्द प्रमाण द्वितीय ऋण रहता है । पुनश्च प्रथम ऋण ऐसा स०।८।५/९ रहा था उसको संदृष्टि के लिये ऊपर नीचे दो से गुणा करनेपर ऐसा स०।८।१०/१८ यहां दस रूपों में एक रूप ऐसा स०।८।१/१८ उसको जुदा रखनेपर अवशेष ऐसा स०।८।९/१८ उसका नौ से अपवर्तन करनेपर आधा गुणहानि ऐसा ८/२ उससे गुणित समयप्रबध्द प्रमाण ऋण ऐसा होता है स०।८/२ इसको दो गुणहानि से गुणित समयप्रबध्द प्रमाण जो धनराशि ऐसा स०।८।२ था उसमें से घटानेपर डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबध्द प्रमाण ऐसा स०।८।३/२ हुआ । पुनश्च जुदा रखा था गुणहानि गुणित समयप्रबध्द का अठारहवां भाग ऐसा स०।८।१/१८। उसमें द्वितीय ऋण किंचित् कम संख्यात वर्गशलाका गुणित समयप्रबध्द प्रमाण ऐसा स०वa मिलाने के लिये किंचित् अधिक की ऊपर संदृष्टि करनेपर ऐसा हुआ स'०।८/१८। उसको घटाने के लिये समयप्रबध्द का डेढ़ गुणहानि मात्र गुणकार ऐसा १२ उसके आगे किंचित् कम की ऐसी – संदृष्टि करनेपर त्रिकोणयंत्र का जोड़मात्र सत्त्व द्रव्य का प्रमाण ऐसा स०।१२– होता है ।

अब अधिक अधिक संकलन अपेक्षा त्रिकोणयंत्र का जोड़ कहते हैं –

वहां त्रिकोण यंत्र में ऊपर से लेकर आठ पंक्ति पर्यंत अंतिम गुणहानि है। वहां ऊपर की पंक्ति में एक अंत ही का निषेक ऐसा ९ है । उसके नीचे की पंक्ति में अंत के दो निषेक ऐसे ९।१०, उसके नीचे की पंक्ति में अंत के तीन निषेक ऐसे हैं ९।१०।११ । ऐसे एक एक निषेक बढ़ते हुये वहां ऊपर से आठवीं पंक्तिरूप अंतिम गुणहानि के नानासमय संबंधी प्रथम निषेक, उसमें गुणहानिमात्र निषेक ऐसे ९।१०।११।१२।१३।१४।१५।१६ पाये जाते हैं । यहां अंत निषेक समान सर्व निषेकों को जुदा स्थापते हैं और निषेकों में होनेवाले अंतिम गुणहानि के चय जुदे

स्थापते हैं तब ऐसे

९|१	०
९|२	१|१
९|३	१|३
९|४	१|६
९|५	१|१०
९|६	१|१५
९|७	१|२१
९|८	१|२८

हुये ।

यहां ऊपर की पंक्ति में एक नौ का ही निषेक है उसे लिखा, उसमें चय का अभाव है । पुनश्च उसके नीचे दो निषेक हैं, इसलिये दो अंतिम निषेक लिखे और आगे द्विचरम (उपांत) निषेक में एक चय अधिक है वह लिखा । पुनश्च उसके नीचे तीन निषेक हैं इसलिये तीन अंतिम निषेक लिखे और आगे द्विचरम निषेक में एक और त्रिचरम निषेक में दो ऐसे तीन चय अधिक हैं इसलिये तीन चय लिखे ऐसे ही सर्व जानने । यहां चय का प्रमाण एक जानना । अंत निषेक का प्रमाण नौ जानना उसके आगे गुणकार जानने । इन दोनों पंक्तियों का जोड देना । सो प्रथम पंक्ति का जोड़ तो गच्छ का एक बार संकलन मात्र चरम निषेक प्रमाण हुआ। सो यहां गच्छ गुणहानिमात्र आठ, इसलिये संकलनसूत्र द्वारा गच्छ और एक अधिक गच्छ को दो और एक का भाग देकर $\left[\frac{८}{२}|\frac{\overset{१}{८}}{१}\right]$ उससे अंत निषेक एक अधिक गुणहानि आठमात्र ऐसा $\overset{१}{८}$ उसको गुणा करनेपर प्रथम पंक्ति का जोड़ ऐसा होता है $\overset{१}{८}|\frac{८}{२}|\frac{\overset{१}{८}}{१}$ ।

पुनश्च दूसरी पंक्ति का जोड़ एक कम गच्छ का दो बार संकलनमात्र चयप्रमाण है । सो संकलन सूत्र द्वारा एक कम गच्छ, सम्पूर्ण गच्छ और एक अधिक गच्छ को क्रम से तीन, दो, एक का भाग देकर उससे चय ऐसा १ उसको गुणा करनेपर द्वितीय पंक्ति का जोड़ ऐसा $१|\frac{\overset{१\frown}{८}}{३}|\frac{८}{२}|\frac{\overset{१}{८}}{१}$ अब इन दोनों पंक्तियों के जोड़ को मिलाना। सो तीन से समच्छेद किया हुआ प्रथम पंक्ति का जोड़ ऐसा $\frac{\overset{१}{८}}{३}|\frac{८}{२}|\frac{\overset{१}{८}}{१}|३$ होता है । इसके और दूसरी पंक्ति के जोड़ में अन्य समान देखकर ऐसे $\overset{१}{८}|३$ गुणकार में

ऐसा $\frac{१}{८}$ मिलाया तब दो से अधिक चार गुणहानिमात्र गुणकार हुआ । क्योंकि एक अधिक आठ का तीनगुणा सत्ताइस उसमें एक कम आठ मिलानेपर चौंतीस हुये वही दो अधिक चौगुणा आठ का प्रमाण है । ऐसे दो से अधिक चार गुणहानि ऐसा $\frac{२}{८}।४$ उससे गुणित गुणहानिप्रमाण गच्छ का संकलन $\frac{८}{२}।\frac{\frac{१}{८}}{१}$ और उसको तीन का भाग देनेपर ऐसा $८।\frac{\frac{१}{८}}{}।\frac{\frac{२}{८}}{६}।४।१$ अंत गुणहानि संबंधी आदिधन हुआ, उत्तरधन यहां है नहीं । पुनश्च इसके नीचे आठ पंक्तिरूप द्विचरम गुणहानि उसमें जो अंतिम गुणहानि की ऊपर से आठवीं पंक्तिरूप प्रथम निषेक में जो नौ से लेकर सोलह के निषेक तक निषेक कहे वे तो जुदे जुदे सर्व पंक्तियों में पाये जाते हैं और अंतिम गुणहानि की अंतिम पंक्ति से लेकर पंक्तियों में जो निषेक कहे उनसे दोगुणा प्रमाणवाले निषेक इसकी (द्वितीय गुणहानि की) अंतिम पंक्ति से लेकर सब पंक्तियों में अधिक पाये जाते हैं । उन अधिक निषेकों में द्विचरम गुणहानि के अंतिम निषेक समान निषेक जुदे स्थापनेपर और वहां द्विचरम गुणहानि के बढ़ते हुये चय जुदे स्थापनेपर अंतिम गुणहानि से दोगुणा प्रमाणवाली दोनों पंक्ति ऐसी होती हैं –

९।२।१	०
९।२।२	२।१
९।२।३	२।३
९।२।४	२।६
९।२।५	२।१०
९।२।६	२।१५
९।२।७	२।२१
९।२।८	२।२८

इनके जोड़ अंतिम गुणहानि की दोनों पंक्तियों के जोड़ से दोगुणे ऐसे होते हैं - **प्रथम पंक्ति जोड़** **द्वितीय पंक्ति जोड़**

$२।\frac{१}{८}।\frac{८}{२}।\frac{\frac{१}{८}}{१}$ $२।\frac{\frac{१}{८}}{३}।\frac{८}{२}।\frac{\frac{१}{८}}{१}$

इन दोनों को पूर्वोक्त प्रकार जोड़नेपर अंतिम गुणहानि के आदिधन से दोगुणा इस उपांत गुणहानि का आदिधन ऐसा हुआ $\frac{१}{८}।८।\frac{\frac{२}{८}}{६}।४।२$ । पुनश्च अंतिम गुणहानि की आदिपंक्ति का जोड़ ऐसा **१००** उसका सर्व पंक्तियों में सद्भाव जानकर आठ से गुणित करनेपर उपांत गुणहानि में उत्तरधन ऐसा १००।८ होता है ।

पुनश्च उसके नीचे आठ पंक्तिरूप त्रिचरम गुणहानि वहां द्विचरम गुणहानि की आदिपंक्ति के सर्व निषेक तो सर्व पंक्तियों में पाये जाते हैं । अंतिम पंक्ति से लेकर सभी पंक्तियों में द्विचरम गुणहानि के निषेकों से दोगुणा प्रमाणवाले एक, दो आदि अधिक निषेक पाये जाते हैं, इसलिये वहां आदिधन द्विचरम गुणहानि के आदिधन से दोगुणा और उत्तरधन उपांत गुणहानि की आदि पंक्ति के निषेकों के जोड़ से आठ गुणा ऐसा जानना ३००।८ । ऐसे ही चतुश्चरमादि गुणहानियों में आदिधन दोगुणा दोगुणा और उत्तरधन अपनी अंतिम पंक्ति से ऊपर की पंक्ति के जोड़ से आठगुणा ऐसे जानना।

नाम	आदिधन	उत्तरधन
अंतिम गुणहानि	$\frac{१}{८}\|८\|\frac{२}{\underset{६}{८}\|४}\|१$	०
पंचम गुणहानि	$\frac{१}{८}\|८\|\frac{२}{\underset{६}{८}\|४}\|२$	१००।८
चतुर्थ गुणहानि	$\frac{१}{८}\|८\|\frac{२}{\underset{६}{८}\|४}\|४$	३००।८
तृतीय गुणहानि	$\frac{१}{८}\|८\|\frac{२}{\underset{६}{८}\|४}\|८$	७००।८
द्वितीय गुणहानि	$\frac{१}{८}\|८\|\frac{२}{\underset{६}{८}\|४}\|१६$	१५००।८
प्रथम गुणहानि	$\frac{१}{८}\|८\|\frac{२}{\underset{६}{८}\|४}\|३२$	३१००।८

यहां सर्व गुणहानियों के आदिधन को जोड़ते हैं । वहां अंतधन ऐसा $\frac{१}{८}|८|\frac{२}{\underset{६}{८}|४}|३२$ उसको गुणकार दो से गुणा करनेपर ऐसा $\frac{१}{८}|८|\frac{२}{\underset{६}{८}|४}|६४$ उसमें से आदि ऐसा $\frac{१}{८}|८|\frac{२}{\underset{६}{८}|४}|१$ घटानेपर सर्व गुणहानियों के आदिधन का जोड़ ऐसा $\frac{१}{८}|८|\frac{२}{\underset{६}{८}|४}|६३$ हुआ ।

पुनश्च उत्तरधन में सर्वत्र द्विचरम गुणहानि का उत्तरधन ऐसा १००।८ उस प्रमाण

ऋण सर्व जगह मिलानेपर ऐसा

१००।८ २००।८ ४००।८ ८००।८ १६००।८ ३२००।८

हुआ । यहां अंतधन ऐसा **३२००।८**

उसको गुणकार दो से गुणा करनेपर ऐसा **६४००।८** इसमें से आदि ऐसा **१००।८** घटानेपर उत्तरधन ऐसा **६३००।८** हुआ । पुनश्च इस उत्तरधन में मिलाया हुआ ऋण ऐसा **१००।८**, उसको नानागुणहानिप्रमाण छह जगह मिलाया इसलिये उसका जोड़ नानागुणहानि गुणित द्विचरम गुणहानि के उत्तरधनमात्र ऐसा **१००।८।६** हुआ । इसप्रकार ये तीनों राशियां ऐसी हुयी –

आदिधन	उत्तरधन	ऋण
$\frac{१}{८}$।८।$\frac{२}{८}$।४।६३ ६	६३००।८	१००।८।६

यहां समयप्रबध्द शलाका लाने के लिये तिरसठ सौ का भाग देकर अपवर्तन करनेपर ये तीनों राशियां ऐसी हुया –

आदिधन	उत्तरधन	ऋण
$\frac{सə।\frac{१}{८}।८।\frac{२}{८}।४}{१००।६}$	सə।८	$\frac{सə।८।६}{६३}$

यहां आदिधन के भागहार में सौ का भागहार था, वहां संभेदन द्वारा एक अधिक तीनगुणा गुणहानि के आगे चार का गुणकार करते हैं ।

[विशेषार्थ – १०० के बदले $२५ \times ४ = [(८ \times ३) + १ \times ४] = \frac{१}{८।३}।४$]

पुनश्च इस चार के आगे छह का गुणकार था उसको गुणा करनेपर तीन गुणहानि हुयी [$४ \times ६ = २४ = ८ \times ३$] उसे लिखते हैं $\frac{१}{८।३}$।८।३ और गुणकार भागहार में गुणहानि का अपवर्तन करनेपर आदिधन ऐसा हुआ $\frac{सə।\frac{१}{८}।\frac{२}{८}।४}{\frac{१}{८।३}।३}$। पुनश्च यहां ऐसे ८ गुणकार के ऊपर एक अधिक था उसके प्रमाण को जुदा बाद में स्थापते हैं और अवशेष को जुदा पहले स्थापते हैं तब दोनों राशियां ऐसी हुयी –

आदिधन	आदिधन का धन
$\dfrac{\text{सə}\,\vert\,\overset{२}{\overline{८\vert४}}\,\vert\,८}{\overset{१}{}\;८\vert३\vert३}$	$\dfrac{\text{सə}\,\vert\,\overset{२}{\overline{८\vert४}}}{\overset{१}{}\;८\vert३\vert३}$

पुनश्च इन दोनों राशियों में ऐसे ८|४ गुणकार के ऊपर दो अधिक हैं उनके प्रमाण को नीचे स्थापकर, अवशेष को ऊपर स्थापनेपर ऐसे होते हैं –

आदिधन	आदिधन का धन
$\dfrac{\text{सə}\vert८\vert४\vert८}{\overset{१}{}\;८\vert३\vert३}$	$\dfrac{\text{सə}\vert८\vert४}{\overset{१}{}\;८\vert३\vert३}$
पहले द्विक का धन	दूसरे द्विक का धन
$\dfrac{\text{सə}\vert२\vert८}{\overset{१}{}\;८\vert३\vert३}$	$\dfrac{\text{सə}\vert२}{\overset{१}{}\;८\vert३\vert३}$

यहां पहले द्विक के धन को ऊपर और नीचे तीन से गुणा करनेपर ऐसा $\dfrac{\text{सə}\vert६\vert८}{\overset{१}{}\;८\vert३\vert३\vert३}$ इसके छह रूप में से चार रूप ऐसे $\dfrac{\text{सə}\vert४\vert८}{\overset{१}{}\;८\vert३\vert३\vert३}$ उनको ऊपर के आदिधन में मिलाना सो आदिधन को ऊपर नीचे तीन से गुणा करनेपर ऐसा $\dfrac{\text{सə}\vert८\vert३\vert४\vert८}{\overset{१}{}\;८\vert३\vert३\vert३}$ । इसके और उसके अन्य समान देखकर ऐसे ८|३ गुणकार के ऊपर एक अधिक करते हैं तब ऐसा $\dfrac{\text{सə}\,\vert\,\overset{१}{\overline{८\vert३}}\,\vert४\vert८}{\overset{१}{}\;८\vert३\vert३\vert३}$ यहां ऐसे $\overset{१}{\overline{८\vert३}}$ का अपवर्तन करनेपर और भागहार के दो बार तीन को परस्पर गुणा करनेपर आदिधन ऐसा $\text{सə}\vert४\vert८$ (नीचे ९) होता है । पुनश्च दूसरे द्विक के धन को ऊपर नीचे तीन से गुणा करनेपर ऐसा $\dfrac{\text{सə}\vert६}{\overset{१}{}\;८\vert३\vert३\vert३}$ । यहां छह रूपों में

चार रूप ऐसे $\frac{\text{सә।४ १}}{\text{८।३।३।३}}$ उसको तीन से ऊपर नीचे गुणा किया हुआ आदिधन का धन ऐसा $\frac{\text{सә।८।३।४ १}}{\text{८।३।३।३}}$ उसमें जोड़ना । अन्य सर्व समान देखकर तीनगुणा गुणहानि ऐसी ८।३ उसके ऊपर एक अधिक करनेपर ऐसा $\frac{\text{सә।}\overline{\text{८।३}}^{\text{१}}\text{।४ १}}{\text{८।३।३।३}}$ होता है । यहां एक अधिक तीनगुणा गुणहानि का अपवर्तन करते हैं और भागहार के दो बार जो तीन के अंक उनको परस्पर गुणा करते हैं तब आदिधन का धन ऐसा हुआ $\frac{\text{सә।४}}{\text{९}}$ ।

पहले द्विक के धन में अवशेष रहे दो रूप ऐसे $\frac{\text{सә।२।८ १}}{\text{८।३।९}}$ इसमें दूसरे द्विक के अवशेष रहे दो रूप ऐसे $\frac{\text{सә।२ १}}{\text{८।३।९}}$ मिलाने के लिये किंचित् अधिक की संदृष्टि करनेपर ऐसा $\frac{\text{स}^{\text{।}}\text{ә।८ १}}{\text{८।३।९}}$ इसको आदिधन का धन ऐसा $\frac{\text{सә।४}}{\text{९}}$ उसमें जोड़कर अपवर्तन करनेपर किंचित् कम आधा समयप्रबध्द ऐसा $\frac{\text{सә।१–}}{\text{२}}$ हुआ इसको ऋणराशि ऐसी $\frac{\text{सә।८।६}}{\text{६३}}$ सो यह संख्यात वर्गशलाकामात्र समयप्रबध्दप्रमाण है उसमें घटाने की किंचित् कम की आगे संदृष्टि करनेपर ऋणराशि ऐसी वә– हुयी । पुनश्च पूर्वोक्त आदिधन ऐसा $\frac{\text{सә।४।८}}{\text{९}}$ रहा, उसको उत्तरधन सә।८ में जोड़ते हैं। सो उत्तरधन को समच्छेद करनेपर ऐसा $\frac{\text{सә।९।८}}{\text{९}}$, सो इसके और उसके अन्य समानता देखकर उसके चार रूपों में इसके नौ रूप जोड़नेपर ऐसा $\frac{\text{सә।८।१३}}{\text{९}}$ हुआ । यहां संदृष्टि के लिये गुणहानि गुणित समयप्रबध्द का अठारहवां भाग ऐसा $\frac{\text{सә।८}}{\text{१८}}$ ऋण मिलाना । सो उस राशि को दो से ऊपर नीचे गुणा करनेपर ऐसा $\frac{\text{सә।८।२६}}{\text{१८}}$ । इसके और मिलाने योग्य ऋण के अन्य समान देखकर आगे के छब्बीस के गुणकार में एक जोड़नेपर ऐसा हुआ $\frac{\text{सә।८।२७}}{\text{१८}}$ यहां नौ से अपवर्तन करनेपर

डेढ़ गुणहानि गुणित समप्रबध्द ऐसा **सa१|८|३/२** हुआ । इसमें प्रथम ऋण किंचित् कम संख्यात वर्गशलाका गुणित समयप्रबध्दमात्र उससे अधिक गुणहानि गुणित समयप्रबध्द का अठारहवां भागमात्र द्वितीय ऋण घटाने के लिये डेढ़ गुणहानि के गुणकार में किंचित् कम की संदृष्टि करनेपर; और डेढ़ से गुणित आठ का प्रमाण बारह करनेपर किंचित् कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबध्दमात्र सत्त्व ऐसा **सa१२–** होता है ।

अब अनुलोम विलोम अपेक्षा त्रिकोणयंत्र का जोड़ कहते हैं -

वहां त्रिकोण रचना में प्रथम गुणहानि का प्रथम निषेक एक पाया जाता है **५१२|१**, दूसरे निषेक दो हैं **४८०|२**, तीसरे निषेक तीन हैं **४४८|३** । ऐसे ही एक एक अधिक क्रम से अंतिम निषेक गुणहानिमात्र **२८८|८** पाये जाते हैं । यह प्रथम पंक्ति हुयी ।

पुनश्च दूसरी गुणहानि के प्रथम निषेक एक अधिक एक गुणहानिमात्र हैं **२५६|१/८**, दूसरे निषेक दो अधिक गुणहानिमात्र हैं **२४०|२/८** ऐसे ही एक एक अधिक होते हैं। अंतिम निषेक दोगुणा गुणहानिमात्र हैं **१४४|८|२** यह दूसरी पंक्ति हुयी । इससे एक एक अधिक ऐसे तृतीय पंक्ति में निषेक होते हैं। ऐसे ही चतुर्थादि पंक्ति जाननी। जितनेवां निषेक हो उतने प्रमाण वे निषेक जानना । उनकी रचना -

<table>
<tr><td>२८८|८</td><td>१४४|८/८</td><td>७२|८/(८|२)</td><td>३६|८/(८|३)</td><td>१८|८/(८|४)</td><td>९|८/(८|५)</td></tr>
<tr><td>३२०|७</td><td>१६०|७/८</td><td>८०|७/(८|२)</td><td>४०|७/(८|३)</td><td>२०|७/(८|४)</td><td>१०|७/(८|५)</td></tr>
<tr><td>३५२|६</td><td>१७६|६/८</td><td>८८|६/(८|२)</td><td>४४|६/(८|३)</td><td>२२|६/(८|४)</td><td>११|६/(८|५)</td></tr>
<tr><td>३८४|५</td><td>१९२|५/८</td><td>९६|५/(८|२)</td><td>४८|५/(८|३)</td><td>२४|५/(८|४)</td><td>१२|५/(८|५)</td></tr>
<tr><td>४१६|४</td><td>२०८|४/८</td><td>१०४|४/(८|२)</td><td>५२|४/(८|३)</td><td>२६|४/(८|४)</td><td>१३|४/(८|५)</td></tr>
<tr><td>४४८|३</td><td>२२४|३/८</td><td>११२|३/(८|२)</td><td>५६|३/(८|३)</td><td>२८|३/(८|४)</td><td>१४|३/(८|५)</td></tr>
<tr><td>४८०|२</td><td>२४०|२/८</td><td>१२०|२/(८|२)</td><td>६०|२/(८|३)</td><td>३०|२/(८|४)</td><td>१५|२/(८|५)</td></tr>
<tr><td>५१२|१</td><td>२५६|१/८</td><td>१२८|१/(८|२)</td><td>६४|१/(८|३)</td><td>३२|१/(८|४)</td><td>१६|१/(८|५) .</td></tr>
</table>

यहां प्रथम पंक्ति में [नीचे की] जो निषेक कहे उनमें द्वितीय गुणहानि का प्रथम निषेक ऐसा **२५६** उससे अधिक जितने जितने अपने चय ऐसे **३२** पाये जाते हैं, उनको जुदे ऐसे लिखते हैं –

	विशेषार्थ
३२।१।८	५१२x१ = २५६x१ + ३२x८x१
३२।२।७	४८०x२ = २५६x२ + ३२x७x२
३२।३।६	४४८x३ = २५६x३ + ३२x६x३
३२।४।५	४१६x४ = २५६x४ + ३२x५x४
३२।५।४	३८४x५ = २५६x५ + ३२x४x५
३२।६।३	३५२x६ = २५६x६ + ३२x३x६
३२।७।२	३२०x७ = २५६x७ + ३२x२x७
३२।८।१	२८८x८ = २५६x८ + ३२x१x८

यहां नीचे पांच सौ बारह के निषेक में दो सौ छप्पन के निषेक से बत्तीस प्रमाणवाले अपने आठ चय अधिक हैं और वह निषेक एक ही है इसलिये एक गुणे आठ चय लिखे । उसके ऊपर चार सौ अस्सी के निषेक में सात चय अधिक हैं और वे निषेक दो हैं इसलिये दो गुणा सात चय लिखे । उसके ऊपर चार सौ अड़तालीस के निषेक में छह चय बढ़ते हैं और वे निषेक तीन हैं इसलिये तीनगुणे छह चय लिखे, ऐसे ही ऊपर भी रचना जाननी । पुनश्च चय के आगे गुणकार है उनको परस्पर गुणा करनेपर ऐसा होता है -

३२।८
३२।१४
३२।१८
३२।२०
३२।२०
३२।१८
३२।१४
३२।८

।

पुनश्च इनको हीन अधिक करके स्थापनेपर एक चय गच्छ जो गुणहानिमात्र

आठ, उसका दो बार संकलनमात्र ऐसे

३२।३६
३२।२८
३२।२१
३२।१५
३२।१०
३२।६
३२।३
३२।१

इनको संकलनसूत्र द्वारा जोड़नेपर सम्पूर्ण गच्छ, एक अधिक गच्छ, दो अधिक गच्छ को क्रम से तीन, दो, एक का भाग देकर उससे चय को गुणा करनेपर ऐसा होता है $३२।\frac{८}{३}।\frac{\overset{१}{\overline{८}}}{२}।\frac{\overset{२}{\overline{८}}}{१}$ पुनश्च इन चयों को घटानेपर अवशेष सर्व निषेक द्वितीय गुणहानि के प्रथम निषेक प्रमाणवाले ऐसे रहे –

२५६।८
२५६।७
२५६।६
२५६।५
२५६।४
२५६।३
२५६।२
२५६।१

इनको जोड़नेपर गच्छ का एक बार संकलनमात्र द्वितीय गुणहानि के प्रथम निषेक प्रमाण हुये। सो संकलनसूत्र अपेक्षा सम्पूर्ण गच्छ, एक अधिक गच्छ को दो, एक का भाग देकर उससे द्वितीय गुणहानि के प्रथम निषेक को गुणा करनेपर जोड़ ऐसा हुआ - $२५६।\frac{८}{२}।\frac{\overset{१}{\overline{८}}}{१}$। इसको तीन से समच्छेद करनेपर तथा द्वितीय गुणहानि के प्रथम निषेक को गुणहानि आठ से संभेदन करनेपर दो सौ छप्पन की जगह आठ गुणा बत्तीस होनेपर ऐसा $३२।\frac{८}{३}।\frac{८}{२}।\frac{\overset{१}{\overline{८}}}{१}।३$ सो इसके और चय जोड़ के अन्य समानता देखकर, गुणकाररूप इसके तीनगुणा गुणहानि में उसके दो अधिक एक गुणहानि मिलानेपर दो अधिक चार गुणहानिमात्र गुणकार हुआ। तब चय जोड़ निषेक जोड़ को मिलानेपर ऐसा प्रमाण हुआ $३२।\frac{\overset{२}{\overline{८}}}{६}।४।८।\overset{१}{\overline{८}}$ । पुनश्च दूसरी पंक्ति में अपने निषेकों के आगे

जो आठ का गुणकार है उसको जुदा रखकर वहां जो एक, दो आदि अधिक गुणकार हैं, उन अधिक गुणकारों से गुणा किये हुये निषेक स्थापित करते हैं तब ऐसे होते हैं

१४४।८
१६०।७
१७६।६
१९२।५
२०८।४
२२४।३
२४०।२
२५६।१

इनमें पूर्वोक्त प्रकार से तृतीय गुणहानि के प्रथम निषेकमात्र प्रमाणवाले सर्व निषेक जुदे स्थापनेपर और अवशेष अपने चयों को जुदे स्थापनेपर ऐसे होते हैं –

निषेक	जुदे स्थापे चय	गुणकार मिलानेपर	हीनाधिक करके गच्छ को दो बार संकलन किये हुये चय
१२८।८	१६।८।१	१६।८	१६।३६
१२८।७	१६।७।२	१६।१४	१६।२८
१२८।६	१६।६।३	१६।१८	१६।२१
१२८।५	१६।५।४	१६।२०	१६।१५
१२८।४	१६।४।५	१६।२०	१६।१०
१२८।३	१६।३।६	१६।१८	१६।६
१२८।२	१६।२।७	१६।१४	१६।३
१२८।१	१६।१।८	१६।८	१६।१

यहां निषेक और चय का प्रमाण प्रथम गुणहानि से आधा जानना । पुनश्च यहां पूर्वोक्त प्रकार चय और निषेकों का जोड़ देनेपर पूर्वोक्त से आधा प्रमाणरूप दोनों के जोड़ ऐसे होते हैं -

निषेक जोड़	चय जोड़
$\text{१२८।}\frac{\text{८}}{\text{२}}\text{।}\frac{\text{१}}{\text{८}}\text{१}$	$\text{१६।}\frac{\text{८}}{\text{३}}\text{।}\frac{\text{१}}{\text{८}}\text{२}\text{।}\frac{\text{२}}{\text{८}}\text{१}$

पुनश्च इन दोनों को पूर्वोक्त प्रकार मिलानेपर प्रथम गुणहानि के आधा द्वितीय गुणहानि का आदिधन ऐसा हुआ $\text{१६।}\frac{\text{२}}{\text{८।४}}\text{६।८।}\frac{\text{१}}{\text{८}}$ । यहां द्वितीय पंक्ति में आठ गुणकारवाले

सर्व निषेक ऐसे हैं

१४४।८
१६०।८
१७६।८
१९२।८
२०८।८
२२४।८
२४०।८
२५६।८

। इनमें पूर्वोक्त प्रकार तृतीय गुणहानि के प्रथम निषेकमात्र प्रमाणवाले सर्व निषेक जुदे स्थापे और अवशेष अपने अधिक चयों का प्रमाण जुदा स्थापनेपर ऐसा होता है -

निषेक	अधिक चय
१२८।८	१६।८।१
१२८।८	१६।७।२
१२८।८	१६।६।३
१२८।८	१६।५।४
१२८।८	१६।४।५
१२८।८	१६।३।६
१२८।८	१६।२।७
१२८।८	१६।१।८

इनमें चयों का जोड़ तो गुणहानिमात्र गच्छ का संकलन ऐसा $\frac{८}{२}।\overset{१}{\overline{\frac{८}{१}}}$ उससे गुणित गुणहानिगुणा अपने चयप्रमाण ऐसा होता है $१६।८।\frac{८}{२}।\overset{१}{\overline{\frac{८}{१}}}$ और निषेकों का जोड़ गुणहानि का वर्ग ऐसा ८।८ उससे गुणित तृतीय गुणहानि के प्रथम निषेकमात्र ऐसा १२८।८।८ होता है। पुनश्च यहां तृतीय गुणहानि के प्रथम निषेक को गुणहानि आठ द्वारा संभेदन करनेपर और राशि को दो से समच्छेद करनेपर ऐसा हुआ $१६।८।\frac{८}{२}।८।२$ । इसकी और चयजोड़ की अन्य समानता देखकर आगे का गुणकार दोगुणा गुणहानि ऐसा ८।२ उसमें उसका गुणकार एक अधिक एक गुणहानि ऐसा $\overset{१}{\overline{८}}$ मिलानेपर एक अधिक तीनगुणा गुणहानि का गुणकार हुआ तब दोनों के जोड़रूप द्वितीय पंक्ति का उत्तरधन ऐसा हुआ $१६।८।८।\overset{१}{\overline{८।\frac{३}{२}}}$

ऐसे ही तृतीयादि पंक्तियों के आदिधन, उत्तरधन क्रम से आधे आधे जानने । विशेष इतना कि उत्तरधन को जितनेवीं गुणहानि हो उस प्रमाण से एक कम प्रमाण से गुणा करना । इनकी संदृष्टि ऐसी –

नाम	आदिधन	उत्तरधन
अंतिम गुणहानि	$१।\overset{२}{\overline{\underset{६}{८}।४}}।८।\overset{१}{\overline{८}}$	$१।५।८।\underset{२}{८}।\overset{१}{\overline{८।३}}$
पंचम गुणहानि	$२।\overset{२}{\overline{\underset{६}{८}।४}}।८।\overset{१}{\overline{८}}$	$२।४।८।\underset{२}{८}।\overset{१}{\overline{८।३}}$
चतुर्थ गुणहानि	$४।\overset{२}{\overline{\underset{६}{८}।४}}।८।\overset{१}{\overline{८}}$	$४।३।\underset{२}{८}।८।\overset{१}{\overline{८।३}}$
तृतीय गुणहानि	$८।\overset{२}{\overline{\underset{६}{८}।४}}।८।\overset{१}{\overline{८}}$	$८।२।८।\underset{२}{८}।\overset{१}{\overline{८।३}}$
द्वितीय गुणहानि	$१६।\overset{२}{\overline{\underset{६}{८}।४}}।८।\overset{१}{\overline{८}}$	$१६।१।८।\underset{२}{८}।\overset{१}{\overline{८।३}}$
प्रथम गुणहानि	$३२।\overset{२}{\overline{\underset{६}{८}।४}}।८।\overset{१}{\overline{८}}$	०

यहां आदिधन में अंतधन ऐसा $३२।\overset{२}{\overline{\underset{६}{८}।४}}।८।\overset{१}{\overline{८}}$ उसको गुणकार दो से गुणा करनेपर ऐसा $६४।\overset{२}{\overline{\underset{६}{८}।४}}।८।\overset{१}{\overline{८}}$ होता है इसमें से आदि ऐसा $१।\overset{२}{\overline{\underset{६}{८}।४}}।८।\overset{१}{\overline{८}}$ घटानेपर सर्व गुणहानियों के आदिधन का जोड़ ऐसा $६३।\overset{२}{\overline{\underset{६}{८}।४}}।८।\overset{१}{\overline{८}}$ होता है ।

पुनश्च उत्तरधन में जो एक आदि गुणकार कहे उनको एक एक करके अपने अपने गुण्यसहित आगे आगे स्थापने । वहां प्रथम गुणहानि में तो उत्तरधन का अभाव है । द्वितीय गुणहानि में गुणकार एक ही था । इसलिये प्रथम पंक्ति में एक ही जगह उस का गुण्य ऐसा $१६।८।\underset{२}{८}।\overset{१}{\overline{८।३}}$ स्थापित करना । तृतीय गुणहानि के गुणकार दो

थे इसलिये प्रथम और द्वितीय पंक्ति में दो जगह उनके गुणकार ऐसे स्थापित करने $८।८।\underset{२}{८}।\overset{१}{\overline{८।३}}$ ऐसे ही अंत तक स्थापित करनेपर ऐसे होते हैं –

अंतिमगुणहानि	$१।८।\underset{२}{८}।\overset{१}{\overline{८।३}}$	$१।८।\underset{२}{८}।\overset{१}{\overline{८।३}}$	$१।८।\underset{२}{८}।\overset{१}{\overline{८।३}}$	$१।८।\underset{२}{८}।\overset{१}{\overline{८।३}}$	$१।८।\underset{२}{८}।\overset{१}{\overline{८।३}}$	०
पंचमगुणहानि	$२।८।\underset{२}{८}।\overset{१}{\overline{८।३}}$	$२।८।\underset{२}{८}।\overset{१}{\overline{८।३}}$	$२।८।\underset{२}{८}।\overset{१}{\overline{८।३}}$	$२।८।\underset{२}{८}।\overset{१}{\overline{८।३}}$	०	०
चतुर्थगुणहानि	$४।८।\underset{२}{८}।\overset{१}{\overline{८।३}}$	$४।८।\underset{२}{८}।\overset{१}{\overline{८।३}}$	$४।८।\underset{२}{८}।\overset{१}{\overline{८।३}}$	०	०	०
तृतीयगुणहानि	$८।८।\underset{२}{८}।\overset{१}{\overline{८।३}}$	$८।८।\underset{२}{८}।\overset{१}{\overline{८।३}}$	०	०	०	०
द्वितीयगुणहानि	$१६।८।\underset{२}{८}।\overset{१}{\overline{८।३}}$	०	०	०	०	०
प्रथमगुणहानि	०	०	०	०	०	०

पुनश्च **'अंतधणं गुणगुणियं'** इत्यादि सूत्र द्वारा ऊर्ध्वरूप इन पंक्तियों का जोड़ देनेपर क्रम से ऐसे जोड़ होते हैं –

प्रथम पंक्ति का जोड़	द्वितीय पंक्ति का जोड़	तृतीय पंक्ति का जोड़	चतुर्थ पंक्ति का जोड़	पंचम पंक्ति का जोड़	षष्ठम पंक्ति का जोड़
$३१।८।\underset{२}{८}।\overset{१}{\overline{८।३}}$	$१५।८।\underset{२}{८}।\overset{१}{\overline{८।३}}$	$७।८।\underset{२}{८}।\overset{१}{\overline{८।३}}$	$३।८।\underset{२}{८}।\overset{१}{\overline{८।३}}$	$१।८।\underset{२}{८}।\overset{१}{\overline{८।३}}$	०

इन छहों जगह जुदा जुदा इतना ऋण मिलाना $१।८।\underset{२}{८}।\overset{१}{\overline{८।३}}$ वहां अन्य समान देखकर पांचों जोड़ों के गुण्य में एक एक अधिक करनेपर छठवीं पंक्ति में ऋणमात्र प्रमाण लिखनेपर छहों राशि ऐसी –

$३२।८।\underset{२}{८}।\overset{१}{\overline{८।३}}$	$१६।८।\underset{२}{८}।\overset{१}{\overline{८।३}}$	$८।८।\underset{२}{८}।\overset{१}{\overline{८।३}}$	$४।८।\underset{२}{८}।\overset{१}{\overline{८।३}}$	$२।८।\underset{२}{८}।\overset{१}{\overline{८।३}}$	$१।८।\underset{२}{८}।\overset{१}{\overline{८।३}}$

इन छहों का जोड़ देनेपर ऐसा हुआ **६३।८।$\frac{८}{२}$।$\frac{१}{८।३}$** । यहां आठ का अंक पहले लिखा है उसको बादमें लिखनेपर ऐसा - **६३।$\frac{८}{२}$।$\frac{१}{८।३}$।८** । पुनश्च एक अधिक तीनगुणा गुणहानि ऐसा **$\frac{१}{८।३}$ [८X३+ १]** उसका प्रमाण तो पच्चीस हुआ । और तिरसठ के आगे जो आठ का गुणकार था उसको दो के भागहार से अपवर्तन करनेपर चार का अंक आया । पुनश्च पच्चीस को चार से गुणा करनेपर सौ हुये उससे तिरसठ को गुणा करनेपर तिरसठ सौ हुये आगे आठ का गुणकार रहा तब ऐसी राशि **६३००।८** हुयी। सो यह अंकसंदृष्टि द्वारा गुणहानि गुणित समयप्रबध्द प्रमाण हुआ । पुनश्च मिलाया था जो ऋण उसका प्रमाण ऐसा **१।८।$\frac{८}{२}$।$\frac{१}{८।३}$** उसको नानागुणहानिमात्र प्रमाण छह जगह इतना इतना ऋण मिलाया इसलिये इसको छह से गुणा करके तथा आठ का अंक पहले लिखा था उसको बाद में लिखनेपर ऐसा **१।$\frac{८}{२}$।$\frac{१}{८।३}$।८।६** यहां ऐसे **१।$\frac{८}{२}$।$\frac{१}{८।३}$** अंकों को परस्पर गुणा करनेपर सौ हुये उसके आगे के गुणकार लिखनेपर ऋणराशि ऐसी **१००।८।६** होती है । यहां आदिधन ऐसा **६३।८।$\frac{२}{४}$।८।$\frac{१}{८}$** (४ के नीचे ६) । इन तीनों राशियों को समयप्रबध्द शलाका करने के लिये तिरसठ सौ का भाग देनेपर तीनों राशियां ऐसी होती हैं –

आदिधन	उत्तरधन	ऋण
सa।८।$\frac{२}{४}$।८।$\frac{१}{८}$ / १००।६	सa।८	सa।८।६ / ६३

यहां से आगे जैसे अधिक संकलन में विधान किया है वैसा ही विधान करनेपर किंचित् कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबध्द मात्र सत्त्व ऐसा होता है **सa।१२–**। ऐसे तीन प्रकार से त्रिकोणयंत्र के जोड़ का विधान कहा ।

उत्कृष्ट संचय के कथन में सामान्योक्त यथासंभव संदृष्टि जाननी ।

अब जीवों की संख्या संबंधी संदृष्टि कहते हैं –

बादर पर्याप्त तेजसूकायिक और वायुकायिक तथा पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच, मनुष्य इनका सामान्य प्रमाण पहले कहा उसमें वैक्रियिक शक्तियुक्त तेजसूकायिक घनावली को दो बार असंख्यात का भाग ८/əə देते हैं इतने हैं, वायुकायिक पल्य के असंख्यातवें भागमात्र हैं प/ə , पंचेन्द्रिय तिर्यंच मनुष्य पल्य के असंख्यातवें भाग से प/ə गुणित घनांगुल ६ उससे गुणित जगतूश्रेणीमात्र – हैं । उनका यंत्र –

नाम	तेजसूकायिक	वायुकायिक	पंचेन्द्रियतिर्यंच, मनुष्य
(बादरपर्याप्त) सामान्यराशि	८ ə	≡ ꞔ	= ५८६४ ४ ६५६१ ५
विक्रियाशक्तियुक्त राशि	८ əə	प ə	–६।प ə

पुनश्च त्रियोगी जीवराशि ऐसी ≡। ꞔ ꞔ/१– ॥ / ४।६५=।१ । यहां तो नारकी और पर्याप्त संज्ञी तिर्यंच और पर्याप्त मनुष्य इन तीन राशियों की अधिक की संदृष्टि जाननी।

द्वियोगी जीवराशि ऐसी =/४/५ – यहां त्रस पर्याप्त राशि के आगे त्रियोगी राशि घटाने की संदृष्टि जाननी ।

एक काययोगी जीवराशि ऐसी **१३=** यहां संसारी में से त्रियोगी, द्वियोगी राशि घटाने की आगे संदृष्टि जाननी ।

सत्य, असत्य, उभय, अनुभय योगों के काल ऐसे - अनुभय **२ꞔ।६४**, उभय **२ꞔ।१६**, असत्य **२ꞔ।४**, सत्य **२ꞔ।१**; यहां सत्य **मनोयोग** का काल एक अंतर्मुहूर्त उसकी संदृष्टि ऐसी **२ꞔ।१** उसको संख्यात की संदृष्टि चार से क्रम से गुणा करते हैं उनका जोड़ **२ꞔ।८५** है । इस जोड़ को क्रम से संख्यात की संदृष्टि चार से गुणा करनेपर सत्य, असत्य, उभय, अनुभय **वचनयोग** के काल की संदृष्टि होती है

- अनुभय **२ॄ|८५|२५६**, उभय **२ॄ|८५|६४**, असत्य **२ॄ|८५|१६**, सत्य **२ॄ|८५|४**। इनका जोड़ ऐसा - **२ॄ|८५|३४०**। इसको संख्यात की संदृष्टि चार से गुणा करनेपर काययोग का काल ऐसा **२ॄ|८५|१३६०** ऐसे इन तीनों योगों का काल मिलानेपर ऐसा **२ॄ|८५|१७०१** होता है । सो इनका भाग त्रियोगी राशि को देकर अपने अपने काल से गुणा करनेपर सत्य मनोयोगी आदि जीवों का प्रमाण आता है ।

नाम	मनोयोगी		वचनयोगी		काययोगी
सर्व	≡ ॄ ॥१ ॄ ४|६५=|१|१७०१	सर्व	≡ ॄ ॥१ ३४० ॄ ४|६५=|१|१७०१	सर्व	≡ ॄ ॥१ १३६० ॄ ४|६५=|१|१७०१
अनुभय	≡ ॄ ॥१ ६४ ॄ ४|६५=|१|८५|१७०१	अनुभय	≡ ॄ ॥१ २५६ ॄ ४|६५ =|१|१७०१		
उभय	≡ ॄ ॥१ १६ ॄ ४|६५=|१|८५|१७०१	उभय	≡ ॄ ॥१ ६४ ॄ ४|६५=|१|१७०१		
असत्य	≡ ॄ ॥१ ४ ॄ ४|६५=|१|८५|१७०१	असत्य	≡ ॄ ॥१ १६ ॄ ४|६५=|१|१७०१		
सत्य	≡ ॄ ॥१ १ ॄ ४|६५=|१|८५|१७०१	सत्य	≡ ॄ ॥१ ४ ॄ ४|६५=|१|१७०१		

वहां गुणकार और भागहार में अंतर्मुहूर्त का और पचासी का समानपना जहां हो वहां अपवर्तन करना । पुनश्च द्वियोगी में वचनयोग का काल एक अंतर्मुहूर्तमात्र ऐसा **२ॄ|१** इससे संख्यातगुणा काययोग का काल ऐसा **२ॄ|४** दोनों का मिलाया हुआ ऐसा **२ॄ|५** इसका भाग द्वियोगी जीवराशि को देकर, अपने अपने काल से गुणा करनेपर ऐसा प्रमाण होता है –

अनुभय वचनयोगी ⟶ ≡ ४ ५ – २ॄ|१ / |२ॄ|५ औदारिक काययोगी ⟶ ≡ ४ ५ – २ॄ|४ / |२ॄ|५

पुनश्च काययोगी में कार्माण काल तीन समय (३), औदारिकमिश्र काल अंतर्मुहूर्त **२ॄ**, इससे संख्यातगुणा औदारिक का काल **२ॄ|४** इनको जोड़नेपर तीन समय अधिक संदृष्टि

अपेक्षा पांचगुणा अंतर्मुहूर्तमात्र ऐसा $\frac{३}{२ॄ।५}$ इसका भाग एकयोगी जीवराशि को देकर अपने अपने काल से गुणा करनेपर निज निज योगवाले जीवों की संख्या ऐसी होती है - कार्माण $\frac{१३=।३}{२ॄ।५}$, औदारिकमिश्र $\frac{१३=।२ॄ}{२ॄ।५}$, औदारिक $\frac{१३=।२ॄ।४}{२ॄ।५}$

यहां जोड़े हुये काल को प्रमाणराशि करके, एकयोगी जीवों की संख्या को फलराशि बनाकर, अपने अपने काल को इच्छाराशि करनेपर लब्धराशिमात्र जीवों का प्रमाण आता है ।

पुनश्च व्यंतर देवों के निरंतर उत्पत्तिरूप सोपक्रमकाल आवली के असंख्यातवें भागमात्र ऐसा २_{a}, उत्पत्तिरहित अनुपक्रमकाल संख्यात आवलीमात्र ऐसा २ॄ । वहां दस हजार वर्षप्रमाण स्थिति में पर्याप्त-अपर्याप्त दोनों काल संबंधी शुध्द उपक्रम शलाका उसके काल से संख्यात गुणी २ॄॄ, इनसे अपर्याप्त संबंधी संख्यातगुणा कम ऐसी $२_{a}ॄ$ । यहां उपक्रम अनुपक्रम दोनों काल मिलानेपर प्रमाणराशि ऐसी $\frac{२}{a}$ २ॄ, फलराशि शलाका एक, इच्छाराशि दस हजार वर्ष सो तीन बार संख्यात गुणित आवलीमात्र ऐसा २ॄॄॄ, लब्धराशिमात्र मिश्रशलाका ऐसी $\frac{२ॄॄॄ\ १}{२ॄ।a_{a}}$ ।

[**विशेषार्थ** - १०,००० वर्ष = २ॄॄॄ

सोपक्रमकाल + अनुपक्रम काल ⟶ २_{a} + २ॄ

⟶ २_{a} + २ॄ।a ⟶ $\frac{१}{२ॄ।a_{a}}$

१०,००० वर्ष मिश्रशलाका ⟶ $\frac{२ॄॄॄ\ १}{२ॄ।a_{a}}$ ⟶ $\frac{२ॄॄॄ।a\ १}{२ॄ।a}$

यहा गणित सुलझाने के लिये $२ॄ_{a}ॄ$ मिलाकर बादमें किंचित् न्यून कर देंगे ।]

यहां भाज्यराशि में ऐसा $२ᵹ_{७}ᵹ$ मिलाकर ऋण का ऋण राशि का धन करनेपर ऐसा हुआ - $\frac{२ᵹᵹ\overline{ᵹ।७}^{१}}{२\overline{ᵹ।७}^{१}}$ ।

यहां ऐसा $२\overline{ᵹ।७}^{१}$ भाज्य भागहार में समान देखकर अपवर्तन करनेपर ऐसा रहा ᵹᵹ इसमें ऋणराशि की किंचित् कम की आगे संदृष्टि करनेपर मिश्रशलाका का प्रमाण ऐसा हुआ ᵹᵹ- । पुनश्च प्रमाण शलाका एक, फल उपक्रम काल ऐसा $२_{७}$, इच्छा शलाका इतनी ᵹᵹ- । वहां लब्धराशिमात्र सर्वकाल संबंधी शुध्द उपक्रम काल ऐसा $२_{७}$ᵹᵹ- । पुनश्च प्रमाणराशि सर्वकाल ऐसा २ᵹᵹᵹ, फलराशि शुध्द उपक्रम काल ऐसा $२_{७}$ᵹᵹ-, इच्छा अपर्याप्त काल ऐसा २ᵹᵹ, लब्धराशिमात्र अपर्याप्त काल संबंधी शुध्द उपक्रम काल ऐसा $२_{७}$ᵹ- होता है ।

[**विशेषार्थ** - ∵ १ मिश्रशलाका में $२_{७}$ शुध्द उपक्रमकाल

∴ ᵹᵹ- $२ᵹ_{७}ᵹ$-

∵ २ᵹᵹᵹ सर्व जघन्य काल में २ᵹᵹ- शुध्द उपक्रमकाल

∴ २ᵹᵹ अपर्याप्त काल में $२ᵹ_{७}ᵹ- \times \frac{२ᵹᵹ}{२ᵹᵹᵹ} = २_{७}ᵹ-$]

सो पूर्वोक्त व्यंतरराशि को सर्व काल संबंधी शुध्द उपक्रम शलाका का भाग देनेपर और अपर्याप्त काल संबंधी शुध्द उपक्रम शलाका से गुणित करनेपर व्यंतरराशि में वैक्रियिक मिश्र योगी का प्रमाण ऐसा होता है – = $२_{७}$ᵹ-

$४।६५=।८१।१०^{०}।२ᵹ_{७}ᵹ-$

[**विशेषार्थ** - जगत्प्रतर = को प्रतरांगुल ४ और ३०० योजन का वर्ग $६५।८१।१०^{०}$ से गुणा करनेपर व्यंतरराशि आती है ।]

इसमें अवशेष देव और नारकी मिश्रयोगी मिलाने की ऊपर अधिक की संदृष्टि करनेपर सर्व वैक्रियिक मिश्रयोगी राशि ऐसी ॥ २२-
　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　a
४।६५=।८१।१॰०।२२ २-
　　　　　　　　a

पुनश्च त्रियोगी जीवों में काययोगी की संख्या में से तिर्यंच मनुष्य संबंधी औदारिक काययोगियोंकी संख्या घटाने की आगे ऐसी = संदृष्टि करनेपर वैक्रियिक काययोगियों की संख्या की संदृष्टि ऐसी होती है |||= २ १३६०२ / ४।६५ =।१।१७०१ ।

आहारक काययोगी चौवन, आहारक मिश्रयोगी सत्ताइस हैं ।

अब **वेदमार्गणा** अधिकार में संदृष्टि कहते हैं –

तिर्यंच संज्ञी पद्मलेश्यावाले	४।६५=।२२२२२
तिर्यंच संज्ञी पीतलेश्यावाले	४।६५=।२२२२
संज्ञी तिर्यंच	४।६५=।२२२
पुरुष तिर्यंच	४।६५=।२२
स्त्रीवेदी तिर्यंच	४।६५=।२
व्यंतर देव	४।६५=।२
ज्योतिष्क देव	४।६५=

वहां ज्योतिष्कदेव पणट्ठी, प्रतरांगुल से भाजित जगत्प्रतर प्रमाण है ४।६५= । इसको क्रम से एक, दो, तीन, चार, पांच, छह बार संख्यात २, उसका भाग देनेपर अनुक्रम से व्यंतर, तिर्यंच द्रव्य स्त्री, तिर्यंच द्रव्य पुरुष, तिर्यंच संज्ञी पंचेन्द्रिय, तिर्यंच संज्ञी पंचेन्द्रिय पीतलेश्यावाले और तिर्यंच संज्ञी पंचेन्द्रिय पद्मलेश्यावाले जीवों का प्रमाण होता है ।

पुनश्च चारों गतियों में से देवगति में उसकी सामान्यराशि को तैंतीस का भाग देकर बत्तीस से गुणा करनेपर स्त्रीवेदियों का प्रमाण आता है, एक से गुणा करनेपर पुरुषवेदियों का प्रमाण आता है, उनमें नपुंसकवेदी है नहीं ।

मनुष्यगति में बादाल के आगे घन करने के लिये तीन बार लिखने की तीन के अंक की संदृष्टि करके उसको चार का भाग देनेपर पुरुषवेदियों का प्रमाण होता है, और चार का भाग देकर तीन से गुणा करनेपर स्त्रीवेदियों का प्रमाण होता है । सामान्यराशि में से इनकी संदृष्टि घटाने के लिये आगे संख्यात कम की संदृष्टि करनेपर नपुंसकवेदियों का प्रमाण होता है ।

तिर्यंचगति में छह सौ योजन के वर्ग के पणट्ठी, इक्यासी और चार को परस्पर गुणा करनेपर आगे दस बिंदी देते हैं इतने प्रतरांगुल होते हैं उसका भाग जगत्प्रतर को देनेपर इतने स्त्रीवेदी हैं, इनके संख्यातवें भाग पुरुषवेदी हैं तथा संसारीराशि में से इनको और तीन गति के जीवों को घटाने के लिये किंचित् कम करनेपर नपुंसकवेदियों का प्रमाण होता है ।

नरकगति में सामान्यराशिमात्र सर्व नपुंसकवेदी ही हैं ।

नाम	पुरुषवेदी	स्त्रीवेदी	नपुंसकवेदी
देवगति	॥ १ ॄ = १।१ ४।६५=।३३	॥ १ ॄ = ३२।१ ४।६५=।३३	०
मनुष्यगति	४२=।३ ४	४२=।३।३ ४	१० / १।३ −ॄ (सामान्य मनुष्यराशि → जगत्श्रेणी ÷ सूच्यंगुल का प्रथम मूल x तृतीय मूल उसमें से एक कम करना, अपगतवेदी, पुरुषवेदी, स्त्रीवेदी को कम करने के लिए −ॄ की संदृष्टि है ।
तिर्यंचगति	= ४।६५=।८१।४।१० ।ॄ	= ४।६५=।८१।४।१०	१३−
नरकगति	०	०	−२ जगत्श्रेणी x घनांगुल का द्वितीय मूल

पुनश्च पुरुषवेदी और स्त्रीवेदी देवों की संदृष्टि के ऊपर मनुष्य-तिर्यंच पुरुषवेदी और स्त्रीवेदी मिलाने की ऐसी ॥ संदृष्टि करनेपर सर्व पुरुषवेदी और स्त्रीवेदी जीवों की संदृष्टि होती है ।

पुनश्च दो वेदी और अवेदी इन तीन राशियों को घटाने की ऐसी ≡ संदृष्टि संसारी राशि के आगे करनेपर सर्व नपुंसकवेदियों की संदृष्टि होती है । उनका यंत्र–

पुरुषवेदी	स्त्रीवेदी	नपुंसकवेदी
॥ १ ॥ ॄ = १ १ ४।६५=।३३	॥ १ ॥ ॄ = ३२ १ ४।६५ =।३३	१३≡

पुनश्च संज्ञी पंचेन्द्रिय गर्भज नपुसंकवेदी और संज्ञी पंचेन्द्रिय गर्भज पुरुषवेदी और संज्ञी पंचेन्द्रिय गर्भज स्त्रीवेदी और सम्मूर्च्छन असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त नपुंसकवेदी और सम्मूर्च्छन संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त नपुंसकवेदी और भोगभूमियां संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त स्त्रीवेदी और पुरुषवेदी और असंज्ञी पंचेन्द्रिय गर्भज नपुंसकवेदी और असंज्ञी पंचेन्द्रिय गर्भज पुरुषवेदी और असंज्ञी पंचेन्द्रिय गर्भज स्त्रीवेदी और व्यंतर और ज्योतिष्क ये ग्यारह जीवराशि ऊपर ऊपर स्थापित करना । नीचे की राशि आठ बार संख्यात ॄ, घनावली का असंख्यातवां भाग ८/a, पल्य का असंख्यातवां भाग प/a और पणट्ठी प्रतरांगुल ४।६५= इनका भाग जगत्प्रतर को देनेपर लब्धमात्र है । उसके ऊपर दूसरी, तीसरी, चौथी राशि क्रम से संख्यात ॄ गुणा है । पांचवीं राशि घनावली के असंख्यातवें भाग ८/a गुणा है। छठवीं राशि पल्य के असंख्यातवें भाग प/a गुणा है । सातवीं, आठवीं, नौवीं, दसवीं, ग्यारहवीं राशि क्रम से संख्यातगुणा है । सो जिस जिस का गुणकार हो, उस उस भागहार और गुणकार का अपवर्तन करनेपर इन ग्यारह राशियों की संदृष्टि ऐसी होती है –

११. ज्योतिष्क	= ४।६५=
१०. व्यंतर	= ४।६५=।ॄ
९. असं.पं.ग.स्त्री	= ४।६५=।ॄॄ

८. असं.पं.ग.पुरुष	$\overset{=}{४}$ ।६५=।ॄॄ
७. असं.पं.ग.नपुं.	$\overset{=}{४}$ ।६५=।ॄॄॄ
६. भोग.सं.पं.प.ग.पु./स्त्री.	$\overset{=}{४}$ ।६५=।ॄॄॄॄ
५. सम्मू.सं.पं.प.नपुं.	$\overset{=}{४}$ ।६५=।ॄॄॄॄ$\frac{प}{ə}$
४. सम्मू.असं.पं.प.नपुं.	$\overset{=}{४}$ ।६५=।ॄॄॄॄ$\frac{प}{ə}\frac{८}{ə}$
३. सं.पं.ग.स्त्री	$\overset{=}{४}$ ।६५=।ॄॄॄॄ$\frac{प}{ə}\frac{८}{ə}$ॄ
२. सं.पं.ग.पुरुष	$\overset{=}{४}$ ।६५=।ॄॄॄॄ$\frac{प}{ə}\frac{८}{ə}$ॄॄ
१. सं.पं.ग.नपुंसक	$\overset{=}{४}$ ।६५=।ॄॄॄॄ$\frac{प}{ə}\frac{८}{ə}$ॄॄॄ

अब **कषायमार्गणा अधिकार** में संदृष्टि कहते हैं - वहां कषायों के सर्व उदयस्थान असंख्यात लोकमात्र ऐसे ≡ə । पुनश्च प्रतिभाग का प्रमाण यथायोग्य असंख्यात लोकमात्र, उसकी संदृष्टि नौ का अंक ९ उसका भाग देकर बहुभाग बहुभाग तीव्रतर, तीव्र और मंद शक्तियुक्त में देना । वहां आठ का गुणकार और क्रम से एक बार, दो बार, तीन बार नौ का भागहार जानना । और एक भाग मंदतर शक्तियुक्त में देना । वहां एक का गुणकार, तीन बार नौ का भागहार जानना । ऐसे चार पदों में विभाग हैं।

[**विशेषार्थ - तीव्रतर तीव्र मंद मंदतर**

तीव्रतर	तीव्र	मंद	मंदतर
$\frac{\equiv ə।८}{९}$	$\frac{\equiv ə।८}{९।९}$	$\frac{\equiv ə।८}{९।९।९}$	$\frac{\equiv ə}{९।९।९}$

]

अब चौदह पदों में कहतें हैं -

तीव्रतर में सर्व स्थान कृष्णलेश्या ही के हैं $\frac{\equiv ə।८}{९}$ । तीव्र में सर्व स्थानों का प्रमाण ऐसा - $\frac{\equiv ə।८}{९।९}$ उसको प्रतिभाग का भाग देकर बहुभाग बहुभाग कृष्णादि एक, दो, तीन, चार, पांच लेश्यायुक्त स्थानों को देना वहां आठ का गुणकार और क्रम

से एक, दो, तीन, चार, पांच बार नौ का भागहार जानना और एक भाग छह लेश्यायुक्त स्थानों को देना । वहां एक का गुणकार और पांच बार नौ का भागहार जानना । यहां एक बार, दो बार आदि की संदृष्टि नौ के आगे एक दो आदि अंक जानने ।

[**विशेषार्थ-** तीव्र ≡ ७।८ / ९।९

कृष्ण	कृष्णादि दो	कृष्णादि तीन	कृष्णादि चार	कृष्णादि पांच	कृष्णादि छह
≡ ७।८।८ / ९।९।९	≡ ७।८।८ / ९।९।९।९	≡ ७।८।८ / ९।९।९।९।९	≡ ७।८।८ / ९।९।९।९।९।९	≡ ७।८।८ / ९।९।९।९।९।९।९	≡ ७।८।१ / ९।९।९।९।९।९।९

]

मंद में सर्व स्थानों का प्रमाण ऐसा ≡ ७।८ / ९।९।९ उसको प्रतिभाग नौ का भाग दे-देकर बहुभाग बहुभाग कृष्णादि छह, नीलादि पांच, कपोतादि चार, पीतादि तीन और पद्मादि दो लेश्या के स्थानों में देना । वहां उसको आठ का गुणकार और क्रम से एक, दो, तीन, चार, पांच बार नौ का भागहार जानना । एक भाग शुक्ललेश्या के स्थानों में देना । वहां एक का गुणकार और पांच बार नौ का भागहार जानना । यहां भी एक बार, दो बार आदि की संदृष्टि नौ के आगे एक दो आदि अंक जानने।

[**विशेषार्थ** – मंद ≡ ७।८ / ९।९।९

कृष्णादि छह	नीलादि पांच	कपोतादि चार	पीतादि तीन	पद्मादि दो	शुक्ल
≡ ७।८।८ / ९।९।९।९।१	≡ ७।८।८ / ९।९।९।९।२	≡ ७।८।८ / ९।९।९।९।३	≡ ७।८।८ / ९।९।९।९।४	≡ ७।८।८ / ९।९।९।९।५	≡ ७।८।१ / ९।९।९।९।५

मंदतर के सर्वस्थान ≡ ७।१ / ९।९।९ शुक्ललेश्या ही के हैं ।

अब बीस पदों में कहते हैं –

तीव्रतर में कृष्णलेश्या के स्थान ≡ ७।८ / ९ उनको प्रतिभाग का भाग देकर बहुभाग आयु अबंध के स्थानों को और एक भाग नरकायु बंधस्थानों को देना । वहां उसको नौ ९ का भाग देकर बहुभाग में आठ का और एक भाग में एक का गुणकार जानना।

तीव्र में कृष्ण और कृष्णादि दो लेश्या के सर्वस्थान एक नरकायु बंध के कारण ऐसे कृष्ण $\frac{\equiv ə।८।८}{९।९।९।१}$ कृष्ण + नील $\frac{\equiv ə।८।८}{९।९।९।२}$ । कृष्णादि तीन लेश्या के स्थान ऐसे $\frac{\equiv ə।८।८}{९।९।९।३}$ उनको प्रतिभाग का भाग देकर बहुभाग बहुभाग नरक और नरक तिर्यंच आयु बंध के स्थानों को देना । वहां उसको आठ का गुणकार और एक, दो बार नौ का भागहार जानना । एक भाग नरकादि तीन (नरक, तिर्यंच, मनुष्य) आयु बंधस्थानों को देना । वहां एक का गुणकार, दो बार नौ का भागहार जानना। यहां भी एक बार, दो बार की संदृष्टि नौ के आगे एक, दो का अंक जानना ।

पुनश्च कृष्णादि चार, पांच और छह लेश्याओं के सर्व स्थान चारों आयुबंध के कारण ऐसे हैं – $\frac{\equiv ə।८।८}{९।९।९।४}$, $\frac{\equiv ə।८।८}{९।९।९।५}$, $\frac{\equiv ə।८।१}{९।९।९।५}$,

पुनश्च मंद में कृष्णादि छह लेश्यायुक्त स्थान ऐसे $\frac{\equiv ə।८।८}{९।९।९।९।१}$ उसको प्रतिभाग का भाग देकर बहुभाग बहुभाग चार आयु और नरक बिना तीन आयुबंध के स्थानों में देना । वहां उसको आठ का गुणकार और क्रम से एक, दो बार नौ का भागहार जानना । एक भाग नरक, तिर्यंच बिना दो आयुबंध के स्थानों में देना । वहां एक का गुणकार, दो बार नौ का भागहार जानना । यहां भी एक बार दो बार की संदृष्टि नौ के आगे एक, दो के अंक जानने ।

पुनश्च नीलादि पांच, कपोतादि चार लेश्याओं के सर्व स्थान एक देवायु बंध के कारण ऐसे हैं $\frac{\equiv ə।८।८}{९।९।९।९।२}$, $\frac{\equiv ə।८।८}{९।९।९।९।३}$, । पुनश्च पीतादि तीन लेश्याओं के स्थान ऐसे हैं $\frac{\equiv ə।८।८}{९।९।९।९।४}$ उनको प्रतिभाग नौ का भाग देकर बहुभाग देवायुबंध के कारणभूत स्थानों में देना और एक भाग आयुअबंध स्थानों को देना । बहुभाग में आठ के एक भाग में एक का गुणकार, दो में एक बार नौ का भागहार उसको जानना। पुनश्च पद्मादि दो और शुक्ललेश्या के सर्वस्थान आयुबंध को कारण नहीं हैं।

पुनश्च जीवों की संख्या में नारकियों के लोभादिक का और देवों के क्रोधादिक का काल एक अंतर्मुहूर्त २७।१ से लेकर क्रम से संख्यातगुणा है । सो संख्यात की संदृष्टि

चार का अंक करनेपर ऐसा

	क्रोध	मान	माया	लोभ
नारककाल	२ॄ।६४	२ॄ।१६	२ॄ।४	२ॄ।१
देवकाल	२ॄ।१	२ॄ।४	२ॄ।१६	२ॄ।६४

होता है । इनका जोड़ देनेपर ऐसा हुआ **२ॄ।८५** । सो इसको प्रमाणराशि करनेपर तथा नारकियों का और देवों का सामान्य प्रमाण ऐसा नारक **–२** [जगत्‌श्रेणी X घनांगुल का द्वितीय वर्गमूल], देव **= १ ॥ १ ॄ/१ ४।६५ =** उसको फलराशि करनेपर और अपने अपने कषायकाल को इच्छाराशि करके वहां फल को इच्छा से गुणा करके प्रमाण का भाग देकर अंतर्मुहूर्त का अपवर्तन करनेपर क्रोधी आदि नारकियों का और देवों का प्रमाण ऐसा आता है।

नाम	क्रोधी	मानी	मायावी	लोभी
नारकी	–२।६४ ८५	–२।१६ ८५	–२।४ ८५	–२।१ ८५
देव	॥ १ ॄ/१ = १ ४।६५ =।८५	॥ १ ॄ/१ = ४ ४।६५ =।८५	॥ १ ॄ/१ = १६ ४।६५ =।८५	॥ १ ॄ/१ = ६४ ४।६५ =।८५

इन्द्रियमार्गणा अधिकार में त्रसराशि में द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीवों का प्रमाण लाने को समानभाग, देयभाग करने का विधान कहा था, उसी प्रकार मनुष्य-तिर्यंचों की सामान्यराशि ऐसी मनुष्य **१⌒/१।३** [जगत्‌श्रेणी को सूच्यंगुल के प्रथम और तृतीय वर्गमूल का भाग देकर उसमें से एक कम करना], तिर्यंच **१३–**। उसमें आवली के असंख्यातवें भागमात्र प्रतिभाग की संदृष्टि नौ का अंक, उसके द्वारा लोभी, मायावी, क्रोधी, मानी के प्रमाण में निम्नप्रकार समानभाग और देयभाग जानने ।

नाम	लोभी	मायावी	क्रोधी	मानी
मनुष्य समानभाग	१⌓ ८ १।३।९।४	१⌓ ८ १।३।९।४	१⌓ ८ १।३।९।४	१⌓ ८ १।३।९।४
देयभाग	१⌓ ८ १।३।९।९	१⌓ ८ १।३।९।९।९	१⌓ ८ १।३।९।९।९।९	१⌓ १ १।३।९।९।९।९
तिर्यंच समानभाग	१३–।८ ९।४	१३–।८ ९।४	१३–।८ ९।४	१३–।८ ९।४
देयभाग	१३–।८ ९।९	१३–।८ ९।९।९	१३–।८ ९।९।९।९	१३–।१ ९।९।९।९

पुनश्च वहींपर जैसे विधान कहा है वैसे यहां समच्छेद विधान द्वारा समभाग और देयभाग मिलानेपर लोभी आदि जीवों का प्रमाण ऐसा है –

[**विशेषार्थ** - देयराशि के छेद में मानी में ९ चार बार आया है और समराशि के छेद में ९।४ है इसलिये चार से भी गुणा करके जहां जितनी संख्या कम हो वहां उससे समच्छेद करना । ९X९X९X९X४=६५६१X४=४।६५६१

लोभी मनुष्य	समान		देय
	१⌓ ८ १।३।९।४	+	१⌓ ८ १।३।९।९
समच्छेद करनेपर	१⌓ ८।९।९।९ १।३।९।४।९।९।९	+	१⌓ ८।९।९।४ १।३।९।९।९।९।४
	१⌓ ५८३२ १।३।४।६५६१	+	१⌓ २५९२ १।३।४।६५६१
⟶	१⌓ ८४२४ १।३।४।६५६१		

इसी प्रकार अन्य भी जोड़ देना ।]

नाम	लोभी	मायावी	क्रोधी	मानी
मनुष्य	१⌓ ८४२४ १।३।४।६५६१	१⌓ ६१२० १।३।४।६५६१	१⌓ ५८६४ १।३।४।६५६१	१⌓ ५८३६ १।३।४।६५६१
तिर्यंच	१३–।८४२४ ४।६५६१	१३–।६१२० ४।६५६१	१३–।५८६४ ४।६५६१	१३–।५८३६ ४।६५६१

अथवा मनुष्य तिर्यंच में काल की अपेक्षा से भी वैसे ही अंतर्मुहूर्त मात्र कषायों के काल में समानभाग, देयभाग स्थापित करके समच्छेद करके मिलानेपर ऐसे होते हैं–

नाम	लोभकाल	मायाकाल	क्रोधकाल	मानकाल
समभाग	२ॄ।८ ९।४	२ॄ।८ ९।४	२ॄ।८ ९।४	२ॄ।८ ९।४
देयभाग	२ॄ।८ ९।९	२ॄ।८ ९।९।९	२ॄ।८ ९।९।९।९	२ॄ।१ ९।९।९।९
समच्छेद करके मिलाया हुआ काल	२ॄ।८४२४ ४।६५६१	२ॄ।६१२० ४।६५६१	२ॄ।५८६४ ४।६५६१	२ॄ।५८३६ ४।६५६१

यहां अंतर्मुहूर्त ऐसा २ॄ उसको प्रमाणराशि करना, मनुष्य और तिर्यंच राशि को फलराशि करना और समच्छेद करके मिलाये हुये काल को इच्छाराशि करनेपर भी लोभी आदि मनुष्यों का और तिर्यंचों का उतना ही प्रमाण आता है । मनुष्यराशि और तिर्यंचराशि को संदृष्टि अपेक्षा क्रम से चौरासी सौ चौबीस, इकसठ सौ बीस, अट्ठावन सौ चौंसठ, अट्ठावन सौ छत्तीस से गुणा करके चार गुणा पैंसठ सौ इकसठ का सर्वत्र भाग देनेपर लोभी, मायावी, क्रोधी, मानी का प्रमाण आता है, ऐसा अर्थ जानना ।

आगे **ज्ञानमार्गणा अधिकार** में संदृष्टि कहते हैं – वहां पर्यायसमास श्रुतज्ञान में षट्स्थानपतित वृध्दि का कथन है । वहां अनंतभागादिक की संदृष्टि ऐसी जाननी–

नाम	अनंतभाग	असंख्यातभाग	संख्यातभाग	संख्यातगुणा	असंख्यातगुणा	अनंतगुणा
सामान्यअनंत आदि की संदृष्टि	ख	a	ॄ	ॄ	a	ख
विशेष जीवराशि आदि की संदृष्टि	१६	≡a	१५	१५	≡a	१६
अनंतभागादि की लघुसंदृष्टि	उ	४	५	६	७	८

यहां प्रथम पंक्ति में अनंत की ऐसी **ख**, असंख्यात की ऐसी **a**, संख्यात की ऐसी **ॄ** और दूसरी पंक्ति में जीवराशि की ऐसी **१६**, असंख्यात लोक की ऐसी **≡a**,

उत्कृष्ट संख्यात की ऐसी **१५** और तीसरी पंक्ति में अनंतभागादिक की ऊर्वंकादि संदृष्टि जाननी । पुनश्च अनंतभागवृध्दि आदि में ऊर्वंकादि की संदृष्टि लिखते हैं और सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग बार पूर्व वृध्दि होनेपर एक बार अपर वृध्दि होती है, सो सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग की संदृष्टि दो बार लिखना है, ऐसा करनेपर निम्नप्रकार यंत्र होता है –

$\overset{२}{ə}१$	$\overset{२२}{əə}$	$\overset{२}{ə}१$	$\overset{२}{ə}१$	$\overset{२२}{əə}$	$\overset{२२}{əə}$	$\overset{२}{ə}१$	$\overset{२२}{əə}$	$\overset{२}{ə}१$	
उउ४	उउ४	उउ५	उउ४	उउ४	उउ५	उउ४	उउ४	उउ६	१
उउ४	उउ४	उउ५	उउ४	उउ४	उउ५	उउ४	उउ४	उउ६	$\overset{२}{ə}$
उउ४	उउ४	उउ५	उउ४	उउ४	उउ५	उउ४	उउ४	उउ७	१
उउ४	उउ४	उउ५	उउ४	उउ४	उउ५	उउ४	उउ४	उउ६	१
उउ४	उउ४	उउ५	उउ४	उउ४	उउ५	उउ४	उउ४	उउ६	$\overset{२}{ə}$
उउ४	उउ४	उउ५	उउ४	उउ४	उउ५	उउ४	उउ४	उउ७	$\overset{२}{ə}$
उउ४	उउ४	उउ५	उउ४	उउ४	उउ५	उउ४	उउ४	उउ६	१
उउ४	उउ४	उउ५	उउ४	उउ४	उउ५	उउ४	उउ४	उउ६	$\overset{२}{ə}$
उउ४	उउ४	उउ५	उउ४	उउ४	उउ५	उउ४	उउ४	उउ८	१

सो इस यंत्र के अर्थ का विशेष स्वरूप टीका से जानना । इस यंत्र के ऊपर जहां ऐसा लिखा है $\overset{२}{ə}१$ वहा एक सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग बार विवक्षित वृध्दि हुयी जाननी और जहां ऐसा $\overset{२२}{əə}$ लिखा है वहां सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागमात्र सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग बार वृध्दि जाननी । पुनश्च आड़ी पंक्ति में जहां छह आदि के अंक के आगे एक का अंक लिखा है, वहां संख्यातगुणवृध्दि आदि एक बार हुयी जाननी । जहां ऐसा $\overset{२}{ə}$ लिखा हो वहां सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागमात्र बार वह वृध्दि हुयी जाननी । इस वृध्दि के अनुक्रम में पर्यायनामक जघन्य ज्ञान की संदृष्टि ऐसी **ज** । इसको जीवराशिमात्र अनंत का भाग देकर जो एक भाग आता है उसको समच्छेद करके जोड़नेपर अनंतभागवृध्दि का प्रथम स्थान ऐसा होता है $\frac{ज१\overset{१}{\overline{६}}}{१६}$ । यहां

जीवराशि का भाग और एक अधिक जीवराशि का गुणकार जानना । ऐसे ही इसको जीवराशि का भाग देकर एक भाग मिलानेपर दूसरा भेद ऐसा होता है $\frac{\text{ज}\ \frac{१}{१६}\ \frac{१}{१६}}{१६\ \ १६}$ । ऐसे ही सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागमात्र बार होनेपर अनंतभागवृध्दि का अंतिम स्थान होता है । वहां जघन्य को जीवराशिमात्र अनंत का भाग एक, दो, तीन, चार, पांच, छह बार क्रम से देनेपर प्रक्षेपक, प्रक्षेपकप्रक्षेपक, पिशुलि, पिशुलिपिशुलि, चूर्णि और चूर्णिचूर्णि ऐसे होते हैं –

प्रक्षेपक	प्रक्षेपकप्रक्षेपक	पिशुलि	पिशुलिपिशुलि	चूर्णि	चूर्णिचूर्णि
$\frac{\text{ज}}{१६}$	$\frac{\text{ज}}{१६।१६}$	$\frac{\text{ज}}{१६।१६।१६}$	$\frac{\text{ज}}{१६।१६।१६।१६}$	$\frac{\text{ज}}{१६।१६।१६।१६।१६}$	$\frac{\text{ज}}{१६।१६।१६।१६।१६।१६}$

इसी क्रम से जघन्य को एक कम सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग बार जीवराशि का भाग देनेपर द्विचरम चूर्णिचूर्णि होती हैं, सो ऐसी $\frac{\text{ज}}{१६ । \frac{१\frown}{२_{ə}}}$ और जघन्य को सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग बार जीवराशि का भाग देनेपर चरम चूर्णिचूर्णि होती है सो ऐसी $\frac{\text{ज}}{१६ । २_{ə}}$ । यहां ऐसा जानना –

जघन्य और एक प्रक्षेपक जोड़नेपर अनंतभागवृध्दि का प्रथम स्थान होता है । जघन्य, दो प्रक्षेपक और एक प्रक्षेपकप्रक्षेपक जोड़नेपर दूसरा स्थान होता है । जघन्य, तीन प्रक्षेपक, तीन प्रक्षेपकप्रक्षेपक, एक पिशुलि और जोड़नेपर तीसरा स्थान होता है। जघन्य, चार प्रक्षेपक, छह प्रक्षेपकप्रक्षेपक, चार पिशुलि, एक पिशुलिपिशुलि जोड़नेपर चौथा स्थान होता है । जघन्य, पांच प्रक्षेपक, दस प्रक्षेपकप्रक्षेपक, दस पिशुलि, पांच पिशुलिपिशुलि और एक चूर्णि जोड़नेपर पांचवां स्थान होता है । जघन्य, छह प्रक्षेपक, पंद्रह प्रक्षेपकप्रक्षेपक, बीस पिशुलि, पंद्रह पिशुलिपिशुलि, छह चूर्णि और एक चूर्णिचूर्णि जोड़नेपर छठवां स्थान होता है । मध्य स्थानों की संदृष्टि बिंदी जाननी । अंतिम स्थान में जघन्य और गच्छ यहां सूच्यंगुल का असंख्यातवां भागमात्र ऐसा $२_{ə}$ सो गच्छप्रमाण तो प्रक्षेपक और संकलनधन लाने के करणसूत्र के अभिप्राय से एक कम गच्छ को दो का भाग और सम्पूर्ण गच्छ को एक का भाग ऐसा $\frac{२_{ə} - १}{२} \Big| \frac{२_{ə}}{१}$

यहां कम की संदृष्टि मूलराशि के आगे ऐसी – करके ऋण का लिखना जानना । इनको परस्पर गुणा करके लब्धप्रमाण प्रक्षेपकप्रक्षेपक; दो कम गच्छ, एक कम गच्छ, सम्पूर्ण गच्छ को क्रम से तीन, दो, एक का भाग देकर उनको परस्पर गुणा करनेपर $\frac{२-२}{ə\;\;३}\Big|\frac{२-१}{ə\;\;२}\Big|\frac{२}{ə\;१}$ इतने लब्धप्रमाण पिशुलि; तीन कम गच्छ, दो कम गच्छ, एक कम गच्छ, सम्पूर्ण गच्छ को क्रम से चार, तीन, दो, एक का भाग देकर परस्पर गुणा करनेपर $\frac{२-३}{ə\;\;४}\Big|\frac{२-२}{ə\;\;३}\Big|\frac{२-१}{ə\;\;२}\Big|\frac{२}{ə\;१}$ लब्धप्रमाण पिशुलिपिशुलि; चार कम गच्छ, तीन कम गच्छ, दो कम गच्छ, एक कम गच्छ, सम्पूर्ण गच्छ को क्रम से पांच, चार, तीन, दो, एक का भाग देकर परस्पर गुणा करनेपर $\frac{२-४}{ə\;\;५}\Big|\frac{२-३}{ə\;\;४}\Big|\frac{२-२}{ə\;\;३}\Big|\frac{२-१}{ə\;\;२}\Big|\frac{२}{ə\;१}$ लब्धप्रमाण चूर्णि; और पांच कम गच्छ, चार कम गच्छ, तीन कम गच्छ, दो कम गच्छ, एक कम गच्छ, सम्पूर्ण गच्छ को क्रम से छह, पांच, चार, तीन, दो, एक का भाग देकर परस्पर गुणा करनेपर $\frac{२-५}{ə\;\;६}\Big|\frac{२-४}{ə\;\;५}\Big|\frac{२-३}{ə\;\;४}\Big|\frac{२-२}{ə\;\;३}\Big|\frac{२-१}{ə\;\;२}\Big|\frac{२}{ə\;१}$ लब्धप्रमाण चूर्णिचूर्णि और इसी क्रम से द्वितीय चूर्णिचूर्णि जानकर दो से लेकर एक एक अधिक सम्पूर्ण गच्छ पर्यंत को एक कम सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग से लेकर एक एक कम पर्यंत का भाग देकर

ज	२	३	४	मध्य				
$१६\,\frac{१^{\frown}}{\frac{२}{ə}}$	$\frac{१^{\frown}}{\frac{२}{ə}}$	$\frac{२^{\frown}}{\frac{२}{ə}}$	$\frac{३^{\frown}}{\frac{२}{ə}}$	०००	$\frac{२-३}{ə\;\;४}$	$\frac{२-२}{ə\;\;३}$	$\frac{२-१}{ə\;\;२}$	$\frac{२}{ə\;१}$

इनमें गुणकार भागहार समान देखकर अपवर्तन करनेपर द्विचरम चूर्णिचूर्णि गच्छप्रमाण $\overset{ज}{१६}\Big|\frac{१^{\frown}}{\frac{२}{ə}}$ होता है और अंतिम चूर्णिचूर्णि एक होती है $\overset{ज}{१६}\Big|\frac{२}{ə}$ इन सब को जोड़नेपर अंतिमस्थान होता है । ऐसे अनंतभागवृध्दि के स्थान होनेपर साधिक जघन्यज्ञान हुआ उसकी संदृष्टि ऐसी $\overset{।}{ज}$ यहां अधिक की संदृष्टि ऊपर ऐसी । जाननी । इसको असंख्यातलोक मात्र असंख्यात का भाग देकर एक भाग जोड़नेपर असंख्यातभागवृध्दि का प्रथमस्थान ऐसा $\frac{\overset{।}{ज}}{\equiv ə}\,\frac{१}{\equiv ə}$, पुनश्च सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागमात्र अनंतभागवृध्दि के स्थान बीच में

होनेपर असंख्यातभागवृध्दि का द्वितीय स्थान ऐसा $\overset{|}{ज}\,\frac{१}{\underset{\equiv ə}{\equiv ə}}\,\frac{१}{\underset{\equiv ə}{\equiv ə}}$ होता है । ऐसे असंख्यातभागवृध्दि के स्थान सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागमात्र बार होनेपर वह साधिक जघन्य $\overset{|}{ज}$ हुआ। उसको उत्कृष्ट संख्यात का भाग देकर एक भाग उसमें जोड़नेपर संख्यातभागवृध्दि का प्रथम स्थान ऐसा $\overset{|}{\underset{१५}{ज}}\,\frac{१}{१५}$ । इसीप्रकार कांडक का प्रमाण सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागमात्र।

सो अनंतभागवृध्दि असंख्यातभागवृध्दि युक्त स्थान कांडकप्रमाण हुये । पुनश्च अनंतभागवृध्दियुक्त स्थान कांडकमात्र होनेपर एक एक संख्यातभागवृध्दियुक्त स्थान होते हैं । ऐसे ही क्रम से कांडकप्रमाण होनेपर एक एक संख्यातगुणवृध्दियुक्त स्थान होते हैं । पुनश्च ऐसे ही क्रम से कांडकप्रमाण संख्यातगुणवृध्दियुक्त स्थान होनेपर और अनंतभागवृध्दियुक्त स्थान कांडकप्रमाण होनेपर एक एक असंख्यातगुणवृध्दियुक्त स्थान होते हैं । पुनश्च इसी क्रम से कांडकप्रमाण असंख्यातगुणवृध्दियुक्त स्थान होनेपर और कांडकप्रमाण अनंतभागवृध्दियुक्त स्थान होनेपर एक अनंतगुणवृध्दियुक्त स्थान होता है, ऐसा जानना । इन वृध्दियों के प्रमाण को मिलानेपर अंकसंदृष्टि और अर्थसंदृष्टि द्वारा ऐसे होता है –

अंक संदृष्टि

८	१
७	२
६	२।३
५	२।३।३
४	२।३।३।३
उ	२।३।३।३।३
जोड़	३।३।३।३।३

अर्थ संदृष्टि

१६	१
$\equiv ə$	$\underset{ə}{२}$
१५	$\underset{ə}{२}\,\underset{ə}{\frac{१}{२}}$
१५	$\underset{ə}{२}\,\underset{ə}{\frac{१}{२}}\,\underset{ə}{\frac{१}{२}}$
$\equiv ə$	$\underset{ə}{२}\,\underset{ə}{\frac{१}{२}}\,\underset{ə}{\frac{१}{२}}\,\underset{ə}{\frac{१}{२}}$
१६	$\underset{ə}{२}\,\underset{ə}{\frac{१}{२}}\,\underset{ə}{\frac{१}{२}}\,\underset{ə}{\frac{१}{२}}\,\underset{ə}{\frac{१}{२}}$
जोड़	$\underset{ə}{\frac{१}{२}}\,\underset{ə}{\frac{१}{२}}\,\underset{ə}{\frac{१}{२}}\,\underset{ə}{\frac{१}{२}}\,\underset{ə}{\frac{१}{२}}$

यहां अंकसंदृष्टि में अष्टांक अर्थात अनंतगुणवृध्दि एक बार है, सप्तांक अर्थात् असंख्यातगुणवृध्दि सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागमात्र बार होती हैं । सो यहां सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग की संदृष्टि दो का अंक जानना । इसको कांडक कहते हैं । दोनों को मिलानेपर एक अधिक कांडक का प्रमाण तीन हुआ ।

पुनश्च षष्ठांक अर्थात् संख्यातगुणवृध्दि वह एक अधिक कांडक से गुणित कांडक प्रमाण होती हैं २।३ यहां इसको और पूर्व वृध्दि को जोड़नेपर एक अधिक कांडक को एक अधिक कांडक से गुणा करे इतने होते हैं । ऐसे ही ऊर्वक तक जानना। सो सर्व वृध्दियों को जोड़नेपर एक अधिक कांडक को पांच बार मांडकर परस्पर गुणा करनेपर जितना हो, उतना प्रमाण होता है । ऐसे ही अर्थसंदृष्टि में जानना। यहां अनंतादि की संदृष्टि जीवराशि आदि जाननी । और सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागमात्र कांडक की संदृष्टि ऐसी २_{a} जाननी । उसमें एक अधिक की संदृष्टि ऐसी $\frac{१}{२_{a}}$ जाननी ।

पुनश्च साधिक जघन्यज्ञान जहां जहां दोगुणा होता है, उसको जानने के लिये ऐसा यंत्र होता है –

जघन्य	। ज	। ज	। ज	। ज
प्रक्षेपक	। ज १५ १५	। ज १५।३ १५ ४	। ज १५।४१ १५ ५६	। ज १५।७ १५ १०
	प्रक्षेपक प्रक्षेपक	। १∩ ज १५।३।१५।३ १५।१५।४।२।४।१	। १∩ ज।१५।४१।१५।४१ १५।१५।५६।२।५६।१	। १∩ ज १५।७।१५।७ १५।१५।१०।२।१०।१
			पिशुलि	। २∩ १∩ ज १५।७ ।१५।७।१५।७ १५।१५।१५।१०।३।१०।२ । १०।१

यहां संख्यातभागवृध्दियुक्त स्थानों में साधिक जघन्य को एक बार, दो बार, तीन बार उत्कृष्ट संख्यात का भाग देनेपर प्रक्षेपक, प्रक्षेपकप्रक्षेपक और पिशुलि ऐसे होते हैं –

प्रक्षेपक $\frac{ज}{१५}$, प्रक्षेपकप्रक्षेपक $\frac{ज}{१५।१५}$, पिशुलि $\frac{ज}{१५।१५।१५}$

सो संख्यातभागवृध्दि के उत्कृष्ट संख्यात प्रमाण स्थान होनेपर वहां गच्छ का प्रमाण उत्कृष्ट संख्यात मात्र ऐसा १५, सो इतने प्रक्षेपक ऐसे $\frac{\text{ज।१५}}{\text{१५}}$ अपवर्तन करनेपर साधिक जघन्य ज हुआ। इसको साधिक जघन्य में जोड़नेपर साधिक जघन्य दोगुणा होता है।

पुनश्च उसीके उत्कृष्ट संख्यात के तीन चतुर्थांश (तीन चौथाई) भाग प्रमाण स्थान होनेपर वहां गच्छ का प्रमाण उत्कृष्ट संख्यात के तीन चतुर्थांश भाग प्रमाण ऐसा $\frac{\text{१५।३}}{\text{४}}$ सो इतने तो प्रक्षेपक $\frac{\text{ज१५।३}}{\text{१५।४}}$ और संकलनसूत्र के अभिप्राय से एक कम गच्छ और सम्पूर्ण गच्छ को दो, एक का भाग देकर परस्पर गुणा करनेपर $\frac{\overline{\text{१⌒}}\;\text{१५।३}}{\text{४।२}}\;\frac{\text{।१५।३}}{\text{४।१}}$ जो हो उतने प्रक्षेपकप्रक्षेपक ऐसे $\frac{\text{ज}}{\text{१५।१५।}}\;\frac{\overline{\text{१⌒}}\;\text{।१५।३}}{\text{४।२।}}\;\frac{\text{।१५।३}}{\text{४।१}}$ इनको साधिक जघन्य में जोड़नेपर साधिक जघन्य दोगुणा होता है। कैसे ? प्रक्षेपकप्रक्षेपक का ऋण ऐसा $\frac{\text{ज१।३}}{\text{१५।३२}}$ इसको जुदा रखकर अवशेष का अपवर्तन करनेपर ऐसा $\frac{\text{ज९}}{\text{३२}}$ यहां एक को जुदा रखकर अवशेष ऐसा $\frac{\text{ज८}}{\text{३२}}$ अपवर्तन करनेपर ऐसा $\frac{\text{ज१}}{\text{४}}$ इसको प्रक्षेपक वृध्दि अपवर्तन किया हुआ ऐसा $\frac{\text{ज३}}{\text{४}}$ उसमें मिलाकर अपवर्तन करनेपर साधिक जघन्य हुआ। पुनश्च जुदा रखा हुआ एक रूप का धन ऐसा $\frac{\text{ज१}}{\text{३२}}$ उसमें से ऋण ऐसा $\frac{\text{ज ३}}{\text{१५।३२}}$ घटाने के लिये किंचित् कम करके साधिक जघन्य में जोड़नेपर जो साधिक जघन्य हुआ उसको मूल साधिक जघन्य में जोड़नेपर साधिक जघन्य दोगुणा होता है।

पुनश्च उसीके उत्कृष्ट संख्यात के इकतालीस छप्पनांश भागप्रमाण स्थान होनेपर साधिक जघन्य दोगुणा होता है। वहां उसप्रमाण मात्र गच्छ ऐसा $\frac{\text{१५।४१}}{\text{५६}}$ वहां गच्छमात्र

प्रक्षेपक ऐसे (ज।१५।४१ / १५।५६), तथा एक कम गच्छ को और सम्पूर्ण गच्छ को दो, एक का भाग देकर (१०⌒ १५।४१ / ५६।२) (।१५।४१ / ५६।१) परस्पर गुणा करनेपर जो हो उतने प्रक्षेपकप्रक्षेपक ऐसे (ज / १५।१५) । (१०⌒ ।१५।४१ / ५६।२) (।१५।४१ / ५६।१) इनको [प्रक्षेपक और प्रक्षेपकप्रक्षेपक को] मूल साधिक जघन्य में जोड़नेपर साधिक जघन्य दोगुणा होता है । कैसे? - यहां प्रक्षेपक-प्रक्षेपक राशि में ऋण ऐसा (ज४१ / १५।५६।२।५६) अर्थात् (ज४१ / १५।११२।५६) अवशेष अपवर्तन किया हुआ ऐसा (ज४१।४१ / ५६।२।५६) अर्थात् (ज १६८१ / ११२।५६) । इसमें से एकरूप धन [१६८१ में से १६८०+ १ जुदा करना] ऐसा (ज १ / ११२।५६) और अवशेष ऐसा (ज १६८० / ११२।५६) अपवर्तन करनेपर ऐसा (ज।१५ / ५६) इसमें प्रक्षेपकराशि ऐसी (ज।४१ / ५६) जोड़नेपर साधिक जघन्य हुआ। पुनश्च जुदा रखा धन ऐसा (ज।१ / ११२।५६) उसमें से जुदा रखा हुआ ऋण घटाने के लिये किंचित् कम करके उसको साधिक जघन्य में जोड़नेपर जो साधिक जघन्य हुआ, उसको मूल साधिक जघन्य में जोड़नेपर साधिक जघन्य दोगुणा होता है ।

पुनश्च उसीके उत्कृष्ट संख्यात के सात दशांश भागमात्र स्थान होनेपर वहां प्रक्षेपक, प्रक्षेपकप्रक्षपक, पिशुलि जोड़नेपर साधिक जघन्य दोगुणा होता है । वहां उस प्रमाणमात्र गच्छ ऐसा (१५।७ / १०) । गच्छमात्र प्रक्षेपक ऐसे (ज १५।७ / १५ १०) अर्थात् (ज ७ / १०) । एक कम गच्छ और सम्पूर्ण गच्छ को दो, एक का भाग देनेपर उतने मात्र प्रक्षेपक-प्रक्षेपक ऐसे (ज / १५।१५) । (१०⌒ ।१५।७ / १०।२) (।१५।७ / १०।१) होते हैं तथा दो कम गच्छ, एक कम गच्छ, सम्पूर्ण गच्छ को तीन, दो, एक का भाग देनेपर उतने मात्र पिशुलि ऐसे

होते हैं $\frac{\text{ज}}{\text{१५|१५|१५}} \; \frac{\frac{\text{२∩}}{\text{१५|७}}}{\text{१०|३}} \Big| \frac{\frac{\text{१∩}}{\text{१५|७}}}{\text{१०|२}} \Big| \frac{\text{१५|७}}{\text{१०|१}}$ इन सभी को जोड़कर साधिक जघन्य में जोड़नेपर साधिक दोगुणा होता है । कैसे ? पिशुलि का प्रथम ऋण ऐसा $\frac{\text{ज|२|}\frac{\text{१∩}}{\text{१५|७}}\text{|१५|७}}{\text{१५|१५|१५|६|१०|१०|१०}}$ जुदा स्थापित करके अवशेष अपवर्तन करनेपर ऐसा होता है $\frac{\text{ज|}\frac{\text{१∩}}{\text{१५|७}}\text{|४९}}{\text{१५|१०|६००}}$ यहां ऋण ऐसा $\frac{\text{ज १|४९}}{\text{१५|६०००}}$ जुदा स्थापितकर अवशेष अपवर्तन करनेपर ऐसा $\frac{\text{ज ३४३}}{\text{६०००}}$ इसमें तेरह रूप ऐसे $\frac{\text{ज १३}}{\text{६०००}}$ जुदे रखकर अवशेष ऐसे $\frac{\text{ज ३३०}}{\text{६०००}}$ अपवर्तन करनेपर ऐसा $\frac{\text{ज ११}}{\text{२०|१०}}$ इनको एक जगह स्थापना । पुनश्च जुदी रखी हुयी धनराशि ऐसी $\frac{\text{ज १३}}{\text{६०००}}$ उसमें से पहला, दूसरा ऋण घटाने के लिये किंचित् कम करके इसको जुदा स्थापना । पुनश्च प्रक्षेपकप्रक्षेपक राशि ऐसी $\frac{\text{ज|}\frac{\text{१∩}}{\text{१५|७}}\text{|७}}{\text{१५|२|१०|१०}}$ उसमें ऋणराशि ऐसी $\frac{\text{ज १|७}}{\text{१५|२००}}$ जुदा स्थापित कर अवशेष ऐसा $\frac{\text{ज१५|७|७}}{\text{१५|२००}}$ अपवर्तन करनेपर ऐसा $\frac{\text{ज ४९}}{\text{२००}}$ उसमें पूर्वोक्त पिशुलिधन ऐसा $\frac{\text{ज ११}}{\text{२००}}$ मिलानेपर ऐसा $\frac{\text{ज ६०}}{\text{२००}}$, अपवर्तन करनेपर ऐसा $\frac{\text{ज ३}}{\text{१०}}$ इसमें प्रक्षेपक का धन ऐसा $\frac{\text{ज ७}}{\text{१०}}$ जोड़नेपर साधिक जघन्य होता है । पुनश्च पिशुलि का धन ऐसा $\frac{\text{ज १३}}{\text{६०००}}$ उसमें से प्रक्षेपकप्रक्षेपक के ऋण को घटाने के लिये किंचित् कम करके उसको उस साधिक जघन्य में जोड़नेपर जो साधिक जघन्य हुआ, उसको मूल साधिक जघन्य में जोड़नेपर साधिक जघन्य दोगुणा होता है ऐसा जानना ।

एक अधिक सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग के वर्ग के घनप्रमाण स्थानों में एक

बार षट्स्थान होता है तो असंख्यात लोकमात्र अनक्षर श्रुतज्ञान के सर्व स्थानों में कितनी बार होगा ? ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्र $\frac{१}{२}$ə । $\frac{१}{२}$ə । $\frac{१}{२}$ə । $\frac{१}{२}$ə । $\frac{१}{२}$ə, फ १, इ ≡ə, लब्धराशि ऐसी ≡ə सो इतनी बार होता है ।

$\frac{१}{२}$ə । $\frac{१}{२}$ə । $\frac{१}{२}$ə । $\frac{१}{२}$ə । $\frac{१}{२}$ə

पुनश्च अक्षर श्रुतज्ञान ऐसा $\frac{के \; १⌢}{१८=}$ यहां श्रुतकेवल की संदृष्टि ऐसी **के** उसको एक कम एकट्ठी का भाग जानना । एक एक अक्षर की वृध्दि होनेपर अक्षरसमास के भेद होते हैं । इतने **१६३४८३०७८८८** अक्षर होनेपर पद होता है उसकी संदृष्टि ऐसी **प**। पुनश्च इसके ऊपर एक एक अक्षर की वृध्दियुक्त पदसमास के भेद ऐसे –

प $\frac{१}{प}$ $\frac{२}{प}$ ० ० प२ $\frac{१}{प२}$ $\frac{२}{प२}$ ० ० प३ $\frac{१}{प३}$ $\frac{२}{प३}$ ० ० ० $\frac{१}{प१०००⌢ᶉ}$
१६= १६= १६=

यहां पद और एक, दो अक्षर अधिक पद, मध्य भेद (बिंदी), दो गुणा पद [प२], एक दो अक्षर अधिक दो गुणा पद, मध्य भेद, तीनगुणा पद, एक अधिक तीनगुणा पद, मध्यभेद, एक घाटि संख्यात हजार पद की संदृष्टि क्रम से जाननी । यहां ऐसी **१६=** संदृष्टि है । वह पद के एक छह अंकादिरूप अक्षरों के प्रमाण की संदृष्टि जाननी ।

पुनश्च संख्यात हजार पदमात्र संघात श्रुतज्ञान ऐसा **१६=१०००ᶉ** ऐसे ही अन्य भेद जानने । पुनश्च शास्त्रस्वरूप श्रुतज्ञान के भेदों में –

यहां नीचे मतिज्ञान के भेद, उसके ऊपर श्रुतज्ञान के भेद, उसके ऊपर श्रुतअक्षरों का प्रमाण, उसके ऊपर पद के अक्षरों का प्रमाण, उसके ऊपर सर्व अंगों के पंदों का प्रमाण, उसके ऊपर ग्यारह अंगों के पदों का प्रमाण, उसके ऊपर बीच में आचारांग आदि अंगों के पदों का प्रमाण, ऊपर एक कोष्ठ में प्रथमानुयोग और सूत्र के पदों का प्रमाण, ऊपर पूर्वगत चूलिका के पदों का प्रमाण, यहां से ऊपर से लेकर एक पार्श्व में परिकर्म के और उसके पांच भेदों के पदों का प्रमाण और दूसरे पार्श्व में चूलिका और उसके पांच भेदों के पदों का प्रमाण, पुनश्च वहां से ऊपर बीच में उत्पाद आदि

चौदह पूर्वों के नाम, नाम के पार्श्व में उसके पदों का प्रमाण और वहां से ऊपर अवधि के तीन भेदों के नाम, उसके ऊपर मन:पर्यय के भेदों के नाम, उसके ऊपर केवलज्ञान का नाम और ध्वजा में सामायिक आदि प्रकीर्णकों के नाम और वहां ही उन सबके अक्षरों का प्रमाण लिखा है, सो जानना ।

पुनश्च अवधिज्ञान के कथन में जघन्य देशावधि का विषयभूत द्रव्य लोक से भाजित मध्यम योगों द्वारा उपार्जित औदारिक संचयमात्र ऐसा **स ७ १२ ≡ – १६ख** (ऊपर १) यहां किंचित् कम डेढ़ गुणहानि गुणित औदारिक समयप्रबध्द ऐसा **स ७ १२ –** इसको अनंतगुणा जीवराशि मात्र एक एक परमाणु संबंधी विस्रसोपचय ऐसा **१६ख** उससे गुणा करनेपर ऐसा **स ७ १२ – १६ख** इसमें मूल औदारिक का संचयद्रव्य ऐसा **स ७ १२ –** मिलाने के लिये आगे का गुणकार ऐसा **१६ख** उसके ऊपर एक अधिक की संदृष्टि जाननी । और उसके नीचे लोक का भाग देने की ऐसी ≡ संदृष्टि जाननी ।

पुनश्च जघन्य देशावधि का विषयभूत क्षेत्र जघन्य अवगाहनामात्र ऐसा होता है-

६　८/७　२२　　१
प/७ । १९ । ८/७ । ९ । ८/७ । २२ । ९ृ । ९

यहां जीवसमास अधिकार में सूक्ष्म निगोद लब्धिअपर्याप्त की जघन्य अवगाहना में जो संदृष्टि थी, वही जाननी । पुनश्च इस जघन्य क्षेत्र में क्षेत्रखंडन विधान से भुज, कोटि, वेध इनका प्रमाण सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागमात्र ऐसे हैं

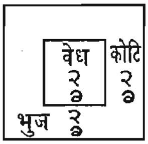

। इनको परस्पर गुणा करनेपर घनांगुल का असंख्यातवां भागमात्र ऐसा ६/७ क्षेत्र होता है।

पुनश्च जघन्य देशावधि का विषयभूत द्रव्य जिस क्षेत्र को रोकता है, सो क्षेत्र जघन्य देशावधिज्ञान के विषयभूत क्षेत्र से असंख्यात गुणा हीन ऐसा है

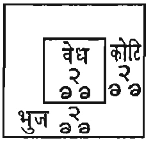

।

पुनश्च जघन्य देशावधि का विषयभूत काल घनावली के असंख्यातवें भागमात्र

ऐसा है ८/ə और उसही का विषयभूत भाव उस काल के असंख्यातवें भागमात्र ऐसा होता है ८/əə । पुनश्च द्वितीयादि अवधि भेदों के विषयभूत द्रव्य के प्रमाण लाने के लिये ध्रुवहार है उसकी संदृष्टि नौ का अंक ९ है । दो कम देशावधि के भेदप्रमाण ध्रुवहारों को परस्पर गुणा करनेपर जो कार्माणवर्गणा का गुणकार होता है वह ध्रुवहार से अनंतगुणा ऐसा है **९ख** उससे अनंतगुणी कार्माणवर्गणा ऐसी है **९खख**। कार्माणवर्गणा के गुणकार से कार्माणवर्गणा को गुणा करनेपर अवधि का विषयभूत समयप्रबध्द ऐसा **९खख।९ख** है ।

पुनश्च मनोवर्गणा का जघन्य ऐसा **ज**, जघन्य के अनंतवें भाग से अधिक उत्कृष्ट ऐसा **ज १/ख** (नीचे **ख**), उत्कृष्ट में से जघन्य घटाकर एक मिलानेपर ऐसा **१/ज/ख** सब भेदों का प्रमाण हुआ, उसके अनंतवें भागमात्र ध्रुवहार का प्रमाण ऐसा **१/ज/ख ख** जानना ।

पुनश्च वक्ष्यमाण देशावधि के द्रव्य अपेक्षा भेद ऐसे १/≡ −६।२ (नीचे प ə, ə) उसमें से दो घटानेपर ऐसे २ ∩/१/≡ −६।२ (नीचे प ə, ə) सो इतने ध्रुवहार ९ मांडी परस्पर गुणा करनेपर कार्माणवर्गणा का गुणकार होता है । अंकसंदृष्टि से जैसे तेरह जगह नौ मांडकर परस्पर गुणा करते हैं ९९९९९९९९९९९९९/१११११११११११११। उस गुणकार से वर्गणा को गुणा करनेपर जघन्य देशावधि का विषयभूत द्रव्य होता है क्योंकि देशावधि की द्रव्यरचना ऐसी है ।

व
९
व
व।९
व।९।९
व।९।९।९
व।९।९।९।९
०
०
०
२ ∩
१
व।९ ≡ −६।२
प ə
ə

यहां उत्कृष्ट देशावधि का विषयभूत द्रव्य वर्गणा को ध्रुवहार का भाग देनेपर ऐसा $\frac{व}{९}$, उससे पूर्वभेद का द्रव्य वर्गणामात्र ऐसा व, उससे नीचे नीचे के भेदों का प्रमाण वर्गणा को एक, दो, तीन, चार आदि बार ध्रुवहार से गुणा करनेपर आता है । वहां मध्य भेद होनेपर वर्गणा को दो कम देशावधि के भेदप्रमाण बार ध्रुवहार से गुणा करनेपर जघन्य देशावधि का विषयभूत द्रव्य होता है ऐसा जानना ।

पुनश्च देशावधि का विषयभूत जघन्य क्षेत्र घनांगुल को पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर ऐसा $\frac{६}{\underset{a}{प}}$ उत्कृष्ट क्षेत्र लोकमात्र ऐसा ≡, उत्कृष्ट में से जघन्य घटानेपर ऐसा $≡-\frac{६}{\underset{a}{प}}$ । यहां घटाने की संदृष्टि लोक के आगे ऐसी – जाननी । इसको सूच्यंगुल के असंख्यातवें भाग से गुणा करनेपर ऐसा $≡-\frac{६}{\underset{a}{प}}\underset{a}{२}$ इसमें एक मिलानेपर द्रव्य अपेक्षा देशावधि के भेदों का प्रमाण ऐसा $\overset{१}{≡}-\frac{६}{\underset{a}{प}}।\underset{a}{२}$ होता है।यहां जघन्य देशावधि का क्षेत्र ऐसा $\frac{६।\underset{a}{८}।२२ \quad १}{\underset{a}{प}।१९।\underset{a}{८}।९।\underset{a}{\overline{८}}।२२।ग्रृ।९}$ अपवर्तन करनेपर पल्य के असंख्यातवें भाग से भाजित घनांगुलमात्र ऐसा $\frac{६}{\underset{a}{प}}$ होता है। पुनश्च जीवसमास अधिकार में बताया है वैसे अग्निकायिक की जघन्य अवगाहना ऐसी $\frac{६।\underset{a}{८}।२२ \quad १}{\underset{a}{प}।१९।\underset{a}{८}।७।\underset{a}{\overline{८}}।२२।ग्रृ।९}$, उत्कृष्ट ऐसी $\frac{६।\underset{a}{८}।८ \quad १}{\underset{a}{प}।६।\underset{a}{\overline{८}}।८।ग्रृ।९}$ उत्कृष्ट में से जघन्य घटाकर अपवर्तन करनेपर ऐसा $\frac{६}{\underset{a}{प}}\frac{१८}{a}$ इसमें एक जोड़नेपर सर्व अग्निकायिकों के अवगाहना के विकल्प ऐसे $\frac{६}{\underset{a}{प}}\overset{१}{\overline{\frac{१८}{a}}}$ उससे अग्निकायिक राशि ऐसी होती

है ≡ ७ उसको गुणा करनेपर ऐसा ≡ ७।६ $\frac{१}{\frac{१८}{७}}$ / प / ७ प्रमाण हुआ । वही सर्व परमावधि के भेदों का प्रमाण जानना । इसमें दो मिलानेपर जो प्रमाण हो उतने ध्रुवहार मांडकर परस्पर गुणा करनेपर जो प्रमाण हो उतने परमाणुओं के स्कंधरूप कार्माणवर्गणा जाननी।

यहां प्रथम कांडक के प्रथम भेद में पूर्वोक्त जघन्य द्रव्य मात्र ऐसा **स ७ १२ ≡ – $\frac{१}{१६ख}$** इसको ध्रुवहार का भाग देनेपर द्वितीय भेद में ऐसा **स ७ १२ / ≡ ९ – $\frac{१}{१६ख}$** । उसके तृतीय भेद से लेकर असंख्यात स्थान इसीप्रकार क्रम से ध्रुवहार का भाग देनेपर होते हैं उनकी संदृष्टि बिंदी है । पुनश्च चौदहवां, पंद्रहवां, सोलहवां, सत्रहवां, अठारहवां कांडक है। प्रथम भेद के विषयभूत तेजस शरीरादिक प्रथम भेद के द्रव्य को ध्रुवहार का भाग देनेपर द्वितीय भेद का द्रव्य होता है । इसी क्रम से ध्रुवहार का भाग देनेपर तृतीयादि स्थान, उनकी संदृष्टि बिंदी । उन्नीसवें कांडक के प्रथम भेद का द्रव्य कार्माण समयप्रबध्द, इसको ध्रुवहार का भाग देनेपर द्वितीय भेद का द्रव्य, मध्य भेदों के ग्रहण के लिये ऊपर बिंदी लिखकर वर्गणा को दो बार, एक बार गुणा करनेपर और वर्गणामात्र और अंतिम भेद का द्रव्य ध्रुवहार से भाजित वर्गणामात्र जानना । पुनश्च प्रथम कांडक के द्रव्य अपेक्षा प्रथम भेद का विषयभूत क्षेत्र घनांगुल के असंख्यातवें भाग मात्र ऐसा $\frac{६}{७}$, दूसरे भेदों का भी उसप्रमाण और मध्य भेदों के ग्रहण निमित्त बिंदी । अंतिम भेद का क्षेत्र घनांगुल का संख्यातवां भागमात्र ऐसा $\frac{६}{१}$ । पुनश्च द्वितीयादि कांडकों में मध्य भेदों की बिंदी, घनांगुल की ऐसी **६**, पृथक्त्व घनांगुल की ऐसी **पृ६** इत्यादि संदृष्टि जाननी । पुनश्च चौदहवें आदि कांडकों के प्रथम भेद का क्षेत्र क्रम से एक, दो, तीन, चार, पांच, छह बार असंख्यात गुणा द्वीप-समुद्र प्रमाण और अंतिम कांडक के अंतिम भेद का क्षेत्र लोकप्रमाण ≡ जानना । पुनश्च प्रथम कांडक के प्रथम भेद का विषयभूत काल घनावली का असंख्यातवां भागमात्र ऐसा $\frac{८}{७}$, द्रव्य अपेक्षा द्वितीय भेद में ऐसा ही, मध्य भेदों की संदृष्टि बिंदी, अंतिम भेद में घनावली का संख्यातवां भागमात्र

काल ऐसा है ८/१। पुनश्च ऊपर मध्य भेदों की बिंदी, घनावली की ऐसी ८, पृथक्त्व घनावली की ऐसी पृ८, किंचित् कम अंतर्मुहूर्त की ऐसी २१– इत्यादि संदृष्टि जाननी।

चौदहवें आदि कांडकों के प्रथम भेद का काल क्रम से एक, दो, तीन, चार, पांच, छह बार असंख्यातगुणा वर्षप्रमाण जानना । अंतिम कांडक के अंतिम भेद का काल एक समय कम पल्य प–१ जानना । पुनश्च प्रथम कांडक के प्रथम भेद का भाव दो बार असंख्यात भाजित आवली मात्र और ऊपर क्रम से एक, दो, तीन बार आवली का असंख्यातवां भाग ऐसा ८/a उससे गुणित भाव जानना । इस क्रम से मध्य भेद होते हैं उनकी संदृष्टि बिंदी । अंतिम कांडक के अंतिम भेद का विषयभूत भाव असंख्यात लोकमात्र ≡a जानना । ऐसा इस रचना का अभिप्राय है ।

पुनश्च क्षेत्र में सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागमात्र द्रव्य अपेक्षा भेद होनेपर एक प्रदेश बढ़ता है । पुनश्च काल में ध्रुववृध्दि अपेक्षा घनांगुल प्रमाण प्रदेश बढ़नेपर काल में एक समय बढ़ता है, सो प्रथम कांडक में जघन्य क्षेत्र को उत्कृष्ट क्षेत्र में से घटानेपर ऐसा ६।a–१/१a [**विशेषार्थ -** ६/१ – ६/a समच्छेद करके ६a/१a – ६१/१a अर्थात् ६।a–१/१a] यहां समच्छेद करके घनांगुल को समान देखकर असंख्यात के गुणकार में से संख्यात घटाया और संख्यात गुणा असंख्यात का भाग दिया। इसीप्रकार जघन्य काल को उत्कृष्ट काल में से घटानेपर ऐसा ८।a–१/१a इनको प्रथम भेद संबंधी में समच्छेद करके जोड़नेपर अंतिम भेद में क्षेत्र, काल होता है । पुनश्च इस क्षेत्रविशेष को कालविशेष का भाग देनेपर ऐसा (६।a–१/१a) । (८।a–१/१a) अपवर्तन करनेपर घनावली से भाजित घनांगुलमात्र ध्रुववृध्दि का प्रमाण ऐसा ६/८ होता है । ऐसे ही अन्य कांडकों में भी यथासंभव जानना।

पुनश्च अध्रुववृध्दि अपेक्षा क्षेत्र में घनांगुल का असंख्यातवां भाग वा संख्यातवां भाग वा घनांगुल वा संख्यात घनांगुल वा असंख्यात गुणित घनांगुल और ऐसे ही जगत्श्रेणी, जगत्प्रतर संबंधी कहना – सो इतने इतने प्रदेश बढ़नेपर काल में एक समय बढ़ता है उनकी संदृष्टि ऐसी ६/a, ६/१, ६, ६१, ६a, ‾a, ‾१, –, –१, –a, =a, =१,

=, =ᥐ, =ə जाननी ।

पुनश्च परमावधि की रचना में उत्कृष्ट देशावधि के विषयभूत द्रव्य को ध्रुवहार का भाग देनेपर प्रथम भेद का द्रव्य ऐसा $\frac{\text{व}}{९।९}$, ऊपर एक एक अधिक बार ध्रुवहार का भाग देनेपर द्वितीयादि भेद का द्रव्य होता है । अंतिम भेद में ध्रुवहार मात्र द्रव्य ऐसा ९ होता है।

पुनश्च एक, तीन, छह, दस, पंद्रह इत्यादि अर्थात् जितनेवां भेद हो उतने मात्र गच्छ का संकलनधनमात्र आवली के असंख्यातवें भाग $\frac{८}{ə}$ से प्रथम भाग में गुणा करनेपर तथा अंतिम भेद में तीन बार असंख्यात लोक ≡ə≡ə≡ə से लोक ≡ को गुणा करनेपर क्षेत्रप्रमाण होता है और समय कम पल्य **प–१** को गुणा करनेपर कालप्रमाण होता है । पुनश्च प्रथमादि भेद में एक, दो आदि एक एक अधिक बार घनावली के असंख्यातवें भाग $\frac{८}{ə}$ से और अंतिम भेद में असंख्यात लोक ≡ə से असंख्यात लोक ≡ə को गुणा करनेपर भावप्रमाण होता है, ऐसा जानना ।

पुनश्च **'इच्छिदराशिच्छेदं'** इत्यादि करणसूत्र के अभिप्राय से संख्यात कम मध्यपरीतासंख्यातमात्र आवली के असंख्यातवें भाग के अर्धच्छेदों की संदृष्टि ऐसी **१६–४**। यहां घटाने के संदृष्टि के आगे संख्यात की संदृष्टि चार का अंक जानना । सो उसका भाग पल्यादि के अर्धच्छेदों को देनेपर जो जो लब्धराशि हो उतने उतने आवली के असंख्यातवें भाग मांडकर पल्य के $\frac{\textbf{छे}}{\textbf{१६–४}}$ सूच्यंगुल के $\frac{\textbf{छेछे}}{\textbf{१६–४}}$ जगत्श्रेणी $\frac{\textbf{विछेछे}}{\textbf{१६–४}}$ लोक $\frac{\textbf{विछेछे९}}{\textbf{१६–४}}$ परस्पर गुणा करनेपर पल्यादिक राशि होती है । इसलिये **'दिण्णच्छेदेणवहिद'** इत्यादि सूत्र द्वारा प्रमाणराशि में देयराशि तो आवली का असंख्यातवां भाग और विरलन आवली के असंख्यातवें भाग के अर्धच्छेदों से भाजित लोक का अर्धच्छेदमात्र ऐसा –

प्रमाणराशि $\frac{\text{दे}\ \frac{८}{ə}}{\textbf{वि}\ \ \frac{\textbf{विछेछे९}}{\textbf{१६–४}}}$, फलराशि लोकमात्र ऐसा ≡, इच्छाराशि में देयराशि आवली का असंख्यातवां भागमात्र और विरलनराशि गच्छ का संकलन धनमात्र, सो अंत भेद

में गच्छ परमावधि के सर्व भेदप्रमाण ऐसा $≡ə।६^{\frac{१}{\frac{१⌢}{ə}}}_{\frac{प}{ə}}$ सो एक अधिक गच्छ को और सम्पूर्ण गच्छ को दों और एक का भाग देकर परस्पर गुणनमात्र होता है । सो ऐसा-

इच्छाराशि

दे $८_{ə}$
वि $≡ə६^{\frac{१}{\frac{१}{\frac{१⌢}{ə}}}}_{\frac{प}{ə}\,२}$ $≡ə६^{\frac{१}{\frac{१⌢}{ə}}}_{\frac{प}{ə}\,१}$

, लब्धराशिमात्र लोकों को परस्पर गुणा करनेपर ऐसा ≡ə≡ə≡ə गुणकार आता है । परमावधि का अंतभेद में क्षेत्र, काल का प्रमाण लाने के लिये यह गुणकार है । इससे ≡ को गुणा करनेपर अंतभेद का क्षेत्र तथा काल का प्रमाण आता है ।

परमावधि के विषयभूत द्रव्यादि की रचना –

नाम	द्रव्य	क्षेत्र	काल	भाव
अंतभेद	९	≡।≡ə।≡ə।≡ə	प-१।≡ə।≡ə।≡ə	≡ə।≡ə
मध्यभेद	8	8	8	8
पंचमभेद	$\overset{व}{९।९।९।९।९।९}$	$≡८_{ə}।१५$	$प-१।८_{ə}।१५$	$≡ə८_{ə}।८_{ə}।८_{ə}।८_{ə}।८_{ə}$
चतुर्थभेद	$\overset{व}{९।९।९।९।९}$	$≡८_{ə}।१०$	$प-१।८_{ə}।१०$	$≡ə८_{ə}।८_{ə}।८_{ə}।८_{ə}$
तृतीयभेद	$\overset{व}{९।९।९।९}$	$≡८_{ə}।६$	$प-१।८_{ə}।६$	$≡ə८_{ə}।८_{ə}।८_{ə}$
द्वितीयभेद	$\overset{व}{९।९।९}$	$≡८_{ə}।८_{ə}।८_{ə}$	$प-१।८_{ə}।८_{ə}।८_{ə}$	$≡ə८_{ə}।८_{ə}$
प्रथमभेद	$\overset{व}{९।९}$	$≡८_{ə}$	$प-१।८_{ə}$	$≡ə८_{ə}$

[**विशेषार्थ-** ९ = ध्रुवहार, व = कार्माणवर्गणा, $८_{ə}।१५$ = देय $८_{ə}$ १५ बार]

पुनश्च सर्वावधि का विषयभूत द्रव्य एक परमाणु, क्षेत्र पांच बार असंख्यात लोक गुणा लोकमात्र तथा काल चार बार असंख्यात लोक गुणित एक समय कम पल्यप्रमाण जानना । सर्वावधि ज्ञान का द्रव्य **१**, क्षेत्र ≡।≡a।≡a।≡a।≡a।≡a काल **प-१**।≡a।≡a।≡a।≡a तथा भाव है सो जघन्य देशावधि से लेकर सर्वावधि तक के द्रव्यअपेक्षा सर्व भेदों में क्रम से आवली के असंख्यातवें भाग गुणा जानना ।

वैमानिक देवों का अवधिक्षेत्र ऐसा –

सौ२	स२	ब्र२	लां२	शु२	श२
[$\overline{७}\,\frac{३}{२}$] $\overline{७}$	[$\overline{७}$ ४] $\overline{७}$	[$\overline{७}\,\frac{११}{२}$] $\overline{७}$	[$\overline{७}$ ६] $\overline{७}$	[$\overline{७}\,\frac{१५}{२}$] $\overline{७}$	[$\overline{७}$ ८] $\overline{७}$
$\overline{७}$	$\overline{७}$	$\overline{७}$	$\overline{७}$	$\overline{७}$	$\overline{७}$

आ२	आ२	ग्रै९	अनु९	अनुत्तर५
[$\overline{७}\,\frac{१९}{२}$] $\overline{७}$	[$\overline{७}$ १०] $\overline{७}$	[$\overline{७}$ ११] $\overline{७}$	[$\overline{७}$ १३] $\overline{७}$	[$\overline{७}$ १४–] $\overline{७}$
$\overline{७}$	$\overline{७}$	$\overline{७}$	$\overline{७}$	$\overline{७}$

यहां नीचे और पार्श्व (बाजू) में भुज, कोटि तो एक राजूमात्र [$\overline{७}$ जगत्श्रेणी सात राजू उसका सातवां भाग] जानना और बीच में ऊंचाई का प्रमाण डेढ़, चार, साढ़े पांच, छह, साढ़े सात, आठ, साढ़े नौ, दस, ग्यारह, तेरह, चौदह राजूमात्र जानना।

यहां सौधर्मयुगलवालों के रत्नप्रभा पर्यंत अवधिक्षेत्र है - सो वहां से डेढ़ राजू है और सनत्कुमारयुगलवालों के शर्कराप्रभा पर्यंत अवधिक्षेत्र है सो वहां से चार राजू है। ऐसे ही अन्य की भी ऊंचाई का प्रमाण जानना । उसके जानने को रचना ऐसी –

[जगह के अभाव से रचना अगले पृष्ठ पर लिखी है उसके नीचे का वर्णन यहां है ।]

इस रचना में लोक की रचना की है । जिसकी ऊंचाई थी उसका नाम लिखकर आगे जितने राजू प्रमाण ऊंचाई थी उतने का अंक लिखा है । स्वर्गों में जहां दो इन्द्र हैं वहां दो बार एक लिखकर संदृष्टि की है, जहां एक इन्द्र है वहां एक बार एक का अंक और एक बिंदी की संदृष्टि की है । पुनश्च वैमानिक देव का जिस

अपने स्थान से लेकर नीचे जहां तक अवधिक्षेत्र है उस अपने स्थान से लेकर वहां तक रेखा करने की संदृष्टि की है । सो ऐसे अवधिक्षेत्र का घनफल करनेपर सौधर्मद्विक आदि के क्रम से डेढ़, चार, साढ़े पांच, छह, साढ़े सात, आठ, साढ़े नौ, दस, ग्यारह, तेरह, किंचित् कमं चौदह घनराजू मात्र क्षेत्र होता है । सो घनराजू की संदृष्टि ऐसी ≡ ३४३ उसके आगे डेढ़ आदि का गुणकार करनेपर संदृष्टि होती है ।

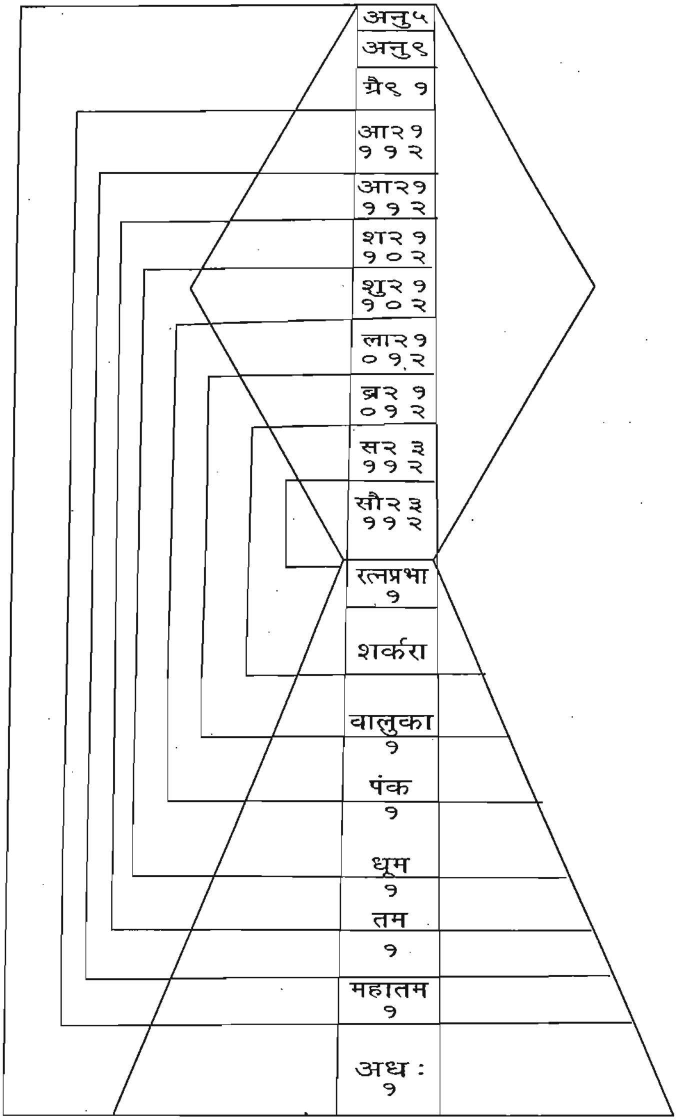

पुनश्च समस्त कर्म का सत्त्व द्रव्य किंचित् कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबध्द मात्र ऐसा **स ə १२ −** उसको सात का भाग देनेपर ज्ञानावरण का ऐसा $\frac{\text{स ə १२ −}}{७}$ इसको अनंत का भाग देकर बहुभागमात्र देशघाति का द्रव्य ऐसा $\frac{\text{स ə १२ −}}{७} \cdot \frac{\text{ख}^{१\frown}}{\text{ख}}$ यहां गुणकार में एक कम है उसको न गिनते हुये अपवर्तन करनेपर ऐसा $\frac{\text{स ə १२ −}}{७}$ इसको चार का भाग देनेपर अवधिज्ञानावरण का द्रव्य ऐसा $\frac{\text{स ə १२ −}}{७ । ४}$ । सो जितने अपने अपने क्षेत्र के प्रदेश हैं, उतनी बार इस अवधिज्ञानावरण के द्रव्य को ध्रुवहार का भाग देनेपर जो द्रव्य होता है उसको वैमानिक देव अवधिज्ञानद्वारा जानते हैं ।

नाम	सौधर्मद्विक	सनत्कुमारद्विक	ब्रह्मद्विक	लांतवद्विक	शुक्रद्विक	शतारद्विक
क्षेत्रप्रमाण	≡ ३४३ ३/२	≡ ३४३ ४	≡ ३४३ ११/२	≡ ३४३ ६	≡ ३४३ १५/२	≡ ३४३ ८
अवधिज्ञानावरणद्रव्य	स ə १२ − / ७ । ४	स ə १२ − / ७ । ४	स ə १२ − / ७ । ४	स ə १२ − / ७ । ४	स ə १२ − / ७ । ४	स ə १२ − / ७ । ४

नाम	आनतद्विक	आरणद्विक	ग्रैवेयक ९	अनुदिश ९	अनुत्तर ५
क्षेत्रप्रमाण	≡ ३४३ १९/२	≡ ३४३ १०	≡ ३४३ ११	≡ ३४३ १३	≡ ३४३ १४−
अवधिज्ञानावरणद्रव्य	स ə १२ − / ७ । ४	स ə १२ − / ७ । ४	स ə १२ − / ७ । ४	स ə १२ − / ७ । ४	स ə १२ − / ७ । ४

पुनश्च भवनत्रिक देवों के अवधि के विषयभूत क्षेत्र और काल की तथा वैमानिकों के काल की और नारकियों के क्षेत्र की संदृष्टि सुगम है । उसे कथन के अनुसार यथासंभव जान लेना ।

पुनश्च मन:पर्ययज्ञान के विषयभूत द्रव्यादिक में एक समय संबंधी निर्जरायोग्य औदारिक का समयप्रबध्द ऐसा **स ə** इसको अनंतगुणा जीवराशि से गुणा करनेपर विस्रसोपचय परमाणुओं का प्रमाण ऐसा **स ə १६ख** इसमें औदारिक का समयप्रबध्द जोड़ने के लिये आगे के गुणकार के ऊपर एक अधिक करनेपर ऋजुमति का विषयभूत जघन्य द्रव्य

ऐसा **स ० $\frac{१}{१६ख}$** होता है । पुनश्च प्रमाणराशि औदारिक शरीर का निर्जरारूप समयप्रबध्दमात्र और इच्छाराशि इन्द्रियमार्गणा में चक्षुइन्द्रिय की अवगाहना कही थी उसप्रमाण करनेपर प्रमाण **६ ०ृ**, फल **स ० $\frac{१}{१६ख}$**, इच्छाराशि $\frac{६\ \underset{०}{प}}{\underset{०}{प}\ ०ृ ०ृ}\ \frac{१}{\underset{०}{प}}$, लब्धराशिमात्र ऋजुमति का विषयभूत द्रव्य ऐसा $\frac{स\ ० \frac{१}{१६ख} । ६\ \underset{०}{प}}{६ ०ृ\ \underset{०}{प}\ ०ृ ०ृ \frac{१}{\underset{०}{प}}}$ होता है । इसको मनोवर्गणा के भेदों का अनंतवां भाग ऐसा $\frac{\frac{१}{ख}ज\ १}{ख\ ख}$ उसप्रमाण जो ध्रुवहार उसकी संदृष्टि नौ का अंक **९** उसका भाग देनेपर विपुलमति का विषयभूत जघन्य द्रव्य होता है ।

पुनश्च योगमार्गणा में बताया हुआ विस्रसोपचयरहित कार्माण समयप्रबध्द ऐसा **स ० $\underset{०}{}\underset{०}{}$ख ख** [० अर्थात् श्रेणी का असंख्यातवां भाग] इसको ध्रुवहार की संदृष्टि नौ का अंक, उसका भाग देनेपर विपुलमति के दूसरे भेद का विषयभूत द्रव्य ऐसा **$\frac{स ०}{९}$ $\underset{०}{}\underset{०}{}$ख ख** होता है । पुनश्च इसको असंख्यात कल्पकालमात्र ध्रुवहार ऐसा **क ० ९९९** उसका भाग देनेपर विपुलमति का विषयभूत उत्कृष्ट द्रव्य होता है ।

पुनश्च ऋजुमति का विषयभूत जघन्य क्षेत्र दो या तीन कोस, उत्कृष्ट सात या आठ योजन और विपुलमति का विषयभूत जघन्य क्षेत्र आठ या नौ योजन, उत्कृष्ट पैंतालीस लाख योजन मात्र समचतुरस्र क्षेत्र, उसकी रचना ऐसी 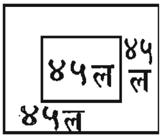

।

पुनश्च ऋजुमति का विषयभूत जघन्य काल दो, तीन भव, उत्कृष्ट सात वा आठ भव और विपुलमति का विषय जघन्य आठ वा नौ भव, उत्कृष्ट पल्य का असंख्यातवां भाग ऐसा $\underset{०}{प}$ । पुनश्च ऋजुमति का विषयभूत जघन्य भाव तीन बार संख्यात से भाजित घनावलीमात्र, उत्कृष्ट इससे असंख्यातगुणा और इससे भी असंख्यात गुणा विपुलमति का विषयभूत जघन्यभाव और उत्कृष्ट असंख्यात लोकमात्र जानने । उनकी रचना ऐसी होती है –

यहां मध्य भेदों के लिये बिंदी लिखी है ।

नाम	द्रव्य	क्षेत्र	काल	भाव
उत्कृष्टविपुलमति	स ९ ० ० ० ख ख क ० ९ ९ ९	४५०००००० योजन	प ०	≡ ०
मध्यविपुलमति	० ०	० ०	० ०	० ०
जघन्यविपुलमति	द्वितीय भेद स ० ९ ० ० ख ख जघन्य भेद स ० १६ख । ६ प ० ६ ० प ० ० ० प ० ९	८।९ यो.	८।९ भव	८ ० ० ० ० ०
उत्कृष्ट ऋजुमति	स ० १६ख । ६ प ० ६ ० प ० ० ० प ०	७।८ यो.	७।८ भव	८ ० ० ० ०
मध्य ऋजुमति	० ०	० ०	० ०	० ०
जघन्य ऋजुमति	स ० १/१६ख	२।३ कोस	२।३ भव	८ ० ० ०

पुनश्च जीवों की संख्या में मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी प्रत्येक पल्य के असंख्यातवें भाग मात्र प ०, मन:पर्ययज्ञानी संख्यात ०, केवलज्ञानी संख्यात अधिक सिध्दराशि मात्र ०/३, अवधिज्ञानी जीव ऐसे प ० । १०/० – ० । यहां मतिज्ञानी जीवों की संख्या में से अवधिज्ञानरहित तिर्यंच मतिज्ञानी जीवों के असंख्यातवें भागमात्र, उनको घटाने के लिये असंख्यात का भाग और एक कम असंख्यात का गुणकार जानना और अवधिरहित संख्यात मनुष्य घटाने के लिये आगे ऐसी – ० संदृष्टि जाननी ।

पुनश्च विभंगज्ञानी देव ऐसे $\overline{\overline{\text{४।६५=}}}$ ॥ १ ॄ / १– यहां देवराशि के आगे सम्यग्दृष्टियों को घटाने के लिये ऐसी – संदृष्टि जाननी ।

पुनश्च पल्य के असंख्यातवें भाग गुणित घनांगुल से गुणित जगत्श्रेणीमात्र तिर्यंच ऐसे –६ प/२ और मनुष्य संख्यात ॄ और नारकी ऐसी –२मू – यहां नारकराशि [घनांगुल के द्वितीय वर्गमूल से गुणित जगत्श्रेणी], में से सम्यग्दृष्टियों को घटाने के लिये आगे ऐसी – संदृष्टि जाननी । सो देवराशि में इन तीन राशियों को मिलाने के लिये ऊपर ऊभी (खड़ी) तीन लकीरों की संदृष्टि करनेपर विभंगज्ञानियों की संदृष्टि ऐसी होती है – $\overline{\overline{\text{४।६५=}}}$ ॥॥॥ १ ॄ / १–

पुनश्च कुमति, कुश्रुतज्ञानी प्रत्येक ऐसे **१३** – यहां संसारीराशि में से पांच सुज्ञानी जीव घटाने के लिये किंचित् कम की आगे ऐसी – संदृष्टि जाननी ।

कुमति	**कुश्रुत**	**विभंग**	**मति**	**श्रुत**	**अवधि**	**मन:पर्यय**	**केवल**
१३–	१३–	$\overline{\overline{\text{४।६५=}}}$ ॥॥॥ १ ॄ / १–	प/२	प/२	प/२ । १/२/२ –ॄ	ॄ	ॄ/३

आगे **संयममार्गणा** अधिकार में संदृष्टि कहते हैं –

वहां जीवों की संख्या संबंधी संदृष्टि ऐसी –

नाम	**सामायिक**	**छेदोपस्थापना**	**परिहारविशुद्धि**	**सूक्ष्मसाम्पराय**	**यथाख्यात**	**संयमासंयम**	**असंयम**
प्रमाण	८९०९९१०३	८९०९९१०३	६९९७	८९७	८९९९७	प/२२२२	१३–

यहां संयमासंयमवालों की संख्या आगे सम्यक्त्वमार्गणा में देशसंयत गुणस्थानवर्तियों की संख्या कहेंगे, वह जाननी और संसारीराशि में से अन्य छह संयमियों की संख्या

घटाने के लिये ऐसी – संदृष्टि करनेपर असंयमियों की संख्या जाननी । अन्य सर्व सुगम है ।

आगे **दर्शनमार्गणा** अधिकार में संदृष्टि कहते हैं –

वहां जीवों की संख्या में संदृष्टि ऐसी –

नाम	शक्तिचक्षुर्दर्शनी	व्यक्तचक्षुर्दर्शनी	अचक्षुर्दर्शनी	अवधिदर्शनी	केवलदर्शनी
प्रमाण	=।२ = ४ ४ २ ७	=।२ – ४ ४ ५	१३–	प/७ । ९^/(७/७) –ꝗ	ꝗ/३

यहां प्रमाणराशि द्वीन्द्रिय आदि चार (४), फलराशि त्रस जीवों का प्रमाण ऐसा =/(४ २ ७), इच्छाराशि चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय दो (२) करनेपर लब्धराशि ऐसी जगत्प्रतर — =।२, प्रतरांगुल — ४ ४, आवली — २ ७

यहां द्वीन्द्रिय आदि किंचित् कम अनुक्रमसहित हैं । इसलिये किंचित् कम करने को और पर्याप्तों की संख्या घटाने को आगे ऐसी = संदृष्टि करनेपर शक्तिगत चक्षुर्दर्शनियों की संदृष्टि होती है ।

पुनश्च प्रमाणराशि, इच्छाराशि पूर्वोक्त करनेपर और फलराशि पर्याप्त त्रस जीवों की संख्या ऐसी =/(४ ५) [जगत्प्रतर÷प्रतरांगुल÷संख्यात] करनेपर लब्धराशि ऐसी =२/(४ ४ ५) यहां द्वीन्द्रिय आदि हीन क्रमयुक्त हैं । इसलिये किंचित् कम करने की आगे ऐसी – संदृष्टि करनेपर व्यक्त चक्षुर्दर्शनियों की संदृष्टि होती है । पुनश्च संसारीराशि में किंचित् कम करने की आगे ऐसी – संदृष्टि करनेपर अचक्षुर्दर्शनियों की संदृष्टि होती है । पुनश्च अवधि, केवल ज्ञानियों की संदृष्टि ज्ञानमार्गणा में जैसी कही वैसी जाननी ।

अब **लेश्यामार्गणा** अधिकार में संदृष्टि कहते हैं –

वहां कृष्णादि द्रव्यलेश्या इन्द्रिय व्यक्ति द्वारा संख्यात हैं, वहां संदृष्टि ऐसी **ꝗ** है और स्कंधों की अपेक्षा असंख्यात हैं वहां संदृष्टि ऐसी ७ अथवा असंख्यात लोकमात्र हैं, वहां संदृष्टि ऐसी ≡७ और परमाणुओं की अपेक्षा अनंत हैं वहां संदृष्टि ऐसी **ख** जाननी ।

कषायों के उदयस्थान असंख्यात लोकमात्र ऐसे ≡७ इनको यथायोग्य असंख्यात

लोक की संदृष्टि नौ का अंक ९ उसका भाग देनेपर बहुभाग मात्र संक्लेशरूप अशुभ लेश्या के स्थान ऐसे हैं ≡a।८ / ९, एक भागमात्र विशुध्दरूप शुभलेश्या के स्थान ऐसे हैं ≡a१ / ९ । यहां भागहार का भाग देकर बहुभाग में सर्वत्र एक कम भागहार प्रमाण से गुणा करना ऐसा जानना । तथा एक भाग में एक से गुणा करना ऐसा जानना।

पुनश्च अशुभ लेश्या के स्थानों को उसी प्रतिभाग का भाग दे देकर बहुभाग बहुभाग मात्र कृष्ण नील के स्थान और एक भागमात्र कपोत लेश्या के स्थान जानने।

पुनश्च शुभलेश्या के स्थानों को प्रतिभाग का भाग दे देकर बहुभागमात्र पीत, पद्म के स्थान और एक भागमात्र शुक्ल के स्थान जानने । उनकी रचना -

सर्व कषायों के स्थान ≡a ।

अशुभ लेश्याओं के स्थान ≡a।८ / ९ । शुभ लेश्याओं के स्थान ≡a।१ / ९ ।

कृष्ण	नील	कपोत	पीत	पद्म	शुक्ल
उ००००००ज	उ००००००ज	उ००००००ज	ज००००००उ	ज००००००उ	ज००००००उ
≡a।८।८ / ९।९	≡a।८।८ / ९।९।९	≡a।८।१ / ९।९।९	≡a।८ / ९।९	≡a।८ / ९।९।९	≡a।१ / ९।९।९

यहां उत्कृष्ट और जघन्य के बीच तथा जघन्य और उत्कृष्ट के बीच बिंदियों की संदृष्टि मध्यस्थानों के ग्रहण के लिये जाननी । और अशुभ लेश्या के स्थान ऐसे ≡a।८ / ९, उनको क्रम से संदृष्टि अपेक्षा आठ, आठ, एक से गुणा करके तथा एक बार, दो बार, दो बार नौ का भाग देनेपर कृष्णादिक के स्थान होते हैं । और शुभ लेश्या के स्थान ऐसे ≡a / ९ । उनको क्रम से आठ, आठ, एक से गुणा करके तथा एक बार, दो बार, दो बार नौ का भाग देनेपर पीतादिक के स्थान होते हैं, ऐसा जानना।

पुनश्च अपकर्षण द्वारा आयु बांधनेवाले जीवों का प्रमाण किंचित् कम संसारीराशिमात्र ऐसा १३– इसको संख्यात १ का भाग देकर बहुभाग बहुभाग मात्र एकादि सात तक अपकर्षण द्वारा आयु बांधनेवालों का और एक भागमात्र आठ अपकर्षो द्वारा आयु बांधनेवालों का प्रमाण ऐसा जानना –

$\frac{\text{१३–।ᵹ–१}}{\text{ᵹ}}$	$\frac{\text{१३–।ᵹ–१}}{\text{ᵹᵹ}}$	$\frac{\text{१३–।ᵹ–१}}{\text{ᵹᵹᵹ}}$	$\frac{\text{१३–।ᵹ–१}}{\text{ᵹᵹᵹᵹ}}$	$\frac{\text{१३–।ᵹ–१}}{\text{ᵹᵹᵹᵹᵹ}}$	$\frac{\text{१३–।ᵹ–१}}{\text{ᵹᵹᵹᵹᵹᵹ}}$	$\frac{\text{१३–।ᵹ–१}}{\text{ᵹᵹᵹᵹᵹᵹᵹ}}$	$\frac{\text{१३–।१}}{\text{ᵹᵹᵹᵹᵹᵹᵹ}}$
१	२	३	४	५	६	७	८

यहां बहुभागों में एक कम संख्यात ऐसा ᵹ–१, उसका तो गुणकार, अनुक्रम से एक, दो, तीन, चार, पांच, छह, सात बार संख्यात ऐसा ᵹ उसका भागहार जानना। तथा एक भाग में एक का गुणकार सात बार संख्यात का भागहार जानना । और नीचे एक, दो आदि अपकर्षों की संदृष्टि एक, दो आदि अंक जानने । पुनश्च आठ अपकर्षों द्वारा आयु बांधनेवाले के आठवें अपकर्ष में आयु बांधने का जघन्य काल छोटा अंतर्मुहूर्तमात्र ऐसा २ᵹ इसको संख्यात की सहनानी चार का अंक ४ इसका भाग देकर एक भागमात्र विशेष अधिक उसका उत्कृष्ट काल ऐसा $\frac{\text{२ᵹ।५}}{\text{४}}$, इसको संख्यात की सहनानी चार से गुणा करनेपर उसके सातवें अपकर्ष में जघन्य काल ऐसा $\frac{\text{२ᵹ।५।४}}{\text{४}}$, इससे विशेष अधिक उसका उत्कृष्ट काल ऐसा $\frac{\text{२ᵹ।५।४।५}}{\text{४।४}}$। इसीप्रकार पहले अपकर्ष के उत्कृष्ट तक टीका में कहे हुये जो बहत्तर स्थान उनमें अपने जघन्य को संदृष्टि अपेक्षा पांच से गुणा करके चार का भाग देनेपर उत्कृष्ट होता है। और पूर्व उत्कृष्ट को चार से गुणा करनेपर उत्तर जघन्य होता है, ऐसा जानना।

पुनश्च जीवों की संख्या में कृष्णादि अशुभ लेश्यावाले जीव किंचित् कम संसारी राशिमात्र ऐसे १३– इसको आवली के असंख्यातवें भाग की संदृष्टि नौ का अंक ९ उसका भाग देकर बहुभाग ऐसा $\frac{\text{१३–।८}}{\text{९}}$ उसके तीन भाग करके एक एक समान भाग कृष्णादि लेश्यावालों को देना । अवशेष एक भाग ऐसा $\frac{\text{१३–}}{\text{९}}$ उसको प्रतिभाग का भाग दे देकर बहुभाग बहुभाग कृष्ण नील लेश्यावालों को एक भाग कपोतलेश्यावालों को और देना ।

नाम	कृष्ण	नील	कपोत
समानभाग	$\frac{\text{१३–।८}}{\text{९।३}}$	$\frac{\text{१३–।८}}{\text{९।३}}$	$\frac{\text{१३–।८}}{\text{९।३}}$
देयभाग	$\frac{\text{१३–।८}}{\text{९।९}}$	$\frac{\text{१३–।८}}{\text{९।९।९}}$	$\frac{\text{१३–।१}}{\text{९।९।९}}$

वहां समच्छेद विधान द्वारा सर्वत्र तीन बार नौ और तीन का भागहार करने को समानभाग में एक बार नौ और तीन का भागहार पहले देखकर, दो बार नौ का गुणकार करना । और देयभाग में तीन बार भागहार नौ देखकर तीन का गुणकार करना। और कृष्णलेश्या के दो बार ही नौ का भागहार देखकर एक बार नौ का गुणकार करना । ऐसा करनेपर ऐसा होता है –

नाम	कृष्ण	नील	कपोत
समानभाग	१३–।८।९।९ ३।९।९।९	१३–।८।९।९ ३।९।९।९	१३–।८।९।९ ३।९।९।९
देयभाग	१३–।८।३।९ ३।९।९।९	१३–।८।३ ३।९।९।९	१३–।१।३ ३।९।९।९

वहां परस्पर गुणा करनेपर और समानभाग, देयभाग मिलानेपर कृष्णादि लेश्यावाले जीवों का प्रमाण ऐसा होता है –

नाम	कृष्ण	नील	कपोत
प्रमाण	१३–।८६४ ३।७२९	१३–।६७२ ३।७२९	१३–।६५१ ३।७२९

पुनश्च कालअपेक्षा अंतर्मुहूतमात्र काल ऐसा **२७१** उसका वैसे ही विधान करनेपर कृष्णादि लेश्याओं का काल ऐसा –

नाम	कृष्ण	नील	कपोत
प्रमाण	२७१।८६४ ३।७२९	२७१।६७२ ३।७२९	२७१।६५१ ३।७२९

वहां प्रमाणराशि अंतर्मुहूर्तमात्र ऐसा **२७१**, फलराशि जीवों का प्रमाण ऐसा **१३–**, इच्छाराशि अपना अपना काल करनेपर पूर्वोक्त जीवों का प्रमाण आता है । इसप्रकार द्रव्यमान से कृष्णादि लेश्यावाले जीव अशुभलेश्यावाले जीवों के त्रिभागमात्र हैं परंतु क्रम से हीनरूप हैं । इसलिये कृष्णलेश्या के राशि के ऊपर किंचित् अधिक की ऊभी लकीर करनी और नीललेश्या के भागहार के ऊपर किंचित् अधिक की एक ऊभी लकीर करनी और कपोतलेश्या के भागहार के ऊपर दो बार किंचित् अधिक की दो ऊभी लकीर करनी।

पुनश्च क्षेत्रमान से लोक से अनंतगुणे ऐसे **≡ख** और कालमान से अतीतकाल से अनंतगुणे ऐसे हैं **अख** परंतु क्रम से हीनरूप हैं । इसलिये कृष्ण की राशि के ऊपर

किंचित् अधिक की ऐसी । और नील के गुणकार के आगे किंचित् हीन की ऐसी – और कपोत के गुणकार के आगे दो बार किंचित् हीन की ऐसी = संदृष्टि जाननी।

पुनश्च भावमान से केवलज्ञान के अनंतवें भागमात्र ऐसे के/ख हैं, परंतु क्रम से हीन हैं, इसलिये कृष्णराशि के ऊपर किंचित् अधिक की और नील, कपोत के भागहार के ऊपर एक बार, दो बार किंचित् अधिक की संदृष्टि जाननी । इसप्रकार कृष्णादि लेश्यावाले जीवों का प्रमाण ऐसा जानना –

नाम	कृष्ण	नील	कपोत
द्रव्यमान	। १३– ३–	१३– । ३–	१३– ॥ ३–
क्षेत्रमान	। ≡ख	≡ख–	≡ख =
कालमान	। अ ख	अ ख–	अ ख =
भावमान	। के ख	के । ख	के ॥ ख

पुनश्च शुभलेश्यावाले जीवों में द्रव्यमान से शुक्ललेश्यावाले असंख्यात, पद्मलेश्यावाले उनसे असंख्यातगुणे, पीतलेश्यावाले उनसे भी संख्यातगुणा जानने । पुनश्च क्षेत्रमान से पीतलेश्यावाली ज्योतिष्कराशि ऐसी =४।६५=, भवनवासीराशि ऐसी –१, व्यंतरराशि ऐसी =४।६५=।८१।१०, सौधर्मद्विकवासी ऐसी –३ । पांच बार संख्यात गुणित पणट्ठी प्रमाण प्रतरांगुल से भाजित जगत्प्रतरमात्र वैसे तिर्यंच ऐसे =४।६५=।१११११, संख्यात वैसे मनुष्य ऐसे १, इनको मिलाने को ज्योतिष्कराशि, व्यंतरराशि पूर्वोक्त प्रकार मिलनेपर =४।६५= (१ १ / १) इसके ऊपर अन्य चार राशि मिलाने की ऊभी चार लकीरों की संदृष्टि करनेपर पीतलेश्यावालों की संदृष्टि ऐसी होती है - ॥॥ =४।६५= (१ १ / १)

पुनश्च छह बार संख्यात गुणित पणट्ठीप्रमाण प्रतरांगुलों से भाजित जगत्प्रतरमात्र

पद्मलेश्यावाले तिर्यंच का ४।६५=।ॢॢॢॢॢ प्रमाण है । उसमें वैसे कल्पवासी और मनुष्य मिलाने की ऊपर दो ऊभी लकीर की संदृष्टि करनेपर पद्मलेश्यावालों का प्रमाण होता है । पुनश्च सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागमात्र शुक्ललेश्यावालों का प्रमाण है २/a।

पुनश्च कालमान से पीतलेश्यावाले कल्पकाल से असंख्यात और संख्यात गुणा हैं कaाॢ, पद्मवाले कल्पकाल से असंख्यातगुणा हैं कa, शुक्ललेश्यावाले पल्य के असंख्यातवें भागमात्र हैं प/a ।

पुनश्च भावमान से पीतादिकवाले अवधिज्ञान के भेदों की संदृष्टि प्राकृतनाम के आदिअक्षररूप ऐसी उ उसको असंख्यात का भाग [पीत], असंख्यात संख्यात का भाग [पद्म] तथा असंख्यात संख्यात असंख्यात का भाग [शुक्ल] देनेपर होता है। इसप्रकार पीतादि लेश्यावाले जीवों का प्रमाण ऐसा जानना –

नाम	पीत	पद्म	शुक्ल
द्रव्यमान	aaॢ	aa	a
क्षेत्रमान	॥॥ ४।६५= १ ॢ/१	॥ ४।६५=ॢॢॢॢॢ	२/a
कालमान	कaाॢ	कa	प/a
भावमान	उ/a	उ/aाॢ	उ/aाॢाa

पुनश्च क्षेत्राधिकार में कृष्णलेश्यावाले स्वस्थानस्वस्थान, वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात, मारणांतिक समुद्घात, उपपादवाले जीवों का क्षेत्र सर्वलोक ≡ है, वहां जीवों का प्रमाण कहते हैं –

कृष्णलेश्यावाली जीवराशि ऐसी १३–/३– उसको संख्यात की संदृष्टि पांच का अंक उसका भाग देकर बहुभाग ऐसा १३–।४/३–।५ स्वस्थान में देना । अवशेष एक भाग का बहुभाग ऐसा १३–।४/३–।५।५ वेदना समुद्घात में देना । अवशेष एक भाग का बहुभाग ऐसा १३–।४/३–।५।५।५ कषाय समुद्घात में देना ।

अवशेष एकभाग ऐसा १३–।१ / ३–।५।५।५ इसको फलराशि करते हैं और अंतर्मुहूर्त काल ऐसा है २ॄ उसको प्रमाणराशि करते हैं और इच्छाराशि एक समय करते हैं **प्र२ॄ, फ १३–।१ / ३–।५।५।५ , इ१** वहां लब्धराशि ऐसी १३– / ३–।५।५।५।२ॄ उपपाद में देना। इसको फलराशि, और प्रमाणराशि एक समय, इच्छाराशि अंतर्मुहूर्त करनेपर **प्र स१, फ १३–।१ / ३–।५।५।५।२ॄ , इ २ॄ** लब्धराशि मूलराशि के संख्यातवें भागमात्र ऐसा १३– / ३–।ॄ मारणांतिक समुद्घात में देना ।

पुनश्च पर्याप्त त्रसराशि ऐसी = / ४ / ५, उसको किंचित् कम शुभलेश्यावालों को घटाने की आगे ऐसी – संदृष्टि करके उसको किंचित् कम तीन का भाग देनेपर कृष्णलेश्यावाली पर्याप्त त्रसराशि ऐसी = / ४।३– / ५–, उसको संख्यात की संदृष्टि पांच का भाग देकर बहुभाग ऐसा =४ / ४।३–।५ / ५– स्वस्थानस्वस्थान में देना । अवशेष एक भाग का बहुभाग ऐसा =४ / ४।३–।५।५ / ५– विहारवत्स्वस्थान में देना । अवशेष एक भाग ऐसा =१ / ४।३–।५।५ / ५– यथायोग्य अन्य पदों में देना । वहां त्रस पर्याप्तों की मध्य अवगाहना संख्यात घनांगुल मात्र फलराशि करके विहारवत्स्वस्थान कृष्णलेश्यावाले जीवों का प्रमाणमात्र इच्छाराशि को गुणा करनेपर **प्र१, फ६ॄ, इ** =४ / ४।३–।५।५ / ५– लब्धराशि ऐसी =४।६ॄ / ४।३–।५।५ / ५– अपवर्तन करनेपर संख्यात सूच्यंगुल से गुणित जगत्प्रतरमात्र विहारवत्स्वस्थान में क्षेत्र ऐसा **=२ॄ** होता है । पुनश्च पल्य के असंख्यातवें भागमात्र प / a घनांगुल ६ से गुणित जगत्श्रेणी – मात्र प्रमाण को किंचित् कम तीन का भाग देनेपर, कृष्णलेश्यायुक्त वैक्रियिकराशि ऐसी –६ ।प / ३– a इसको संख्यात की संदृष्टि पांच का अंक उसका भाग देकर बहुभाग ऐसा –६ ।प।४ / ३– ।a।५ स्वस्थानस्वस्थान में देना । अवशेष एक भाग का बहुभाग ऐसा –६ ।प।४ / ३–।a।५।५ विहारवत्स्वस्थान में देना।

— —

अवशेष एक भाग का बहुभाग ऐसा $\frac{-६ । प । ४}{३- ७ । ५ । ५ । ५}$ वेदना समुद्घात में देना। अवशेष एक भाग का बहुभाग ऐसा $\frac{-६ । प । ४}{३- ७ । ५ । ५ । ५ । ५}$ कषाय समुद्घात में देना । अवशेष एक भाग ऐसा $\frac{-६ । प । १}{३- ७ । ५ । ५ । ५ । ५}$ वैक्रियिक समुद्घात में देना । इसको यथायोग्य विक्रिया की अवगाहना संख्यात घनांगुलमात्र से गुणा करनेपर वैक्रियिक समुद्घात में घनांगुल का वर्ग ऐसा ६।६ उससे गुणित असंख्यात जगत्श्रेणीमात्र क्षेत्र ऐसा होता है –७।६।६

[लोक के प्रकार] – **सामान्य लोक** – लोकमात्र, **अधोलोक** – लोक का चार सातवां (चार सप्तमांश) भागमात्र, **ऊर्ध्वलोक** – लोक का तीन सातवां भागमात्र, **तिर्यक्लोक** – लाख योजन से गुणित जगत्प्रतर का उनचासवां भागमात्र और **मनुष्यलोक** – संख्यात घनांगुलमात्र ऐसा जानना –

नाम	सामान्य	अधः	ऊर्ध्व	तिर्यक्	मनुष्यलोक
प्रमाण	≡	$\frac{≡४}{७}$	$\frac{≡३}{७}$	$\frac{=१ल}{४९}$	६१

वहां कृष्णलेश्यावाले स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणांतिक, उपपाद युक्त जीव सर्व लोक में हैं । विहारवत्स्वस्थान का क्षेत्र सामान्यादिक तीन लोकों का असंख्यातवां भागमात्र, तिर्यक्लोक का संख्यातवां भागमात्र, मनुष्यलोक से असंख्यातगुणा जानना ।

पुनश्च वैक्रियिक का क्षेत्र सामान्यादि चार लोक के असंख्यातवें भागमात्र, मनुष्यलोक से असंख्यातगुणा जानना ।

पुनश्च ऐसे ही नील, कपोत लेश्या में जानना, विशेष इतना है कि जीवों का प्रमाण किंचित् कम कम जानना । पुनश्च पीतलेश्यावाली जीवराशि ऐसी $\frac{||||}{४}$।६५= $\frac{१ \frac{१}{१}}{}$ इसको संख्यात का भाग देकर बहुभाग ऐसा $\frac{||||}{४}$।६५= $\frac{\frac{१}{१}।४}{।५}$ स्वस्थानस्वस्थान में देना । अवशेष का बहुभाग ऐसा $\frac{||||}{४}$।६५= $\frac{\frac{१}{१}।४}{।५।५}$ विहारवत्स्वस्थान में देना । अवशेष का बहुभाग ऐसा

|||| = ७ / १।४ / ४।६५=।५।५।५ वेदना समुद्घात में देना । अवशेष का बहुभाग ऐसा |||| = ७ / १।४ / ४।६५=।५।५।५।५

कषाय समुद्घात में देना। अवशेष एकभाग ऐसा |||| = ७ / १ / ४।६५=।५।५।५।५ वैक्रियिक समुद्घात में देना । [ये संख्या हुयी, अब क्षेत्र कहते हैं ।]

वहां स्वस्थानस्वस्थान राशि को घनांगुल के संख्यातवें भाग से गुणा करनेपर उसका क्षेत्र ऐसा |||| = ७ / १।४।६ / ४।६५=।५।७ पुनश्च वेदना, कषाय समुद्घात राशि को साढ़े चार गुणा घनांगुल का संख्यातवां भाग ऐसा ६।९ / ७।२ उससे गुणा करनेपर वेदना समुद्घात का क्षेत्र ऐसा

|||| = ७ / १।४।६।९ / ४।६५=।५।५।५।७।२ होता है और कषाय समुद्घात का क्षेत्र ऐसा होता है

|||| = ७ / १।४।६।९ / ४।६५=।५।५।५।५।७।२ । पुनश्च विहारवत्स्वस्थान राशि को संख्यात घनांगुल से गुणा करनेपर उसका क्षेत्र ऐसा |||| = ७ / १।४।६७ / ४।६५=।५।५

पुनश्च वैक्रियिक समुद्घातराशि को संख्यात घनांगुल से गुणा करनेपर उसका क्षेत्र ऐसा होता है |||| = ७ / १।१।६७ / ४।६५=।५।५।५।५ ।

पुनश्च व्यंतरदेवराशि ऐसी = / ४।६५=।८१।१०° इसको संख्यात वर्ष अपनी आयु संबंधी शुध्दशलाका दो बार संख्यात गुणित असंख्यातमात्र ऐसी ə।१।१ उसका भाग देनेपर एक समय में मरनेवालों का प्रमाण ऐसा = / ४।६५=।८१।१०°।ə।१।१ । इसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर बहुभागमात्र विग्रहगति जीवराशि ऐसी होती है = १० / प / ə / ४।६५=।८१।१०°।ə।१।१।प / ə इसको प्रतिभाग का भाग देकर, बहुभागमात्र मारणांतिक

समुद्घात जीवराशि ऐसी = १∩/प/७ । १∩/प/७ । इसको प्रतिभाग का भाग
४।६५ = ।८१।१०।७।ꣳ।ꣳ।प/७।प/७

देकर एक भागमात्र दूरमारणांतिक जीवराशि ऐसी - = १∩/प/७ १∩/प/७ । १
४।६५ = ।८१।१०।७।ꣳ।ꣳ।प/७।प/७।प/७

इसको मारणांतिक समुद्घात का काल अंतर्मुहूर्त संबंधी शुध्दशलाका संख्यात गुणित असंख्यातमात्र ऐसी ७।ꣳ उससे गुणा करके एक समय का भाग देते हैं तब सर्व इकट्ठे हुये दूर मारणांतिक समुद्घातवालों का प्रमाण ऐसा = । १∩/प/७ । १∩/प/७ ।१।७।ꣳ ।
४।६५ = ।८१।१०।७।ꣳ। ꣳ।प/७।प/७।प/७

पुनश्च एक राजू का संख्यातवां भागमात्र लम्बा, सूच्यंगुल का संख्यातवां भागमात्र चौड़ा और ऊंचा क्षेत्र ऐसा 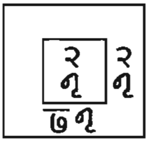

उसका घनफल प्रतरांगुल के संख्यातवें भाग से गुणित जगत्श्रेणी का संख्यातवां भागमात्र ऐसा −।४ / ꣳ।ꣳ

[**विशेषार्थ** - −२।२ / ७ꣳ।ꣳ।ꣳ → −।४ / ७ꣳ।ꣳ।ꣳ → −।४ / ७।ꣳ → −।४ / ꣳ।ꣳ]

उससे उस राशि को गुणा करनेपर दूर मारणांतिक समुद्घात का क्षेत्र ऐसा होता है-
= । १∩/प/७ । १∩/प/७ ।१।७।ꣳ −।४
४।६५ = ।८१।१०।७।ꣳ।ꣳ।प/७।प/७।प/७।ꣳ।ꣳ

पुनश्च बारह योजन लम्बा, नौ योजन चौड़ा, सूच्यंगुल के संख्यातवें भागमात्र ऊंचा क्षेत्र ऐसा जानना 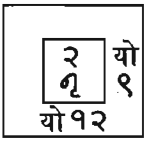

। उसका घनफल संख्यात घनांगुलमात्र ऐसा ६ꣳ उससे संख्यात जीवों को गुणा करनेपर तेजस समुद्घात का क्षेत्र ऐसा होता है ꣳ।६ꣳ।

पुनश्च सूच्यंगुल का संख्यातवां भागमात्र चौड़ा और ऊंचा, संख्यात योजन लम्बा क्षेत्र ऐसा 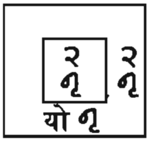 होता है । इसका घनफल संख्यात घनांगुलमात्र ऐसा ६७ इससे संख्यात जीवों को गुणा करनेपर आहारक समुद्घात का क्षेत्र ऐसा ७।६७ होता है।

पुनश्च सौधर्मद्विकराशि घनांगुल के तृतीयमूल से गुणित जगत्श्रेणीमात्र ऐसी −३ इसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर, समयसमय् प्रति मरनेवालों का प्रमाण ऐसा $\frac{-३}{प/a}$ इसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर बहुभागमात्र विग्रहवालों का प्रमाण ऐसा $\frac{-३\ \frac{९\frown}{प/a}}{प/a\ प/a}$ इसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर बहुभागमात्र मारणांतिक समुद्घातवालों का प्रमाण ऐसा $\frac{-३\ \frac{९\frown}{प/a}।\frac{९\frown}{प/a}}{प/a।प/a।प/a}$ इसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर एक भागमात्र दूर मारणांतिक समुद्घातवालों का प्रमाण ऐसा $\frac{-३\ \frac{९\frown}{प/a}।\frac{९\frown}{प/a}।१}{प/a।प/a।प/a।प/a}$ इसको द्वितीय दीर्घदंड में रहनेवाले मारणांतिकपूर्वक उपपाद जीवों का प्रमाण लाने के लिये पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर एक भागमात्र उपपाद जीवराशि ऐसी होती है $\frac{-३\ \frac{९\frown}{प/a}।\frac{९\frown}{प/a}।१।१}{प/a।प/a।प/a।प/a।प/a}$

पुनश्च संख्यात सूच्यंगुलमात्र चौड़ा और ऊंचा तथा डेढ़ राजू लम्बा क्षेत्र ऐसा होता है – 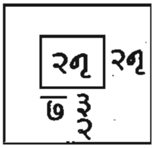 इसका घनफल संख्यात प्रतरांगुल ४७ से गुणित डेढ़ राजूमात्र

ऐसा −।३।४।ॡ / ७।२ इससे उस राशि को गुणा करनेपर उपपाद क्षेत्र ऐसा होता है −

−३ (१ / प / ७) । (१ / प / ७) ।−।३ / ७ २ ।४ॡ
प / ७ । प / ७ । प / ७ । प / ७ । प / ७

पुनश्च पद्मलेश्या में कहते हैं −पद्मलेश्यावाली जीवराशि ऐसी ≡ / ४।६५=।ॡ६

[पद्मलेश्यावाले तिर्यंच में दो राशि मिलायी - पद्मलेश्यावाले देव और मनुष्य] यहां भागहार में छह बार संख्यात की संदृष्टि संख्यात के आगे छह का अंक जानना। इसको संख्यात की संदृष्टि पांच का अंक उसका भाग देकर बहुभाग ऐसा - ≡ / ४।६५=।ॡ।६।५ (४) स्वस्थानस्वस्थान में देना, अवशेष को संख्यात का भाग देकर बहुभाग ऐसा ≡ / ४।६५=।ॡ।६।५।५ (४) विहारवत्स्वस्थान में देना। अवशेष को संख्यात का भाग देकर बहुभाग ऐसा ≡ / ४।६५=।ॡ।६।५।५।५ (४) वेदना समुद्घात में देना। अवशेष एक भाग ऐसा ≡ / ४।६५=।ॡ।६।५।५।५ (१) कषाय समुद्घात में देना। वहां पहली, दूसरी राशि को संख्यात घनांगुल मात्र क्षेत्र से गुणा करनेपर स्वस्थानस्वस्थान का क्षेत्र ऐसा ≡ ४।६ॡ / ४।६५=।ॡ।६।५ और विहारवत्स्वस्थान का क्षेत्र ऐसा होता है ≡ ४।६ॡ / ४।६५=।ॡ।६।५।५ पुनश्च तीसरी, चौथी राशि को साढ़े चार गुणा संख्यात घनांगुल से गुणा करनेपर वेदना समुद्घात का क्षेत्र ऐसा − ≡ ४।६ॡ।९/२ / ४।६५=।ॡ।६।५।५।५ होता है, कषाय समुद्घात का क्षेत्र ऐसा होता है − ≡ १।६ॡ।९/२ / ४।६५=।ॡ।६।५।५।५ ।

पुनश्च सनत्कुमार माहेन्द्र देवराशि अपने ग्यारहवें मूल से भाजित जगत्श्रेणीमात्र ऐसा − / ११ इसको संख्यात का भाग देकर बहुभाग ऐसा − ।४ / ११।५ स्वस्थानस्वस्थान में देना।

अवशेष का बहुभाग ऐसा $\frac{-\,|४}{११|५|५}$ विहारवत्स्वस्थान में देना । अवशेष का बहुभाग ऐसा $\frac{-\,|४}{११|५|५|५}$ वेदना समुद्घात में देना । अवशेष का बहुभाग ऐसा $\frac{-\,|४}{११|५|५|५|५}$ कषाय समुद्घात में देना । अवशेष एकभाग ऐसा $\frac{-\,|१}{११|५|५|५|५}$ वैक्रियिक समुद्घात में देना। इसको संख्यात घनांगुल से गुणा करनेपर वैक्रियिक समुद्घात का क्षेत्र ऐसा $\frac{-\,६ ११}{११|५|५|५|५}$ । पुनश्च सनत्कुमार माहेन्द्र देवराशि ऐसी $\overline{११}$ इसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर प्रतिसमय मरनेवालों का प्रमाण ऐसा $\overline{११}|\frac{प}{a}$ इसको इसी का भाग देनेपर बहुभागमात्र विग्रहगतिवालों का प्रमाण ऐसा $\frac{-\,\frac{१\frown}{\frac{प}{a}}}{११\frac{प}{a}|\frac{प}{a}}$ इसको उसी का भाग देनेपर बहुभागमात्र मारणांतिकवालों का प्रमाण ऐसा $\frac{-\,\frac{१\frown}{\frac{प}{a}}|\frac{१\frown}{\frac{प}{a}}}{११\frac{प}{a}|\frac{प}{a}|\frac{प}{a}}$ इसको उसी का भाग देनेपर एकभागमात्र दूरमारणांतिकवालों का प्रमाण ऐसा है $\frac{-\,\frac{१\frown}{\frac{प}{a}}|\frac{१\frown}{\frac{प}{a}}|१}{११\frac{प}{a}|\frac{प}{a}|\frac{प}{a}|\frac{प}{a}}$ इसको उसीका भाग देनेपर उपपाद दंडस्थित जीवों का प्रमाण ऐसा $\frac{-\,\frac{१\frown}{\frac{प}{a}}|\frac{१\frown}{\frac{प}{a}}}{११\frac{प}{a}|\frac{प}{a}|\frac{प}{a}|\frac{प}{a}|\frac{प}{a}}$। यहां प्रतरांगुल के संख्यातवें भाग से गुणित तीन राजू ऐसा होता है $७|३|\frac{४}{११}$ उससे दूर मारणांतिक राशि को गुणा करनेपर उसका क्षेत्र ऐसा होता है – $\frac{-\,\frac{१\frown}{\frac{प}{a}}|\frac{१\frown}{\frac{प}{a}}|}{११\frac{प}{a}|\frac{प}{a}|\frac{प}{a}|\frac{प}{a}|७}\ \frac{-\,३|४}{११}$ और संख्यात प्रतरांगुल गुणित तीन राजू ऐसा $७|३|४\,११$ [सनत्कुमार माहेन्द्र में उपपाद

करनेवाले तिर्यंच] उससे उपपाद दंडस्थित जीवराशि को गुणा करनेपर उसका क्षेत्र

ऐसा $\frac{११प}{a}|\frac{प}{a}|\frac{प}{a}|\frac{प}{a}|\frac{प}{a}|७$ — $\frac{११^{\frown}}{\frac{प}{a}}|\frac{११^{\frown}}{\frac{प}{a}}$ —३|४|ॄ होता है ।

पुनश्च तेजस और आहारक का क्षेत्र तेजोलेश्यावत् ऐसा होता है - तेजस् ॄ|६|ॄ, आहारक ॄ|६|ॄ ।

आगे शुक्ललेश्या में कहते हैं –

शुक्ललेश्या जीवराशि पल्य के असंख्यातवें भागमात्र ऐसी $\frac{प}{a}$ इसको संख्यात की संदृष्टि पांच का अंक उसका भाग देकर बहुभाग ऐसा $\frac{प|४}{a|५}$ स्वस्थानस्वस्थान में देना । अवशेष का बहुभाग ऐसा $\frac{प|४}{a|५|५}$ विहारवत्स्वस्थान में देना । अवशेष का बहुभाग ऐसा $\frac{प|४}{a|५|५|५}$ वेदनासमुद्घात में देना । अवशेष का बहुभाग ऐसा $\frac{प|४}{a|५|५|५|५}$ कषाय समुद्घात में देना । अवशेष एक भाग ऐसा - $\frac{प|१}{a|५|५|५|५}$ वैक्रियिक समुद्घात में देना । वहां प्रथम राशि [स्वस्थानस्वस्थान] को घनांगुल का संख्यातवां भाग ऐसा $\frac{६}{ॄ}$ उससे गुणा करनेपर स्वस्थानस्वस्थान का क्षेत्र ऐसा होता है $\frac{प|४|६}{a|५|ॄ}$। तीसरी [वेदना समुद्घात] और चौथी [कषाय समुद्घात] राशि को साढ़ेचार गुणा घनांगुल के संख्यातवें भाग से गुणा करनेपर वेदना समुद्घात का क्षेत्र ऐसा $\frac{प|४ \quad ६|९}{a|५|५|५|ॄ|२}$ और कषाय समुद्घात का क्षेत्र ऐसा होता है $\frac{प|४ \quad ६|९}{a|५|५|५|५|ॄ|२}$। पुनश्च दूसरी राशि [विहारवत्स्वस्थान] को संख्यात घनांगुल से गुणा करनेपर विहारवत्स्वस्थान का क्षेत्र ऐसा होता है - $\frac{प|४|६|ॄ}{a|५|५}$ पुनश्च पंचम राशि [वैक्रियिक] को संख्यात घनांगुल से गुणा करनेपर वैक्रियिक समुद्घात का क्षेत्र ऐसा $\frac{प|६|ॄ}{a|५|५|५|५}$ पुनश्च छह राजू लम्बा, सूच्यंगुल का संख्यातवां भागमात्र

चौड़ा, ऊंचा क्षेत्र 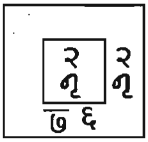 उसका घनफल प्रतरांगुल के संख्यातवें भाग से गुणित

छह राजूप्रमाण ऐसा ७।६।४ उससे संख्यात जीवराशि को गुणा करनेपर मारणांतिक समुद्घात का क्षेत्र ऐसा ७।६।४।ॻ होता है । पुनश्च तेजस, आहारक का क्षेत्र पद्मलेश्यावत् ऐसा होता है - तेजस् ॻ।६।ॻ, आहारक ॻ।६।ॻ । पुनश्च केवली समुद्घात में किंचित् कम चौदह राजू ऊंचा, बारह अंगुल चौड़ा क्षेत्र का **'वासोत्तिगुणो परिही'** इत्यादि सूत्र द्वारा १२।३।१२।–।१४– दो सौ सोलह गुणा प्रतरांगुल गुणित जगत्श्रेणी मात्र क्षेत्र हुआ –४।२१६ उसको चालीस जीवों के प्रमाण से गुणित करनेपर स्थितदंड का क्षेत्र ऐसा होता है –४।८६४० इसको नौ गुणा करनेपर उपविष्ट दंड का क्षेत्र ऐसा होता है –४।७७७६०।

पुनश्च कुछ कम चौदह राजू लम्बे, सात राजू चौड़े, बारह अंगुल ऊंचे क्षेत्र का क्षेत्रफल सूच्यंगुल गुणित जगत्प्रतर से चौबीस गुणा ऐसा हुआ =२।२४ इसको चालीस जीवों के प्रमाण से गुणा करनेपर पूर्वाभिमुख कपाट का क्षेत्र ऐसा होता है =२।९६० इससे तीनगुणा उपविष्ट का ऐसा =।२।२८८० होता है ।

पुनश्च किंचित् कम चौदह राजू लम्बा, पूर्व पश्चिम में लोकवत् चौड़ा - वहां मुख एक राजू ७१, भूमि सात राजू ७७ मिलकर आठ राजू ७८ आधा करनेपर चार राजू ७४, गच्छ सात राजू से गुणा करनेपर चार प्रतरराजूप्रमाण क्षेत्र ऐसा =४/७ अधोलोक का हुआ । और मुख एक राजू ७, भूमि पांच राजू ७५ जोड़नेपर छह राजू ७६, आधा करनेपर तीन राजू ७३ होते हैं। इसको गच्छ साढ़े तीन राजू –७/७ २ से गुणा करनेपर ऐसा होता है = ७।३ / ७।७।२ अपवर्तन करनेपर ऐसा = ३ / ७।२, इसको दोगुणा करनेपर ऊर्ध्वलोक का क्षेत्र =३/७ होता है। अधोलोक और ऊर्ध्वलोक का क्षेत्र मिलकर जगत्प्रतरमात्र क्षेत्र हुआ = । इसको बारह अंगुल की ऊंचाई से गुणित करके जीवों का प्रमाण चालीस से गुणा करनेपर चार सौ अस्सी सूच्यंगुल से गुणित जगत्प्रतरमात्र उत्तराभिमुख कपाट का क्षेत्र ऐसा =२।४८० होता है । पुनश्च इससे तीनगुणा उपविष्ट का ऐसा =२।१४४० होता है ।

पुनश्च लोक का असंख्यातवां भागमात्र वातवलय का क्षेत्र घटाने को लोक को असंख्यात का भाग देकर एक कम असंख्यात से गुणा करनेपर प्रतर का क्षेत्र ऐसा $\frac{\equiv}{a}$ । $\frac{9a}{a}$, पुनश्च लोकपूरण का क्षेत्र सर्वलोकमात्र ऐसा है ≡।

पुनश्च **स्पर्शनाधिकार** में कहते हैं – वहां कृष्णलेश्यावाले के स्वस्थानस्वस्थान, वेदना, कषाय, मारणांतिक, उपपाद इन पांच पदों में स्पर्श सर्व लोकमात्र ऐसा है –

≡ । पुनश्च एक राजू लम्बा और चौड़ा, संख्यात सूच्यंगुल ऊंचा तिर्यक्लोक ऐसा 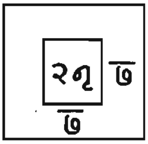

इसका क्षेत्रफल संख्यात सूच्यंगुल गुणित प्रतररज्जूमात्र विहारवत्स्वस्थान का स्पर्श ऐसा $\frac{=}{४९}$ २ᴒ है ।

पुनश्च एक राजू लम्बे, चौड़े, पांच राजू ऊंचे क्षेत्र 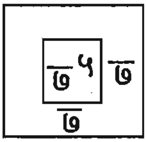 का क्षेत्रफल

पांच घनराजूमात्र $\left[७५ । ७ । ७ \longrightarrow \frac{\equiv}{३४३} ५ \right]$ वैक्रियिक का स्पर्श ऐसा $\frac{\equiv}{३४३}$ ५ पुनश्च ऐसे ही नील, कपोत में जानना ।

पुनश्च पीतलेश्या में स्वस्थानस्वस्थान का स्पर्श लाने को रज्जूप्रतर क्षेत्र में से लवणोद, कालोद, स्वयंभूरमण समुद्रों का क्षेत्रफल घटाया है । उसका विधान टीका में है, उसकी संदृष्टि सुगम है । सिध्द हुआ स्वस्थानस्वस्थान का स्पर्श संख्यात सूच्यंगुल से गुणित जगत्प्रतर का इक्यावनवां भागमात्र ऐसा होता है $\frac{=}{५१}$ २ᴒ । पुनश्च विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक समुद्घात में क्षेत्र किंचित् कम आठ चौदहवां भागमात्र ऐसा होता है $\frac{८}{१४}$ – यहां किंचित् कम करने की संदृष्टि आगे ऐसी – जाननी । वहां चौदह घन राजू की एक शलाका हो, तो आठ घनराजू की कितनी होगी ऐसा त्रैराशिक

प्रमाण	फल	इच्छा
$\frac{\equiv}{३४३}$ १४	श१	$\frac{\equiv}{३४३}$ ८

करनेपर आठ चौदहवां भागमात्र $\frac{८}{१४}$

होता है । मारणांतिक में किंचित् कम नौ चौदहवां भागमात्र स्पर्श ऐसा है ९ – / १४ ।
तेजस, आहारक में संख्यात घनांगुलमात्र ऐसा है ६ॴ । उपपाद में किंचित् कम डेढ़ चौदहवां भागमात्र $\left[\frac{३}{२}\times\frac{१}{१४}=\frac{३}{२८}\right]$ ऐसा ३ – / २८ यहां तीन को अट्ठाइस का भाग जानना।

पुनश्च पद्मलेश्या में स्वस्थानस्वस्थान में पूर्ववत् स्पर्श ऐसा = / ५१ ।२ॴ है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणांतिक समुद्घात में किंचित् कम आठ चौदहवां भागमात्र ऐसा ८ – / १४ है । तेजस, आहारक में संख्यात घनांगुलमात्र ऐसा ६ॴ ।

पुनश्च शुक्ललेश्या में स्पर्श स्वस्थानस्वस्थान में पीतलेश्यावत् ऐसा = / ५१ २ॴ है। विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय, वैक्रियिक, मारणांतिक समुद्घात में किंचित् कम छह चौदहवां भागमात्र ऐसा ६ – / १४ है । केवलीसमुद्घात में संख्यात प्रतरांगुल से गुणित जगत्श्रेणी –४ॴ इसको दोगुणा करनेपर स्थितदंड का ऐसा –४ॴ।२ और उपविष्ट दंड का ऐसा –४ॴ।२, संख्यात सूच्यंगुल से गुणित जगत्प्रतर को = २ॴ दो गुणा करनेपर पूर्व, उत्तर सन्मुख स्थित, उपविष्ट कपाट का ऐसा =२ॴ२|=२ॴ२|=२ॴ२|=२ॴ२ है । प्रतर और लोकपूरण का क्षेत्रवत् स्पर्श ऐसा प्रतरसमुद्घात ≡ / ७ $\frac{१०}{७}$, लोकपूरण ≡ जानना ।

पुनश्च **कालअधिकार** में संदृष्टि ऐसी जाननी –

नाम	कृष्ण	नील	कपोत	पीत	पद्म	शुक्ल
उत्कृष्टकाल	२ॴ२ / सा३३	२ॴ२ / सा१७	२ॴ२ / सा७	२ॴ२ / सा५- / २	२ॴ२ / सा३७ / २	२ॴ२ / सा३३
जघन्यकाल	२ॴ	२ॴ	२ॴ	२ॴ	२ॴ	२ॴ

यहां उत्कृष्ट में सागर तैंतीस, सत्रह, सात, किंचित् कम अढ़ाई, साढ़े अठारह, तैंतीस के ऊपर दो अंतर्मुहूर्त अधिक की संदृष्टि जाननी । और जघन्य में अंतर्मुहूर्त की संदृष्टि जाननी ।

पुनश्च **अंतर अधिकार** में कृष्णादि लेश्याओं के अंतर की संदृष्टि ऐसी –

नाम	कृष्ण	नील	कपोत
उत्कृष्ट अंतर	२७ृ१० पू.को व– ८ सा ३ ३	२७ृ८ पू.को व– ८ सा ३ ३	२७ृ६ पू.को व– ८ सा ३ ३
नाम	पीत	पद्म	शुक्ल
उत्कृष्ट अंतर	२७ृ६ व१००००७ृ पु=प=२ a	२७ृ५ व१००००७ृ प a सा २ पु=प=२ a	२७ृ७ व१००००७ृ प a सा २ पु=प=२ a

यहां कृष्णादि तीन लेश्याओं में दस, आठ, छह अंतर्मुहूर्त अधिक आठ कम कोटि पूर्व वर्षसहित तैंतीस सागरमात्र अंतर जानना । पीत में छह अंतर्मुहूर्त संख्यात हजार वर्ष अधिक पुद्‌गल परिवर्तन आवली के असंख्यातवें भागमात्र अंतर जानना । इसमें पल्य के असंख्यातवें भाग अधिक दो सागर जोड़नेपर पद्म, शुक्ल में अंतर होता है । विशेष इतना पद्म में पांच, शुक्ल में सात अंतर्मुहूर्त की अधिकता जाननी ।

पुनश्च **अल्पबहुत्व** अधिकार में जीवों की संख्या संख्याअधिकारवत् ऐसी जाननी-

नाम	कृष्ण	नील	कपोत	पीत	पद्म	शुक्ल
प्रमाण	। १३– ३–	१३– । ३–	१३– ॥ ३–	aa७ृ	aa	a

आगे **भव्यमार्गणा** अधिकार में संदृष्टि कहते हैं - वहां जीवों की संख्या में अभव्यराशि जघन्य युक्तानंतमात्र ऐसी **जजुअ**, भव्यराशि किंचित् कम संसारीराशिमात्र ऐसी **१३–** जानना ।

पुनश्च परिवर्तनों में पुद्‌गल परिवर्तन का अगृहीत ग्रहणकाल अनंत, उससे अनंतगुणा मिश्र ग्रहणकाल, उससे अनंतगुणा जघन्य गृहीत ग्रहणकाल, इसके अनंतवें भाग अधिक

जघन्य पुद्गल परिवर्तन काल, उससे अनंतगुणा उत्कृष्ट गृहीत ग्रहणकाल, इसका अनंतवां भाग अधिक उत्कृष्ट पुद्गल परिवर्तन काल, वहां अनंत की संदृष्टि ऐसी **ख**, अनंतवां भाग मिलाने की संदृष्टि एक अधिक अनंत का गुणकार और अनंत का भागहार है। ऐसा करनेपर ऐसी संदृष्टि होती है –

नाम	अगृहीत	मिश्र	जघन्यगृहीत	ज.पुद्गल परि.	उत्कृष्ट गृहीत	उ. पुद्गल परि.
काल	ख	खख	खखख	खखख $\frac{\overset{१}{ख}}{ख}$	खखख $\frac{\overset{१}{ख}}{ख}$ ख	खखख $\frac{\overset{१}{ख}}{ख}$ ख $\frac{\overset{१}{ख}}{ख}$

पुनश्च अगृहीत की शून्य, मिश्र की हंसपद, गृहीत की एक, अनंत की दो बार लिखना ऐसी संदृष्टि करनेपर पुद्गल परिवर्तन का क्रम ऐसा होता है –

००+	००+	००१	००+	००+	००१
++०	++०	++१	++०	++०	++१
++१	++१	++०	++१	++१	++०
११+	११+	११०	११+	११+	११०

इसका विशेष टीका से जान लेना ।

पुनश्च क्षेत्र, काल, भव परिवर्तन में विशेष संदृष्टि है नहीं । भावपरिवर्तन में संदृष्टि ऐसी $\underset{।}{\Delta}$ है । यहां स्थिति में संदृष्टि ऐसी जाननी –

स्थिति	$\underset{।}{\Delta}$ अंत:को२	$\underset{।}{\Delta}$१	$\underset{।}{\Delta}$२
कषायाध्यवसाय स्थान	ज००≡ə	००≡ə	००≡ə
अनुभागबंध अध्यवसायस्थान	ज००≡ə००≡ə	००≡ə००≡ə	००≡ə००≡ə
योगस्थान	ज००ə̄००ə̄००ə̄००ə̄	००ə̄००ə̄००ə̄००ə̄००ə̄	००ə̄००ə̄००ə̄००ə̄००ə̄००ə̄

स्थिति	मध्यस्थिति	$\underset{।}{\Delta}$३० को २ सागर
कषायाध्यवसाय स्थान	००	००≡ə००$_{७}$
अनुभागबंध अध्यवसायस्थान	००	००≡ə००≡ə००$_{७}$
योगस्थान	००	००ə̄००ə̄००ə̄००ə̄

वहां जघन्य स्थिति अंत:कोडाकोडी उससे एक, दो आदि समय अधिक मध्यस्थिति, उत्कृष्ट स्थिति ज्ञानावरण की अपेक्षा तीस कोडाकोडी सागर उनकी संदृष्टि जाननी। पुनश्च एक एक स्थितिभेद में असंख्यात लोकमात्र कषायाध्यवसाय स्थानों का पलटना होता है। पुनश्च एक एक कषायाध्यवसाय स्थान में असंख्यात लोकमात्र अनुभागबंधअध्यवसाय स्थानों का पलटना होता है । पुनश्च एक एक अनुभागबंधअध्यवसाय स्थान में जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भागमात्र योगस्थानों का पलटना होता है । वहां असंख्यात लोक की ऐसी ≡ə, जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग की ऐसी ə संदृष्टि है, वहां एक एक स्थितिसंबंधी बहुत बार जिनका पलटना होता है उनकी संदृष्टियों को यथासंभव दो बार आदि लिखना जानना । सर्वत्र जघन्य से आगे और अन्यत्र मध्य भेदों के ग्रहण निमित्त बिंदियों की संदृष्टि जाननी ।

आगे **सम्यक्त्वमार्गणा** अधिकार में संदृष्टि कहते हैं –

वहां जीवों की अवगाहना में संदृष्टि ऐसी –

नाम	सूक्ष्मनिगोद के ज.शरीर की	मध्य शरीरकी	मत्स्य के उ.शरीरकी	जघन्यादिवेदना समुद्घातवाले की	उ. वेदनासमुद्घातवाले की
प्रदेशप्रमाण	६ / ə	१ २ ; ६ ६०० ; ə ə	६ꞑꞑꞑꞑ	१ ; ६ꞑꞑꞑꞑ००००	६ꞑꞑꞑꞑ३

नाम	जघन्यादि मारणांतिक समुद्घातवाले की	उत्कृष्ट मारणांतिक समुद्घातवाले की	लोकपूरण की
प्रदेशप्रमाण	१ ; ६ꞑꞑꞑꞑ३००	– ।१५।४ꞑ ; ७ २	≡

वहां जघन्य शरीर की अवगाहना घनांगुल के असंख्यातवें भागमात्र ६/ə, उससे एक, दो प्रदेश अधिक आदि मध्य अवगाहना, पुनश्च उससे पांच बार संख्यात गुणित उत्कृष्ट शरीर अवगाहना, उससे एक प्रदेश अधिक आदि वेदना समुद्घात अवगाहना, उत्कृष्ट शरीर अवगाहना से तीनगुणी उत्कृष्ट वेदना समुद्घात अवगाहना, उससे एक प्रदेश अधिक आदि मारणांतिक समुद्घात अवगाहना, साढ़ेसात राजू –/७ १५/२ को संख्यात

प्रतरांगुल **४७** से गुणा करनेपर मारणांतिक की उत्कृष्ट अवगाहना और लोकमात्र लोकपूरण की अवगाहना जाननी । पुनश्च यहां उत्कृष्ट मारणांतिक की अवगाहना में स्थंडिल क्षेत्र जानने को रचना ऐसी –

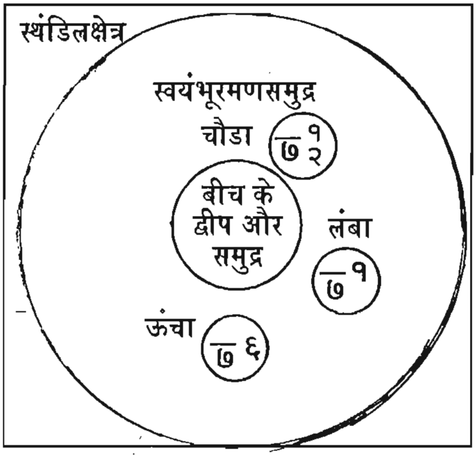

स्थंडिल क्षेत्र - स्वयंभूरमण समुद्र के बाह्यकोण में है । स्थंडिलक्षेत्र से मरकर महामत्स्य महारौरव नामक सातवें नरक में उपजता है उसका उत्कृष्ट मारणांतिक समुद्घात होता है । यहां से सातवें नरक का महारौरव नामक बिल छह राजू नीचे हैं ।

पुनश्च मत्स्य के मारणांतिक दंड के क्षेत्र की रचना ऐसी जाननी –

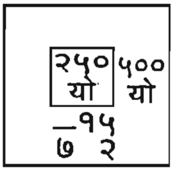

मत्स्य अवगाहना - **२५०** योजन ऊंची, **५००** योजन चौड़ी, स्थंडिल क्षेत्र से महारौरव तक प्रदेश पंक्ति लम्बी साढ़े सात राजू । इसका घनफल - संख्यात प्रतरांगुल गुणित साढ़े सात राजू ऐसा **– ।१५।४७ / ७ । २।** ।

द्रव्यों की संख्या में **द्रव्यमान** से जीवराशि ऐसी **१६** इससे एक, दो, तीन बार अनंतगुणा क्रम से पुद्गल, व्यवहार काल, अलोकाकाश जानना । धर्म, अधर्म, लोकाकाश एक एक तथा मुख्य काल लोकमात्र जानना ।

क्षेत्रमान से जीव, पुद्गल, व्यवहारकाल, अलोकाकाश तो लोक से क्रम से

एक, दो, तीन, चार बार अनंतगुणा जानना । धर्म, अधर्म, लोकाकाश, मुख्य काल लोकमात्र ≡ जानने ।

कालमान से जीव, पुद्गल, व्यवहारकाल, अलोकाकाश तो अतीत काल से क्रम से एक, दो, तीन, चार बार अनंतगुणा जानने । धर्म, अधर्म, लोकाकाश, मुख्य काल कल्पकाल से असंख्यात a गुणा जानने ।

भावमान से जीव, पुद्गल, व्यवहारकाल, अलोकाकाश तो क्रम से केवलज्ञान के चार, तीन, दो, एक बार अनंतवां भागमात्र जानने । धर्म, अधर्म, लोकाकाश, मुख्य काल अवधिज्ञान के भेदों के असंख्यातवें भागमात्र जानने । उनकी रचना ऐसी–

नाम	जीव	पुद्गल	धर्म	अधर्म	लोकाकाश	मुख्यकाल	व्यवहारकाल	अलोकाकाश
द्रव्यमान	१६	१६ख	१	१	१	≡	१६खख	१६खखख
क्षेत्रमान	≡ ख	≡ खख	≡	≡	≡	≡	≡ खखख	≡ खखखख
कालमान	अख	अखख	क a	क a	क a	क a	अखखख	अखखखख
भावमान	के खखखख	के खखख	ओ a	ओ a	ओ a	ओ a	के खख	के ख

ओ - अवधिज्ञान के भेद ≡a मात्र हैं ।

पुनश्च यहां क्षेत्र, काल, भाव मान में प्रमाण लाने के लिये त्रैराशिक ऐसे –

प्रमाण	फल	इच्छा	लब्ध
≡	श१	१६	श१६ ≡
अ	श१	१६	श१६ अ
प ॄ	श१	≡	श ≡ प ॄ
≡	श१	≡a	श ≡a ≡
१६	श१	के	श के १६

प्रमाण	फल	इच्छा	लब्ध
श१	≡	श१६ ≡	≡ ख
श१	अ	श१६ अ	अख
श१	क	श ≡ अपवर्तन करनेपर प श a ॄ	क a
श a	a	श१	आ a
शख	के	श१	के खखखख

यहां जीवराशी की ऐसी **१६**, अनंत की ऐसी **ख**, अतीतकाल की ऐसी **अ**, असंख्यात की ऐसी **a**, कल्पकाल की ऐसी **क**, अवधि के भेदों की प्राकृत नाम के

आदि अक्षररूप ऐसी **ओ** [ओही - अवधि], शलाका की ऐसी **श**, पल्य के संख्यातवें भाग की ऐसी **प/१** संदृष्टि जानकर, यथासंभव समझना ।

तेइस जाति की पुद्‌गल वर्गणाओं के कथन में **अणुवर्गणा** एक एक परमाणुरूप, **संख्याताणुवर्गणा** का जघन्य दो दो परमाणुरूप, मध्य तीन तीन आदि परमाणुरूप, उत्कृष्ट उत्कृष्टसंख्यात परमाणुरूप सो उत्कृष्ट संख्यात की संदृष्टि ऐसी **१५**, पुनश्च **असंख्याताणुवर्गणा** का जघन्य जघन्यअसंख्यात अणुरूप उसकी संदृष्टि ऐसी **१६**, मध्य एक अधिक **१/१६** इत्यादिरूप उत्कृष्ट उत्कृष्टअसंख्यात अणुरूप उसकी संदृष्टि ऐसी **२५५**, पुनश्च **अनंताणुवर्गणा** का जघन्य तो उससे एक परमाणु अधिक ऐसा **२५६** और उत्कृष्ट इससे अनंतगुणा **२५६ख** ।

पुनश्च **आहारवर्गणा** का जघन्य उससे एक अणु अधिक और उत्कृष्ट इससे इसका अनंतवां भाग अधिक । पुनश्च **अग्राह्यवर्गणा** का जघन्य उससे एक अणु अधिक और उत्कृष्ट इससे अनंतगुणा है । पुनश्च **तेजसशरीरवर्गणा** का जघन्य उससे एक अणु अधिक और उत्कृष्ट इससे इसका अनंतवां भाग अधिक है । पुनश्च **अग्राह्यवर्गणा** का जघन्य उससे एक अणु अधिक और उत्कृष्ट इससे अनंतगुणा है । पुनश्च **भाषावर्गणा** का जघन्य उससे एक अणु अधिक और उत्कृष्ट इससे इसका अनंतवां भाग अधिक है । पुनश्च **अग्राह्यवर्गणा** का जघन्य उससे एक अणु अधिक और उत्कृष्ट इससे अनंतगुणा है । पुनश्च **मनोवर्गणा** का जघन्य उससे एक अणु अधिक और उत्कृष्ट इससे इसका अनंतवां भाग अधिक है । पुनश्च **अग्राह्यवर्गणा** का जघन्य उससे एक अणु अधिक और उत्कृष्ट इससे अनंतगुणा है । पुनश्च **कार्माणवर्गणा** का जघन्य उससे एक अणु अधिक और उत्कृष्ट इससे इसका अनंतवां भाग अधिक है । मुनश्च **ध्रुववर्गणा** का जघन्य उससे एक अणु अधिक और उत्कृष्ट इससे अनंत जीवराशिगुणा है । पुनश्च **सांतरनिरंतरवर्गणा** का जघन्य उससे एक अणु अधिक है और उत्कृष्ट इससे अनंतजीवराशि गुणा है । पुनश्च **शून्यवर्गणा** का जघन्य उससे एक अणु अधिक और उत्कृष्ट इससे अनंत जीवराशि गुणा है । ऐसी सोलह वर्गणा सिध्द हुयी ।

यहां एक अणु अधिक कहा है वहां संदृष्टि पूर्वराशि के ऊपर ऐसी **१_** करनी और अनंतगुणा कहा वहां संदृष्टि पूर्वराशि के आगे ऐसी **ख** करनी और अनंतवां भाग अधिक कहा वहां पूर्वराशि के आगे तो एक अधिक अनंत के गुणकार की ऐसी

१
ख और नीचे अनंत के भागहार की ऐसी **ख** संदृष्टि करनी । पुनश्च अनंतजीवराशि गुणा कहा वहां पूर्वराशि के आगे ऐसी **१६ख** संदृष्टि करनी ।

पुनश्च **प्रत्येकशरीरवर्गणा** की जघन्य की संदृष्टि में योगमार्गणा में बताया हुआ कार्माण का समयप्रबध्द ऐसा **स a a खख** इसको किंचित् कम डेढ़ गुणहानि ऐसी **१२–** उससे गुणा करनेपर सत्त्वरूप कार्माणस्कंध हुआ । इसको अनंतगुणा जीवराशि ऐसी **१६ख** उससे गुणा करनेपर वहां विस्रसोपचय परमाणुओं का प्रमाण आता है, इसमें कार्माणस्कंध जोड़ने के लिये अनंतगुणा जीवराशि प्रमाण गुणकार के ऊपर एक अधिक की संदृष्टि करनेपर विस्रसोपचय सहित कार्माणस्कंध ऐसा **स a a खख१२– १६ख** (ऊपर १) हुआ । [यहां जघन्य प्रत्येकशरीरवर्गणा की बात है जो अयोगकेवली के अंतिम समय में होती है] यहां एक कार्माण के समयप्रबध्द की अपेक्षा इस स्कंध को एक कर्म का मानकर नाम, गोत्र, वेदनीय इन तीन कर्मों के ग्रहणनिमित्त आगे तीन का गुणकार करना । और आयुकर्म, औदारिकशरीर और तेजसशरीर इनको मिलाने के लिये उसके ऊपर अधिक तीन राशियों की तीन ऊभी लकीर करनी । इसप्रकार जघन्य प्रत्येकशरीरवर्गणा की संदृष्टि ऐसी होती है **स a a खख१२– १६ख ३** (ऊपर १ ।।।) ।

पुनश्च सर्व कर्मों के समयप्रबध्द की अपेक्षा से पूर्वोक्तप्रकार विस्रसोपचय सहित सर्व कार्माणस्कंध ऐसा **स a a खख१२– १६ख** (ऊपर १) । यहां गुणितकर्मांश जीवों का ग्रहण है, इसलिये जघन्य समयप्रबध्द से पल्य के अर्धच्छेदों के असंख्यातवें भाग गुणा समयप्रबध्द ग्रहण करने के लिये सकार के आगे बत्तीस के अंक की संदृष्टि करनी । पुनश्च औदारिक, तेजस के स्कंध मिलाने के लिये ऊपर दो राशि अधिक की दो ऊभी लकीर करनी तथा यहां आवली के असंख्यातवें भागमात्र जीवों के शरीरों का एक स्कंध है, इसलिये आवली के असंख्यातवें भाग से गुणा करने के लिये आगे ऐसी ८/a संदृष्टि करनी । ऐसा करनेपर उत्कृष्ट प्रत्येकशरीरवर्गणा की संदृष्टि ऐसी होती है - **स३२ a a खख१२– १६ख८/a** (ऊपर ।। १)

पुनश्च **ध्रुवशून्यवर्गणा** के जघन्य की संदृष्टि इसके ऊपर एक अणु अधिक की

संदृष्टि करनेपर होती है । और वक्ष्यमाण जघन्य **बादरनिगोदवर्गणा** की संदृष्टि ऊपर एक कम की संदृष्टि करनेपर इसके उत्कृष्ट की संदृष्टि होती है । पुनश्च बादरनिगोद के जघन्य में पूर्वोक्त कार्माणस्कंध की संदृष्टि के ऊपर औदारिक, तेजस शरीर स्कंधरूप दो राशि मिलाने के लिये ऊपर दो ऊभी लकीर करनेपर एक जीव संबंधी तीन शरीरों

का स्कंध ऐसा स ॰ ॰ खख१२– १६ख (ऊपर ॥ तथा १) है । यहां गुणितकर्मांश जीवों का ग्रहण नहीं है, इसलिये सकार के आगे बत्तीस का अंक नहीं लिखा । पुनश्च एक पुलवी में असंख्यात लोकमात्र शरीर होते हैं, तो आवली के असंख्यातवें भागमात्र पुलवियों में कितने शरीर होते हैं? प्र १ फ ≡ ॰ इ ८/॰ ऐसा त्रैराशिक करनेपर शरीरों का प्रमाण ऐसा होता है ≡ ॰ ८/॰ ।

पुनश्च एक शरीर में बादरनिगोदराशि ऐसी १३–/९ उसको पांच बार असंख्यात लोक का भाग देनेपर ऐसा १३–/९ ≡ ॰ ।५ जीवों का प्रमाण होता है, तो इतने ≡ ॰ ८/॰ शरीरों में कितने जीव पाये जाते हैं? ऐसा त्रैराशिक करनेपर प्र १ फ १३–/९ ≡ ॰ ।५ इ ≡ ॰ ८/॰

लब्धराशिमात्र जीवों का प्रमाण ऐसा हुआ १३–/९ ≡ ॰ ।५ ≡ ॰ ८/॰ पुनश्च इसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर एक भागमात्र जीव क्षीणकषाय के शरीर में मरते हैं, उनको घटाने के लिये एक कम पल्य के असंख्यातवें भाग से गुणा करके पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देनेपर वहां जीवों का प्रमाण ऐसा १३–/९ ≡ ॰ ।५ ≡ ॰ ८/॰ ॰ प/॰ (ऊपर १∩/प) इससे

उस एक जीव संबंधी तीन शरीरों के संचय को गुणा करनेपर जघन्य बादरनिगोदवर्गणा की ऐसी होती है स ॰ ॰ खख१२– १६ख १३–/९ ≡ ॰ ५ ≡ ॰ ८/॰ ॰ प/॰ (ऊपर १∩/प/॰) ।

एक मूलि आदि शरीर में जघन्य बादरनिगोद के शरीरों के प्रमाण से जगत्श्रेणी के असंख्यातवें भाग गुणा शरीरों का प्रमाण ऐसा ≡ ॰ ।८/॰ ।–/॰ और एक शरीर में जीवों

का प्रमाण ऐसा है १३– ९ ≡ ७।५ इनको परस्पर गुणा करनेपर सर्वत्र जीवों का प्रमाण ऐसा १३– ९ ≡ ७।५ ≡ ७।८।– ७ ७ इससे पूर्वोक्त एक जीवसंबंधी तीन शरीरों के संचय को गुणा करनेपर और यहां गुणितकर्मांश जीवों का ग्रहण है, इसलिये सकार के आगे बत्तीस की संदृष्टि करनेपर उत्कृष्ट बादरनिगोदवर्गणा की ऐसी संदृष्टि होती है –

स३२ ७ ७ ख॥ख१२– १/१६ख१३– ९ ≡ ७।५ ≡ ७।८।– ७ ७ ।

पुनश्च **शून्यवर्गणा** के जघन्य की संदृष्टि इसके ऊपर एक अधिक की संदृष्टि करनेपर होती है । और वक्ष्यमाण जघन्य सूक्ष्मनिगोदवर्गणा की संदृष्टि के ऊपर एक कम की संदृष्टि करनेपर इसके उत्कृष्ट की संदृष्टि होती है ।

पुनश्च **सूक्ष्मनिगोदवर्गणा** के जघन्य में - उत्कृष्ट बादरनिगोदवर्गणा के शरीरों का प्रमाण ऐसा ≡ ७ ८ – ७ ७ उससे सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागगुणा एक स्कंध में शरीरों का प्रमाण ऐसा ≡ ७ ८ – २ ७ ७ ७ होता है और कायमार्गणा में उत्कृष्ट सूक्ष्म निगोदराशि का प्रमाण ऐसा १३–।८ ९ उसको पांच बार असंख्यात लोक का भाग देनेपर एक शरीर में जीवों का प्रमाण ऐसा १३–।८ ९। ≡ ७।५ है । इसको उन शरीरों के प्रमाण से गुणा करनेपर जीवों का प्रमाण ऐसा १३–।८ ९। ≡ ७।५ ≡ ७।८।२।– ७ ७ ७ हुआ । इसको पूर्वोक्त एक जीव संबंधी तीन शरीरों के संचय को गुणा करनेपर तथा यहां क्षपितकर्मांश जीवों का ग्रहण है इसलिये सकार के आगे बत्तीस का गुणकार न करनेपर, जघन्य सूक्ष्मनिगोद वर्गणा की संदृष्टि ऐसी होती है - स ७ ७ ख॥ख१२– १/१६ख १३– ८ ९ ≡ ७।५ ≡ ७ ८ २ – ७ ७ ७ ।

पुनश्च ऐसी ही संदृष्टि उत्कृष्ट सूक्ष्मनिगोदवर्गणा की जाननी, विशेष इतना है कि यहां गुणितकर्मांश जीवों का ग्रहण है, इसलिये सकार के आगे बत्तीस के अंक की संदृष्टि करनी ।

पुनश्च **नभोवर्गणा** के जघन्य की संदृष्टि उसके ऊपर एक अधिक की संदृष्टि करनेपर होती है । पुनश्च इसको प्रतर के असंख्यातवें भाग से गुणा करने की आगे

ऐसी $\frac{=}{a}$ संदृष्टि करनेपर उसके उत्कृष्ट की संदृष्टि होती है ।

पुनश्च **महास्कंधवर्गणा** के जघन्य की संदृष्टि उसके ऊपर एक अधिक की संदृष्टि करनेपर होती है । पुनश्च इसको पल्य के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एक भाग इसमें मिलाने के लिये एक अधिक पल्य का असंख्यातवां भाग ऐसा $\frac{\text{१}}{\frac{\text{प}}{a}}$ उससे गुणा करके पल्य का असंख्यातवां भाग ऐसा $\frac{\text{प}}{a}$ उसका भाग देनेपर उत्कृष्ट महास्कंध की संदृष्टि होती है । इसप्रकार तेइस वर्गणाओं की संदृष्टि जाननी ।

पुनश्च पुद्‌गल परमाणुओं के स्निग्ध रूक्ष गुण पाये जाते हैं, उनके सब अंक एक से लेकर एक एक से बढ़ते हुये, समअंश दो से लेकर दो दो से बढ़ते हुये तथा विषम अंश बंधयोग्य तीन से लेकर दो दो से बढ़ते हुये संख्यात ॻ, असंख्यात a, अनंत **ख** तक जानने । उनकी रचना –

सर्व अंश		समअंश		विषम अंक	
स्निग्ध	रूक्ष	स्निग्ध	रूक्ष	स्निग्ध	रूक्ष
ख	ख	ख	ख	ख	ख
०	०	०	०	०	०
०	०	०	०	०	०
a	a	a	a	a	a
०	०	०	०	०	०
०	०	०	०	०	०
ॻ	ॻ	ॻ	ॻ	ॻ	ॻ
०	०	०	०	०	०
०	०	०	०	०	०
६	६	१२	१२	१३	१३
५	५	१०	१०	११	११
४	४	८	८	९	९
३	३	६	६	७	७
२	२	४	४	५	५
१	१	२	२	३	३

यहां मध्य अंशों के ग्रहण निमित्त बिंदियों की संदृष्टि जाननी ।

गुणस्थानों में जीवसंख्या ऐसी -

	सिध्द	३
	अयोगी	५९८
	सयोगी	८९८५०२
	क्षीणमोह	५९८
२९९	उपशांतमोह	०
२९९	सूक्ष्मसाम्पराय	५९८
२९९	अनिवृत्तिकरण	५९८
२९९	अपूर्वकरण	५९८
	अप्रमत्त	२९६९९१०३
	प्रमत्त	५९३९८२०६
	देशसंयत	प/(əə४ə) धन१३को
	असंयत	प/(ə) धन७००को
	मिश्र	प/(əə) धन१०४को
	सासादन	प/(əə४) धन५२को
	मिथ्यादृष्टि	१३–

यहां मिथ्यादृष्टि किंचित् कम संसारीराशिमात्र और सासादन दो बार असंख्यात, एक बार संख्यात से भाजित पल्यमात्र, मिश्र दो बार असंख्यात से भाजित पल्यमात्र असंयत एक बार असंख्यात से भाजित पल्यमात्र, देशसंयत दो बार असंख्यात, एक बार संख्यात, एक बार असंख्यात से भाजित पल्यमात्र जानने । यहां असंख्यात की संदृष्टि ऐसी ə, संख्यात की चार का अंक ४ जानना । पुनश्च सासादन आदि में मनुष्य क्रम से बावन कोडि, एक सौ चार कोडि, सात सौ कोडि, तेरह कोडि मिलानेरूप धनराशि जानना । प्रमत्तादि में अंकों द्वारा संख्या कही है, सो जाननी । वहां अपूर्वकरणादि में पंक्ति में क्षपकों की और दूसरी बाजू में उपशामकों की संख्या जाननी । सिध्द सिध्दराशिमात्र जानने।

पुनश्च असंयत, मिश्र, सासादन के पल्य के भागहार ऐसे असंयत ə, मिश्र ə ə, सासादन əə४ इन्हीं को एक कम आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एक भाग इन्हीं में मिलाने के लिये यहां आवली के असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात की संदृष्टि ऐसी ə उससे गुणा करके और एक कम उसका भाग देनेपर देव में असंयत आदि के भागहार ऐसे होते हैं - असंयत ə।ə / ə–१, मिश्र əəə / ə–१, सासादन əə४ə / ə–१ ।

पुनश्च इनको वैसे ही एक कम आवली के असंख्यातवें भाग का भाग देकर एक भाग मिलानेपर सौधर्मद्विक में असंयतादि के भागहार ऐसे होते हैं –

असंयत	मिश्र	सासादन
ə।ə।ə / ə–१।ə–१	əə əə / ə–१।ə–१	əə४əə / ə–१।ə–१

पुनश्च सौधर्मद्विक के सासादन के भागहार से क्रम से असंख्यात और असंख्यात और संख्यात से गुणा करनेपर सनत्कुमार युग्म में असंयतादि के भागहार होते हैं । इसी क्रम से सौधर्म युग्म के ऊपर शतार युग्म तक पांच युग्म, ज्योतिषी, व्यंतर, भवनवासी, तिर्यंच और प्रथमादि सात पृथ्वी के नारकी इन सोलह स्थानों में पूर्व पूर्व से गुणन का क्रम जानना । उनकी संदृष्टि में सनत्कुमार द्विक के सासादन में जो ऐसी əə४ə / ə–१ əəə४ / ə–१ संदृष्टि हुयी । वहां ऐसा əə चार के अंक के आगे लिखा था उसको चार के अंक के पहले लिखनेपर ऐसा हुआ əə əə / ə–१ ।४। əə / ə–१ ।४ । उसके आगे ब्रह्मद्विकादि में गुणकार यथासंभव जानने ।

पुनश्च लांतवद्विक में ऐसी संदृष्टि ə əə / ə–१ ə४ əə / ə–१ ४ के आगे दो, तीन आदि के अंक से दो, तीन आदि बार दो बार असंख्यात और एक बार संख्यात का ऐसा əə४ गुणकार जान लेना ।

उसके आगे असंख्यात में असंख्यात का ऐसा ə, मिश्र में दो बार असंख्यात का ऐसा əə, सासादन में दो बार असंख्यात एक बार संख्यात का ऐसा əə४ गुणकार जान लेना ।

प्रथम पृथ्वी के असंयत की और तिर्यंच देशसंयत के भागहार की समान संदृष्टि जाननी । इसप्रकार असंयतादि में पल्य के भागहारों की संदृष्टि होती है ।

[**विशेषार्थ -** असंयत से मिश्र का असंख्यात गुणा, मिश्र से सासादन का संख्यात गुणा और सासादन से उसके पश्चात्‌वाले स्थान के असंयत का भागहार असंख्यात गुणा इस क्रम से सप्तम पृथ्वी तक के भागहार होते हैं ।]

इसप्रकार सप्तम पृथ्वी के सासादन में भागहार ऐसा əəə$\frac{\text{ə४}}{\text{ə}-१}$|ə$\frac{\text{ə४}}{\text{ə}-१}$|१६ हुआ। उसकी लघुसंदृष्टि करने के लिये ऐसी = संदृष्टि करके आगे असंख्यातगुणा की ऐसी ə संदृष्टि करनेपर आनतद्विक के असंयत में भागहार की संदृष्टि ऐसी =ə होती है। पुनश्च इससे आरणद्विक से लेकर अंतिम ग्रैवेयक तक दस स्थानों के असंयत में भागहार क्रम से संख्यातगुणा है, सो संख्यात की संदृष्टि यहां पांच का अंक तथा एक बार, दो बार आदि की संदृष्टि आगे एक, दो आदि अंक जानने । इसप्रकार अंत में ऐसी =ə|५|१० संदृष्टि हुयी ।

पुनश्च इससे आनतद्विक से लेकर अंतिम ग्रैवेयक तक के ग्यारह स्थानों के मिथ्यादृष्टि में भागहार क्रम से संख्यातगुणे हैं, सो यहां संख्यात की संदृष्टि छह का अंक और एक बार, दो बार आदि की संदृष्टि आगे एक, दो अंक जानने । इसप्रकार अंत में ऐसी =ə|५|१०|६|११ संदृष्टि हुयी ।

पुनश्च इससे अनुदिश और विजयादि विमानों के असंयत में भागहार क्रम से संख्यात गुणे हैं, सो यहां संख्यात की संदृष्टि सात का अंक और एक बार, दो बार की संदृष्टि आगे एक, दो अंक जानने । इसप्रकार अंत में ऐसी =ə|५|१०|६|११|७|२

पुनश्च इससे आनतद्विक के मिश्र में भागहार असंख्यातगुणा है उसी संदृष्टि ऐसी =ə|५|१०|६|११|७|२|ə है । पुनश्च इससे आरणद्विक से लेकर अंतिम ग्रैवेयक पर्यंत दस स्थानों के मिश्र में भागहार क्रम से संख्यातगुणे हैं, सो यहां संख्यात की संदृष्टि आठ का अंक और एक बार, दो बार आदि की संदृष्टि एक, दो आदि अंक जानने। इसप्रकार अंत में ऐसी =ə|५|१०|६|११|७|२|ə|८|१० संदृष्टि हुयी ।

पुनश्च इससे आनतद्विक से लेकर अंतिम ग्रैवेयक तक ग्यारह स्थानों का सासादन में भागहार क्रम से संख्यातगुणा है । सो यहां संख्यात की संदृष्टि चार का अंक और एक बार,

दो बार आदि की संदृष्टि आगे एक दो आदि अंक जानने । इसप्रकार अंत में =ə।५।१०।६।११।७।२।ə।८।१०।४।११ संदृष्टि हुयी । उनकी रचना ऐसी जाननी –

आनतद्विक से लेकर अंतिम ग्रैवेयक तक में भागहारों की रचना –

नाम	असंयत के भागहार	मिथ्यादृष्टि के भागहार
नवम ग्रैवेयक	=ə।५।१०	=ə।५।१०।६।११
अष्टम ग्रैवेयक	=ə।५।९	=ə।५।१०।६।१०
सप्तम ग्रैवेयक	=ə।५।८	=ə।५।१०।६।९
षष्ठम ग्रैवेयक	=ə।५।७	=ə।५।१०।६।८
पंचम ग्रैवेयक	=ə।५।६	=ə।५।१०।६।७
चतुर्थ ग्रैवेयक	=ə।५।५	=ə।५।१०।६।६
तृतीय ग्रैवेयक	=ə।५।४	=ə।५।१०।६।५
द्वितीय ग्रैवेयक	=ə।५।३	=ə।५।१०।६।४
प्रथम ग्रैवेयक	=ə।५।२	=ə।५।१०।६।३
आरणद्विक	=ə।५।१	=ə।५।१०।६।२
आनतद्विक	=ə	=ə।५।१०।६।१
विजयादि	=ə।५।१०।६।११।७।२	
अनुदिश	=ə।५।१०।६।११।७।१	

नाम	मिश्र के भागहार	सासादन के भागहार
नवम ग्रैवेयक	=ə।५।१०।६।११।७।२।ə।८।१०	=ə।५।१०।६।११।७।२।ə।८।१०।४।११
अष्टम ग्रैवेयक	=ə।५।१०।६।११।७।२।ə।८।९	=ə।५।१०।६।११।७।२।ə।८।१०।४।१०
सप्तम ग्रैवेयक	=ə।५।१०।६।११।७।२।ə।८।८	=ə।५।१०।६।११।७।२।ə।८।१०।४।९
षष्ठम ग्रैवेयक	=ə।५।१०।६।११।७।२।ə।८।७	=ə।५।१०।६।११।७।२।ə।८।१०।४।८
पंचम ग्रैवेयक	=ə।५।१०।६।११।७।२।ə।८।६	=ə।५।१०।६।११।७।२।ə।८।१०।४।७
चतुर्थ ग्रैवेयक	=ə।५।१०।६।११।७।२।ə।८।५	=ə।५।१०।६।११।७।२।ə।८।१०।४।६
तृतीय ग्रैवेयक	=ə।५।१०।६।११।७।२।ə।८।४	=ə।५।१०।६।११।७।२।ə।८।१०।४।५
द्वितीय ग्रैवेयक	=ə।५।१०।६।११।७।२।ə।८।३	=ə।५।१०।६।११।७।२।ə।८।१०।४।४
प्रथम ग्रैवेयक	=ə।५।१०।६।११।७।२।ə।८।२	=ə।५।१०।६।११।७।२।ə।८।१०।४।३
आरणद्विक	=ə।५।१०।६।११।७।२।ə।८।१	=ə।५।१०।६।११।७।२।ə।८।१०।४।२
आनतद्विक	=ə।५।१०।६।११।७।२।ə	=ə।५।१०।६।११।७।२।ə।८।१०।४।१

ऐसे ये कहे हुये भागहार, उनका भाग पल्य को देनेपर जो जो प्रमाण आता है,वह वह अपनी अपनी राशि जानना ।

पुनश्च गतिमार्गणा में अपनी अपनी राशि का जो प्रमाण कहा है उसमें से अन्य गुणस्थानों की संख्या घटाने के लिये गुणकार के आगे किंचित् कम की ऐसी – संदृष्टि करनेपर अथवा भागहार के ऊपर किंचित् अधिक की ऐसी । संदृष्टि करनेपर मिथ्यादृष्टि में प्रमाण की संदृष्टि होती है । सो टीका में से जानननी ।

पुनश्च सर्वार्थसिध्दि के देव गतिमार्गणा में जो मनुष्यणियों का प्रमाण कहा, उससे तीनगुणा अथवा सातगुणा जानना । उनकी संदृष्टि ऐसी - ४२=।४२=।४२=।३।३ ४ अथवा ७ ।

पुनश्च मनुष्यगति में सासादन आदि में बावन करोड आदि संख्यात जीव हैं । उन्हें घटाने की संदृष्टि मनुष्यराशि के आगे करनेपर मिथ्यादृष्टि में मनुष्यों की ऐसी $\frac{१०}{१।३}$ – ०१ संदृष्टि जाननी । [०१ → २रे से १४वें गुणस्थान तक के जीव; $\frac{१०}{१।३}$ एक कम जगत्श्रेणी ÷ सूच्यंगुल का प्रथम मूल X तृतीय मूल]

पुनश्च सम्यक्त्वों में जीवों की संख्या की संदृष्टि ऐसी जाननी –

नाम	क्षायिकी	वेदक	उपशमी	सासादन	मिश्र	मिथ्यादृष्टि
प्रमाण	प २०१	प७ २०१	प २०१।७	प २७।४	प ७।७	१३–

यहां सात-आठ वर्ष के तीन बार संख्यात गुणित आवली मात्र काल में यदि संख्यात क्षायिकी सौधर्मद्विक में उपजते हैं तो संख्यात पल्यमात्र स्थिति काल में कितने उपजते हैं? ऐसा त्रैराशिक करनेपर **प्रमाण** २०१०१०१ **फल** ०१ **इच्छा** प०१ लब्धराशिमात्र क्षायिकी जीवों का प्रमाण संख्यात आवली से भाजित पल्यमात्र जानना । उनसे असंख्यातगुणे वेदक और उन्हीं के असंख्यातवें भागमात्र उपशमी जानने । पुनश्च सासादन, मिश्र, मिथ्यादृष्टियों की संख्या अपने अपने गुणस्थानवत् जानना ।

पुनश्च नौ पदार्थों का प्रमाण ऐसा –

नाम	जीव	अजीव	जीवपुण्य	अजीवपुण्य	जीवपाप	अजीवपाप
द्रव्यमान	१६	३ ≡ १६ख	ƻ / (१ / प ə ə ४ ə ə ə ४)	स ə १२– ƻ	१३–	स ə १२– (१∩ / ƻ) ƻ
क्षेत्रमान	≡ खख	≡ खखख	२ ə	≡ ख ।१ ƻ	≡ खख–	≡ ख (१∩ / ƻ) ƻ
कालमान	अख	अखख	क ə	वख –	अख –	वख
भावमान	के खख	के ख	ओ ə	के खखख	के – खख	के खखख

नाम	आस्रव	संवर	निर्जरा	बंध	मोक्ष
द्रव्यमान	स ə	स ə	स ə १२–६४ ओ प ə ८५	स ə	स ə १२–
क्षेत्रमान	≡ ख	≡ ख	≡ ख	≡ ख	≡ ख
कालमान	कख	कख	कख	कख	कख
भावमान	के ख ३	के ख ३	के ख ३	के ख ३	के ख ३

यहां **द्रव्यमान** से जीवराशी ऐसी १६, इससे अनंतगुणा पुद्गलराशि के ऊपर धर्मादि तीन द्रव्य सहित लोकमात्र कालद्रव्य अधिक करनेपर अजीवराशि होती है । पुनश्च असंयत का प्रमाण ऐसा प ə, देशसंयत का प्रमाण ऐसा प ə।४।ə।ə यहां भागहार में एक बार असंख्यात की समानता देखकर अन्य से समच्छेद करनेपर पल्य की समानता देखकर आगे के गुणकार के ऊपर एक अधिक करनेपर ऐसा १ / प ə४ə ə४əə यहां प्रमत्तादिक के संख्यात जीव मिलाने के लिये ऊपर संख्यात की संदृष्टि करनेपर जीवपुण्यराशि की संदृष्टि होती है ।

पुनश्च किंचित् कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबध्द के संख्यातवें भागमात्र अजीवपुण्य हैं । पुनश्च किंचित् कम संसारीराशिमात्र जीवपाप है । पुनश्च किंचित् कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबध्द को संख्यात का भाग देकर बहुभाग के ग्रहण

निमित्त एक कम संख्यात से गुणा करनेपर अजीवपाप होता है । पुनश्च आस्रव, संवर, बंध ये प्रत्येक समयप्रबध्दमात्र है ।

पुनश्च किंचित् कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबध्द को अपकर्षण भागहार **ओ** और पल्य के असंख्यातवें भाग $\frac{प}{a}$ का भाग देनेपर गुणश्रेणियोग्य द्रव्य होता होता है। उसको अंकसंदृष्टि की अपेक्षा चौंसठ से गुणा करके पचासी का भाग देनेपर उत्कृष्ट निर्जरा द्रव्य होता है । पुनश्च किंचित् कम डेढ़ गुणहानि गुणित समयप्रबध्दमात्र मोक्षद्रव्य जानना ।

पुनश्च **क्षेत्रमान** से दो बार और तीन बार अनंत गुणे लोकमात्र जीव और अजीव हैं । सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागमात्र जीवपुण्य हैं । अनंतगुणा लोक को संख्यात का भाग देकर एक भागमात्र अजीवपुण्य हैं, बहुभागमात्र अजीवपाप हैं । किंचित् कम दो बार अनंतगुणित लोकमात्र जीवपाप हैं । अनंतगुणा लोकमात्र बंधादिक हैं ।

पुनश्च **कालमान** से एक, दो बार अतीतकाल गुणित अनंत जीव, अजीव हैं । कल्पकाल के असंख्यातवें भागमात्र जीवपुण्य हैं । किंचित् कम अनंतगुणा कल्पकालमात्र अजीवपुण्य हैं । किंचित् कम अनंतगुणा अतीतकालमात्र जीवपाप हैं । अजीवपाप आदि अनंतगुणा कल्पकालमात्र हैं ।

पुनश्च **भावमान** से दो बार, एक बार केवलज्ञान को अनंत का भाग देनेपर जीव, अजीव राशि होती है । अवधिज्ञान के भेदों **ओ** के असंख्यातवें भागमात्र जीवपुण्य हैं । किंचित् कम दो बार अनंत से भाजित केवलज्ञानमात्र जीवपाप हैं । अन्य पदार्थ तीन बार अनंत से भाजित केवलज्ञानमात्र हैं । इनकी यथासंभव संदृष्टि यंत्र में से जाननी ।

अब **संज्ञीमार्गणा** अधिकार में संदृष्टि कहते हैं – वहां जीवों की संख्या में संदृष्टि ऐसी –

नाम	संज्ञी	असंज्ञी
प्रमाण	|| १ ||| ॄ/१ ≡ ४।६५=	१३–

यहां गतिमार्गणा में बतायी हुयी देवराशि के ऊपर अन्य तीन गतियों के संज्ञी मिलाने के लिये ऊपर ऊभी तीन लकीरों की संदृष्टि करनेपर संज्ञी जीवों की संदृष्टि होती है । उन्हें घटाने के लिये संसारीराशि के आगे किंचित् कम की ऐसी – संदृष्टि करनेपर असंज्ञी जीवों की संदृष्टि होती है ।

अब **आहारमार्गणा** अधिकार में संदृष्टि कहते हैं – वहां आहारक का उत्कृष्टकाल सूच्यंगुल के असंख्यातवें भागमात्र, जघन्य काल तीन समय कम उच्छ्वास के अठारहवें भागमात्र है। पुनश्च अनाहारक का उत्कृष्ट काल तीन समय, जघन्य काल पाणिमुक्ता गतिवाले के एक समयमात्र की संदृष्टि ऐसी **स१**।

नाम	आहारकाल	अनाहारकाल
उत्कृष्ट	२ / a	स३
जघन्य	ओ–३ / १८	स१

पुनश्च कार्माण काल तीन समय **३**, औदारिक मिश्रकाल एक अंतर्मुहूर्त ऐसा **२७१** । औदारिक काल इससे संख्यातगुणा, सो संख्यात की संदृष्टि चार का अंक करनेपर ऐसा **२७४** इनको जोड़नेपर **३ / २७५** ऐसी प्रमाणराशि और फलराशि किंचित् कम संसारीराशि और इच्छाराशि अनाहारक काल करनेपर लब्धराशिमात्र उन जीवों का प्रमाण जानना ।

प्रमाण	फल	इच्छा	लब्धराशि
३ / २७।५	१३–	३	१३–३ / ३ / २७।५ अनाहारक जीवप्रमाण
३ / २७।५	१३–	२७।५	१३–२७।५ / ३ / २७।५ आहारक जीवप्रमाण

अब **उपयोग अधिकार** में संदृष्टि कहते हैं – वहां जीवों की संख्या में ज्ञानोपयोगी जीवों का ज्ञानमार्गणावत् और दर्शनोपयोगी जीवों का दर्शनमार्गणावत् ऐसा प्रमाण जानना–

नाम	कुमतिज्ञानी	कुश्रुत	विभंग	मति	श्रुत	अवधि	मन:पर्यय	केवलज्ञानी
प्रमाण	१३–	१३–	॥ १ ᒿ ||| १ = ‾‾ ४।६५=	प ə	प ə	१० प ə –ᒿ ə ə	ᒿ	ᒿ ‾‾ ३

विभंगज्ञानी जीवों का चार गतियों में प्रमाण ऐसा –

नाम	तिर्यंच विभंगज्ञानी	मनुष्य वि.	नारक वि.	देव वि.
प्रमाण	–६प ə	ᒿ	–२–	॥ १ ᒿ = १ – ४।६५=

दर्शनोपयोगी जीवों का प्रमाण ऐसा –

नाम	शक्तिचक्षुर्दर्शनी	व्यक्तचक्षुर्दर्शनी	अचक्षुर्दर्शनी	अवधिदर्शनी	केवलदर्शनी
प्रमाण	= ४ २= २ ४ ə	= २– ४ ४ ५	१३–	१० प ə –ᒿ ə ə	ᒿ ‾‾ ३

ओघादेश में विंशतिप्ररूपणा निरूपण अधिकार में यथासंभव मार्गणा के भेदों के आदि अक्षर लिखकर नीचे गुणस्थान, जीवसमासों की संख्या के अंक लिखनेपर रचना होती है । तथा गुणस्थानों के नाम का आदि अक्षर लिखकर उसके नीचे यथासंभव मार्गणा भेदों के प्रमाण का अंक लिखनेपर रचना होती है, वह कथन के अनुसार जाननी।

पुनश्च **आलाप अधिकार** में विशेष संदृष्टि है नहीं ।

इसप्रकार जीवकांड में अर्थसंदृष्टि स्वरूपनिरूपण समाप्त होता है ।

श्रित्वा कार्णाटिकीं वृत्तिं वर्णिश्रीकेशवैः कृतिः ।
कृतेयमन्यथा किंचिद् विशोध्यं तद्बहुश्रुतैः ।। १ ।।

ऐसे संस्कृत टीकाकार के वचन —

दोहा – अभयचन्द्र श्रीमान के हेतु करी जो टीक ।
सोधो बहु श्रुतधर सुधी सो रचना करि ठीक ।। १ ।।

चौपाई – केशव वर्णी भव्य विचार । कर्णाटक टीका अनुसार ।
संस्कृत टीका कीनी एहु । जो अशुद्ध सो शुद्ध करेहु ।। १ ।।

ऐसे भाषा टीकाकार के वचन –

दोहा – जीवकांड कौं जानिकैं ज्ञानकांडमय होइ ।
निज स्वरूप में रमि रहै शिवपद पावै सोइ ।।

सोरठा – मंगल श्री अरहंत सिद्ध साधु जिन धर्म फुनि ।
मंगल च्यारि महंत एई हैं उत्तम शरण ।।

सवैया

अरथ के लोभी ह्वै कै करिकै सहास अति, अगम अपार ग्रंथ पारावार में परै।
थाह तौ न आओ तहां फेरि कौन पाओ पार, तातैं सूधे मारग ह्वै आधे पार उतरै ।।

इहां परजंत जीव कांडकी है मरजाद, याके अर्थ जानैं निज काज सब सुधरै ।
निजमति अनुसारि अर्थ गहि टोडर हू, भाषा बनवाई यातैं अर्थ गहौ सगरे ।।

इति जीवकांड सम्पूर्णम् ।